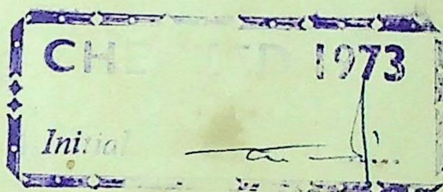



CH 1973
Initial

ओ३म्

मेरे संस्मरण

आत्म-कथा के रूप में



मूलराज

पंजाब पुस्तक-भंडार,
दरियागंज, दिल्ली

प्रकाशक
ओंप्रकाश, अध्यक्ष,
पंजाब पुस्तक भंडार, दिल्ली।

प्रथम संस्करण
२०१० विक्रमी—१९५४ ई०

मूल्य—
पाँच रुपया

मुद्रक—
विश्वभारती प्रेस,
पहाड़गंज, दिल्ली।

उपहार

सादर सप्रेम भेंट

पं इन्द्र विद्यावाचस्पति

मल्कागंज रोड दिल्ली

२५-३-१९५४

कृतज्ञता-प्रकाशन

इस पुस्तक की रचना में मैंने निम्नपुस्तकों तथा समाचार-पत्रों से लाभ उठाया है, मैं उनका आभारी हूँ:—

१—आत्म-कथा (बेंजेमन फ्रेंकलिन)

२—आत्म-कथा (महात्मा गाँधी)

३—मेरी कहानी (जवाहरलाल नेहरू)

४—आत्म-कथा (नारायण स्वामी)

५—मेरी आत्म-कथा (डा० राजेन्द्र प्रसाद)

६—कल्याण मार्ग का पथिक (स्वामी श्रद्धानन्द)

७—प्रताप (दैनिक उर्दू), नई दिल्ली

८—पाकिस्तान के भीतर (श्री के. एल. गाबा) राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

९—हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली

१०—गुरुकुल पत्रिका-स्वर्ण-जयन्ती विशेषांक

११—जीवन की झाकियाँ (पं० इन्द्र विद्या-वाचस्पति)



शिमला में (१६५०)

समर्पण

स्नेहमयी दादी जी,

माता जी के जीवन काल में तो आपका स्नेह-भरा हाथ मुझ पर था ही पर उनके परलोक-गमन के पश्चात् वह प्रेम-स्रोत और भी अधिक वेग से बह चला जिससे मुझे उनके वियोग का अनुभव न होने पाया। मेरे जीवन में यदि कुछ माधुर्य हो तो उसका श्रेय आपको ही है।

ये साधारण से संस्मरण-सुमन आपके पवित्र चरणों में समर्पित हैं! माता स्वीकार करो!!

मातः! यह चरणों में तेरे
प्रेम प्रसून समर्पित है।
और तुम्हें क्या दे सकता हूँ
कण-कण जीवन अर्पित है॥

तुम्हारा पौत्र,
'मूल'

विषय सूची

दो शब्द

ये अपने कुछ संस्मरण आपके सन्मुख रख रहा हूँ। इनमें मेरे जीवन के लगभग ७० वर्षों का विवरण है। १९४६ में जब मेरी धर्म-पत्नी परलोक सिधारीं तो मेरे पुत्र, पुत्री व अन्य सम्बन्धिवर्ग ने उनके जीवन-वृत्त को क्रमबद्ध करने के लिए मुझे प्रेरित किया। मैंने अपनी लिखित तथा अन्य सामग्री से आवश्यक घटनाओं को संकलन करना आरंभ किया। इस सामग्री में मेरे जीवन की घटनाएं भी इस प्रकार गुंथी हुई थीं कि जिन्हें पृथक् करना सुगम न था। इससे मुझे प्रेरणा हुई कि अपने जीवन सम्बन्धी कुछ घटनाएं भी संग्रह करता जाऊँ। इसमें जब मेरे बाल्य काल की बातें भी सम्मिलित हो गईं तो इससे इन संस्मरणों ने जीवनी का रूप धारण कर लिया।

हमारे यहाँ भारत में कुछ इने गिने प्रसिद्ध व्यक्तियों की ही आत्म-कथाएं अब तक प्रकाशित हुई हैं। इस दृष्टि से मेरे जैसे व्यक्ति का अपने संस्मरण प्रकाशित करने का साहस कुछ विलक्षण सा ही प्रतीत होगा क्योंकि न तो मुझे विशेष प्रसिद्धि प्राप्त है, न मैं कोई साहित्यकार हूँ और नाहीं मैंने संसार के भिन्न २ क्षेत्रों पर असाधारण प्रभाव डाला है, पर मैं अपना कार्य करते हुए जिन व्यक्तियों के सम्पर्क में आया हूँ मैंने

उनको यथाशक्ति सुचारू रूप से जानने का यत्न किया है। मेरा कार्य क्षेत्र विशेषतः शिक्षा रहा है। इसके लिए मैंने अपने देश के अतिरिक्त बाहर के भी शिक्षण-कार्य का अनुशीलन किया है। ये संस्मरण उसी जानकारी के परिणाम स्वरूप उपस्थित कर सका हूँ।

मेरा विचार है कि साधारण व्यक्तियों के जीवन में भी कुछ ऐसी बातें आती हैं जिन से दूसरे लोग प्रेरणा ले सकते हैं। अपने स्थान से बाहर जाकर वहाँ के अनुभवों को दूसरों के सामने लाने से कुछ लाभ की ही आशा हो सकती है अतः यह समीचीन होगा कि सुशिक्षित व्यक्ति इस ओर पग उठावें और साधन सम्पन्न व्यक्ति उन्हें प्रकाशित करने में सहयोग दें। जहाँ तक मेरे परिवार, सम्बन्धी व मित्रवर्ग का प्रश्न है, मुझे आशा है कि उन्हें मेरे इस प्रयास से कुछ अंशों में जानकारी मिल सकेगी।

मैंने देश के भिन्न २ भागों में भ्रमण किया है। काश्मीर, शिमला एवं अन्य पर्वतीय स्थानों पर तो कई वार गया हूँ। वहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्यमय दृश्यों का अवलोकन किया है। देश के भिन्न २ भागों की पुरातन व नवीन अवस्थाओं का भी अध्ययन किया है। इसके अनुसार जिन तथ्यों का संग्रह कर सका हूँ, उन सभी का इसमें समावेश है। इसके अतिरिक्त वर्त्तमान काल राजनैतिक दृष्टि से बड़ा महत्त्वपूर्ण रहा है। असहयोग आन्दोलन (सत्याग्रह) इस युग का विशिष्ट आविष्कार है। इसके ही द्वारा देश स्वतन्त्रता प्राप्त कर सका है और भारतीय जनतन्त्र के रूप में इस समय हमारे सामने है। इस क्रान्ति के

अन्त में पंजाब और बंगाल के लोगों का बलात् अपने स्थानों को छोड़ कर देश के अन्य भूभागों पर जाना और लाहौर तथा पंजाब, सीमा-प्रान्त के सभी भागों में नर संहार होना आदि सभी दृश्य पाठकों के लिए उपयोगी सामग्री उपस्थित करते हैं। इनकी ओर भी मैंने संकेत किया है।

दक्षिण भारत के प्रसिद्ध स्थान अजन्ता व अलोरा भारतीय संस्कृति को सदैव अपनी आभा से उज्वल बनाये हुए हैं। मेरी हैदराबाद यात्रा के वर्णन में तत्सम्बन्धी जानकारी भी मिल सकेगी।

आरम्भ से ही मेरा आर्यसमाज से सम्पर्क रहा है। इसी क्षेत्र में ही मैंने कुछ कार्य किया है। उसके शिक्षा-कार्य से मुझे अधिक रुचि रही है। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का मैं सदैव समर्थक रहा हूँ। परन्तु आर्य-समाज के अन्य शिक्षणालयों के संगठन तथा उनमें धर्म-शिक्षा के प्रसार में भी मैंने भाग लिया है। इस निमित्त पंजाब आर्य-शिक्षा समिति के कार्य संचालन से गत २५ वर्षों से भी अधिक समय तक मेरा घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। यहाँ यह कह देना भी अनुचित न होगा कि अपनी यात्राओं में आर्यसमाज का दृष्टिकोण सदैव मेरे सम्मुख रहा है। अतः मथुरा, वृन्दावन व गंगा, यमुना की केवल जानकारी के भाव से यात्रा की है। यदि उसमें किसी प्रकार की कुछ उपेक्षावृत्ति प्रतीत हो तो उसके लिए क्षमा चाहता हूँ।

आर्यसमाज के अतिरिक्त कुछ और संस्थाओं से भी मेरा सम्बन्ध रहा है जिनका यथास्थान वर्णन आ गया है। मैकमिलन कम्पनी के शिक्षा कार्य से तो मेरा सम्बन्ध रहा ही है। तदर्थ मुझे भिन्न-भिन्न

स्थानों के भ्रमण, शिक्षा-अधिकारियों से भेंट तथा शिक्षा संस्थाओं के अनुशीलन के अवसर होते रहे हैं। यदि मेरे अनुभव अधिकतर पाश्चात्य शिक्षा संस्थाओं से सम्बन्धित दीख पड़ें तो वे इसी के परिणाम स्वरूप समझे जाने चाहियें।

जीवन एक संघर्ष है। इस संघर्षमय जीवन में मैंने क्या भाग लिया है यह तो इस पुस्तक का अध्ययन ही बता सकेगा। यदि मेरे अनुभवों से किसी को कुछ लाभ हुआ तो मैं अपने प्रयास को सफल समझूँगा।

इस पुस्तक के निर्माण में मुझे श्री सत्यपाल 'विकल' और श्री रघुवीर शरण बंसल से जो सहायता मिली है उसके लिए मैं उनका आभारी हूँ।

विनीत—

मूलराज

३ लाज बिल्डिंग,
करोलबाग, नई दिल्ली।
मकर संक्रान्ति, २०१० विक्रमी।

मेरे संस्मरण

प्रथम खण्ड

विषय-सूची



१—वंश-परिचय

भारत मुग़लकाल में—मुग़लों के आने से लगभग तीन शताब्दी पूर्व भारत में मुसलमानों का शासन प्रारम्भ हो चुका था। १६ वीं शताब्दी में सिख धर्म के संस्थापक श्री गुरु नानकदेव जी का आविर्भाव पंजाब में हुआ। जब बाबर ने सन् १५२६ में पानीपत के मैदान में लोधी-वंश पर विजय प्राप्त की और भारत सम्राट की पदवी पाई, उस समय गुरु नानकदेव जी भ्रमण करते हुए एक ईश्वर की पूजा, मनुष्यों में परस्पर भ्रातृभाव व प्रेम व्यवहार का प्रचार कर रहे थे। अपने भ्रमण काल में जब बाबर से उनकी भेंट हुई तो वह उनकी वार्तालाप से बहुत प्रभावित हुआ।

गुरु नानकदेव जी के पश्चात् उनके चार उत्तराधिकारी भी उन्हीं के समान भक्ति व प्रेम का प्रचार करते रहे। इधर बाबर के उत्तराधिकारी हमायूँ और अकबर का भी देशवासियों से ऐसा व्यवहार चलता रहा कि जिससे अन्य धर्मावलम्बियों में उनके राज्य के प्रति कभी किसी प्रकार का असन्तोष न हुआ।

सिख राजनीति के पथ पर—गुरु अर्जुनदेव सिखों के पञ्चम गुरु थे, उन्होंने सिखों के भक्ति आन्दोलन को सङ्गठन का रूप दिया। शाहज़ादा खुसरो अपने पिता जहाँगीर के विरुद्ध सहायता के लिए गुरु अर्जुनदेव के पास आया और उनसे आशीर्वाद लेकर उसने विद्रोह किया। जब जहाँगीर को पता चला तो वह गुरु जी पर क्रुद्ध हो गया। उन पर अमानुषिक अत्याचार किये गये। उनके पवित्र शरीर पर गर्म रेत डाली गई। उन्हें मृत्यु दण्ड दे कर मरवा डाला गया। जहाँगीर की

आत्म-कथा में लिखा है कि 'गुरु अर्जुनदेव का वध करके मैंने एक पुण्य कर्म किया है।' इस प्रकार १६०६ में गुरु अर्जुन देव का वध हुआ।

गुरु अर्जुन देव के वध ने मुग़लों और सिखों के बीच शत्रुता की एक दीवार बनादी। जिस घृणा के परिणाम स्वरूप जहाँगीर ने गुरु जी का वध किया, वह उसके पौत्र औरंगज़ेब तक पहुँचते-पहुँचते इतनी तीव्र हो गई कि उससे पंजाब में मुग़ल राज्य की राख पर सिख राज्य के भव्य भवन की नींव पड़ गई।

अब उनके उत्तराधिकारी गुरुओं ने अपने संगठन की ओर और अधिक ध्यान देना प्रारम्भ किया, किन्तु शाहजहाँ ने अपनी नीति में कुछ परिवर्तन तो किया पर बहुत कम। मुग़लों की इस अनुदारता व द्वेष भाव को अनुभव करते हुए भी प्रजा ने शान्ति भंग का यत्न न किया। उन्हें आशा थी कि कुछ समय पाकर सब कुछ ठीक हो जायगा। वे अपने उज्ज्वल भविष्य की प्रतीक्षा में थे।

सातवें गुरु हरगोविन्द जी ने सन् १६२८ में शाहजहाँ की सेना को अमृतसर के समीप संग्रामा नामक स्थान पर हरा दिया पर अन्त में मुग़ल सम्राट ने उन्हें पराजित कर लिया। गुरु जी अब कर्तारपुर में जाकर निवास करने लगे।

जब नवें गुरु श्री तेग़बहादुर सन् १६६४ में गद्दी पर बैठे तो वे कर्तार-पुर से ६ मील पर आनन्द पुर जाकर निवास करने लगे। उन्होंने अपना संगठन और भी दृढ़ कर लिया तथा 'जज़िया कर' के विरुद्ध आन्दोलन की भी उन्होंने पुष्टि की। उस समय मुग़ल सम्राट था शाहजहाँ का पुत्र औरंगज़ेब। उसने गद्दी पर बैठते ही हिन्दुओं पर अत्याचार करने आरम्भ कर दिये। सन १६७५ में उसने गुरुजी को दिल्ली बुलाकर सावधान करते हुए कहा कि, "जो अपराध तुमने किया है उसका दण्ड है मृत्यु। यदि बचने की इच्छा है तो इस्लाम स्वीकार कर लो।" गुरु तेग़बहादुर अपने निश्चय पर आरूढ़ रहे और उन्होंने अपने प्राणों को धर्म के आगे

तुच्छ समझा। इसलिए इतिहासवेत्ता लिखते हैं कि "गुरु जी ने सिर दिया, सर न दिया।"

जहाँगीर ने गुरु अर्जुनदेव का वध करके जो सिखों और मुग़लों के बीच घृणा का बीज बोया था उसे औरंगजेब ने अपने दमन से सींच दिया। भेद की दीवार अब और भी दृढ़ हो गई। सिखों में प्रतिकार की भावना अत्यन्त प्रबल हो गई। अब तो उनकी मुग़ल सम्राट से टक्कर होनी अनिवार्य थी।

गुरु गोविन्दसिंह—औरंगज़ेब का अत्याचार बढ़ता गया। इन अत्याचारों के विरुद्ध चारों ओर कई दल खड़े हो गये। मथुरा में जाटों ने सिर उठाया और नारनौल में सतनामियों ने विद्रोह कर दिया। हिंदु-धर्म की रक्षा के लिये दक्षिण में शिवाजी और छत्रसाल ने संगठित आन्दोलन प्रारंभ कर दिये। इधर पंजाब में सिख आन्दोलन ज़ोर पकड़ रहा था। गुरु नानक ने जो शान्तिमय भक्ति आन्दोलन आरंभ किया था वह अब मुग़ल शासकों के अत्याचारों से विवश होकर सैन्य शक्ति-संगठन के रूप में बदल गया था। सिख गुरुओं और उनके अनुयाइयों पर किये गये अत्याचारों के कारण उन्हें तलवार उठानी पड़ी। इन अत्याचारों ने गुरु गोविन्दसिंह जी जैसे नेता को जन्म दिया।

उनके नेतृत्व में एक खालसा सेना तैयार हुई। गुरु जी के कन्धों पर सारा भार आ गया। उन्होंने बहुत-सी लड़ाइयाँ लड़ीं, अपना सुख और आराम छोड़ा। भक्तिमय भजनों के स्थान पर मारु बाजा बजने लगा। देश-धर्म के इस यज्ञ में अपने पुत्रों तक की आहुति दे दी। सन् १७०७ में औरंगज़ेब की मृत्यु हो गई। उसके पुत्रों में गद्दी के लिए युद्ध छिड़ गया। उनमें से शाहज़ादा मोअज़्ज़म को सफलता हुई। वह बहादुरशाह के नाम से गद्दी पर बैठ गया। उसने गुरु गोविन्दसिंह जी से संधि कर ली। एक सेना लेकर वह दक्षिण-विजय करने चल पड़ा। गुरु जी की सेना भी साथ थी। जब ताप्ती नदी पर पहुँचे तो बाढ़ के

कारण रुकना पड़ा। गुरुजी अपनी सेना लेकर कुछ दूरी पर जा ठहरे। जब यह ताप्ती पार करके गोदावरी पर पहुँचे तो नाँदेड़ नामक स्थान पर अपना पड़ाव डाला। उनके आश्रम में दो पठान रहते थे। समय पाकर उन्होंने गुरुजी पर आक्रमण कर दिया। गुरु जी घायल हो गये। कुछ समय में उनके घाव ठीक हुए, इस बीच में मुग़लों को उन पर सन्देह हो चुका था। इस कारण उन्होंने गुरु जी पर आक्रमण कर दिया। गुरु जी ने डट कर सामना किया। इससे उनके घाव पुनः खुल गये। अब वह अधिक समय जीवित न रह सके, शीघ्र ही अपनी भौतिक देह त्याग दी।

गुरू जी और बन्दा वैरागी—नाँदेड़ में ठहरते हुए, मृत्यु से पूर्व गुरु गोविदसिंह जी की भेंट माधोदास वैरागी से हुई। उन्हें धर्म पर आये हुए संकट के विरुद्ध संघर्ष करने को प्रेरित किया। गुरु जी ने उनसे बात-चीत में कर्म का महत्त्व बताया और कहा—"संसार को त्यागना जीवन नहीं, संघर्ष जीवन का दूसरा नाम है। अपने लिए जीना, जीना नहीं है अपितु अन्यों के लिये मरना ही वास्तविक जीवन है।" इन शब्दों ने माधोदास वैरागी के गेरवे वस्त्र छुड़ा दिये। उसने वीर वेष धारण कर लिया। गुरु जी ने उसे वास्तव में बन्दा बना दिया। वह मुसलमानों के अत्याचारों को मिटाने के लिए कटिबद्ध हो गया।

बन्दा वैरागी का प्रारम्भिक जीवन—औरंगज़ेब जब हिंदुओं पर घोर अत्याचार कर रहा था, उन दिनों जम्मू रियासत के राजौरी नामक स्थान पर एक बालक का जन्म हुआ। उसका नाम लक्ष्मण देव रखा गया। जब वह बड़ा हुआ तब उसे अपने पिता का राज्य मिल गया और वह लक्ष्मण सिंह के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसे शिकार खेलने का बड़ा शौक था। शिकार खेलते हुए एक बार एक हिरनी को मार दिया। उसका पेट फाड़ने पर जीवित दो बच्चे निकले जो उसके सामने तड़प तड़प कर मर गये। इस घटना ने लक्ष्मण सिंह का हृदय हिला दिया। उसके हृदय में वैराग्य उत्पन्न हो गया।

सत्य बात तो यह थी कि गुरु गोविन्दसिंहजी का देश-प्रेम और सर्वस्व बलिदान बंदा को राजनीति में लाने में समर्थ हुआ।

वीर बन्दा वैरागी पंजाब आये। पहले पहल सिखों ने उनका साथ दिया। उन्होंने सरहिन्द पर अधिकार कर लिया। इससे सिखों का साहस बढ़ गया और वे किलों पर छापा मारने लगे। परन्तु आपसी फूट के कारण सिख शक्ति छिन्न भिन्न हो गई। बन्दा वैरागी को पकड़ कर दिल्ली लाया गया। वीर बन्दा के पकड़े जाने से देश पर अन्धकार और विपत्ति के बादल छा गये। जो आशा की किरण चमकी थी, वह असमय में ही स्वार्थ और कलह के कारण लुप्त हो गई।

एक लेखक का कथन है कि "कुतुबमीनार के सामने बन्दा को अमानुषिक कष्ट दिये गये। उसके बेटे का कलेजा निकाल कर उसकी छाती पर मारा गया। फिर उसे उसके मुँह में ठूँसा गया। जलते हुए चिमटों से उसके शरीर का मांस नोचा गया, पर वह कुतुबमीनार के सामने इस प्रकार ध्रुव के समान स्थिर था मानो कि वह दूसरा कुतुब मीनार हो। जिस प्रकार इतिहास की अनगिनत करवटों ने कुतुब मीनार के माथे पर बल नहीं पड़ने दिया इसी प्रकार इन अत्याचारों ने बन्दा की दृढ़ता में कोई शिथिलता न आने दी। उसका मांस नोचा जा रहा था पर वह एक लोहे के स्तम्भ के समान अचल खड़ा था।"

मृत्यु के कष्ट की उसके मन में तनिक भी चिन्ता न थी। शत्रु के दारुण अत्याचारों से वह किञ्चितमात्र भी भयभीत न हुआ।

उसके इस अपूर्व धैर्य को देख कर मुग़ल अधिकारी ने इस दृढ़ता का कारण पूछा। बन्दा ने उत्तर दिया कि जो मनुष्य आत्मा को जानता है, वह इस सत्य को भी जानता है, वह इस से अनभिज्ञ नहीं है कि आत्मा सब दुःखों से परे है, कोई अत्याचार आत्मा को विचलित नहीं कर सकता।

वीर बन्दा मार डाला गया। हिन्दुओं ने तनिक चैन की साँस ली

थी, अब आहें भरने लगे। उन पर अत्याचार बढ़ गये, जीवन दूभर हो गया। लोग अपने पुराने घरों और गाँवों को छोड़ कर अधिक सुरक्षित स्थानों की ओर जाने लगे।

इन परिस्थितियों में, सन् १७०८ में अरोड़वंश के नरूला परिवार के एक साधारण घराने में, एक बालक कृपाराम का जन्म हुआ। यही हमारे वंश के सबसे पहिले व्यक्ति हैं जिनके विषय में मुझे कुछ जानकारी प्राप्त हो सकी है।

यह भी पता चलता है कि उस समय बहुत से हिन्दू परिवार कई नगरों से लाहौर की राह, उत्तर की ओर गुजराँवाला, गुजरात तथा स्यालकोट के ज़िलों में आ बसे थे। सम्भव है कि ये परिवार दिल्ली या आग्रा से आये हों अथवा उनसे भी परे किसी स्थान से। उनमें से अधिकतर अरोड़वंशी थे। इनमें से उक्त नरूला परिवार ने भी सुरक्षा की भावना से अपना घर बार छोड़ा और ज़िला स्यालकोट के एक ग्राम में आकर बस गया। बालक कृपाराम अभी गोदी ही खेलते थे जब कि उनके माता पिता आदि को अपनी जन्म भूमि का त्याग करना पड़ा था। वे पहिले पहिल किस ग्राम में आकर रहने लगे, इस विषय में अभी तक कोई निश्चित जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी।

कहते हैं कि जब कृपाराम जी लगभग ३० वर्ष के थे तो उनके यहाँ एक पुत्र का जन्म हुआ और उसका नाम नत्थूमल रखा गया। नत्थूमल जी जब बड़े हुए तो उनके यहाँ दो पुत्र हुए:—भागमल जी और लाडामल जी। दूसरे पुत्र बाद में लाडासिंह के नाम से प्रसिद्ध हुए।

२—मेरे पूर्वज

जैसा कि पिछले प्रकरण में लिखा गया है, हमारे वंश के सर्व प्रथम व्यक्ति श्री कृपाराम जी थे। उनके पुत्र श्री नत्थूमल जी हुए। ला० नत्थूमल जी के दोनों पुत्र, ला० भागमल जी और लाडामल जी म्यानी ज़ि० स्यालकोट में रहते थे और ला० भागमल जी म्यानी से इस्लामगढ़ में आकर बसे थे। तब से उनके पुत्र और पौत्र भी इसी ग्राम में रहते रहे। ऊपर लिखे वर्णन से यह अनुमान होता है कि ला० भागमल और ला० लाडामल के पिता श्री नत्थूमल जी इनके जन्म से पूर्व ही म्यानी आकर रहे होंगे। यह भी संभव प्रतीत होता है कि जिस ग्राम में श्री कृपाराम जी के माता पिता आये थे, वह ग्राम म्यानी ही हो। कुछ भी हो, इस्लामगढ़ और म्यानी में बसने वाले इन दोनों परिवारों का आपस में प्रेम व्यवहार आगे भी चलता रहा। एक दूसरे के विवाहादि अवसरों पर वर्षों आना जाना बना रहा। मैंने भी अपनी बाल्यावस्था में अपनी बड़ी बहन के विवाह पर उस परिवार के अपने एक सम्बन्धी सरदार फ़तेहसिंह को देखा था। उनका मेरे पिता जी ने अपने सम्बन्धियों से परिचय कराया था और बताया था कि ये ला० लाडामल जी के वंश से हमारे भाई हैं। म्यानी वालों से हमारा सम्बन्ध आगे दिये वंशचित्र से भी स्पष्ट होगा।

अपने संस्मरण लिखने से पूर्व मैंने म्यानी में रहने वाले अपने परिवार के सम्बन्ध में पूछताछ कराई थी। देश के बटवारे से पूर्व वे म्यानी तथा समीप के एक ग्राम में रहते थे।

वंशावली

इस्लामगढ़ का नरूला वंश

श्री कृपाराम जी जन्म—१७६५ वि० (१७०८ ई०)
मृत्यु—१८४२ वि० (१७८५ ई०)

श्री नत्थूमल जी जन्म—१७९५ वि० (१७३८ ई०)
मृत्यु—१८६८ वि० (१८११ ई०)

श्री भागमल जी
जन्म—१८२० वि० (१७६३ ई०)
मृत्यु—१८८६ वि० (१८२९ ई०)

श्री लाडामल जी
(म्यानी जि० स्यालकोट में रहे)
जन्म १८२३ वि० (१७६६ ई०)
मृत्यु................................

सरदार गुरुमुखसिंह
जन्म—१८४३ वि० (१७८६ ई०)
मृत्यु—१९१७ वि० (१८६० ई०)

सरदार गंडासिंह जी
जन्म—१८४६ वि० (१७८९ ई०)
मृत्यु—१९१० वि० (१८५३ ई०)

श्री झंडामल जी
जन्म—१८४८ वि० (१७९१ ई०), मृत्यु—१९२३ वि० (१८६६ ई०)

श्री कृष्णामल जी
जन्म—१८५१ वि० (१७९४ ई०)
मृत्यु—१९२१ वि० (१८६४ ई०)

सरदार हीरासिंह जी
जन्म—१८७८ वि० (१८२१ ई०)
मृत्यु—१९४६ वि० (१८८९ ई०)

भक्त मथुरादास जी
जन्म—१८८० वि० (१८२३ ई०)
मृत्यु—१९४२ वि० (१८८५ ई०)

सरदार नारायणसिंह जी
जन्म—१८८७ वि० (१८३० ई०)
मृत्यु—१९४४ वि० (१८८७ ई०)

सरदार फतेहसिंह जी
जन्म—१९१० वि० (१८५३ ई०)
मृत्यु—३ पौष १९८९ वि०
(१८ दिसम्बर १९३२ ई०)

सरदार सुन्दरसिंह जी
जन्म—१९२४ वि० (१८६७ ई०)
मृत्यु—१९४८ वि० (१८९१ ई०)

सरदार फतेह सिंह जी

मूलराज	कृपाराम	देशराज
जन्म–२० श्रावण १९४१ वि० (८ अगस्त १८८४ ई०)	जन्म–१९५० वि० (१८९३ ई०)	जन्म–९ चैत्र १९५५ वि० २३ मार्च १८९८ ई०) मृत्यु–(एक वर्ष की आयु में)

श्रीभागमल जी—इनका प्राणांत ६६ वर्ष की आयु में हुआ। उनके चार पुत्र थे। इस समय सिख धर्म का प्रचार हो रहा था। इन्होंने अपने दो बड़े लड़कों को सिख बनाया। उनके नाम गुरुमुखसिंह और गंडासिंह रखे। दो छोटे लड़के झंडामल और कृष्णामल थे। इनमें झंडामल जी मेरे परदादा थे।

श्री झंडामल जी—इनके तीन पुत्र हुए। सबसे बड़े का नाम था सरदार हीरासिंह। उनसे छोटे मथुरादास थे जो बाद में भक्त मथुरादास कहलाये। वह आजन्म ब्रह्मचारी रहे। उनसे सात वर्ष छोटे थे सरदार नारायणसिंह, जो कि मेरे दादा थे। उनके दो पुत्र थे, सरदार फतहसिंह और सरदार सुन्दरसिंह।

मेरी परदादी—अपने परदादा के विषय में मैंने केवल सुना ही है। उनको मैंने देखा नहीं, मगर अपनी परदादी, श्रीमती गुलाब देवी को मैंने देखा है। मैं उनकी गोदी में खेला हूँ और उनसे मैंने बहुत कुछ सीखा है। मैंने जब होश संभाला तो वह बहुत वृद्ध हो चुकी थीं। इस पर भी वह लाठी के सहारे ग्राम के बाहर तक चली जाती थीं। जब मेरे चाचा सुन्दरसिंह जी का देहांत हुआ तो उनको बहुत दुःख हुआ। इस घटना के दो वर्ष के अंदर ही वे परलोक सिधार गईं। उनका पितृकुल इस्लाम गढ़ से तीन मील की दूरी पर म्यानी पिंडी ग्राम में था। उनके

भाइयों के पौत्रों में से श्री हवेली राम तथा सुन्दर दास स्कूल में मेरे साथ पढ़े थे।

मेरे दादा—मेरे दादा सरदार नारायणसिंह जी के दो बड़े भाई थे। उनमें से एक का नाम सरदार हीरासिंह था और दूसरे का मथुरा दास। श्री मथुरादास जी के बारे में मुझे स्वयं तो कुछ स्मरण नहीं अपितु अपने बड़ों से मैंने सुना है कि वे मेरे साथ बड़ा स्नेह रखते थे। मुझे अपनी गोदी में लेकर खिलाया करते थे। मैं अभी दो वर्ष का भी न था कि वे परलोक सिधार गए।

सब से बड़े भाई सरदार हीरासिंह का अपने छोटे भाई नारायणसिंह तथा हम सब पुत्र पौत्रों पर बड़ा प्रेम था। यद्यपि वे पृथक घर में रहते थे किन्तु दोनों समय भोजन हमारे घर पर ही किया करते थे। जीवन भर रोग उनके निकट नहीं आया। एकबार जब उनको ज्वर ने घेर लिया तो वे हम से कहने लगे कि अब मेरा अंत निकट आ रहा है और सच-मुच थोड़े दिनों में ही उनका देहांत हो गया।

मेरे दादा सरदार नारायणसिंह अपनी भूमि आदि का प्रबन्ध करते थे। वे वृद्धावस्था से पहले ही चल बसे। उनकी अकाल मृत्यु से सभी को बड़ा शोक हुआ। मेरे चाचा सरदार सुन्दर सिंह जी उन दिनों मध्यप्रदेश गये हुए थे। उनको इसकी सूचना तब मिली जब वह तीन मास के पश्चात् लौटे। रास्ते में आते हुए गाँव के बाहर यह घटना सुनकर वे बहुत दुःखी हुए। इसके दो वर्ष बाद वे स्वयं भी चल बसे। वे उन दिनों में खंडवा जिला के पंढाना नगर और उसके आस पास के ग्रामों में व्यापार करते थे।

अपने जीवन के अन्तिम दिनों में जब मेरे दादा जी बीमार हुए तो उन्होंने सरंजाओं का प्रयोग किया। ग़लत प्रयोग से उनको दस्त लग गये। इस अवस्था में वे शौच के लिए गाँव से बाहर गये। अधिक दस्त

आने से वे बहुत निर्बल हो गये। बड़ी कठिनाई से उनको कंधे पर उठा कर लाया गया। इसके तीन दिन पश्चात् वे इस संसार से चल बसे।

मेरी दादी—इस वज्रपात को मेरी दादी श्रीमती जीवनदेवी जी ने बड़े साहस और धैर्य के साथ सहन किया। जिस परिश्रम और बुद्धिमत्ता



मेरी दादी

के साथ उन्होंने इस अवस्था में घर को संभाला, वह सराहनीय था। उन का मेरे जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ा। जिस सावधानी, निस्वार्थ भाव तथा स्नेह के साथ उन्होंने मेरी माता के रहते तथा उनके देहांत के पश्चात् मेरा पालन पोषण किया मैं उसे कभी नहीं भूल सकता।

मेरे दादा जी के पश्चात् सारा काम उन्होंने अपने कंधों पर ले लिया। भूमि की देख भाल करना, वहाँ काम करने वालों से अपने भाग की उपज लाना, आसामियों से लेन देन, घर में गाय भैंस की देख भाल, ये सभी काम दादी जी ने उत्तमता से निभाये। उनके स्नेह, परिश्रम, बुद्धि-मत्ता तथा अन्य सद्गुणों ने मेरे हृदय में वह स्थान बना लिया, जिससे उनके प्रति अगाध श्रद्धा और प्रेम के भाव मेरे हृदय पर अंकित हैं।

इस्लामगढ़ में हमारा घराना—मेरे पूर्वजों का इस्लामगढ़ तथा उसके समीपवर्ती ग्रामों में बड़ा आदर और सम्मान था। वे व्यापार तो करते ही थे, इसके साथ लेन देन का कार्य भी था। निकट के दो ग्रामों भक्कोके और भागोवाल में भी उनकी भूमि थी। इस प्रकार वे भूमिपति भी थे। इस भूमि से खाने को अनाज आवश्यकतानुसार आ जाया करता था। दूध, दही और मक्खन के लिये गाय भैंसें रहती थीं। इस से समस्त परिवार को सुख मिलता था। सवारी के लिये घोड़े-घोड़ियाँ रखते थे। व्यापार से पर्याप्त उन्नति होने के कारण धनधान्य विपुल मात्रा में था।

कहा जाता है कि महाराज रणजीतसिंह जी की मृत्यु के पश्चात् पंजाब की स्वतन्त्रता को बनाये रखने के लिए सिखों ने जो लड़ाइयाँ लड़ीं, उनमें से गुजरात की लड़ाई के लिए रसद की सहायता में हमारे पूर्वजों ने भाग लिया था।

मेरे दादा तो केशधारी सिख थे पर मेरे परदादा श्री झंडामल तथा उनके पिता श्री भागमल जी ने केश धारण न कर रखे थे। परन्तु सिख धर्म में उनकी पूर्ण आस्था थी। वे गुरु नानक के बड़े भक्त थे।

३—मेरा जन्म

मेरे माता-पिता—मेरे पूज्य पिता का नाम सरदार फ़तहसिंह था।



मेरे पिता

वे अपने पिता के ज्येष्ठ पुत्र थे। उन्होंने किसी स्कूल में शिक्षा न पाई थी। घर पर ही जहाँ व्यापार का कार्य सीखा, वहाँ साथ ही हिन्दी लंडी (मुण्डी) में अपना हिसाब किताब रखना भी सीख गये। छोटी आयु में भी वे अपने पिता के साथ दूसरे ग्रामों में अपने क्षेत्रों पर जाते रहते थे। इस तरह उन्हें लेन देन विषयक भी सब परिचय प्राप्त हो गया था।

अभी वे पन्द्रह वर्ष के भी न हो पाये थे कि उस समय की प्रथानुसार उनका विवाह छोटी आयु में हो गया।

कई वर्षों तक तो वे अपने पिता जी के साथ व्यापार का काम अपने ग्राम में ही करते रहे। जब उन्हें अच्छा अनुभव हो गया तो वे बाहर दूर के स्थानों पर जाकर व्यापार करने लग गये।

मेरे पिता जी की रुचि यात्रा के अतिरिक्त धर्म कार्यों में अधिक थी। उनकी प्रवृत्ति धार्मिक और स्वभाव साधु था। वे थे तो व्यापारी, पर धन संग्रह की लालसा लेशमात्र भी उनके मन में न थी। अतः यह कोई आश्चर्य जनक बात नहीं कि व्यापार में उनको सन्तोषजनक सफलता नहीं मिली। उनकी साधुता का यह हाल था कि यदि कोई आसामी लिया हुआ ऋण नहीं लौटाता था तो भी उसके विरुद्ध कभी कार्रवाई न करते थे। वे सदा कहते "हम अपनी ओर से कचहरी नहीं जायेंगे।" इस प्रकार बहुत सा रुपया जो लेना था, नहीं लिया जा सका। मुकदमेबाज़ी से उनको घृणा थी। किसी की भी गवाही देने के लिये वे कभी तैयार न होते थे। यदि कभी कोई इसके लिए कहता तो उत्तर देते, "मैं तो सच्ची बात कहूँगा, इससे तुम्हें हानि हुई तो मुझे दोष मत देना।"

उनका रहन-सहन और खान-पान अच्छे घरानों का सा था। वे सबके साथ प्रेम व आदर का व्यवहार रखते थे। आंतरिक रूप से वैसे भी उनका स्वभाव बड़ा सरल था। नम्रता, सत्य-प्रेम, उदारता और निर्भीकता उनके स्वभाव के विशिष्ट अंग थे। वे कभी-कभी आवेश में

भी आ जाते थे। ऐसी अवस्था में वे आपे से बाहर हो जाते। ऐसा होने के थोड़ी देर पश्चात उनको इसका बड़ा दुःख होता था। उनको बुरे कामों से घृणा थी। किसी को धोखा देकर या किसी को दुखी करके स्वयं लाभ उठाना अनुचित समझते थे। जीवन भर उन्होंने अपने आपको ऐसे कार्यों से बचाये रक्खा।

साधु ब्राह्मणों के लिए उनके मन में बड़ी श्रद्धा और भक्ति थी। दान देना तो वे अपना कर्तव्य समझते थे। अपने घर पर आये हुए भिक्षुक को निराश लौटाना उनको कभी सह्य नहीं था। कभी कोई कपड़ा मांगता तो अपने शरीर के वस्त्र भी उतार कर दे देते थे।

इन कारणों से उनका और उनके परिवार का अपने तथा आसपास के ग्रामों में बड़ा आदर था। इस प्रतिष्ठा को बनाये रखने का वह सदा ध्यान रखते थे। इसके लिए वे हर प्रकार की आर्थिक क्षति सहने को भी तत्पर रहते थे।

कार्य—पहले पहल वे व्यापार के लिए जम्मू राज्य के बटाला, छम्ब, भिंभर, रियासी आदि स्थानों में जाते रहे। वहाँ वे चीनी ले जाते थे और वहाँ से उसके बदले हल्दी और अन्न आदि सामग्री लाते थे। इस कार्य में इस्लाम गढ़ निवासी श्री लखपत राय कपूर तथा श्री दित्तूमल श्रृङ्गारी उनके साथी थे।

कुछ वर्ष पीछे वे दिल्ली, खंडवा, नासिक, चित्रकूट, बम्बई, इलाहाबाद आदि स्थानों में भी जाते रहे। वहाँ पर वे कपड़े का व्यापार करते थे। इस प्रकार वे भारत के एक बड़े भाग में भ्रमण कर चुके थे। यह उस समय की बात है जब कि हमारे ग्राम तथा निकट के ग्रामों के लोग अपने गाँव से बाहर जाना अभी सीखे न थे। मैंने भी बड़े हो कर भारत के बहुत से भागों में भ्रमण किया है। यह कहना अनुचित

न होगा कि मुझे यात्रा की अभिरुचि पैत्रिक-सम्पत्ति के रूप में ही प्राप्त हुई है।

यद्यपि वे पढ़े लिखे न थे पर थे बड़े अनुभवी। घरबार तथा व्यापार के कार्यों में लोग उनका परामर्श लिया करते थे। अच्छे-बुरे की परख तो उनको विशेष थी। देश देशान्तरों का अनुभव होने से पढ़े लिखे लोग भी प्रायः अपने कामों में उनका परामर्श लेना लाभ प्रद समझते थे।

धर्म की शिक्षा भी उन्होंने नियमित रूप से नहीं पाई थी, परन्तु मन्दिरों, धर्मस्थानों और गुरुद्वारों में कथा वार्ता सुनते रहने से उन्हें धर्म से प्रेम और उस पर पूर्ण श्रद्धा हो गई थी। रामायण, महाभारत और गीता आदि धर्म-ग्रन्थों की उन्हें काफ़ी जानकारी थी। पुराणों की कथाएं उन्हें खूब आती थीं। कबीर के दोहे, बुल्लेशाह की काफियाँ, जपजी, श्लोक और स्तोत्र उन्हें कण्ठस्थ थे। इनका वे नित्यप्रति पाठ भी किया करते थे।

दिनचर्या—पिता जी की दिनचर्या निम्न प्रकार से थी:—वे प्रातः काल सूर्योदय से बहुत पूर्व उठते, बाहर शौचादि से निवृत होकर स्नान करते और पूजा पाठ में कुछ समय लगाते थे। उनको अपनी स्वच्छता का विशेष ध्यान रहता था, वे सदा स्वच्छ वस्त्र पहनते और शुद्ध भोजन करते थे।

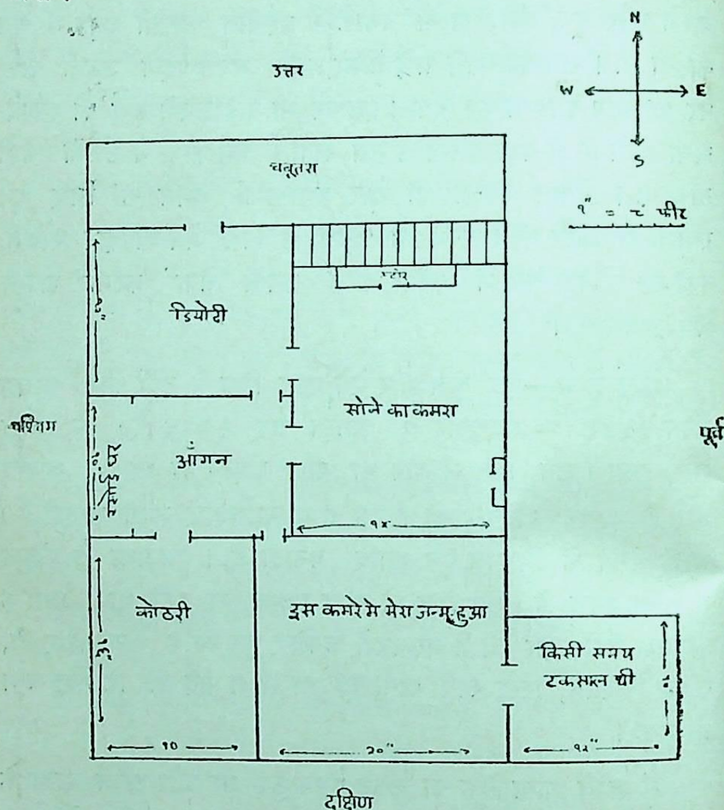
मेरी माता—मेरी माता का नाम श्रीमती हरदेवी था। उन्हें विवाह से पूर्व हरकौर कहते थे। किलादार के एक खुराणा परिवार से थीं। उनके पिता जब कि वे अभी छोटी ही थीं, परलोक सिधार गये थे। उनकी माताजी उनके कई वर्ष पीछे तक जीवित रहीं। मेरी माता जी का कोई सगा भाई न था। केवल उनके एक चचेरे भाई सरदार जयसिंह जी थे जिनके साथ उनका सगे भाई जैसा ही स्नेह रहा। उनकी एक बहन श्रीमती कर्मदेवी थीं।

मेरी माता जी का स्वभाव बड़ा सरल और नम्र था। उनके परिश्रम एवं सहनशीलता से मैं बड़ा प्रभावित था। वे घर का सारा काम करती थीं। परिवार के लिए आटा पीसने, गाय भैंस की देख-भाल करने और दूध, दही, लस्सी बनाने के पश्चात् खाली समय में सूत कातती थीं। रात को सबसे पीछे सोकर प्रातः सबसे पहले उठतीं और घर का काम आरम्भ कर देतीं। इस पर भी यदि उनके कार्य की आलोचना होती तो वे बड़ी शान्ति से सुन लेतीं। धर्म-कार्यों में उनकी बड़ी रुचि थी। वे व्रत रखती थीं और कथा-वार्ता सुनने के लिए धर्म स्थानों पर जाती थीं। अपने से छोटों के साथ प्रेम-व्यवहार रखतीं, बड़ों का उचित सम्मान करतीं और उनकी सेवा करना अपना धर्म समझतीं।

मेरा जन्म—इस कुल और ऐसे माता पिता के यहाँ २० श्रावण संवत् १९४१ वि० तदनुसार ८ अगस्त सन् १८८४ ई० को मेरा जन्म हुआ। उस दिन रविवार था और दोपहर का समय। श्रावण मास के प्रत्येक रविवार को स्त्रियाँ तथा बालिकाएं झूला झूलती हैं। भाँति भाँति के मिष्ठान्न पूड़े आदि बनाती हैं। इस प्रथा को पंजाब में साँवा कहते हैं। उस दिन भी साँवा मनाया जा रहा था। प्रथा के अनुसार मेरी माता जी ने घर वालों के लिए पूड़े आदि तैयार किए थे, सबको खिलाये, परन्तु स्वयं अभी पूड़े खा भी न पाई थीं कि मेरा जन्म हो गया।

मैं अपने माता-पिता का सबसे प्रथम पुत्र था और अपने दादा के घर में प्रथम पौत्र, इस लिए घर में बहुत खुशी मनाई गई। मेरे जन्म के समय की एक घटना मुझे पीछे बताई गई थी। उससे प्रतीत होता है कि उचित शिक्षा के अभाव में लोग अनेकों अन्ध-विश्वासों में फंसे हुए थे। घटना इस प्रकार है :—

"जिस कमरे में मैं उत्पन्न हुआ था, उसकी छत में उसी दिन एक सूराख बनाया गया। उस सूराख में से मुझे तीन बार ऊपर-नीचे किया गया।"



हमारा घर (इस्लामगढ़ में)

इस प्रथा का कारण यह बताया गया था कि मुझ से पूर्व मेरी तीन बहनें थीं। इस कारण मुझ पर कष्ट आने की आशंका बताई गई और इस का किसी ने यह उपाय बताया कि ऊपर लिखी विधि से मुझे प्रतिकूल

ग्रहों के प्रभाव से सुरक्षित रखा जा सकता है यद्यपि मुझे तो इन बातों पर तनिक भी विश्वास नहीं।

माता का देहान्त—इस प्रकार मुझे अपने गाँव में अपने घर माता-पिता और दादा दादी आदि का बड़ा सुख प्राप्त था। इन सब प्रकार की सुविधाओं के होते हुए भी मुझे कुछ अभाव बचपन में रहा तो केवल यही कि मेरी माता का मुझसे असमय में ही विछोह हो गया था। इस हानि का मुझे उस समय तो यथार्थ ज्ञान न था पर कुछ वर्ष पीछे अच्छी तरह अनुभव हुआ कि मैं मातृ-स्नेह से वंचित हूँ। मेरी माता कुछ समय रुग्ण रहकर पौष सम्वत् १९५१ तदनुसार दिसम्बर १८९४ ई० में परलोक सिधार गईं।

———

४—मेरे सम्बन्धी

मेरी बड़ी बहन--मेरी सब से बड़ी बहन निहालदेवी थीं । वे मेरी बुआ वज़ीर देवी से ७ मास छोटी थीं और मुझसे कोई सात वर्ष बड़ी । उनका विवाह मेरे चाचा जी के देहांत के एक वर्ष पीछे १९४९ वि० में श्री जीवनमल साहूवाला निवासी से हुआ । उस समय मेरी बहन की आयु १६ वर्ष की थी । १९५६ वि० में उसके यहाँ एक कन्या का जन्म हुआ । उसका नाम लक्ष्मी रखा गया । अभी वह एक वर्ष की भी न हुई थी कि बहन निहालदेवी बीमार हो गईं । वे एक वर्ष तक निरन्तर बीमार रहीं । रोग बढ़ता गया, और उसने शनैः २ भयानक रूप धारण कर लिया । दिवाली से कुछ सप्ताह पश्चात् हमें उनके रोग की सूचना मिली । इस पर मैं, मेरी बुआ वज़ीरदेवी और मेरी छोटी बहन कृपादेवी उनके पास रावलपिंडी पहुँचे । मैं उस समय मिशन हाई स्कूल गुजरात में पढ़ता था । सम्वत् १९५७ विक्रमी का पौष मास था । हमें वहाँ अभी गये हुए दो दिन ही हुए थे कि उन्होंने प्राण त्याग दिये । यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि मेरी माता, मेरे पिता तथा बहन की मृत्यु संयोग वश पौष मास में ही हुई । १९५१ वि० की पौष में मेरी माता परलोक सिधारी थीं । १९५७ वि० के पौष में मेरी बहन का देहांत हुआ और कई वर्ष उपरान्त १९८९ वि० के पौष मास में ही मेरे पिता जी ने अपनी जीवनलीला समाप्त की ।

मेरी छोटी बहन—मेरी छोटी बहन कृपादेवी है । वह मुझसे आयु में ५-६ वर्ष छोटी है । उसका विवाह १७-१८ वर्ष की आयु में ठिमका निवासी श्री दौलतराम छाबड़ा से हुआ । बाद में वे लाहौर डी० ए०

वी० कालेज में हैड क्लर्क हुए। उन दिनों लाहौर रामगली में वे हमारे निकट ही रहते रहे। इनके ६ पुत्र और दो कन्याएं हुईं। बड़ा पुत्र दिलबाग राय बी० ए०, एल० एल० बी० है। वह नैरोबी (पूर्वी अफ्रीका) में रहता है। उससे छोटा अविनाश चन्द्र वैद्य है और शेष परिवार अब गोविन्दनगर कानपुर में निवास करता है।

छोटा भाई कृपाराम–कृपादेवी की आयु चार वर्ष की थी कि जब मेरे एक छोटे भाई का जन्म हुआ। उसका नाम कृपाराम रखा गया। परन्तु वह दस मास की अल्पायु में ही चल बसा।

माता मथुरादेवी–१६५१ वि० में मेरी माताजी का देहांत हुआ था। उसके पश्चात् मेरी दादी जी की इच्छा थी कि मेरे पिता जी का दूसरा विवाह हो जाय। परन्तु पिता जी ऐसा करने के लिये तैयार न थे। दो तीन वर्षों तक उन्होंने ऐसा न किया। इसके पश्चात् अपनी पूज्य माता के निरन्तर अनुरोध पर उन्होंने दूसरा विवाह करना स्वीकार कर लिया। उनका पुनर्विवाह किलादार के एक सेठी घराने में कुमारी मथुरादेवी से हो गया। इनकी आयु उस समय १६-२० वर्ष के लगभग थी। इन्होंने आकर घर का काम काज भलि भाँति संभाल लिया। वे भी अपने विश्वास के अनुसार धर्म के कार्यों में उचित भाग लेती रहीं। कई वर्षों तक वे अपने घर इस्लामगढ़ में रहती रहीं। पिता जी भी वहीं निवास करते थे। मैं जब जालन्धर में रहता था तो कभी २ वहाँ भी आया करती थीं। जब मैं लाहौर में रहने लगा तो वहाँ भी आती रहती थीं। मेरी छोटी बहन अमरदेवी के विवाह के पश्चात् वे लाहौर ही आ गईं। वहाँ उनको निमोनिया हो गया। इससे सितम्बर १६२४ को उनका प्राणांत हो गया।

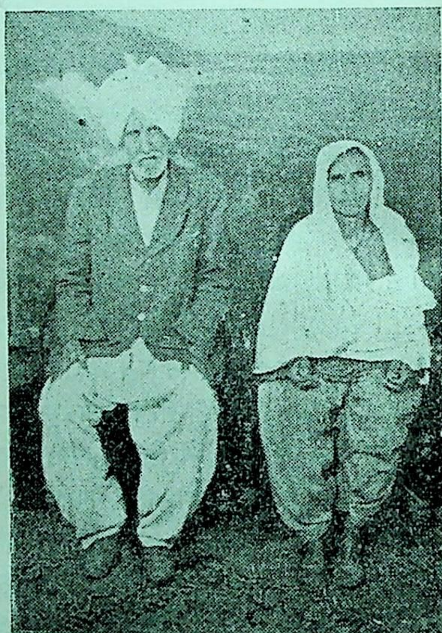
भाई देशराज–मेरे छोटे भाई का नाम देशराज है। इसका जन्म माता मथुरादेवी जी से ८ चैत सं० १६५५ वि० तदनुसार २३ मार्च १८६६ ई० को हुआ था। वह १६०६ से १६२६ तक

मेरे साथ ही रहता रहा। जब उसका विवाह हो गया तो वह पृथक रहने लगा। उसका एक पुत्र कर्मवीर और दो कन्याएं पद्मा रानी और स्वर्ण कान्ता हैं।

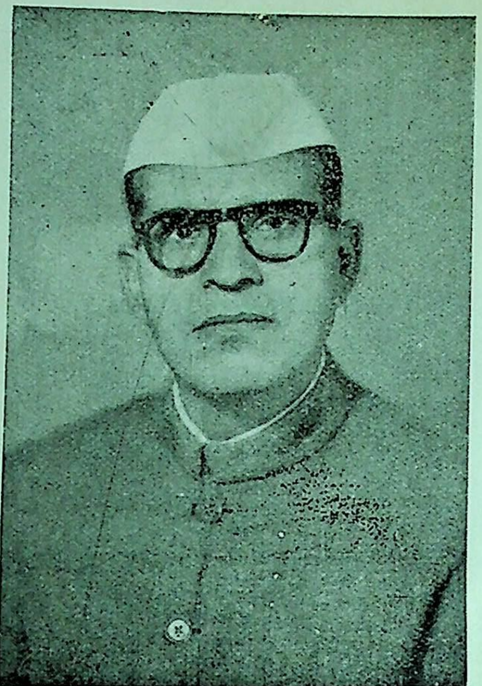
बहन अमरदेवी—सबसे छोटी बहन अमरदेवी का जन्म सं० १९६४ वि० तदनुसार सन् १९०७ ई० में हुआ। थोड़ी सी शिक्षा पाने के पश्चात् १९२३ ई० में उसका निकट के एक ग्राम में विवाह हुआ। दुर्भाग्य वश एक वर्ष पश्चात् ही उसके पति का देहान्त हो गया। तब से वह मेरे पास ही रहती रही है। लाहौर में इसने दो वर्ष अध्यापन कार्य की शिक्षा पाई और उसके पश्चात् एक कन्या-पाठशाला में अध्यापन कार्य करती रही। देश-विभाजन के बाद भी वह पूर्ववत् मेरे परिवार में ही रहती है

अन्य सम्बन्धीवर्ग

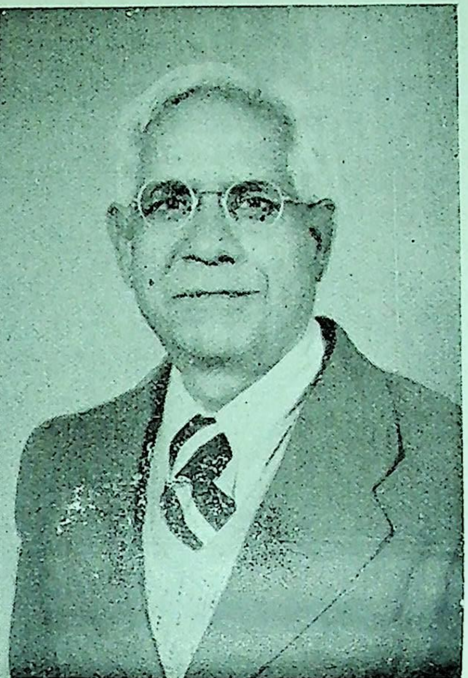
बुआ वज़ीरदेवी जी—जिन संबन्धियों का मेरी जिह्वा पर पहले पहल नाम आता है उनमें से प्रथम मेरी बुआ वज़ीरदेवी हैं। ये देवी मेरी बड़ी बहन निहाल देवी से कुछ बड़ी हैं। इन्होंने मुझे बचपन में वर्षों गोदी में खिलाया, लोरियाँ दीं। जब कभी मैं उदास होता या रूठ जाता तो ये बड़े



(बाईं ओर से) श्री फकीरचन्द, श्रीमती वज़ीरदेवी



डा० राम नाथ मदान



डा० हकूमत राय (पृष्ठ ४७३)

विचित्र ढंग से मुझे मना लेतीं और हँसा देती थीं। उस समय मैं यह समझने में असमर्थ था कि किन पुण्य कर्मों के फल स्वरूप इस मीठे स्वभाववाली देवी का मेरे से इतना स्नेह है। मुझे भी इनसे कुछ कम प्रेम न था।

जब ये चौदह पंद्रह वर्ष की थीं तो इनका विवाह ठिमका निवासी श्री शंकरदास छाबड़ा के सुपुत्र श्री फ़क़ीरचन्द्र जी से हुआ। श्री फ़क़ीरचन्द्र जी का भी मुझसे वैसा ही प्रेम गत ६० वर्षों से निरन्तर बना रहा है। इनके दो पुत्र और चार पुत्रियाँ हुईं। इनके बड़े पुत्र हकूमत राय हैं जो अभी पूर्णावधि तक डाक्टरी सेवा कर पेंशन ले चुके हैं। उनकी तीन पुत्रियाँ वीराँदेवी, धनदेवी और सत्यवती का मुझ से और मेरे परिवार से घनिष्ट स्नेह संबन्ध रहा है। इनके एक पुत्र ताराचन्द व एक पुत्री रामप्यारी का युवावस्था में ही देहान्त हो गया था। वे दोनों ही विवाहित थे। रामप्यारी जी के पुत्र इन्द्रजीत दिल्ली में ही हैं।

बुआ कर्मदेवी जी—मेरी बड़ी बुआ कर्मदेवी जी हैं। मेरे जन्म से पूर्व ही ज़िला स्यालकोट के साहूवाला ग्राम में श्री सावनमल मदान से उनका विवाह हो चुका था। इन बुआजी को भी मुझ से बड़ा स्नेह रहा है। जब से मैंने होश सम्भाला है मुझे पूर्ण ध्यान है कि मेरे बड़े फूफाजी को मेरे से बड़ा प्रेम रहा है और मेरे अन्दर भी उनके प्रति बड़े आदर के भाव रहे हैं। मेरे पिता जी के साथ वे कई वर्षों तक मध्यप्रदेश में एक साथ व्यापार करते रहे। यह ठीक है कि उनमें कभी कभी व्यापार सम्बन्धी कार्यों में मत भेद हो जाता था, फिर भी उनका परस्पर प्रेम-व्यवहार जीवन पर्यन्त बना रहा। मैं श्री सावनमल जी की बुद्धिमत्ता, दीर्घदर्शिता और सहन-शीलता की सदा प्रशंसा करता रहा हूँ और इन गुणों के कारण उनके प्रति मेरे हृदय में सदा आदर के भाव रहे हैं।

इनके तीन पुत्र और दो पुत्रियाँ हुईं। एक पुत्री, लक्ष्मीदेवी का विवाह होने के कुछ दिन पीछे देहान्त हो गया। दूसरी पुत्री कर्तारदेवी



श्री सावनमल जी

मेरे निकटस्थ सम्बन्धी श्री देशराज छोकरा से व्याही हुई हैं। पुत्रों में से सबसे बड़े चौधरी मुकुन्दलाल मुझसे दो तीन वर्ष छोटे हैं परन्तु बचपन में हम एक साथ खेले हैं, इस कारण उनसे मेरा विशेष प्रेम रहा है। उनसे छोटे श्री जगदीशचन्द्र और रामनाथ दोनों डाक्टर हैं और अब दिल्ली में निवास करते हैं।

५—जन्मभूमि

पिछले पृष्ठों में मैं लिख आया हूँ कि मेरे पूर्वज जिला गुजरात के इस्लामगढ़ ग्राम में रहते थे। मेरा जन्म उसी ग्राम में २० श्रावण सम्वत् १६४१ वि० को हुआ था। जन्मस्थान होने के नाते मुझे उस ग्राम के साथ अगाध प्रेम है। भगवान श्री राम ने कहा है, "जननी और जन्म-भूमि स्वर्ग से भी अधिक प्रिय होती हैं"। प्रत्येक सहृदय व्यक्ति के मन में अपनी जन्म-भूमि के प्रति इस प्रकार की भावनाएं रहती हैं।

इस्लामगढ़ में मैंने अपना बचपन बिताया है। वहाँ का मधुर और शीतल जल पिया तथा स्वच्छ और स्वास्थ्यप्रद वायु मैंने सेवन की। वहाँ का उत्तम अन्न खा कर मैं बड़ा हुआ हूँ और वहाँ के ही दूध, दही, घी, मक्खन से मेरे मन और मस्तिष्क को शक्ति मिली है। उस भूमि के मुझ पर अनेक उपकार हैं जिन के कारण उसकी मधुर और प्रेममयी स्मृति मेरे हृदय पर अंकित है।

अतः अपने जीवन के संस्मरण लिखते समय मैं उस ग्राम के विषय में लिखे बिना नहीं रह सकता जिसने मेरे विकास में इतना भाग लिया।

गुजरात ज़िले के गज़ेटियर में इस्लामगढ़ का वर्णन इस प्रकार मिलता है :—

"इस्लामगढ़ एक बहुत ऊँचा और शानदार टीला है जो बहुत प्राचीन है। कहा जाता है कि यह वड़ायच जाटों के 'चौरासी प्रांत' का प्रमुख स्थान था। कुछ समय पीछे वहाँ एक दृढ़ कोट बनाया गया। वड़ायच चौधरियों के निवास तथा भूमि जलालपुरजट्टाँ में थीं। इस्लाम-

गढ़ कहने मात्र को इन चौधरियों का था परन्तु वास्तव में यह पूर्व की ओर स्थित कुञाचौर नामक एक ग्राम की भूमि की सीमा में बनाया गया था।"

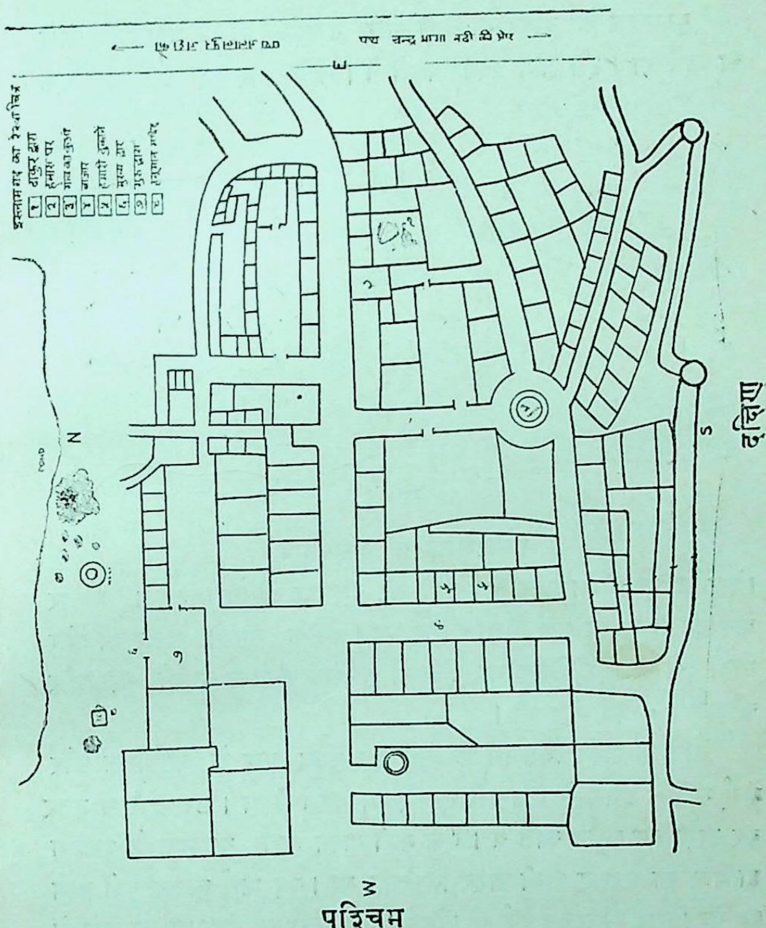
यह ग्राम एक ऊँचे टीले के ऊपर एक पुराने गढ़ के स्थान पर बसा हुआ है। गढ़ के खण्डहर अभी तक भी विद्यमान हैं। बाहर की दीवारें यद्यपि बहुत कुछ गिर चुकी हैं, तो भी शताब्दियों के चिन्ह अपने साथ लिए हुए हैं। उसकी दीवारें अपनी दृढ़ता और प्राचीनता का प्रमाण देती हैं।

ग्राम के दक्षिण की ओर एक बरसाती नाला है। इसको ढाड़ा कहते हैं। वर्षा ऋतु में यह बहुत चढ़ जाता है। बहाव भी बहुत तेज होता है। किनारे की दिवारें इतनी ऊँची और दृढ़ हैं कि उसकी लहरें ग्राम को कोई क्षति नहीं पहुंचा सकतीं।

जैसा कि गज़ेटियर के वर्णन से भी पता चलता है कुलाचौर और इस्लामगढ़ एक दूसरे के बहुत निकट हैं। इनमें दूरी चौथाई मील से अधिक नहीं। इसका अनुमान इस बात से भी लग सकता है कि प्रातःकाल हम अपने गाँव के टीले से उतर कर लगभग सौ गज जिस कूएं पर नहाने जाते थे वह 'कुलाचौर' का कूआँ कहलाता था।

इसी प्रकार जलालपुर जट्टाँ भी मेरे गाँव से कोई आध मील से कम दूरी पर है। इस नगर के लोगों के साथ मेरे गाँव वालों का बहुत मेल जोल था। इस्लामगढ़ की दीवार के ऊपर कहीं से भी खड़े होकर चारों ओर दृष्टिपात करें तो आस-पास के गाँव दिखाई दे जाते थे। बड़ा मनोहर दृश्य था, लहलहाते हुए खेत, झूमते हुए पौधे और देहाती तानें उड़ाते हुए किसान मन को गद्‌गद् कर देते थे।

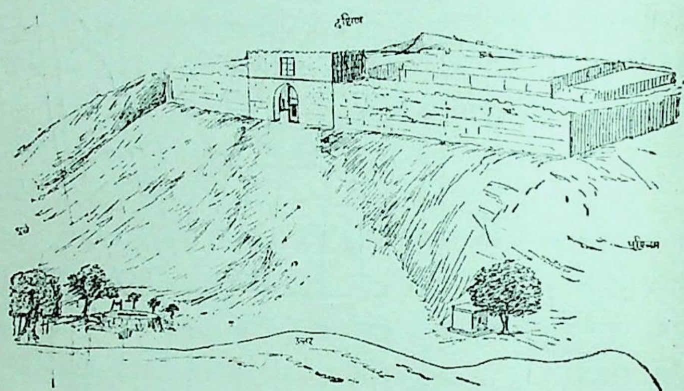
ग्राम का मुख्यद्वार—यह उत्तर में जलालपुर जट्टाँ की ओर था। गाँव के इस मुख्यद्वार पर एक और मंज़िल भी थी। इसमें सिख राज्य के समय दीवानख़ाना था। मेरे बचपन में इस भाग में गुरु ग्रंथ साहब का



इस्लामगढ़ का चित्र

पाठ होता था। नीचे के भाग में दोपहर के समय गाँव के बहुत से लोग विश्राम करने के लिए आ जाते थे। यहाँ पर हवा खूब आती थी। विवाह शादियों पर भी इस मकान का प्रयोग होता था।

मुख्यद्वार के बाहर नीचे की ओर ढलवान थी। यही नीचे जाने का मार्ग था। इसे लोग ढक्की कहते थे। नीचे उतर कर दाईं ओर एक



इस्लामगढ़ का मुख्यद्वार

छोटा सा कुआँ था और बाईं ओर था हनुमान जी का मन्दिर। मन्दिर के साथ पीपल का एक विशाल वृक्ष था। इनके सामने उत्तर की ओर थोड़ी दूरी पर एक जोहड़ था, जिसकी लम्बाई लगभग दो सौ गज़ और चौड़ाई ३०–३५ गज़ थी।

गाँव के बाहर निकलने के लिए इस मुख्य द्वार के अतिरिक्त और मार्ग भी थे। इनमें से एक दक्षिण-पश्चिम दिशा में था। उस ओर से उतर कर द्वाड़ा पर पहुँच जाते थे। एक मोरी वाला मार्ग था जिस के पास से ही गाँव का फ़ालतू पानी बाहर निकलता था। यह मार्ग दक्षिण-पूर्वी कोने पर था। बाद में उत्तर-पूर्व की ओर भी एक मार्ग बन गया था यह जुलाहों की खड्डियों में काम करने वाले लोगों के लिए सुगमता प्रदान करता था।

जो गली बाज़ार से आकर मेरे मकान के सामने से जाती थी उसके पूर्वी सिरे पर भी एक मार्ग था। हमारे आस-पास के लोग इसी से बाहर जाते थे। बाहर जाने के ये सभी मार्ग ढक्कियाँ कहलाते थे।

गाँव के घर प्राय: कच्चे थे और एक ही मंज़िल के थे। कदाचित ही कोई ऐसा घर होगा जिस की दूसरी मंज़िल भी हो।

मेरा घर गाँव के केन्द्र से पूर्वी भाग में था। घर के साथ ही एक ठाकुर द्वारा था जो विश्रामशाला का काम भी देता था। इसमें एक बड़ा पुराना पीपल का पेड़ था। इसका तना बहुत मोटा था और शाखाएं दूर-दूर तक फैली हुई थीं। कुछ शाखाएं मेरे घर की छत पर भी पहुँचती थीं। मैंने वर्षों इन शाखाओं की शीतल और सुखप्रद छाया में बैठ कर आनन्द लिया है।

गाँव के अन्दर दो कूएं थे। जब से मैंने होश संभाला, तब से इन में से एक को बेकार ही पाया। अत: गाँव के सभी लोग गाँव के मध्य वाले कूएं से ही पानी भरते थे। यह जल सब की प्यास बुझाता था। सब के लिए शीतल, मधुर और स्वास्थ्यप्रद था।

उस समय हिन्दू मुसलमान सिख भाई भाई के समान रहते थे। मुझे भली भाँति स्मरण है कि मेरे पूर्वज जहाँ सिख धर्म के अनुयायी थे वहाँ वे श्रीराम, श्रीकृष्ण तथा अन्य देवी देवताओं के प्रति भी बड़ी श्रद्धा रखते थे। उन दिनों कभी किसी को यह ध्यान भी न आता था कि हिन्दू और सिख दो हैं या कभी दो हो सकते हैं। इसी प्रकार मुसलमानों से भी प्रेम का व्यवहार था। विवाहादि के अवसरों और पर्वों पर सब एक दूसरे के कार्यों में परस्पर पूर्ण सहयोग देते थे। सब जातियों और सब धर्मों के पूज्य पुरुषों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। स्त्रियाँ, चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान, सब माता बहनों के समान आदर पाती थीं। एक दूसरे से सद् व्यवहार करना सभी लोग अपना कर्तव्य समझते थे।

इस्लामगढ़ खासा पुराना गाँव है। सिखों के काल में इसे विशेष प्रधानता मिली। पहले तो यह सेना के लिए एक गढ़ था पर जब बहुत वर्ष बाद इसे रहने की बस्ती बनाया गया तो इसके चारों ओर एक कच्ची

दीवार बनाई गई। इसकी लिपाई के लिए विशेष प्रबन्ध किया गया। आस पास के गाँव वालों ने भी इसमें हाथ बटाया। प्रति वर्ष इन दीवारों की लिपाई निकट के ग्रामीणों द्वारा ही कराई जाती थी। इसे स्वावलम्बी बनाने के लिए यह व्यवस्था की गई कि वहाँ सभी जातियों के और सभी प्रकार के व्यवसाय करने वाले लोग लाकर बसाये गये। हिन्दुओं में ब्राह्मण, क्षत्रिय, अरोड़वंशी तथा बनिये सभी थे। मुसलमानों में से ज़मींदार, अराईं, राज, तरखान, लोहार, धोबी, दरज़ी, नाई, तेली, मोची, धुनके, मुसल्ली—अर्थात् सभी धन्धे करने वाले लोग वहाँ आबाद किये गये।

मेरे गाँव की दुकानों से सामान्यतः वह सब सामग्री मिल जाती थी जिसकी गृहस्थों को आवश्यकता रहती है। घी, तेल, गुड़, शक्कर आदि के अतिरिक्त सब तरह की दालें तथा हींग, सौंफ, अजवायन, जीरा, हरड़, बहेड़ा, आमला, जायफल, मग आदि चीज़ें भी जो ओषधि के रूप में प्रयोग की जाती हैं, वहाँ से मिल सकती थीं। परन्तु दूध, दही, मिठाई और कपड़े आदि की कोई दुकान न थी। जुलाहों के कई एक घर भी थे। वे केवल शुद्ध खादी ही बुनते थे। सब घरों में स्त्रियाँ सूत कातती थीं और पहनने के लिए उन से खादी बुनवा ली जाती थी।

अराईयों के भी वहाँ बहुत से घर थे। वे लोग प्रायः सब्ज़ियाँ उगाते और उन्हें बेचने के लिए पास के नगर में भेजते थे। गाँव में बेचने के लिए अराइणें सब्ज़ी के टोकरे सिर पर उठा कर गलियों में लाती थीं। सब्जियाँ खरीदती भी प्रायः स्त्रियाँ ही थीं। मुझे भली भाँति स्मरण है कि उन दिनों सब्ज़ी पैसे टके से नहीं खरीदी जाती थी अपितु अनाज के बदले ही ली जाती थी।

सब चीज़ें गाँव में ही मिल जाती थीं। इस लिए गाँव से बाहर जाने का अवसर बहुत कम होता था। कपड़ा, मनियारी आदि जो चीज़ें गाँव में नहीं मिलती थीं, वे जलालपुरजट्टाँ से जाकर लायी

जाती थीं। थाना और मुन्सफी भी जलालपुर में ही थे। बाज़ार में दो अढ़ाई सौ से कम दुकानें न थीं। यह नगर गाँव वालों के लिए महत्त्व रखता था। लोग उसका नाम लेकर नहीं पुकारते थे, उसे केवल 'शहर' कहते थे।

फल के वृक्ष हमारे गाँव में बहुत कम थे। बेर, जामुन, आम और अंजीर के पेड़ तो कहीं-कहीं थे परन्तु नारंगी आदि का पेड़ कभी देखने में नहीं आया था। हमारे गाँव के आस-पास दूर-दूर तक खजूर का केवल एक ही पेड़ था। हाँ, कीकर के अनगिनत पेड़ थे। इनमें पीले फूल और हरी कलियाँ लगती थीं। उसके पत्ते और कलियाँ भेड़-बकरी चराने वाले उतार कर ले जाते थे। कभी किसी की आँखें दुखने आतीं तो इसके पत्ते कूट कर आँखों पर बाँध लेते थे। इससे आँखें प्रायः अच्छी हो जाती थीं। उन वृक्षों पर गोंद भी लगती थी जिसे उतारने के लिए हम प्रायः उन पर चढ़ जाया करते थे। बेरी के वृक्षों पर मीठे बेर लगते थे। उन्हें उतारने के लिए भी हम बेरियों पर चढ़ जाते थे। यद्यपि कांटे चुभने का भय रहता था और वे चुभ कर पीड़ा भी देते थे परन्तु बेरों के लोभ के सामने वह सब कष्ट उस समय तुच्छ प्रतीत होता था।

हमारे गाँव में केला तो बिलकुल ही नहीं होता था। वहाँ उस का उगना तो दूर रहा, कभी बिकने भी नहीं आता था। मुझे ठीक तो स्मरण नहीं कि यह बात कब की है परन्तु ऐसा याद पड़ता है कि मैं जब तीसरी या चौथी श्रेणी में पढ़ता था तो कई दिन ज्वर उतरने के पश्चात अभी निर्बलता के कारण अच्छी प्रकार चलता फिरता नहीं था। उन दिनों हमारे एक सम्बन्धी आये। वे अपने साथ एक वस्तु लाए। मेरे पिता जी ने बताया कि वह वस्तु केला है। उस का रंग तो काला हो चुका था परन्तु नई वस्तु होने के कारण मैं ने एक टुकड़ा खा लिया। वह मुझे मीठा लगा, तब मैंने पहली बार जाना कि केला भी एक स्वादिष्ट फल है।

६—प्रारम्भिक शिक्षा

ग्राम की मस्जिद में—मेरे गाँव में आधुनिक ढंग से शिक्षा देने की कोई व्यवस्था नहीं थी। पढ़ाई का काम भी गाँव की मस्जिद में ही होता था। इस काम की देख रेख मस्जिद के उस समय के इमाम हाफ़िज़ मुहम्मद यासीन करते थे। हाफ़िज़ जी लम्बे कद के नवयुवक थे। उनके अधीन उनके तीन चार शिष्य भी थे। वे भी अध्यापन कार्य करते थे। उनको ख़लीफ़ा कहा जाता था। ये लोग अन्य ग्रामों से आए हुए थे और अपना जीवन भिक्षा के सहारे चलाते थे।

मस्जिद में शिक्षा अरबी और फ़ारसी में दी जाती थी। इसी के आधार पर उर्दू की भी पढ़ाई होती थी।

मेरी आयु अभी छः वर्ष की नहीं हुई थी जब मुझे पढ़ने के लिए मस्जिद में भेजा गया और आरंभ फ़ारसी और अरबी से हुआ। अक्षर बोध के उपरान्त फ़ारसी में करीमा का पाठ आरंभ किया गया। उसका यह पद मुझे अभी तक स्मरण है :—

'करीमा! बि बख्शा बरे हाले मा, कि हस्तम असीरे कमंदे हवा।
नदारेम ग़ैर अज़ तो फ़रयाद रस, तू ही आसियाँ रा ख़ुदा बख्शो बस'॥

अर्थात् 'हे दयामय! हमारी अवस्था पर दया करो क्योंकि हम लोभ के जाल में फंसे हुए हैं। तेरे बिना और कोई नहीं जिसके सामने हम अपना दुःख रोयें। केवल तू ही पापियों को क्षमा करने वाला है और कोई नहीं।'

शीघ्र ही उर्दू भी प्रारंभ कर दी गई। मस्जिद में मुझे भी उर्दू की प्रथम पुस्तक दी गई। पुस्तकें पैसे देने पर वहीं से मिलती थीं। पुस्तकें पढ़ने के पश्चात् बस्ता बाँध मस्जिद में ही रख आते थे। मेरी उर्दू की

पुस्तक थोड़े ही दिनों के पश्चात् किसी ने फाड़ दी। उस फटी हुई पुस्तक का दृश्य ६० वर्ष बीतने के उपरान्त आज भी मेरी आँखों के सामने है।

स्कूल में—जब मैं ६ वर्ष का हुआ तो मुझे जलालपुरजट्टाँ के म्युनिसिपल कमेटी के स्कूल में भेजने का निश्चय किया गया। यह मिडिल स्कूल था और वहाँ अंग्रेज़ी शिक्षा का प्रबन्ध नहीं था।

स्कूल का प्रथम दिवस—मैं अपने माता पिता का इकलौता पुत्र होने से उनको तो विशेष प्रिय था ही परन्तु अपनी दादी की भी आँखों का तारा था। वे मुझसे अत्यन्त स्नेह रखती थीं और पल भर के लिये भी पृथक न होने देती थीं और मैं भी उनसे पृथक न रह सकता था।

एक प्रातः मुझे मेरी दादी जी स्कूल में लेकर गईं। उस समय मुंशी शंकरदास मुख्याध्यापक थे। वे बड़े कठोर स्वभाव के व्यक्ति थे। उनके नियन्त्रण की बड़ी धाक थी। जब दादी जी मुझे लेकर स्कूल में गईं तो मैं भय के मारे व्याकुल था और इस नये वातावरण में घबरा रहा था। घर से अलग होने का यह पहला ही अवसर था। मेरा दिल बैठा जा रहा था, मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा कि पेट में दर्द है। इसके लिये मेरी दादी जी ने मुझे अपनी धर्म बहन गंगा देवी जी (धर्मपत्नी स्वर्गीय श्री जयदयाल भूषण) के घर से गुलकन्द लाकर दिया। इससे भी दर्द नहीं घटा। मेरी दादी ने समझा कि मैं पढ़ना नहीं चाहता इसलिये बहाना करता हूँ। संभव है कि कुछ अंश में इसका कारण भय भी हो। जब मुख्याध्यापक ने मुझे प्रथम श्रेणी के अध्यापक मुन्शी अलादाद खाँ के पास भेजा और मुझे उनके पास बैठने को कहा, तो मैं रो रहा था, इस कारण प्रधान अध्यापक ने मुझे एक छड़ी लगाई। मेरी दादी जिसे कि मुझसे अत्यन्त स्नेह था यह सहन न कर सकीं और मुझे अपने साथ अपने घर लौटा ले गईं।

स्कूल में पहले पाँच वर्ष—उसके पश्चात् मैंने स्कूल में जाना आरंभ कर दिया। मुंशी अलादाद खान दयालु और कोमल स्वभाव के

थे। मैं उनसे परिचित हो गया और निःसंकोच पढ़ने लगा। वे काश्मीरी मुसलमान थे। थोड़े ही दिनों में स्कूल ईसाई पादरियों के हाथ आ गया। उसका नाम स्कॉच मिशन स्कूल हो गया। अब यहाँ अंग्रेज़ी भी प्रारंभ हो गई और बाइबिल भी पढ़ाई जाने लगी।

कभी कभी मुंशी अल्लादाद खान के घर में जाने का अवसर मिलता था। उनके पिता बूढ़े थे। मेंहदी से रंगी लम्बी दाढ़ी रखते थे। बड़े प्रसन्नमुख व्यक्ति थे। वे बच्चों को हंस कर कहते थे "पादरियों की खड्ड फ़ना" अर्थात् पादरियों का नाम न रहे।

यह वचन वे ऐसे ढंग से उच्चारण करते थे कि सुनने वाले मारे हँसी के लोट पोट हो जाते। मुझे स्मरण है कि वे स्कूल के छात्रावास के पीछे एक बड़े खुले अहाते वाली सराय में निवास करते थे।

दूसरी श्रेणी में श्री अनन्तराम जी से शिक्षा प्राप्त की। वे भी बड़े कोमल स्वभाव के व्यक्ति थे। उनके स्वभाव में गर्व और क्रूरता नाम को भी न थी। उनके चरणों में बैठ कर मैंने शिक्षा में पर्याप्त उन्नति की। उनके सम्पर्क से शिक्षा में मेरा उत्साह अधिक बढ़ गया। पढ़ने लिखने में भी मेरी रुचि अधिक हो गई।

तीसरी श्रेणी में मेरे अध्यापक युक्तप्रांत निवासी एक मौलवी साहब थे। वे दरम्याने कद के और दुबले पतले थे। दाढ़ी रखते थे और गरारा पहिनते थे। वे बड़े क्रूर स्वभाव के थे। गाली निकालना तो उनके लिये साधारण सी बात थी परन्तु विद्यार्थियों की शिक्षा का विशेष ध्यान रखते थे। उस समय यह उर्दू में जो शब्द लिखवाते थे शायद आज कल ऊँची श्रेणियों के विद्यार्थी भी न लिख सकें।

चौथी श्रेणी में अध्यापकों के परिवर्त्तन होते रहे। अंग्रेज़ी और गणित तो उसी नगर के एक अध्यापक पढ़ाते थे। वे बड़े स्वस्थ, सुडौल और सुन्दर युवक थे। विद्यार्थियों की शिक्षा में उन्हें अच्छी रुचि थी। वे भी इस कार्य की पूर्ति के लिये छड़ी और सख्त शब्दों का प्रयोग करते

थे। यह व्यवहार उस समय वाँछनीय ही नहीं अपितु नियन्त्रण की दृष्टि से अनिवार्य माना जाता था। इसी वर्ष अक्तूबर (आश्विन) मास में मेरी माता वैष्णव देवी की यात्रा पर गईं और मुझे भी साथ ले गयीं।

माता जी का देहावसान—वैष्णव देवी की यात्रा से लौटे अभी तीन मास भी न हुए थे कि मेरी माता जी अपनी छोटी बहिन कर्म देवी जी को मिलने गईं। मेरी छोटी बहिन कृपा देवी उनके साथ थी। वह गुजराँवाला जिले के एक छोटे से ग्राम ढिल्लाँ वाली में रहती थीं। वह गाँव एमनाबाद के रेलवे स्टेशन के पास ही है। वहाँ से मेरी माता जी एक मेले के दिन रोढ़ी साहब के गुरुद्वारे पर गईं। वहाँ पास ही एक तालाब है इसमें उन्होंने स्नान किया। घर से अपने साथ दूध चावल ले गई थीं वे खा लिये। यह खाने के थोड़ी देर बाद उनको कुछ कष्ट अनुभव होने लगा। पेट में दर्द शुरू हो गया, कै भी हुई, साथ ही ज्वर भी हो गया। थोड़े दिनों के रोग से वह बहुत दुर्बल हो गईं। मेरी नानी जी वहाँ पहुँच गई थीं। वे उनको रेलगाड़ी में बिठा कर गुजरात लाईं। वहाँ से इक्के में बिठा कर घर ले गयीं। बड़ी कठिनाई से थाम कर उनको गाँव की ढक्की से ऊपर चढ़ाया गया।

इस्लामगढ़ आने के उपरांत उनका स्वास्थ्य गिरता ही गया। गाँवों में उन दिनों डाक्टर तो होते नहीं थे। साधारण हकीमों के हाथों में ही लोगों के प्राण रहा करते थे। रोग-निवारण सौभाग्य के बल पर ही होते, चिकित्सा के बल पर न होते थे। मृत्यु सदा ग्रामीणों के सिर पर मंडलाती रहती थी और अवसर पाते ही झपट पड़ती थी। मेरी माता जी भी इसका शिकार हो गईं। इस्लामगढ़ आने के थोड़े दिन बाद वह इस देह को छोड़ गईं। उनकी मृत्यु के पश्चात् हमें ज्ञात हुआ कि उनको विषम-ज्वर (Typhoid) था। रेलगाड़ी और इक्के में यात्रा करने तथा पैदल चलने से थकान अधिक हो गई। रोग बढ़ गया और मृत्यु ने आ दबाया।

यह घटना जब हुई तो स्कूल में बड़े दिनों की छुट्टियाँ थीं। इन दिनों में मैं कुछ लिख पढ़ नहीं पाया। स्कूल का काम भी न कर सका। अवकाश समाप्त होने पर मातृ वियोग से दुखित हृदय लेकर स्कूल गया। मास्टर जी ने गणित का एक सवाल करने को कहा। मैं न कर सका। वह बड़े क्रुद्ध हुए और आवेश में आकर कुछ शब्द कह गये। इससे मुझे बड़ा दुःख हुआ। वह शब्द मुझे कभी भी नहीं भूल पाये। वह मेरे शिक्षक थे, इसलिए उनका मैं सदा सम्मान करता आया हूँ। वे भी बाद में मुझे बड़े स्नेह और प्रेम से बुलाते और मिलते रहे हैं। परन्तु उसका प्रभाव यह हुआ कि मैं स्वयं जब बड़ा होकर अध्यापक बना तो मन में निश्चय कर लिया कि कभी किसी विद्यार्थी को कोई अपशब्द नहीं कहूँगा।

पंचम श्रेणी—पाँचवीं श्रेणी में भिन्न-भिन्न अध्यापक भिन्न-भिन्न विषय पढ़ाते थे। अंग्रेज़ी एक बंगाली मास्टर श्री टैगोर पढ़ाते थे। वे बड़े योग्य अध्यापक थे। उनके चले जाने पर एक मुसलमान अध्यापक जिनका नाम मास्टर पीराँ दित्ता था, पढ़ाते रहे। वे भी योग्य व्यक्ति थे परन्तु उनका स्वभाव कुछ क्रूर था। वह गणित में विशेष योग्यता रखते थे। उनके उत्तम अध्यापन की सब प्रशंसा करते थे। फ़ारसी गुजरात निवासी श्री कर्मचंद पढ़ाते थे। वे बड़े सरल स्वभाव थे। मैंने वह पहले अध्यापक देखे जो विद्यार्थियों से भाइयों जैसा व्यवहार करते थे। मा० ढेरासिंह उस समय के प्रसिद्ध अध्यापकों में से थे। उनसे भी मैंने पढ़ा पर जैसी उनकी योग्यता प्रसिद्ध थी वैसी ही उनकी क्रूरता भी विख्यात थी। मुख्याध्यापक उस समय एक बंगाली ईसाई श्री मुखर्जी थे। हमारे स्कूल में परीक्षा लेने के लिये सहायक इन्सपैक्टर ला० सुन्दरदास सूरी लाहौर निवासी (जो बाद में राय बहादुर हुए) आए। परीक्षा में मैं सब विषयों में उत्तीर्ण होगया, उर्दू शीघ्र लेख में भी मैं अच्छा था परन्तु सुलेख में मुझे पाँच में से केवल दो ही अंक मिले। ढाई अंक होते तो मैं उत्तीर्ण हो जाता। अतः निरीक्षक

महोदय ने मुझे अनुत्तीर्ण कर दिया। इससे मुझे दुःख हुआ, परन्तु मुख्याध्यापक ने मुझे अगली श्रेणी में चढ़ा दिया।

मिडिल श्रेणियों में—६ टी श्रेणी में मुझे अन्य अध्यापकों के अतिरिक्त मास्टर तालेमंद से पढ़ने का अवसर मिला। वे अंग्रेज़ी बहुत अच्छे ढंग से पढ़ाते थे। वे उन्हीं दिनों अध्यापन कार्य की शिक्षा पाकर आये थे। उनका व्यवहार अपने शिष्यों के प्रति अन्य अध्यापकों की अपेक्षा अधिक शिष्ट था।

ग्रीष्म ऋतु के अवकाश के पश्चात् जलालपुरजट्टाँ के हिन्दुओं ने परस्पर परामर्श करके एक अपना स्कूल खोलने का निश्चय किया। अतः १८६७ ई० में विक्टोरिया भ्रातृ मिडिल स्कूल खोला गया। इस कार्य में आर्य समाजियों ने भी पूर्ण सहयोग दिया। मिशन स्कूल के लगभग सभी हिन्दू और सिख विद्यार्थी नये स्कूल में चले गये। मैं भी वहीं चला गया। मेरे साथ मेरे मित्र और सहपाठी बरकत राम भी उसी स्कूल में प्रविष्ट हो गये। श्री दौलत राम चड्ढा, बी० ए० जो वहीं के निवासी थे, स्कूल के मुख्याध्यापक नियुक्त हुये।

कुछ दिनों के पश्चात् मिशनस्कूल के अध्यापक हमारे माता पिता के पास पहुँचे और कहा कि मिशन स्कूल की पढ़ाई उत्तम है। इस प्रकार हमें फिर मिशन स्कूल में भेज दिया गया। पर दो एक दिनों के बाद ही हम नये स्कूल में लौट आये और उसके पश्चात् नियमित रूप से वहीं पढ़ते रहे। वर्ष के अंत में उत्सव मनाया गया। इस अवसर पर डी० ए०वी० कालेज लाहौर के प्रिन्सिपल महात्मा हंसराज जी को बुलाया गया। मुझे दो पारितोषक मिले। एक अंग्रेज़ी में सर्व प्रथम रहने के लिये और दूसरा सदाचार की विशेषता के आधार पर।

मुझे और बरकत राम जी को विशेष रूप से योग्य समझ कर मुख्याध्यापक ने हमारी डबल प्रोमोशन कर दी अर्थात् हमें ६ ठी श्रेणी से एक दम आठवीं में कर दिया गया। इस प्रकार १८६८ में मैं आठवीं श्रेणी में

आगया। कुछ मास के पश्चात् मुझे अनुभव हुआ कि सातवीं में न पढ़ने के कारण गणित में कुछ न्यूनता रह गई है। अन्य सभी विषयों में मैं श्रेणी के अच्छे लड़कों में गिना जाने लगा। प्रधानाध्यापक तथा अन्य सभी अध्यापकों को विश्वास था कि मैं तीव्र बुद्धि और परिश्रमी हूँ अतः वह मुझ से बड़ा स्नेह रखने लगे थे। १८६६ के जनवरी मास में मिडिल की परीक्षा हुई। उन दिनों मिडिल की परीक्षा यूनीवर्सिटी की ओर से होती थी। परीक्षा केन्द्र गुजरात के बोर्ड हाई स्कूल में था। मार्च में परिणाम निकला और मैं अच्छे अंक लेकर उत्तीर्ण हुआ।

एंट्रैन्स में–उसी वर्ष मैं स्कॉच मिशन हाई स्कूल गुजरात में नौवीं श्रेणी में प्रविष्ट हुआ। श्री जे० डेनियल वहाँ पर प्रधानाध्यापक थे। उन्होंने शिक्षा तो दसवीं श्रेणी तक ही पाई थी परन्तु बहुत अच्छे प्रबन्धक थे। अतः उनके अधीन स्कूल बहुत उन्नत अवस्था में था। उनके साथ जालन्धर के स्वर्गवासी ला० धुमीराम, बी० ए०, सैकण्ड मास्टर होकर आ गये। मास्टर फ़ज़ल इलाही, बी० ए० भी स्टाफ में शामिल हो गये।

हाई में अंग्रेज़ी की केवल एक पुस्तक पढ़ाई जाती थी। यह थी डा० जे०सायम की "मॉरल रीडर"। अंक गणित के लिए लॉक एंड लुईस की पुस्तक चलती थी। चक्रवर्ती महोदय की अंक गणित पर पुस्तक भी उन दिनों प्रकाशित हो चुकी थी। बीज गणित में वसु की पुस्तक बड़ी प्रचलित थी। परन्तु हमें चैटर्जी की पुस्तक जो नई नई निकली थी पढ़ाई जाने लगी। रेखा गणित अभी पंजाब के स्कूलों में प्रचलित नहीं हुई थी। केवल पी० घोष की यूकलिड से इस विषय का ज्ञान कराया जाता था। अंग्रेज़ी व्याकरण के लिए सब ओर नैसफील्ड की ग्रामर की चर्चा थी। वह उस समय की सर्वोत्तम पुस्तक मानी जाती थी और सभी स्कूलों में पढ़ाई जाती थी। उन दिनों विद्यार्थी बहुत परिश्रम से पढ़ते थे। अध्यापक भी खूब ध्यान से पढ़ाते थे। फलतः उस समय के एण्ट्रैन्स पास विद्यार्थी इस योग्य हो जाते थे कि उनको अंग्रेज़ी की साधारण पुस्तकें और

समाचार-पत्र पढ़ने में कोई कठिनाई न होती थी। एक त्रुटि अवश्य रह जाती थी कि वे अंग्रेज़ी में वार्तालाप नहीं कर सकते थे यहाँ तक कि बी० ए० पास अध्यापकों के लिए भी अंग्रेज़ी में वार्तालाप करना कठिन प्रतीत होता था।

विवाह—गुजरात में जाकर नौवीं श्रेणी में प्रविष्ट होने के थोड़े ही समय के पश्चात् मेरा विवाह हो गया। मेरी धर्मपत्नी शादी वाल के गोरोवाड़ा वंश के सरदार कश्मीरा सिंह को पुत्री थी। विवाह के पश्चात् भी मेरी शिक्षा जारी रही।

मेरी पढ़ाई का कार्य भलि भाँति चलता रहा। १६०१ के आरम्भ में महारानी विक्टोरिया का देहान्त हो गया। उसने ६० वर्ष से ऊपर राज्य किया था। उसकी मृत्यु का समाचार सुन कर लोग बड़े चकित हुए। कई दिन तक शोक मनाया गया। स्कूल भी बन्द रहे।

दो मास पश्चात् मार्च में एँट्रैंस की परीक्षा आ गई। गुजरात में ही परीक्षा केन्द्र था। मैं परीक्षा देकर अपने ग्राम को चला गया।

——× ×——

७—बाल्यकाल की कुछ स्मृतियाँ

शिक्षा प्रारम्भ करने से पूर्व की कई बातें मुझे अभी तक स्मरण हैं। यहाँ पर उनमें से कुछ एक का वर्णन करना अनुचित न होगा।

१. मैं लग भग तीन वर्ष का हूँगा कि मेरे दादा सरदार नारायण सिंह जी को जोड़ों में दर्द रहने लगा। उन्होंने हकीमों से चिकित्सा करवाई परन्तु कुछ लाभ न हुआ। एक दिन निकटस्थ ग्राम कुलाचौर से एक हकीम आया। उसने परामर्श दिया कि उस रोग के लिए संरजाँ पीस कर ली जायें। मेरे दादा जी जलालपुर से सरंजाँ खरीद लाये। अपनी पाकशाला में बैठकर उन्होंने औषधि को पीसा और कहने लगे "मूल, तू बता कि यदि मैं यह खा लू तो अच्छा हो जाऊँगा।" मैंने कहा 'हाँ, लाला जी खालें'। मेरी बुआ वज़ीर देवी भी पास ही बैठी थीं। मुझे यह स्मरण नहीं कि मेरे दादा जी ने कब और कैसे वह औषधि खाई। पर यह मुझे स्पष्ट याद है कि उन्हें तब से पतले दस्त आने लगे। इस से वे बहुत निर्बल हो गये। इस अवसर पर उनके मित्र श्री दित्तूमल, श्री काशीराम संगारी, श्री लखपत राय बाहरी तथा श्री गंगाराम हाँडा ने विशेष रूप से उनकी सेवा की। परन्तु उस रोग ने न छोड़ा और तीसरे दिन ही उन्होंने इस भौतिक शरीर को त्याग दिया। पीछे जाकर ज्ञात हुआ कि प्रयोग मीठी सरंजाओं का करना चाहिये था परन्तु किया गया कड़वी सरंजाओं का जिस से उन्हें दस्त लग गये। मुझे यह भी स्मरण है कि जब मेरे दादा इस रोग में ग्रसित थे तो मैं उन की व्यथा को न जानते हुए अपने साथियों के साथ

खेल रहा था। हम सब अन्दर से छोटे छोटे वर्तनों में पानी लाकर अपने द्वार के सामने थड़े के नीचे की ओर फेंक रहे थे।

२–बचपन में मैं कई बार अपनी दादी जी के साथ उनके माता पिता के घर सोधरा में भी जाता रहा था। उन की वृद्धा माता का भी मुझ पर बड़ा स्नेह था। मेरी दादी के चाचा और उनके परिवार में भी मेरा परिचय था। उस समय उनके द्वारा सुनाई हुई एक बात याद आती है। उन्होंने अपने चाचा का वर्णन करते हुए मुझे बताया था कि उनके पिता युवावस्था में बन्नु व्यापार के लिए गये थे। साधारणतया लोग वहाँ जाकर पठानों से कार्य व्यवहार करते रहते थे। परन्तु किसी कठिन समय में उन को प्राणों से भी हाथ धोने पड़ते थे। ऐसी ही एक दुर्घटना उनके पिता के साथ हुई। एक दिन सायं काल के समय नगाड़ा बजना आरम्भ हो गया और काफ़िरों को पकड़ पकड़ कर उनका वध किया जाने लगा। उनके पिता को भी पकड़ कर नियत स्थान पर ले जा कर मार डाला गया। मेरी दादी जी का जन्म इस दुर्घटना के कुछ मास पीछे हुआ। यह भयानक समाचार एक वर्ष पश्चात् मिला जबकि कुछ और व्यापारी सोधरा से वहाँ जाकर अपने घर लौटे।

३—एक और घटना भी मेरी दादी जी ने मुझे सुनायी थी। जब अभी वे पाँच छः वर्षकी थीं वे एक दिन अन्य कन्याओं तथा स्त्रियों के साथ बाहर गई हुई थीं। ग्राम के समीर ही उन्होंने कुछ घुड़सवार गुज़रते देखे। वे यह बताती थीं कि उनमें से एक वृद्धा आगे बढ़ी और एक सवार से बोली, "वे रणजीत सिंहा, मैं तेरे राज विच भूखी मरनी हाँ।" अर्थात् "हे रणजीतसिंह! तेरे राज्य में भूखी मर रही हूँ"। कहते हैं कि यहाँ महाराजा ने शीघ्र अपने एक साथी को कहा कि "इस बुढ़िया को एक थैली देदो"। परिणाम स्वरूप उसे रुपयों की एक थैली मिल गई और वह कृतज्ञता प्रकट करती हुई अपने घर चली गई। महाराजा रणजीतसिंह की उदारता की धूम सारे इलाके में मच गई।

४—जिन व्यक्तियों ने मुझ पर मेरे बचपन में प्रभाव डाला उनमें से एक भक्त जीवन सिंह थे। ये मेरे पिता के निकट के भाई-बन्धुओं में से थे। आयु में वे उनसे कुछ बड़े थे। इनका आपस में अगाध प्रेम था। दिन का समय तो अपने आवश्यक कार्यों में लगाते थे परन्तु सायंकाल का समय वे इकट्ठे रह कर व्यतीत करते थे।

भक्त जीवन सिंह जी ने यद्यपि नियमित रूप से शिक्षा न पाई थी परन्तु वे सिख गुरुओं की वाणी तथा दादू, कबीर और अन्य भक्तों के पदों को गाते और लोगों को सुनाते थे। जब कोई पद सुनाते समय स्मरण न रहे तो उसका भाव अपने शब्दों अथवा तुकों से पूर्ण कर देते थे। वह बड़े सदाचारी, निर्लोभी और ईश्वर-परायण थे। साधारण पुरुष तो उन्हें किसी समय पागल भी कह देते थे परन्तु ईश्वर और आत्मा के सम्बन्ध में आप ऐसे गूढ़ विचार प्रकट करते थे जो ईश्वर का सच्चा भक्त ही कर सकता है।

दुनिया के काम काज में भी उनका ईश्वर विश्वास इस सीमा तक पहुँचा हुआ था कि जिस समय वे अपनी भक्ति के रंग में मस्त होते थे उस समय यदि कोई ग्राहक आ जाता तो उसे यह कह देते कि अमुक वस्तु अमुक स्थान पर पड़ी है स्वयं तोलकर ले लो और दाम रख जाओ। साधारण दृष्टि से तो यह छोटी सी बात है परन्तु कितना गहरा ईश्वर विश्वास प्रकट करती है।

५—उस समय सिख घरानों में अपने दस गुरुओं के अतिरिक्त सन्तों को भी श्रद्धा से देखा जाता था। हमारे उस समय के गुरु भाई सन्त सिंह जी थे। वे ज़िला गुजरात के किलादार नामक ग्राम से वर्ष में एक बार आया करते थे। एक सप्ताह हमारे ग्राम में ठहरते थे और सब सिखों के घरों में बारी बारी से भोजन करते थे। इसी क्रम से हमारे घर में भी भोजन करने के लिये आते थे। उनकी आयु ५० वर्ष से कुछ ऊपर थी। उनका कद लम्बा था और वे लम्बी सफेद दाढ़ी रखते थे। बड़े शीतल स्वभाव और मृदुभाषी थे। उनकी वाणी में विशेष माधुर्य था। कुछ

वर्ष पीछे मुझे यह जानकर और भी प्रसन्नता हुई कि वे बड़े पवित्रात्मा थे। उन्होंने आयु भर विवाह नहीं किया।

बचपन के कुछ मित्र

१—अपने ग्राम की मस्जिद में जब मुझे पढ़ने के लिए भेजा गया तो मेरे साथ ही मेरे चचेरे भाई बरकत राम भी थे। वे मेरे सहपाठी थे और मेरे सब से पहले साथी और मित्र। वह मेरे साथ मिडिल तक पढ़ते रहे। दसवीं पास करके वे डाकखाने में काम करते रहे।

२—इसी बीच में और भी बहुत से विद्यार्थियों के सम्पर्क में आने का अवसर मिला। उनमें से कुछ के साथ घनिष्ठता भी बढ़ गई। उन में से जिस मित्र का नाम सर्व प्रथम जिह्वा पर आता है, वह हैं श्री काशीराम कपूर। वह शिक्षा में मुझ से दो तीन वर्ष पीछे रह गए थे क्योंकि वह बीच ही में हिन्दी लंडे सीखने में लग गये थे। आयु में वे मुझ से कुछ मास बड़े थे। वह बड़े शिष्ट और बुद्धिमान थे। बात चीत करने में वह बड़े नम्र और गम्भीर थे। उनकी माता और मेरी माता परस्पर सहेलियाँ थीं। इससे हम स्कूल के समय के पश्चात् भी प्रायः एक साथ ही पढ़ा करते थे।

अपने ग्राम में मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध श्री कर्मचन्द नरूला और श्री नंदलाल भूषण से भी था।

३—मिडिल श्रेणियों में कुलाचौर के मियाँफैज़ अहमद, जलालपुर के श्री अर्जुनदास और श्री गोपाल दास बाहरी से निकट का सम्बन्ध रहा। लखनवाल के श्री जगन्नाथ और श्री अमरनाथ हाँडा स्कूल में मेरे साथ रहे। उनसे भी मिलने का अवसर प्रायः मिलता रहता था। जब मैं डाकखाने में काम करता था, तब भी उन से भेंट होती रहती थी। मेरे अपने ग्राम के श्री हुकमचंद नौहरया और श्री ईश्वर दास पूर्विया (राजपूत) से भी मेरा सम्बन्ध मित्रता की सीमा तक पहुँचा हुआ था। श्री ईश्वरदास पहले लाहौर में मा० दुर्गादास के दयानन्द हाई स्कूल में पढ़ते थे।

जब अपने गाँव आते तो मुझ से अवश्य मिलते। कुछ समय पीछे वह हमारे स्कूल में आकर प्रविष्ट हो गए, तब हम ने घर पर भी एक साथ पढ़ना आरम्भ कर दिया।

४-मेरे बचपन के मित्रों में से श्री देवीदास एवं श्री गंडामल के नाम उल्लेखनीय हैं। यह दोनों स्कूल के अतिरिक्त समय में मेरे ग्राम में मेरे घर पर भी आकर पढ़ा करते थे। कभी कभी मैं भी उनके घरों पर जाकर पढ़ता था। हमें एक दूसरे से भाइयों जैसा प्रेम था। गंडामल जी तो मिडिल के बाद डाकखाने के कार्य में लग गये और उस से बाद उनसे भेंट न हो सकी। दूसरे साथी श्री देवीदास बी०ए० तथा बी०टी० पास करके शिक्षण कार्य में लग गये। उनसे मुझे बाद में भी मिलने के अवसर होते रहे हैं।

५—जलालपुरजट्टाँ से मिडिल करके मैं गुजरात के मिशन हाई स्कूल में गया। वहाँ शादीवाल निवासी श्री कन्हैयालाल, श्री किशनचंद, श्री हवेली राम ग्रोवर तथा कई अन्य मित्र बने। वे बाद में उच्च सरकारी पदों पर पहुँच गए। उन से पीछे भी कई बार भेंट हुई है।

६—एक वर्ष पीछे धोरिया निवासी लछासिंह जी हमारे स्कूल में प्रविष्ट हुए। हम वहाँ एक वर्ष तक एक साथ रहे। इस बीच में हमारा परस्पर मैत्री सम्बन्ध हो गया। कुछ वर्ष जब वह लाहौर में डाक्टरी की शिक्षा पाते थे तो मैं उनसे मिला था। उसके कई वर्ष पश्चात् दिल्ली में आकर भेंट हुई। गुजरात में मेरा एक और सहपाठी श्री मायाराम से परिचय हुआ। उनके साथ भी मैंने एक वर्ष व्यतीत किया। उन्होंने रुड़की से ओवरसियरी की परीक्षा पास करके नौकरी प्रारम्भ की मगर शोक इस के थोड़े ही समय पश्चात् उन का देहांत हो गया।

उन्हीं दिनों उनके छोटे भाई श्री चरणदास कोछड़ से मेरा परिचय हुआ। उनके साथ लाहौर डी० ए० वी० कालेज में भी मिलने का अवसर होता रहा। एल० एल० बी० करके उन्होंने वकालत शुरू कर दी। पहले लाहौर में और वहाँ से आने पर दिल्ली में भी उनसे प्रायः भेंट होती रही है। वे देश विभाजन के बाद भी कुछ वर्ष लाहौर में रहे।

विद्यार्थी जीवन की कुछ घटनायें

१–मेरे पड़ोस में मेरे चाचा सरदार चन्दासिंह रहते थे। उनका पुत्र बरकत राम मेरा सहपाठी और मित्र था। मैं नौ वर्ष का था, हम दोनों ने एक दिन आपस में विचार किया कि गाँव के बाहर जाकर कुछ नये स्थान देखें। पहले पहल अपने ज़िले के मुख्य स्थान गुजरात नगर में जाने का निश्चय किया। तदनुसार हम वहाँ चले गये और रात वहीं काटी और प्रातः होते ही लौट पड़े। हम अभी आधा मार्ग भी न चल पाये थे कि मेरे फूफा श्री फकीरचन्द ताँगे में आते हुए मिल गये। वह हम दोनों को अपने साथ गाँव को ले गये। हम घर से बिना सूचना दिये चले गये थे। इससे घर के लोग बहुत चिन्तित थे। उन्होंने आस पास सब स्थान ढूँढ मारे। हमारे न मिलने से उन्होंने बड़ी व्याकुलता से रात काटी, हम घर पहुँचे तो उन्हें शान्ति मिली।

यह घटना मुझे कभी नहीं भूलती। मैं सोचता हूँ कि किस प्रकार छोटे बालक गलत मार्ग पर भटक जाते हैं, यह हमारी बड़ी भूल थी।

२—मैं चौथी श्रेणी में पढ़ता था। अक्तूबर (आश्विन) मास में मेरी माताजी वैष्णव देवी की यात्रा के लिये गईं। मुझे भी अपने साथ ले गईं। जब मार्ग में सब स्त्री पुरुष बच्चे देवी का जय नाद बोलते जाते थे तो मैं वैसा न करता था। जब गुफा के अन्दर दर्शन के लिये गये तो सब दीपक बुझ गये और पुजारी पुकार उठे कि कोई नास्तिक आ गया है। यद्यपि मुझे धर्म के सम्बन्ध में कोई अधिक ज्ञान तो नहीं था परन्तु अपने स्वर्गीय चाचा सुन्दर सिंह की गोदी में बैठकर जो आर्य-समाज के भजन और धर्म चर्चा सुना करता था उससे मेरे हृदय में देवी-

देवताओं के सम्बन्ध में सन्देह उत्पन्न हो चुके थे, फिर स्कूल में बाइबिल की शिक्षा से ये सन्देह और भी दृढ़ हो गये थे। उस समय मेरे हृदय में आया कि वह नास्तिक कदाचित् मैं ही तो नहीं हूँ। अस्तु, यह है तो साधारण सी बात, दीपक तो प्राय: बुझते ही रहते हैं और पुजारी अंध विश्वासी यात्रियों को विश्वास दिलाने के लिए ऐसा कह भी देते हैं।

३—विवाह के पश्चात् मेरा शादीवाल के कुछ विद्यार्थियों से परिचय हो गया। वे स्कूल छोड़ कर स्वतंत्र अध्ययन करते थे। मुझे बताया गया कि शिक्षा प्राप्त करने के लिये यह अच्छा ढंग है कि स्कूल छोड़ कर स्वतंत्र रूप से अध्ययन किया जाय, क्योंकि स्कूल जाने में जो समय व्यर्थ जाता है वह हम स्वतंत्र रूप से उपयोग में ला सकते हैं। मैंने भी उनके देखा देखी स्कूल छोड़ दिया।

एक दिन शादीवाल अपने श्वसुर के यहाँ गया हुआ था। वे ही साथी मुझे भ्रमणार्थ बुलाने आये। मैंने बाहर जाना सहर्ष मान लिया। अत: चन्द्र भागा नदी जो वहाँ से एक मील दूर बहती थी उसके तट पर जाकर घूमते रहे। फिर थक कर एक स्थान पर बैठ गये। वहाँ उनमें से एक ने एक बोतल निकाली जिसमें मुझे बताया गया कि एक बड़ी अद्भुत वस्तु है और उससे मनुष्य में बड़ी उत्तेजना आती है। मुझे उन्होंने कहा कि आप भी इसे अवश्य पीयें।

मैंने उत्तर दिया कि मैं ऐसी कोई वस्तु पीना स्वीकार न करूँगा। उनकी बातों से ही यह प्रकट हो गया कि वह वस्तु शराब है। वे इसे पीना चाहते थे परन्तु इस भय से कि उनके ऐसा करने का पता औरों को न लगे मुझे भी पीने का आग्रह करते रहे। अन्त में मुझे विवश कर दिया कि मैं भी उसे मुख में डालूँ और बाहर फेंक दूँ। मैंने इस समय ऐसा कर तो लिया पर यह निश्चय किया कि ऐसे साथियों के साथ कभी बाहर न जाऊँगा और उनसे मेल जोल भी घटा दूँगा। इसके बाद उनके साथ फिर कभी न गया।

४—जब मैंने नवम श्रेणी में स्कूल छोड़ रखा था और जलालपुर-जट्टाँ गया हुआ था तो एक नवयुवक ने छोटे विद्यार्थियों को यह कह कर प्रभावित किया कि वह उन्हें मैसमिरेज़म सिखा कर उनकी बल बुद्धि को तीव्र बना देगा। इस पर कई विद्यार्थी उनके पास जाने लग पड़े। मैं भी उनके परामर्श से वहाँ दो चार बार गया। जहाँ उस व्यक्ति ने मैसमिरेज़म का काम तो न सिखाया अपितु यह कहा कि एक औषधि उसके पास है जिसका यदि प्रयोग किया जाये तो थोड़े समय में स्मरण शक्ति तीव्र हो सकती है, और सेवन के लिये वह औषधि दे भी दी। इसका प्रयोग मैंने दो तीन दिन किया। उसके फल स्वरूप मैं रोग में ऐसा ग्रसित हुआ कि एक मास तक उठ न सका। बाद में एक वैद्य ने मेरे पिता को बताया कि मुझे कोई कच्ची धातु खाने को दी गई थी और उसी के फल स्वरूप मुझे कष्ट हुआ है।

५—एक और घटना जो मुझे याद आती है वह सम्राज्ञी विक्टोरिया की मृत्यु की है। लोग इस से बड़े चकित थे। वे कहा करते थे कि हमने तो 'मलका' के अतिरिक्त किसी और का राज्य न देखा न सुना है और हमारे माता पिता का जीवन भी उसी के राज्य काल में गुजरा है। उनकी इस लम्बी अवधि के कारण यह भावना हो गई थी कि सम्भवतः सदा उसी का राज्य चलता रहेगा। उसके अमर होने का विचार बच्चों में तो प्रायः पाया जाता था। उस समय की परिस्थितियों के अनुसार ऐसी भावना का पैदा होना हैरानी की बात न थी।

———

८—कार्य-क्षेत्र में

(प्रथम दो वर्ष)

अध्यापन कार्य का प्रथम अनुभव

मार्च में मैंने ऐण्ट्रेंस की परीक्षा दी और गुजरात से लौट कर अपने गाँव में रहने लगा। मैं अपने पुराने स्कूल (विक्टोरिया भ्रातृ स्कूल) जलालपुरजट्टाँ में गया और वहाँ के मुख्याध्यापक से मिला। मैं स्वयं भी उनसे शिक्षा पा चुका था। उन्होंने मुझे उस स्कूल में काम करने के लिए निमन्त्रित किया। उनकी इच्छानुसार मैंने वहाँ अस्थिर रूप से कार्य करना स्वीकार कर लिया और अप्रैल में कार्य आरंभ कर दिया। जब-जब कोई अध्यापक अनुपस्थित होते थे तो मुझे उनके स्थान पर काम दिया जाता था। इस प्रकार मैंने तीन मास में लगभग सारी श्रेणियों में काम किया। उस समय के चौथी पाँचवीं श्रेणी में मुझ से पढ़ने वाले विद्यार्थियों में से अमरनाथ जी चड्ढा, बिहारी लाल जी सूरी तथा पृथ्वी-राज जी चड्ढा के नाम मुझे स्मरण आते हैं। उसी समय खुशहालचन्द जी (जो अब संन्यास लेकर श्री आनंद स्वामी बने हैं) सप्तम श्रेणी में और इनके छोटे भाई त्रिलोक चन्द जी छठी श्रेणी में पढ़ते थे।

मुझे अपने स्वर्गीय मित्र बाशीराम जी के अतिरिक्त सन्तराम जी हाँडा और घरेरा निवासी मिलखीराम जी को पढ़ाने का अवसर भी इसी समय मिला था। ये तीनों बाद में ऐंजिनियर बने और अपने कार्यों में बड़े सफल हुए। इनमें से दो ने सरकारी नौकरी पूरी करके पेंशन भी

ले ली थी। पहले तीन व्यक्ति भी बड़े होकर अपने अपने कार्यों में अच्छे सफल रहे हैं।

डाक विभाग में प्रथम वर्ष

मई १६०१ में एण्ट्रेंस का परीक्षा फल निकला और मुझे इसमें उतीर्ण होने की सूचना मिली। अब मेरे पिता जी की यह इच्छा हुई कि मैं किसी सरकारी विभाग में कार्य करूँ। जलालपुरजट्टाँ में ला० दूल्हामल छाबड़ा मेरे पिता के पुराने मित्र थे। उनके परामर्श से दो तीन मास में मुझे लाहौर भेजने का निश्चय हो गया। उनके सम्बंधी ला० काशीराम लाहौर के बड़े डाकखाने में इन्स्पैक्टर थे। ला० काशीराम जी के बड़े पुत्र जगन्नाथ जी भी उन्हीं दिनों डाकखाने में नौकर हुए थे। ला० काशीराम जी थे तो बड़े कठोर स्वभाव के परन्तु मेरे साथ उनका व्यवहार बहुत अच्छा था। उन्होंने थोड़े दिनों में ही मुझे अपना सहायक इन्सपेक्टर नियुक्त करा दिया।

मुझे डाकियों के काम का निरीक्षण करना होता था और उनपर नियन्त्रण रखना भी मेरा कर्तव्य था। इस कार्य के पूर्व अंश में तो कोई कठिनाई न थी परन्तु दूसरे अंश की पूर्ति में अवश्य ही मुझे कठिनाई अनुभव हुई। इसका प्रथम कारण यह था कि मेरे लिये यह काम नया था। दूसरे मेरी आयु भी छोटी थी। मुझे इन बातों का कोई अनुभव न था। अतः मैं इस काम से सन्तुष्ट न हुआ। एक बात यह थी कि मेरे निवास की व्यवस्था अच्छी न थी। इससे मेरा असन्तोष और भी बढ़ गया। मैं मोची दरवाज़े के बाहर अपने ग्राम के ठाकुर गोपीचन्द जी पूर्विया के टाल पर रहता था। उनके उस काम में ला० विशम्भर दास खन्ना साझी थे। वे वर्तमान राय बहादुर देवीचन्द खन्ना के पिता थे। देवीचन्द उस समय छोटे से बालक थे। उनके बड़े भाई रेलवे ऐग्ज़ामिनर के कार्यालय में काम करते थे। उनसे भी मेरा परिचय हो गया। परन्तु सब से अधिक कष्ट की बात थी वहाँ का शौच-स्थान।

शौचालय तो था एक और वहाँ जाने वाले थे कई। कुछ दिन तक तो मुझे शौच हुआ ही नहीं, जब वहाँ जाता तो मस्तिष्क फटने लगता। कहाँ ग्राम का खुला स्थान जहाँ शौच जाया करते थे और कहाँ नगर की सड़ी संडास, उसने मेरा मस्तिष्क बदल दिया। मैं नगर में अधिक निवास रखने का विरोधी हो गया। तदनुसार मैं लाहौर छोड़ कर अपने ग्राम लौट जाने के अवसर की ताक में रहने लगा।

एक दिन मैं डाक की गाड़ी पर जा रहा था। गवाल मंडी में जिस स्थान पर आजकल सबज़ीमंडी का चौक है, मैंने वहाँ उतरना चाहा। कोचवान को बिना कहे मैं उतर पड़ा और उतरते हुए ऐसा गिरा कि मैं बेहोश हो गया। इस घटना से मेरा नौकरी छोड़ने का विचार और भी दृढ़ होगया और सितम्बर में नौकरी छोड़कर मैं अपने गाँव लौट गया। मैं लाहौर जुलाई में आया था जबकि कड़ाके की गर्मी पड़ रही थी। अब जब सितम्बर मास में लौट कर इस्लामगढ़ गया तो वर्षा समाप्त हो चुकी थी और गर्मी भी कम हो रही थी।

यहाँ अपने ग्राम में रहते हुए पहली बार मेरा ध्यान आर्यसमाज की ओर आकर्षित हुआ। इससे पूर्व मुझे आर्य समाज के सिद्धान्तों तथा कार्यों के विषय में कोई अधिक ज्ञान न था।

गुजारत में—अभी घर लौटकर आये मुझे दो मास भी न होने पाये थे कि मेरे फूफा ला० फकीरचन्द्र छाबड़ा ठिमका निवासी के सम्बन्धी श्री जीवनमल गुलाटी ने परामर्श दिया कि मैं गुजरात में कार्य करना आरम्भ कर दूँ। वह वहाँ बड़े डाकखाने में हैड क्लर्क थे। उन्होंने कहा कि वहाँ वे मेरी सब प्रकार से सहायता करेंगे। तदनुसार मैंने नवम्बर मास में गुजरात के डाकख़ाने में कार्य आरम्भ कर दिया। इस समय वहाँ मीर असग़र अली शाह पोस्टमास्टर थे। उनकी वाणी में बड़ी मिठास थी; परन्तु डाकघर में काम करने वाले लेखक उनसे सन्तुष्ट न थे। मैंने यहाँ एक और साथी मुहम्मद रशीद के

साथ मिलकर काम सीखना प्रारंभ किया। उन दिनों डाकघर में एक लेखक श्री मुल्कराज थे। वे बड़े योग्य और अपने कार्य में कुशल थे। उनको मिलने उनके दो मित्र पण्डित किशोरीलाल और श्री ईश्वरदास आया करते थे। ये दोनों लॉ कालेज में शिक्षा पा रहे थे। उनसे भी मेरा परिचय हो गया। उन्होंने मुझे विचार दिया कि नवयुवकों को डाक विभाग में सेवा करके अपने जीवन को सीमित नहीं करदेना चाहिए। परन्तु पिता जी की इच्छा थी कि मैं वहाँ काम करूँ जिससे उनको सहायता दे सकूँ। अतः मैं उस समय उन सज्जनों के इस लाभकारी परामर्श की ओर ध्यान न दे सका मगर यह बात मेरे मन में बैठ गई।

मीर असग़र अली पोस्टमास्टर का पुत्र मुहम्मद रियाज़ उस समय छटी कक्षा में पढ़ता था। वह बड़ा होनहार बालक प्रतीत होता था। उसकी शिक्षा में मैंने भी कुछ सहायता दी। उसके पीछे कभी भी उससे मिलने का अवसर नहीं हुआ। उसके पिता तो बाद में मुझ से कई बार मिले और यह बताया भी कि उनका पुत्र रेलवे पुलिस इंसपेक्टर के पद पर पहुँच गया है।

पिंडीभाउद्दीन में—गुजरात से बदल कर १ दिसम्बर १९०१ को मैं पिंडी भाउद्दीन के डाक घर में गया। वहाँ मैंने कुछ मास अच्छी प्रकार व्यतीत किये। उस नगर के पटवारी ला० लद्धाराम का मकान डाकघर के समीप था। वे प्रायः मुझ से मिलते रहते थे। बड़े हँस मुख व्यक्ति थे। एक दिन एक बालक अपने मनिआर्डर का रुपया लेने आया। मैंने उसे कहा नाबालिग़ को मनिआर्डर नहीं दिया जा सकता, अपनी माता या अन्य सम्बंधी को साथ ले आओ। श्री लद्धाराम तुरन्त बोल उठे, क्या नाबालिग़ बाबू मनिआर्डर दे सकते हैं ? यह इस लिए कहा कि उस समय तक मेरी आयु १८ वर्ष की न हुई थी।

उस स्थान के कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तियों से मेरा अच्छा परिचय हो गया था। उनमें से एक श्री सोहनामल थे। वे मेरा बड़ा आदर करते थे और कई प्रकार से प्रेम का परिचय देते थे। उस डाक घर के सेवकों में एक युवक हरकारा सरदारखाँ भी था। वह बड़े मधुर स्वर से गाता था। जब रात को उसे मेरे पास रहने का अवसर मिलता, तो वह प्रायः गाना गाकर मनोरंजन किया करता था। वैसे भी वह बड़ा प्रसन्न मुख था। मुझे उसके बाद वह केवल एक बार १९०३ में कोट मोमिन जाते हुए पिंडीभाऊद्दीन के रेलवे स्टेशन पर मिला। अभी उस समय मंडी भाउद्दीन नगर न बना था। उन दिनों मैंने खीवा नगर जो जेहलम नदीके किनारे पर है, देखा। इसके अतिरिक्त रसूल नगर को भी जो नहर जेहलम का उद्गम स्थान है देखने का अवसर हुआ। नहर उन दिनों बन ही रही थी, रेल गाड़ियाँ भी नियमित रूप से वहाँ न जाती थीं, इस लिए पत्थर लेजाने वाले छकड़े में ही मैंने यात्रा की थी।

पिंडीभाउद्दीन में रहते हुए एक और ऐसी बात हुई कि जिसका उल्लेख मनोरंजन की दृष्टि से अनुपयुक्त न होगा। डाक घर में मेरे पास एक ही कुर्सी थी। मैंने एक दूसरी कुर्सी अपने मित्र श्री लद्धाराम पटवारी से ली हुई थी। एक दिन जब वे बाहर गये हुए थे तो उनका छोटा लड़का आया और मुझ से कुर्सी माँगी। मैंने पूछा कुर्सी की क्या आवश्यकता पड़ गई है। इस पर वह अपनी माता से पूछने गया और लौटकर कहने लगा, मेरी माता कहती हैं, कुर्सी के साथ बछड़ा बाँधना है। मुझे उस समय बलात् हँसी आ गई। यहाँ कोई और साधन न होने के कारण भोजन स्वयं ही बनाना पड़ता था। यहीं पर ही मुझे पहली बार मास्टर काशी नाथ जी, बी० ए०, एल० एल० बी०, डिंगा निवासी से मिलने का अवसर हुआ। इन्होंने मुझे आर्य समाज की कुछ पुस्तकोंके अतिरिक्त सील साहिब द्वारा अंग्रेज़ी में अनुवादित कुरान की एक प्रति भी पढ़ने को दी। तब मैंने इसके कुछ अध्यायों का अध्ययन भी किया।

जेहलम में—अप्रैल १६०२ में वेशाखी के पश्चात् मैं पिंडीभाउद्दीन से बदलकर जेहलम के बड़े डाकघर में चला गया। यह जेहलम ज़िले का मुख्य डाकघर था। मुख्य डाकघरों में प्रायः काम अधिक होता है। परन्तु उस स्थान पर काम विशेष तौर से अधिक था। इस पर कठिनाई यह थी कि नया होने के कारण मुझे काम का पूर्ण परिचय नहीं था। डाकख़ाने में अच्छे शिक्षित लोग भी कम ही आते थे। कुछ लोगों का स्वभाव और परस्पर व्यवहार भी बहुत अच्छा न था। वे लोग एक दूसरे की सहायता करने के स्थान पर दूसरों को नीचा दिखाने की चेष्टा अधिक करते थे। इस वातावरण में मैं अपने को कुछ घुटा २ अनुभव करता था। मुझे ऐसा लगता कि यह काम नीचे ले जाने वाला है। प्रति क्षण नीचे जाने की ही आशंका बनी रहती थी। इसी लिए इस अवस्था में मैं अपने को स्वाध्याय में लगाना चाहता था। आर्यसमाज की पुस्तकों का अध्ययन मैं अपने लिए आवश्यक समझ रहा था। परन्तु उस वातावरण में स्वाध्याय करना भी बड़ा कठिन प्रतीत होता था। अतः मन अशांत सा रहने लगा।

जलालपुरजट्टाँ में—दैवयोग से उन्हीं दिनों जुलाई मास में मेरी बदली जलालपुरजट्टाँ में हो गई। वहाँ के डाक खाने में सब-पोस्टमास्टर सानेवाल ज़िला लुध्याना के रहने वाले सरदार गुरुदित्त सिंह थे। उनकी आयु उस समय ४० वर्ष से ऊपर ही होगी। उनका स्वास्थ्य बड़ा अच्छा था। वे काम बड़े परिश्रम और सावधानी से करते थे। उन के ये गुण मुझे अच्छे लगे। मैं ने उन गुणों को अपना कर स्वयं भी उसी कुशलता से कार्य करना आरम्भ कर दिया।

मैं उन दिनों अपने घर इस्लामगढ़ में ही रहता था। वहाँ से प्रातः आठ बजे डाकखाने में पहुँच जाता था। वहाँ एक घण्टा काम करके लौट जाता। भोजन करके १२ बजे फिर दफ्तर में चला आता और सायंकाल ५-६ बजे काम समाप्त करके फिर घर लौट जाता।

जिस मकान में डाकखाना था, वह मेरे पुराने सहपाठी और मित्र श्री अमरनाथ के पिता श्री दामोदर दास जी भसीन का था। उनको आर्य समाज से बड़ा प्रेम था। मुझ से वे पुत्रवत् स्नेह करते थे। वह श्री गुराँदित्ता मल चड्ढा के बहनोई थे इससे उनके साथ भी मेरा परिचय हो गया। वे भी आर्य समाजी थे और 'सत्य-धर्म प्रचारक' मंगवाया करते थे जिसके सम्पादक उन दिनों महात्मा मुन्शीराम जी थे। श्री गुराँ-दित्ता मल के व मेरे धार्मिक विचार मिलने से हमारा मेल जोल और भी गहरा हो गया।

रविवार के दिन मैं वहाँ आर्य समाज के सत्संग में भी जाता था। इससे वहाँ के अधिकारियों के अतिरिक्त और आर्यपुरुषों से भी परिचय हो गया था। श्री शिवराम भूषण से भी भेंट होती थी। उनके और मेरे परिवार का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध था। मेरी दादी जी उनकी माता गंगा देवी जी की धर्म बहिन बनी हुई थीं। उनका आपस में बहुत प्रेम था। इससे भी श्री शिवराम के प्रति मेरे मन में आत्मीयता के भाव थे। इसके अतिरिक्त उनके धार्मिक विचार भी मुझ से मिलते थे अतः उन से मिलकर मुझे बड़ा हर्ष होता था। उनके पास मास्टर काकाराम जी का भी आना जाना था, इस प्रकार उनके भी वहाँ दर्शन होते रहते थे।

ला० जगन्नाथ जी बाहरी, प्रधान आर्य समाज के छोटे भाई श्री गोपालदास जी कभी स्कूल में मेरे साथ पढ़ चुके थे। उनसे भी मिलता रहता, इससे मन बड़ा प्रसन्न होता।

इस अनुकूल वातावरण में चित्त बड़ा प्रसन्न और सन्तुष्ट था। गाँव की खुली और स्वास्थ्य दायक वायु, घर का उत्तम भोजन और गाँव का घी समान बलवर्धक पानी मेरे स्वास्थ्य को बनाने में सहायक हुए। इस्लामगढ़ की ऊँची सुहावनी बस्ती के आस पास घूमने से एक विशेष आनन्द और स्फूर्ति प्राप्त होती थी। शारीरिक उन्नति के साथ मन और मस्तिष्क की शुद्धि और विकास के साधन भी यहाँ पर

मुझे प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थे। जैसा कि ऊपर लिखा गया है, मुझे यहाँ उच्च और प्रगतिशील विचारों के सज्जनों के सहवास में रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ। दूसरे यहाँ पर स्वाध्याय के लिए भी पर्याप्त समय मिल जाता था। परिस्थिति भी अनुकूल थी। अतः मैंने धर्म पुस्तकों और धार्मिक समाचार पत्रों का अच्छा अध्ययन किया।

नवम्बर १९०२ में मुझे जलालपुरजट्टाँ से जेहलम जाना पड़ा। वहाँ मैंने लगभग दो मास व्यतीत किये। मैं पहले ही लिख चुका हूँ कि उस डाकखाने का वातावरण मेरे अनुकूल न था। मगर मैं यहाँ भी किसी न किसी प्रकार स्वाध्याय के लिये समय निकाल लिया करता था।

किला रोहतास में—३ जनवरी १९०३ को मुझे किला रोहतास के डाकघर में भेज दिया गया। यहाँ मुझे स्वाध्याय के लिए अच्छी सुविधा प्राप्त थी। वहाँ रहते हुए मैंने पंडित लेखराज जी द्वारा लिखित 'तक़ज़ीबे-बराहीने अहमदिया', हुज्जतुल-इस्लाम और नुस्खा-खब्ते अहमदिया का अध्ययन किया। महाभारत और ध्यानयोगप्रकाश को पढ़ने का भी अवसर मिला। उस समय आर्यसमाज के जो पत्र निकला करते थे, उनको भी नियमित रूप से देखता था। मास्टर दुर्गाप्रसाद के बनाये हुए नित्यकर्म-गुटके का प्रतिदिन पाठ किया करता था।

पं० लेखराज जी की पुस्तकों के अन्दर कुरान की आयतें अरबी में दी हुई थीं। मेरी दादी जी जो उस समय मेरे साथ रहती थीं, इन अरबी की आयतों को मेरे मुँह से सुनकर बड़ी घबराती थीं कि मैं कहीं मुसलमान न हो जाऊँ। परन्तु मेरे उनको आश्वासन देने पर कि ऐसा कदापि नहीं हो सकता, उन्हें सन्तोष हो गया।

रोहतास के आसपास के बहुत से प्राचीन दर्शनीय स्थान मैंने वहाँ रहते हुए देखे। यहाँ रहते हुए मुझे एक बार ज्वर आने लगा। इसकी सूचना मेरे श्वसुर सरदार कश्मीरासिंह जी को मिली। वे मुझे देखने के

लिए आये। वे रहे तो मेरे पास एक ही दिन परन्तु अपने प्रेममय व्यवहार से मेरे मन पर एक अमिट प्रभाव छोड़ गये। यह उनकी मुझ से अन्तिम भेंट थीं।

१६ मार्च तक मैं किलारोहतास में रहा। वहाँ से चार्ज देकर मैं गुजरात पहुँचा। वहाँ से अपने मित्र बाशीराम जी से मिला। उन्हें साथ लेकर अपने ग्राम इस्लामगढ़ गया। वहाँ हम तीन चार दिन इकट्ठे ही रहे। २३ मार्च को जेहलम अपने काम पर जा पहुँचा।

६—कार्य-क्षेत्र में

डाक विभाग में दो वर्ष और

कोट मोमन में—जेहलम जाकर अभी चार पाँच दिन ही काम किया था कि २८ मार्च को मेरे नाम कोटमोमन जाने के लिए आज्ञा-पत्र आ गया। २६ मार्च १६०३ को मैं फिर अपने गाँव को गया। रविवार का दिन था और सूर्य ग्रहण लगा हुआ था। दोपहर को मैं जलालपुरजट्टाँ गया। डाकखाने के अध्यक्ष सरदार गुरदित्त सिंह के निमन्त्रण पर रात का भोजन भी वहीं किया। रात्रि को जब वहाँ से इस्लामगढ़ लौटे तो बड़ी असुविधा हुई। रात अन्धेरी थी। मेरे साथ मेरे मित्र श्री अमरनाथ दुग्गल थे। वह मार्ग में इतने भयभीत होगए कि उनके लिए पग उठाना असम्भव हो रहा था। रात को लग भग १० बजे हम इस्लामगढ़ पहुँचे।

कोटमोमन जाने के लिए ३० मार्च को प्रातः काल गुजरात पहुँचा। वहाँ मुझसे श्री लद्धाराम जो पहले पिंडीभाउद्दीन में पटवारी थे और उस समय गिरदावर हो गए थे तथा अन्य पुराने मित्रों से मिलने का अवसर हुआ। वे मुझे पहुँचाने के लिए स्टेशन तक आए। पिण्डीभाउद्दीन और भेरा होता हुआ ३१ मार्च को मैं कोटमोमन पहुँच गया। वहाँ मेरे एक सहपाठी मोहम्मद मोहसन खाँ नायब तहसीलदार थे। उन्होंने मेरे ठहरने की व्यवस्था कर दी। १ अप्रैल से मैंने अपने काम का चार्ज ले लिया। वहाँ मुझे आर्यसमाज के एक प्रेमी श्री मैयादास जी मिले। हम दोनों एक दूसरे से पुस्तकें लेकर पढ़ते रहते थे।

'ध्यान-योगप्रकाश' के अतिरिक्त यहाँ पर मैंने "ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका" और 'संसार का इतिहास' आदि पुस्तकें पढ़ीं।

'१२ अप्रैल को एक बड़ी मनोरंजक घटना हुई। उस दिन चन्द्र ग्रहण लगा हुआ था। एक ब्राह्मण वहाँ आगये और ग्रहण का महत्त्व बतलाने लगे। इस विषय में मेरा उनके साथ विवाद हो पड़ा। इसके परिणामस्वरूप उन्होंने आर्यसमाज के सिद्धान्तों को स्वीकार कर लिया। इन्हीं दिनों मैंने "सत्यार्थप्रकाश", 'पञ्च-महायज्ञ-विधि' आदि कई पुस्तकें पढ़ीं।

मई में वहाँ गर्मी बहुत बढ़ गई। इस कारण स्वाध्याय का समय कम करना पड़ा। पास के एक गाँव में प्लेग भी फैला हुआ था।

२० जून की रात्रि को बिजली बहुत वेग से चमकने लगी, बादल भी घिरे हुए थे। मैं छत पर सो रहा था। ऊपर से मैं अपनी खाट नीचे ला रहा था कि गिर पड़ा। चोट लगी और रक्त बहने लगा। इस स्थान पर मैं अकेला ही था। प्रातःकाल उठा तो शरीर बड़ा अस्वस्थ था। सारे शरीर में पीड़ा अनुभव हो रही थी।

नित्य-कर्म के पश्चात् मैं भोजन करने लगा था कि डिप्टी कलैक्टर का बुलावा आ गया। मेरा माथा ठनक गया। इससे लगभग दो सप्ताह पूर्व ग्राम के कुछ लोग मेरे पास एक प्रार्थना पत्र अंग्रेज़ी में अनुवाद कराने के लिए लाये थे। मैंने अनुवाद कर दिया था। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने उस पर हस्ताक्षर न किये होंगे और वैसे ही भेज दिया होगा। इस को गुप्त शिकायत समझा गया। यह लेख मेरा लिखा हुआ था।

इसलिये मुझ से पूछा गया और मैंने अपनी भूल स्वीकार करली। मगर इस घटना से मुझे यह अनुभव हो गया कि किसी और की सहायता करते हुए भी बड़ी सावधानी बरतनी चाहिए।

धर्म पुस्तकों के अध्ययन तथा आर्य समाज के कामों में रुचि लेते रहने से मेरा यह विचार बन रहा था कि मैं आर्य समाज के प्रचार का कार्य करूँ। इसके लिए मैं किसी उपदेशक विद्यालय में शिक्षा पाना आवश्यक समझता था। इस के सम्बन्ध में मैंने आर्यप्रतिनिधि सभा के उस समय के प्रधान चौधरी रामभजदत्त को पत्र भी लिखा। उन्हीं दिनों मेरे पिता जी भी मेरे पास आये और ३-४ दिन ठहरे।

४ जुलाई को वहाँ से मेरी बदली हो गई। मुझे फिर जेहलम जाना पड़ा। कोटमोमन में चार्ज देकर मैं अपने गाँव गया। वहाँ काशीराम जी और उनके बहनोई श्री चरणदास मल्होत्रा से भेंट हुई। बहुत-सा समय उनके साथ विचार-विनिमय में व्यतीत होता रहा। ये दिन बहुत अच्छे बीते।

१० जुलाई को मैं जेहलम पहुँचा। वहाँ गर्मी बला की थी। स्वाध्याय करना भी कठिन हो गया। १६ और २० जुलाई को मेरी डायरी में निम्न विचार लिखे हैं:—

"इस समय मेरे लिये यह निश्चय करना कठिन हो रहा है कि क्या मैं वर्तमान कार्य को त्याग दूँ, घर से पृथक हो जाऊँ और किसी विद्यालय में बैठ कर धर्म पुस्तकों का स्वाध्याय आरम्भ करूँ या इसी सेवा कार्य में रहकर कठिनाइयों का सामना करते हुए अपने माता-पिता की सेवा करता रहूँ।

यह ठीक है कि धर्म पर चलने से ही सुख प्राप्त हो सकता है। मुझे गृहस्थाश्रम में भी ब्रह्मचर्य के पश्चात् ही प्रवेश करना चाहिए था, पर मेरे माता पिता इन बातों से अनभिज्ञ हैं। वे ही क्या सारा समाज ही ऐसा है। परमेश्वर हमारे समाज का उद्धार करे।

इससे भी अधिक आवश्यकता इस बात की है कि मैं स्वयं तप के मार्ग पर चलता हुआ अपना जीवन धार्मिक बनाऊँ।"

उपर्युक्त विचार अपनी डायरी में लिखने के पश्चात् शीघ्र ही मैं जेहलम से जलालपुरजट्टाँ के लिए चल पड़ा। मेरी बदली वहाँ की हो गयी थी। मैं वहाँ २८ जुलाई को पहुँचा। मन के अन्दर परस्पर विरोधी विचारों का प्रबल संघर्ष चल रहा था। एक ओर घर का उत्तरदायित्व था, दूसरी ओर जीवन को धार्मिक दृष्टि से ऊँचा उठा कर समाज की सेवा करने का भाव। मैं एक दोराहे पर खड़ा था और अगला पग किस ओर रखूँ, इस का निश्चय करने में असमर्थ था। इसी अवस्था में मेरी बदली जलालपुरजट्टाँ की हो गई। मैं वहाँ चला गया और अपने ग्राम में ही रहने लगा।

फिर जलालपुरजट्टाँ में—१ अगस्त को मैंने जलालपुरजट्टाँ में काम सम्भाल लिया। यहाँ आकर मैंने आर्य समाज के कार्य में और भी उत्साह से भाग लेना प्रारम्भ कर दिया। २० अक्तूबर को दिवाली के दिन नगरकीर्तन निकाला गया। उससे समाज के सिद्धान्तों का खूब प्रचार हुआ।

स्वाध्याय निरन्तर जारी था। मैंने पण्डित गुरुदत्त एम० ए० के जीवन चरित्र तथा कुछ अन्य पुस्तकों का अध्ययन किया।

उन दिनों मेरे हृदय में यह संकल्प उठा कि जो कार्य आवश्यक तथा धर्मानुकूल हो उसके करने में विलम्ब नहीं करना चाहिए। वेदाज्ञा का पालन निरन्तर करना चाहिए। २८ अक्तूबर को आर्य समाज के साप्ताहिक सत्संग में मन्त्री जी के परामर्श पर मैंने प्रथम बार व्याख्यान देने का साहस किया। इसमें मुझे बहुत सफलता तो न मिली। तब मैंने निश्चय किया कि प्रति दिन सन्ध्या किया करूँगा। ऐसा करना मैंने प्रारम्भ भी कर दिया। ईश्वर से प्रार्थना की कि वह मुझे अपने निश्चय पर दृढ़ रहने की सामर्थ्य दे।

४ नवम्बर को मैंने कुछ समाचार पत्र पढ़े जिन में गुजराँवाला निवासी लाला रलाराम जी के सम्बन्ध में कुछ लेख थे। उन से ऐसा

प्रतीत होता था कि आर्य जनता को उनके विचारों से मत भेद है। उसी दिन मुझे तार द्वारा सूचना मिली कि मैं शेखूपुरा चला जाऊँ। अगले दिन मैं लाहौर पहुँचा। वहाँ अपने चचेरे भाई श्री बरकतराम के पास ठहरा। वह उन दिनों शालामार डाकख़ाने में काम करते थे। वहाँ हो उनके पिता सरदार चंदासिंह जी के भी दर्शन हुए।

———

१०—कार्य-क्षेत्र में

चौथा वर्ष

शेखूपुरा में—लाहौर से मैं तांगे पर सवार होकर शाम को ४ बजे शेखूपुरा पहुँचा।

वहाँ मैंने 'सत्यार्थ प्रकाश' का नियमित अध्ययन प्रारम्भ कर दिया। वहाँ के नवयुवकों तथा अन्य सज्जनों से मेल जोल और परिचय बढ़ाना आरम्भ किया। कुछ आर्य पुरुषों के सहयोग से वहाँ आर्य समाज की स्थापना हुई और मुझे मंत्री चुना गया।

अब तो शेखूपुरा बड़ा नगर है लेकिन उन दिनों यह ग्राम ही था। जिले का मुख्य स्थान भी यह बाद में ही बना तब अभी नहर नहीं आई थी। नहर आने से पहले शेखूपुरा और इसके आस पास का प्रदेश उजड़ा हुआ सा ही था। इस भूमि मे वण, कीकर, शीशम, करील, जंड आदि कटीले वृक्षों के जंगल थे। इनमें शेर, चीते तथा अन्य हिंसक पशु भी मिलते थे।

इसके पास ही जंडियालाशेरखाँ नाम का नगर था। वहाँ भी मैं एक दो बार गया। यहीं पर पंजाबी के सुप्रसिद्ध कवि सय्यद वारिसशाह का जन्म हुआ था।

पंजाबी का प्रसिद्ध काव्य हीर-राँझा इन्हीं सैयद वारिसशाह की रचना है। इनका जन्म १७३८ ई० में हुआ था, इन्होंने अपनी पूर्ण युवावस्था (१७६३) में इस रहस्यमय काव्य की रचना की थी। उस समय का प्रत्येक रसप्रेमी इस काव्य को साहित्यिक दृष्टि से पढ़ना आवश्यक समझता था। इस काव्य की कथा का नायक तख़्त-हज़ारा के एक भूमिपति का सबसे छोटा पुत्र राँझा था। अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् अपनी भाभियों के व्यंग से आहत होकर इसने झंगस्याल के एक भूमिपति की

रूपवती कन्या हीर का प्रेम प्राप्त करने के प्रयास में अपना जीवन लगा दिया था।

एक ऐतिहासिक व्यक्ति—एक किंवदन्ती के अनुसार इसी प्रदेश में राजपूतों के भटनेर वंश का दुल्ला नामी एक प्रसिद्ध व्यक्ति था। वह मुगल सम्राट् अकबर के समय में हुआ था। उसे लोग दुल्ला भट्टी के नाम से आज भी जानते हैं। वह एक बाग़ी था। जब कभी सरकारी कोष उस ओर से ले जाया जाता था तो अपने साथियों की सहायता से वह उसको लूट लिया करता था। परन्तु वह था बड़ा उदार। दरिद्र तथा पीड़ित स्त्री-पुरुषों की बड़ी सहायता करता था। वह हिन्दू मुसलमान का भी भेद नहीं रखता था। अकबर भरसक प्रयत्न करने पर भी इसको दबाने में सफल न हो सका। एक बार का कथन है कि अकबर इस प्रदेश की एक हिन्दू कन्या पर मोहित हो गया। वह उसके साथ बलपूर्वक विवाह करना चाहता था। उस कन्या के पिता ने अपनी लड़की को रक्षा की दृष्टि से दुल्ले के पास भेज दिया। दुल्ले ने उसका विवाह एक हिन्दू युवक के साथ करके उसको किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँचा दिया। इस घटना के पश्चात् लोगों में इसका बड़ा आदर होने लगा। जब यह घटना हुई तो शरद ऋतु थी और लोहड़ी के दिन थे। इसी कारण लोहड़ी माँगने के लिए जब लड़के-लड़कियाँ जाते हैं तो दुल्ले के नाम का उसकी प्रशंसा में निम्नलिखित गीत गाते हैं:—

सुन्दर मुन्दरिये हो!
तेरा कौन विचारा हो!
दुल्ला भट्टी वाला हो!
दुल्ले धी वियाही हो!
झोली शक्कर पाई हो!
कुड़ी ते लाल दुपट्टा हो!
कुड़ी दा शालू पाटा हो!

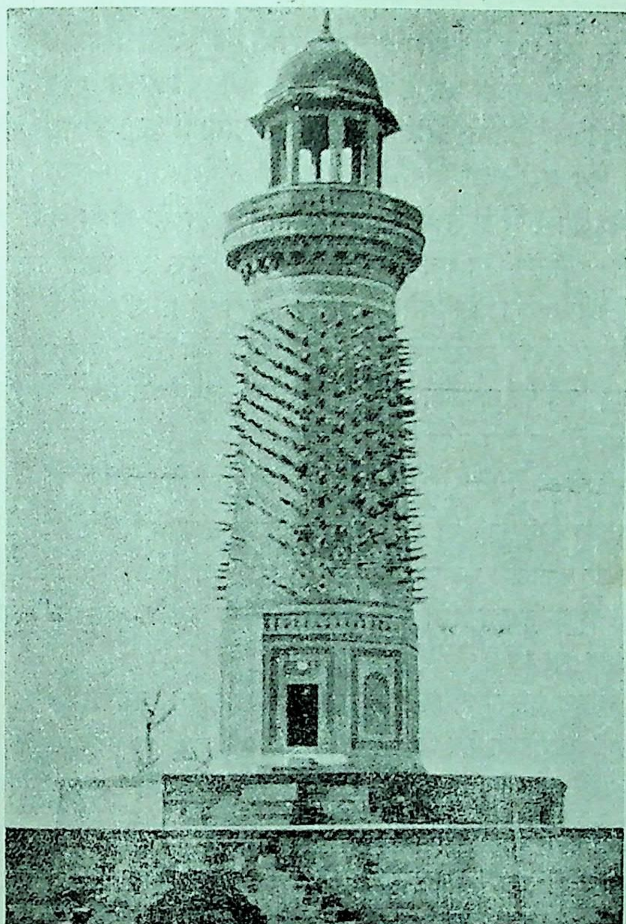
इसका अर्थ यह है:—'हे सुन्दर लड़की, तेरा कौन सहायक है दुल्ला भट्टी ही तेरा सहायक हुआ जिसने लड़की बनाकर तेरा विवाह कर दिया। उसने शक्कर से तेरी झोली भर दी। लड़की बहुत रूपवती थी यद्यपि उसने कपड़े फटे पुराने पहन रखे थे। इससे प्रकट होता है कि परोपकारी कोई भी हो, लोगों के हृदय में कितना स्थान पा लेता है।

इस प्रकार सम्राट के विरुद्ध विद्रोह करके वह दीनों की सहायता करता था। अकबर के पश्चात् उसके बेटे जहाँगीर ने उसको गिरफ्तार करने का प्रयत्न जारी रखा। मगर वह अपने १२० वर्ष के जीवन काल में केवल एक बार पकड़ा गया। इस बार भी वह कारागार से भाग निकला और फिर हाथ न आया। जिस क्षेत्र में दुल्ला घूमा करता था उसे आजकल भी 'दुल्ले की बार' ही कहते है।

शेखूपुरे का हिरणमिनारा—शेखूपुरे के समीप ही जंगल में एक बड़ा भारी तालाब खुदवाया गया। इस के मध्य में एक बारादरी बनवाई गई और चारों ओर पुल बाँधे गये। एक सिरे पर प्राचीन मीनारों के ढंग पर एक मीनार बनवाया गया। यह फ़तेहपुर सीकरी में अकबर द्वारा बनाये गये हिरण मिनारे से मिलता है। ताल के आस पास कुछ भवन भी बने हुए थे। मैंने यह ताल, बारादरी, मिनार और भवन घूम फिर कर देखे थे। इस ताल में नहर विभाग जल देता था और नाव भी चलती थी।

शेखूपुरे में मैं दो मास से कुछ ही अधिक दिन रहा। ११ जनवरी को मेरी बदली जेहलम की हो गई। आर्य भाइयों के आग्रह पर मैंने वहाँ से जाना दो दिन पीछे डाल दिया। १२ जनवरी को एक सहभोज हुआ जिसमें मुझे मान-पत्र भेंट किया गया। १३ जनवरी को वहाँ से चला। रास्ते में एक दिन शाहदरा में श्री ताराचन्द छाबड़ा (जो अब शंघाई में हैं) के पास और एक दिन गुजरात में श्री बाशीराम के पास

ठहरा। १५ जनवरी को अपने ग्राम पहुँचा। वहाँ से १६ जनवरी को अपने काम पर जेहलम चला गया। उस समय कुछ अस्वस्थ था। जेहम



हिरण मीनार

में वहाँ के डिप्टी पोस्टमास्टर पं० शिवदास जी के घर पर ठहरा।

अगले दिन मैंने पोस्ट आफिस में काम करना आरम्भ कर दिया। किन्तु स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण शारीरिक दुर्बलता बढ़ रही थी। काम में मन न लगता था और इसे छोड़ देने की इच्छा हो रही थी। पर कुछ दिन उपरान्त शरीर स्वस्थ हो गया और मैं कुछ उत्साह से कार्य करने लग गया।

जेहलम में मैं पहले भी रह चुका था। वहाँ के जीवन से मैं पहले से ही असन्तुष्ट था। वहाँ के लोगों से मैं दूर ही रहना चाहता था। आर्यसमाज की ओर रुचि बढ़ रही थी। रविवार को सत्संगों में जाता वहाँ व्याख्यान सुनता और सत्संग के पश्चात् आर्य समाचार-पत्रों का अध्ययन करता, इससे मन को कुछ सन्तोष होने लगा। मेरे मन में यह बात समा रही थी कि डाक विभाग में काम करते हुए मैं अपने उच्च भावों की पूर्ति नहीं कर सकता। वहाँ के वातावरण से शान्ति की आशा मिट चुकी थी। डाकघर में काम करने वाले लोग व्यर्थ की बातों पर आपस में झगड़ते थे। काम भी बहुत अधिक था, अतः स्वाध्याय तो हो ही न सकता था। कई बार तो खाना खाने तक को समय न निकलता था।

मैं इस प्रकार अनमना-सा काम करता रहा। २२ अप्रैल को मेरे मित्र श्री बाशीराम मेरे पास जेहलम आये। लगभग एक सप्ताह तक वहाँ ठहरे। ये दिन हमने भ्रमण में विताये। पुरानी बातों को स्मरण करने से बड़ा आनन्द रहा। इस बीच में मैंने अवकाश ले लिया। २८ अप्रैल को हम दोनों गुजरात होते हुए अपने ग्राम गये। गुजरात में हम अपने बचपन के मित्र श्री दीवानचन्द हाँडा को मिले, उनके पिता की एक मास पूर्व मृत्यु हो चुकी थी।

एक सप्ताह अपने ग्राम में व्यतीत करके २ मई को मैं फिर जेहलम पहुँच गया और अपने कार्य में लग गया। पाँच मास तक मैंने जैसे भी

बन पड़ा वहाँ काम किया। इसी बीच में हमारे वंश के गुरु भाई भगत सिंह जी मेरे पास आकर रहे। वहाँ का वातावरण देखकर उन्होंने भी मुझे यही परामर्श दिया कि मैं उस स्थान को शीघ्र छोड़ दूँ।

सरगोधा में—मैं जेहलम छोड़ने के लिए बड़ा उतावला था, प्रभु ने मेरी सहायता की और १५ अक्तूबर को मुझे वहाँ से सरगोधा जाने का आदेश मिल गया। बदली का यह समाचार पाकर मैं फूला न समाया। अगले दिन प्रातः ही लारी द्वारा मैं सरगोधे रवाना हो गया।

वहाँ जाकर मैंने उत्साह के साथ काम करना आरम्भ कर दिया। काम को शीघ्र ही भलि भाँति संभाल लिया। इस समय तक डाकघर के काम को मैं अच्छी प्रकार समझ गया था। मुझे वहाँ गये आठ ही दिन हुए होंगे कि मेरी धर्मपत्नी भी मेरे पास पहुँच गईं। वे इससे पूर्व मेरी बुआ वज़ीरदेवी जी के पास गई हुई थीं। उन्होंने उनको अपने एक सम्बन्धी के साथ मेरे पास भेज दिया। मुझे उनके यहाँ आने की सूचना न थी। इस लिए परिवार रखने की मैंने कोई व्यवस्था न की हुई थी। वहाँ के पोस्टमास्टर ने मेरी कठिनाई देख कर मुझे अपना एक कमरा दे दिया। हम उस में रहने लगे।

विवाह के पश्चात् अपनी धर्मपत्नी के साथ रहने का यह मेरा प्रथम अवसर था। लक्ष्मी जी ने वहाँ आकर घर की व्यवस्था करनी प्रारम्भ कर दी। वह घर के सब कार्यों की ओर ध्यान देतीं और बड़े परिश्रम से सब काम करतीं। अपने हाथों से ही कपड़े धोतीं, बरतन माँजतीं और दूर से जाकर पानी भी भर कर लाती थीं। उन दिनों सरगोधा बस ही रहा था। वहाँ न कूएँ थे और न नल। पीने का जल भी नहर से आता था। कठोर परिश्रम और ठीक प्रकार खर्च करके मेरी थोड़ी सी आय में ही घर का निर्वाह वे कर लेती थीं। इतना ही नहीं अपने वेतन में से पर्याप्त अंश बचा कर मैं अपने पिता जी को भी भेज दिया करता था।

लक्ष्मी जी ने मुझसे वहाँ हिन्दी सीखनी प्रारम्भ कर दी। रात्रि को जब मैं दफ्तर से लौटता और वह घर का काम समाप्त कर लेतीं तो मुझसे हिन्दी पढ़तीं। दो तीन महीने में ही वह साधारण रूप से लिखना-पढ़ना सीख गईं।

नौकरी छोड़ने का विचार—इससे पूर्व मैं यह लिख चुका हूँ कि डाकविभाग की नौकरी मुझे न भाती थी, वहाँ का वातावरण मुझे अच्छा न लगता था। इसके अतिरिक्त आर्यसमाज के साहित्य को पढ़ने की इच्छा प्रतिदिन प्रबल हो रही थी। इसलिये मैंने ऐसा अवसर निकालने का निश्चय किया और यह कि लाहौर जाकर आर्यसमाज के प्रमुख कार्यकर्त्ताओं से मिलूँ और अपने भावी जीवन का कार्यक्रम निश्चित करूँ। मैंने इस सम्बन्ध में आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब के उस समय के मन्त्री, श्री केदारनाथ जी थापर को पत्र लिखा कि मैं उपदेशक रूप में आर्यसमाज की सेवा करना पसन्द करूँगा। उनका उत्तर प्रोत्साहन देने वाला नहीं था परन्तु इससे मैंने अपना विचार नहीं बदला न इससे मेरा उत्साह ही भंग हुआ।

लाहौर में—यह मानसिक संग्राम चल ही रहा था कि जनवरी १६०५ को डाकखाने के एक उच्चाधिकारी की ओर से मुझे कहा गया कि मैं लाहौर में जाकर तार का काम सीखूँ। डाकविभाग में उन्नति के लिए यह एक प्रकार से आवश्यक भी था। अन्धे को दो आँखें मिल गईं। मैं तो पहले ही लाहौर जाने के अवसर की खोज में था, मैंने तुरन्त वहाँ जाना स्वीकार कर लिया। सरगोधा छोड़ कर मैं अपने ग्राम इस्लामगढ़ चला गया। वहाँ दो-चार दिन ठहर कर लाहौर को रवाना हो गया। लाहौर के स्टेशन पर श्री बाशीराम (जो उस समय डी० ए० वी० कालेज के विद्यार्थी थे) अपने एक मित्र सहित मुझे लेने के लिए आये हुए थे। उनके साथ मैं उनके निवास स्थान बख्शी जयशीराम की कोठी पर पहुँचा। कुछ दिन मैं वहीं ठहरा। फिर १० फरवरी को

ओल्ड-हिन्दू आश्रम में चला गया। वहीं श्री वासुदेव ड्राइंग-मास्टर भी रहते थे। हम एक साथ रहने लगे। उनके साथ रहने से मुझे दो लाभ हुए:—एक तो हम प्रातःकाल उठकर कुश्ती आदि के रूप में व्यायाम करने लगे। दूसरे दोनों काल सन्ध्या नियमित होने लगी।

भयंकर भूकम्प—अप्रैल में एक दिन प्रातः उठ कर मैं अखाड़ा खोद रहा था जैसाकि कुश्ती के लिए उसे हम प्रतिदिन खोदते ही थे। मेरे साथी अभी उठे भी न थे। मैंने सोचा कि उनके आने से पूर्व ही अखाड़ा तैयार करलूँ। थोड़ी ही देर में एक ईंट गिरी। मैंने समझा किसी ने शरारत की है। इधर उधर मैंने देखा तो मुझे आस पास के मकान काँपते हुए दीख पड़े। गड़गड़ाहट की आवाज़ आ रही थी। चारों ओर शोर मच गया, लोग रजाइयों सहित भागे हुए अपने कमरों से बाहर आ गये। हा हा कार मच गया! कुछ तो अखाड़े के पास बने हुए तालाब में आ गिरे। थोड़ी देर तक यही अवस्था रही।

कुछ समय बाद भयानक समाचार आने प्रारम्भ हो गये। जिस भूकम्प का छोटा सा रूप लाहौर में देखा गया था उसी ने काँगड़ा और धर्मशाला के पर्वतीय क्षेत्रों को नष्ट कर दिया। सैंकड़ों के मकान गिर गये, मन्दिर नष्ट हो गये। काँगड़े के प्रसिद्ध मन्दिर को भी हानि पहुँची। सहस्रों लोग बेघर हो गये। कई स्त्रियाँ और बच्चे अनाथ बन गये। लोगों के पास तन ढाँपने को कपड़ा और खाने को रोटी तक न रही। यह सब समाचार सुनकर हृदय दहल उठता था।

आर्यसमाज ने उन लोगों की सहायता का कार्य अपने हाथ में लिया। अन्न, धन और कपड़ा एकत्र करना प्रारम्भ कर दिया। काँगड़ा आदि स्थानों पर जो लोग मकानों के नीचे दब गये थे उनको निकालने तथा अन्य सभी प्रकार की सहायता करने के लिए लाहौर से स्वयं-सेवक भेजे गये। मैं वहाँ तो न गया परन्तु लाहौर में जो काम हो रहा था उसमें अपनी शक्ति के अनुसार सहयोग दिया।

११—कालेज की शिक्षा

प्रथम वर्ष

मेरे मन में उच्च शिक्षा पाने की अभिलाषा बहुत देर से जागृत हो चुकी थी। मैं तार का काम सीखने लाहौर आगया था। मेरे मित्र बाशीराम जी डी० ए० वी० कालेज में अध्ययन कर रहे थे। मैंने भी अपनी अभिलाषा पूर्ण करने की ठान ली। जून १६०५ में जब कालेजों में प्रवेश आरम्भ हुए तो मैं भी डी० ए० वी० कालेज में प्रविष्ट हो गया, पर तार सीखने का काम भी न छोड़ा। वह उसी प्रकार चलता रहा। कालेज प्रातः ७ बजे से १२ बजे तक लगता था। वहाँ से लौट कर एक बजे खाना खाकर तार घर पहुँच जाता। वहाँ सायं ५ बजे तक काम करता और लौट कर कालेज के काम की ओर ध्यान देता तथा अपने साथियों से मिलता।

लाहौर में आकर मैंने आर्यसमाज के और भी निकट आने का यत्न किया। इसी दृष्टि से आर्यसमाज बच्छोवाली के साप्ताहिक सत्संगों में सम्मिलित होता रहा।

आर्यकुमार सभा में—नवयुवकों में आर्यसमाज के प्रचार के लिए वहाँ आर्यकुमारसभा कार्य करती थी। उसके मंत्री थे श्री सत्यपाल वे मेडिकल कालेज में शिक्षा पा रहे थे। कई वर्ष बाद में जाकर उन्होंने काँग्रेस आन्दोलन में बढ़ चढ़ कर भाग लिया। वे इस समय पंजाब-संविधान सभा के अध्यक्ष (Speaker) हैं। अन्य कॉलेजों के विद्यार्थियों से भी डा० सत्यपाल का बड़ा मेल-जोल था। उनका व्यवहार

सब के प्रति बड़ा प्रेममय था और वे प्रत्येक व्यक्ति को सब प्रकार से प्रोत्साहन देते रहते थे। इसलिए उनका सभी विद्यार्थी आदर करते थे। उनके एक साथी थे श्री अछरूराम। वे सभा के संयुक्तमंत्री थे और बड़े उत्साही नवयुवक। आर्यसमाज से इनको बड़ा प्रेम था और वे महात्मा मुंशीराम जी के प्रति अगाध श्रद्धा रखते थे। वे उसी ग्राम के रहने वाले थे जहाँ के महात्मा मुंशीराम थे। बाद में वे पंजाब हाईकोर्ट के जज बने। देश विभाजन के पश्चात् कस्टोडियन-जनरल के पद पर भी बड़ी योग्यता से काम करते रहे।

मुझे भी इन व्यक्तियों से मिलने का अवसर हुआ। जहाँ तक हो सकता था मैं भी समाज कार्य में सहयोग देता था। इस वर्ष आर्यकुमार सभा का चुनाव हुआ तो मुझे कोषाध्यक्ष का कार्य सौंपा गया। अपने मित्रों के सहयोग से मैंने इस कर्त्तव्य को भली-भाँति निभाया।

इस समय आर्य-कुमार सभा के प्रधान श्री विश्वम्भर नाथ और उप-प्रधान महाशय कृष्ण थे। इन दोनों ने बाद में आर्यसमाज की महान् सेवाएँ कीं। इनके अतिरिक्त उस समय आर्य-कुमार सभा में बहुत से और नवयुवक भी काम करते थे। उनमें से मैडिकल कालेज के उस समय के विद्यार्थी कुलभूषण जी को मैं प्रथम स्थान देता हूँ। वे सरल स्वभाव के विचारशील नवयुवक थे और चुपचाप काम करने वाले व्यक्ति थे। श्री जगन्नाथ थापर भी जो उस समय पोस्टमास्टर जनरल के कार्यालय में काम करते थे, इस काम में सहयोग देते थे।

ऊपर जिन छः नवयुवकों का वर्णन आया है, उनमें से श्री अछरूराम ड० ए० वी० कालेज के छात्रावास में रहते थे। शेष सभी बाँस-मण्डी के एक मकान में इकट्ठे रहते थे। यह मकान आर्य-समाजी नव-युवकों का केन्द्र स्थान था। प्रायः नवयुवक यहाँ आते रहते थे। इस वातावरण में उनके हृदयों में आर्यसमाज के प्रति प्रेम और श्रद्धा की

भावना बढ़ती रहती थी। इस प्रकार आर्यसमाज का प्रभाव नवयुवकों पर दिन-प्रति-दिन बढ़ रहा था।

आर्यसमाज के प्रचार की दृष्टि से एक साप्ताहिक पत्र भी महाशय कृष्ण और उनकी मित्र मण्डली ने प्रकाशित करना आरम्भ किया जिसका नाम 'प्रकाश' रखा गया। इसके सम्पादक तो महाशय कृष्ण थे परन्तु सम्पादन कार्य में अन्य भी सहयोग देते थे। तत्पश्चात् यह मित्र मण्डली 'प्रकाश पार्टी' के नाम से प्रसिद्ध हो गई।

मेरा परिचय तो इन सभी सज्जनों से था परन्तु श्री सत्यपाल और श्री जगन्नाथ के मैं अधिक निकट था।

इस प्रकार आर्यसमाज का काम करते हुए इन लोगों में कभी-कभी मत-भेद भी हो जाता पर मैं इन विवादों से अलग ही रहता था। कई वर्ष पीछे महाशय कृष्ण ने दैनिक उर्दू 'प्रताप' का प्रकाशन आरम्भ किया, जिसका वे अब तक बड़ी सफलता से संचालन कर रहे हैं। तभी से महाशय कृष्ण गम्भीर-विचारक और अच्छे लेखक व योग्य समालोचक प्रसिद्ध हैं।

अन्य मित्रवर्ग में से भी श्री हशमतराय तथा श्री विष्णुदत्त गवर्नमेण्ट कालेज में पढ़ते थे। श्री अलख बिहारी जो बाद में डाक्टर ए०बी० अरोड़ा के नाम से प्रसिद्ध हुए, उस समय मैडिकल कालेज में शिक्षा पा रहे थे। इन्हीं दिनों प्रो० रामदेव जी और मास्टर सुन्दरसिंह जी के भी पहले पहल दर्शन हुए।

ग्रीष्मावकाश—कालेज में शिक्षा प्रारम्भ किये अभी दो मास भी नहीं हुए थे कि जुलाई के अन्त में ग्रीष्मावकाश आरम्भ हो गया। तार का काम भी अभी सीख ही रहा था। मेरे तार के शिक्षक थे श्री सन्तराम जी, वे मेरे हितैषी थे। उनकी अनुमति से उस कार्य को बीच में ही

छोड़ कर जेहलम डाकघर में अपने पद पर पुन: लौट गया। वहाँ से मुझे मियाँवाली जिले के एक स्थान पाइखेल में भेजा गया।

यह एक अच्छा बड़ा ग्राम था। रेतीला क्षेत्र होने के कारण चारों ओर रेत ही रेत थी और पानी की बहुत कमी थी। वनस्पतियाँ भी कम ही देखने में आती थीं। वहाँ के निवासी प्राय: मुसलमान थे और पठानों से मिलते-जुलते थे। उनका रंग-रूप भी लगभग वैसा ही था। उनकी भाषा तो पश्तो न थी पर उच्चारण उससे मिलता-जुलता था। जब मैं उस ग्राम में प्रविष्ट होने लगा तो बाहर ही एक स्कूल मार्ग में पड़ा। मैंने अपना सामान तो डाकघर में भेज दिया और स्वयं उस स्कूल में चला गया। मेरा विचार था कि वहाँ कुछ सुशिक्षित लोग अवश्य मिलेंगे, जिनसे मिलकर मैं ग्राम की स्थिति का परिचय प्राप्त कर सकूँगा। स्कूल में मुख्याध्यापक से भेंट हुई। वे एक हृष्ट-पुष्ट मुसलमान व्यक्ति थे, स्वभाव के बड़े सुशील और मिलनसार प्रतीत होते थे। उन्होंने सब से पहले मेरे भोजन की व्यवस्था की। मेरा परिचय एक हिन्दू अध्यापक से कराया। अध्यापक महोदय ने कहा कि मैं १२ बजे छुट्टी होने के पश्चात् आपके लिए भोजन अपने घर से ले आऊँगा।

वहाँ से मैं डाकघर में चला गया। अपने रहने के स्थान पर सामान ठीक करके रखा। निवास के लिए उस डाकघर में एक कच्चा मकान था। वह अच्छा विशाल स्थान था।

सामान संभाल कर मैं कार्यालय में गया और अपने काम का चार्ज ले लिया। यात्रा करके आया था इस कारण भूख खूब लगी हुई थी। मैं भोजन की प्रतीक्षा करने लगा। एक और दो बजे के बीच वे अध्यापक महाशय भोजन लेकर आये। मैं भोजन करने के लिये बैठ गया। वे भी मेरे समीप ही विराज गये। भोजन की थाली परने से ढकी थी। पास ही रखा हुआ था एक तरबूज। मैंने उसे उठाकर एक ओर रख दिया कि इसे भोजनोपरान्त फिर खाऊँगा। थाली पर से परना उठाया तो उसमें

तन्दूर की चार रोटियाँ और दो चार फूलबड़ियाँ रखी थीं। दाल-भाजी कोई न थी। मैंने समझा कि कदाचित् कोई सबज़ी आने वाली है। अध्यापक महोदय ने सरल-स्वभाव से कहा : 'आरम्भ कीजिए'। साथ ही तरबूज उठा कर ले आये और कहने लगे, "इसे तोड़ दूँ ?" "किस लिए ?" मैंने पूछा। वे बोले, "खाने के लिए।" हम दोनों एक दूसरे के इस असाधारण व्यवहार को देखकर चकित थे। इसपर मैंने उनको बताया कि हम लोग तरबूज भोजन से बहुत पहले या बहुत पीछे खाते हैं। उन्होंने कहा कि यहाँ तो हम इसे भोजन के साथ ही खाते हैं और भाजी भी तरबूज की ही बनती है, अन्य कोई सबज़ी नहीं मिलती। मैंने कभी बिना सबज़ी के खाना नहीं खाया था अतः भोजन करने में कठिनाई प्रतीत होने लगी। भूख भी लगी हुई थी, मैंने भोजन कर ही लिया।

इसके पश्चात् मैंने अपने पास रहने वाले एक डाकिये से भोजन के प्रबन्ध के बारे में पूछा। उसने कहा, "यहाँ कोई होटल आदि तो है नहीं। आप यदि चाहें तो मैं आपके लिए भोजन बनवा लाया करूँगा। जो कोई दाल-सबज़ी मिल सकेगी, वह बन जाया करेगी।" अतः वह रात्रि को तरबूज़ की सबज़ी बनवा कर लाया। मुझे वह स्वादिष्ट प्रतीत हुई। अब क्या था, प्रतिदिन कच्चे और पक्के तरबूज का प्रयोग होने लगा, और तो कुछ वहाँ मिलता ही न था। वहाँ का जलवायु कुछ इस प्रकार का था कि तरबूज रोटी के साथ खाने से कोई हानि न होती थी अतः सर्व साधारण सभी इसका प्रयोग करते थे।

इस स्थान पर मैंने दो मास बिताये। इस बीच में मुझे दो बार मियाँवाली और दो बार सिन्धु नदी को पार करके कालाबाग जाने का अवसर हुआ। कालाबाग में नमक की पहाड़ियाँ देखीं। चारों ओर नमक ही नमक दिखाई देता था, कहीं काला और कहीं सैंधा।

एक बार नदी पार करते हुए जिस नाव में मैं बैठा था, वह भँवर में फँस गई, सभी लोग घबरा गये और ईश्वर से सहायता के लिए प्रार्थना करने लगे। उसकी कृपा हुई, नाव पार लग गई और हम सबने प्रभु का धन्यवाद किया।

पाईखेल से अगस्त में मैंने अपना त्याग-पत्र भेज दिया। इसकी स्वीकृति की मैंने एक मास तक प्रतीक्षा की। इस समय तक कोई उत्तर न पाकर मैंने काम वहां के एक और कर्मचारी को सौंप दिया। इसकी सूचना जेहलम में मुख्याधिकारी को भेज दी। मैं स्वयं वहाँ से अपने ग्राम को चला गया। दो तीन दिन वहाँ ठहरा और फिर लाहौर जा पहुँचा क्योंकि ग्रीष्मावकाश समाप्त हो रहा था।

————

१२—कालेज की शिक्षा

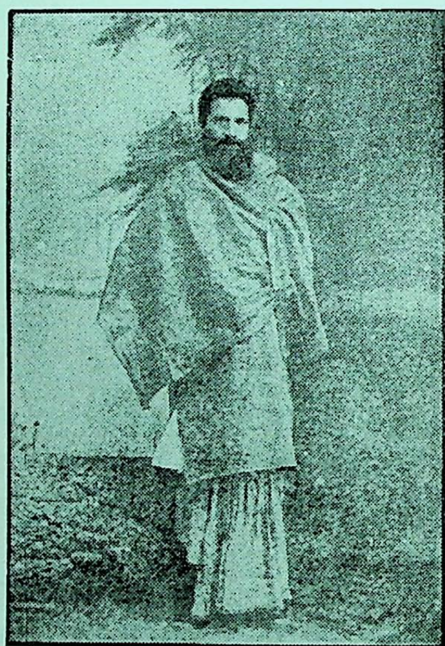
द्वितीय वर्ष

१९०६ की मार्च में कालेज की वार्षिक परीक्षा हुई। मैं उत्तीर्ण होकर दूसरे वर्ष में आ गया। गर्मियों में शिक्षा का क्रम सदा की भाँति चलता रहा। कालेज में पढ़ते हुए मेरा कालेज के बाहर भी पूर्ववत् सम्बन्ध बना रहा। आर्यसमाज के साथ सम्बन्ध होने से संस्कृत की ओर झुकाव स्वभावतः था ही अतः इसके पढ़ने की इच्छा बढ़ रही थी। मुझे यह पता था ही कि गुरुकुल काँगड़ी में संस्कृत की शिक्षा का विशेष प्रबन्ध है। अतः मेरी इच्छा वहाँ जाकर संस्कृत पढ़ने के लिए दृढ़ हो गई।

मैंने महात्मा मुंशीराम जी को इस विषय में लिखकर पूछा।

महात्मा जी का उत्तर पाकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। उन्होंने लिखा कि यहाँ आने पर संस्कृत पढ़ने का प्रबन्ध हो सकता है। अत: मैंने गर्मी की छुट्टियाँ गुरुकुल में रहकर बिताने का निश्चय कर लिया। ग्रीष्मावकाश से बढ़कर मेरे लिए और कौन सा अवसर मिल सकता था जब कि गुरुकुल में अपनी आशाएँ पूर्ण करने की स्वीकृति भी मिल चुकी हो।

जुलाई मास में ग्रीष्मावकाश हुआ। अपने पूर्व निश्चयानुसार मैं अवकाश होते ही गुरुकुल काँगड़ी के लिए हरिद्वार को चल पड़ा। गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता थे महात्मा मुंशीराम जी। उस समय आर्यजगत् के वे प्रमुख नेता थे। उनके प्रेममय व्यवहार से स्वयमेव नवयुवक उनकी ओर आकर्षित हो जाते थे।



महात्मा मुंशीराम जी

मैं गुरुकुल काँगड़ी पहुँचा। उस समय गुरुकुल गंगा के पार उस भूमि में था जो मुंशी अमनसिंह जी ने दान में दी थी। महात्मा जी ने मेरे निवास तथा भोजन आदि का प्रबन्ध कर दिया। मैंने वह सारा स्थान घूम फिर कर देखा। वहाँ के विद्यालय विभाग में भी गया। वहाँ एक पुस्तकालय भी था। मैं प्रतिदिन उसमें थोड़े बहुत समय के लिए अवश्य जाया करता था। उस समय पुस्तकालय के अध्यक्ष थे श्री सलामतराय। उनसे भी मेरा अच्छा परिचय होगया था। पुस्तकें बिना कठिनाई के प्राप्त हो जाती थीं, मैं बड़े ध्यान से पुस्तकें पढ़ता और उनसे खूब लाभ उठाता। उस समय मैंने कई पुस्तकें पढ़ीं। उनमें कुछ पुस्तकें वे थीं जो अमेरिका के प्रख्यात लेखक श्री ऐण्ड्रू जैक्सन डेविस (Andrew Jackson Davis) ने उपनिषदों पर लिखी थीं। वे पुस्तकें महात्मा मुंशीराम जी ने अपने लिए खरीदी थीं। उन्हें पढ़कर उन्होंने गुरुकुल पुस्तकालय के अर्पण कर दी थीं। इनमें उन्होंने अपने हाथों से चिन्ह लगा रखे थे। इनके विषय में वे सद्धर्म-प्रचारक में भी लिख चुके थे। मैंने इन से बड़ा लाभ उठाया।

यह तो हुआ मेरा गुरुकुल के साथ साधारण परिचय। परन्तु जिस विशेष लक्ष्य को सम्मुख रखकर मैं वहाँ गया था, उसके लिए महात्मा जी ने समुचित प्रबन्ध कर दिया। श्री पं० पूर्णानन्द जी उस समय आर्य-प्रतिनिधि सभा पंजाब के महोपदेशक थे। ये महात्मा मुंशीराम जी के बड़े विश्वस्त कार्यकर्ताओं में से थे। संस्कृत तथा शास्त्र आदि में उनकी योग्यता की सर्वत्र ख्याति थी। उस समय वे वहीं विद्यमान थे। महात्मा जी ने उनको मुझे संस्कृत पढ़ाने के लिए कहा। उन्होंने यह स्वीकार भी कर लिया। उस समय गुरुकुल में एक नवयुवक परमानन्द भी वहाँ संस्कृत पढ़ने के लिए आये हुए थे। उनका वेदारम्भ संस्कार भी वहीं हुआ। हम दोनों ने एक साथ संस्कृत पढ़ना आरंभ किया। पं० पूर्णानन्द जी ने बताया कि यदि पहले अष्टाध्यायी पढ़ना ठीक आ जाय तो साहित्यिक पुस्तकें पीछे पढ़ी

जा सकती हैं। लगभग एक मास तक पठन-पाठन चलता रहा। अष्टाध्यायी कण्ठस्थ करनी पड़ती थी। परमानन्द जी मुझ से आयु में छोटे थे। वे सुगमता से पाठ कण्ठ कर लेते थे। मुझे इसमें कठिनाई प्रतीत होती थी। ऐसा करना मेरे स्वभाव और प्रकृति के अनुकूल भी न था। समय भी अधिक लगता था। कण्ठस्थ करने पर भी दूसरे-तीसरे दिन पहला पाठ भूल जाता था। दो अध्याय तो याद कर लिए थे परन्तु वे भी पूर्णत: कण्ठस्थ न थे। तीसरा अध्याय पढ़ते ही मुझे निश्चय हो गया कि अष्टाध्यायी के सूत्रों को मेरे लिए इस प्रकार याद करना सम्भव न होगा, कदाचित् ही उन का प्रयोग आवश्यक समय पर कर सकूँ। अत: मैंने पण्डित पूर्णानन्द जी की सम्मति न होते हुए भी एक अन्य पण्डित से संस्कृत की पुस्तकें पढ़ने का प्रबन्ध कर लिया।

इस प्रकार पठन-पाठन का क्रम चार पाँच सप्ताह चलता रहा। विद्यालय में मुझे ऊँची श्रेणियों के विद्यार्थियों से भी मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। उस समय के सबसे उच्च श्रेणी के विद्यार्थियों में महात्मा जी के दो पुत्र हरिश्चन्द्र तथा इन्द्र जी थे। स्वर्गीय प्रो० रामदेव जी से भी मेरा परिचय हो गया था। उनकी अनुमति से मैं गुरुकुल की वाग्वर्द्धिनी सभा की बैठकों में भी भाग लेता रहा। मेरा निवास गुरुकुल की धर्मशाला में था। पं० पूर्णानन्द जी आदि भी वहीं रहते थे। उसी में वजीराबाद निवासी पं० काशीराम जी का निवास था। वे गुरुकुल के प्रबन्ध-कार्यों में सहायता करते थे। उनके पुत्र जयचन्द्र जी भी सबसे उच्च श्रेणी में पढ़ते थे। उनसे भी मिलने का अवसर हुआ।

अब ग्रीष्मावकाश की समाप्ति में केवल ३–४ सप्ताह शेष रह गये थे। मैंने अपने एक सहपाठी गंगाविशन जी से यह कहा हुआ था कि गुरुकुल से लौटते समय मैं अम्बाले में उनके पास ठहरूँगा और कालेज का कार्य इकट्ठे ही करेंगे। यह इसलिए भी आवश्यक था कि उस मित्र की यह प्रबल इच्छा थी कि मैं कुछ समय उसके पास ठहरकर उसकी

इस विषय में सहायता करूँ। मैं इसे स्वीकार कर चुका था। इसके अनुसार मैं गुरुकुल से उसी समय लौट पड़ा। मार्ग में अम्बाला नगर के स्टेशन पर उतरा। मेरा मित्र मुझे वहाँ लेने भी आया हुआ था।

अभी पठन-पाठन का कार्य आरंभ भी न कर पाया था कि मुझे ज्वर ने आ दबाया। दूसरे दिन भी ज्वर का तापक्रम वैसा ही रहा। मैंने निश्चय किया कि मुझे वहाँ से चल देना चाहिए। इस पर मेरे मित्र ने मुझे गाड़ी पर बिठा दिया।

मार्ग में गर्मी की अधिकता से ज्वर का वेग बढ़ गया और इस अत्यन्त कष्ट की अवस्था में यात्रा अधिक दुःखद प्रतीत होने लगी। जैसे-तैसे मैं गुजरात पहुँचा और वहाँ से टाँगे में बैठ कर अपने ग्राम चला गया। मैं वहाँ दो सप्ताह बीमार रहा। घर वालों की देख-भाल व सेवा-शुश्रूषा से स्वस्थ हो गया। चलने फिरने से जो कष्ट होता था वह भी अब घट गया और शीघ्र ही अच्छा हो गया।

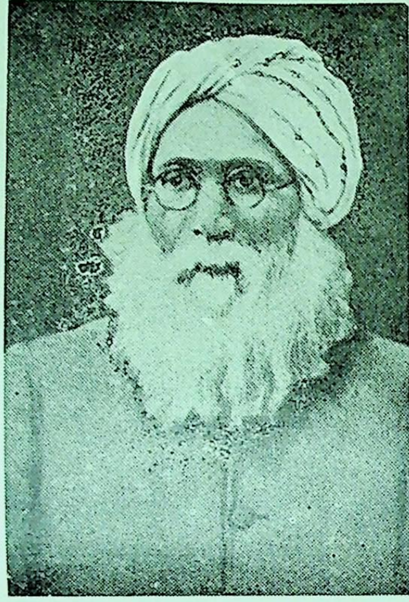
कालेज खुलने का समय निकट आ गया था। इसलिए मैं सितम्बर में लाहौर लौट आया और अपने अध्ययन में लग गया।

यहाँ यह लिख देना अनावश्यक न होगा कि मेरी आर्थिक अवस्था अच्छी न थी और न ही मैंने कालेज में प्रविष्ट होते समय अपने पिता जी से आर्थिक सहायता की आशा रखी थी। इसलिए नहीं कि वे देना नहीं चाहते थे अपितु इसलिए कि उनके पास साधन नहीं थे। मैंने अपने पर ही विश्वास रख कर कार्यारम्भ किया था। इसको दृष्टि में रख कर मैंने तप का जीवन आरंभ कर दिया। जब तक अवस्था न सुधरे, तब तक घी दूध-फल आदि सर्वथा न लेने का निश्चय कर लिया। अब रहा साधारण भोजन इसके लिए ऐसा प्रबन्ध किया कि जिससे एक दिन में एक आने से अधिक व्यय न हो। एक तन्दूर वाले से निश्चय किया कि एक आने में पाँच फुलके मिल जायें। तीन फुलके दिन में कालेज

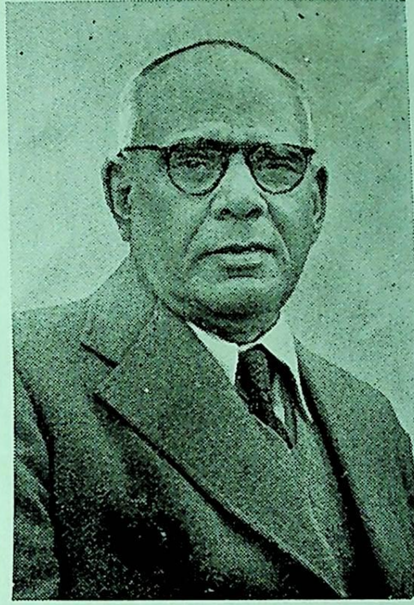
जाने से पूर्व और दो रात को खाने लगा। इससे मुझ में निर्बलता बढ़ने लगी। लाहौर का जल अनुकूल न होने से भोजन पचना कठिन हो गया। कब्ज आरंभ हो गई और पेट में विकार बढ़ गया।

डा० चिरंजीव भारद्वाज उच्च कोटि के चिकित्सक थे। प्रसिद्ध आर्य-समाजी भी थे, उनसे परामर्श लिया। मेरे रोग को देखकर उन्होंने इलाज आरंभ कर दिया। पर मेरे पास तो धन न था इसलिए उनके कथना-नुसार औषधियों का प्रयोग न कर सका। जब डा० भारद्वाज को ज्ञात हुआ कि धनाभाव के कारण मैं औषधियों का निरन्तर प्रयोग नहीं कर रहा हूँ तो उन्होंने यह कह कर मेरी कठिनाई दूर कर दी कि औष-धियों के मूल्य की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। मुझे सख्त कब्ज़ थी। उसके लिए वे एक औषधि के बाद दूसरी औषधि दे रहे थे परन्तु कब्ज न हटती थी। एक दिन ऐसी औषधि दी गई कि मुझे औषधालय में ही दस्त आने लगे और मैं वहीं बेहोश हो गया। मुझे यह स्मरण नहीं कि मुझे किसने साफ़ किया। उक्त डाक्टर महोदय अपनी गाड़ी पर बिठा कर मुझे डी०ए०वी० कालेज आश्रम में पहुँचा आये। मुझे वे प्रतिदिन देखने के लिए आते रहे। नियमित औषधि तब तक भेजते रहे जब तक कि मैं ठीक न हो गया।

अब मैंने अनुभव किया कि तप का रूप बदल देना चाहिए। शिक्षा-प्राप्ति के लिए परिश्रम करना आवश्यक है और परिश्रम के लिए शरीर में बल होना चाहिए और बल भोजन से प्राप्त होता है। अतः पर्याप्त मात्रा में भोजन लेना चाहिए। भोजन के लिए कोई न कोई काम करना आवश्यक है। इसकी पूर्ति के लिए मैंने विद्यार्थियों को पढ़ाना आरंभ कर दिया। ऐसा करने से मेरी यह समस्या हल हो गई। यह तो दिन का कार्यक्रम था परन्तु रात को पढ़ने के लिए प्रकाश की आवश्यकता थी। लैंप और तेल मेरे पास न थे। मेरे सहपाठी गंगाविशन जी बड़े



महात्मा हंस राज जी



डा० गोकल चन्द नारंग

इच्छुक थे कि मैं उनके साथ मेज पर पढ़ लिया करूँ। ऐसा ही कर लिया गया क्योंकि इससे हम दोनों को लाभ था।

कॉलेज में जिन शिक्षकों से पढ़ने का मुझे अवसर प्राप्त हुआ उनमें से प्रमुख नाम महात्मा हंसराज जी का है। वे हमें इतिहास पढ़ाते थे। उनके त्याग व तपस्या के जीवन तथा सुप्रबन्ध से उनका प्रभाव जनता पर तो था ही विद्यार्थियों पर भी कुछ कम न था। यहाँ तक कि कोई भी छात्र कभी उनकी श्रेणी में ऐसी बात न कर सकता था जिस पर उन्हें आपत्ति होती। गणित के शिक्षक थे प्रो० देवीदयाल जी। वे भी बड़े प्रभावशाली थे और उस समय विशेष व्यक्तित्व रखते थे। डा० गोकुल चन्द नारंग हमें अंग्रेजी पढ़ाते थे। वे प्रसिद्ध देशभक्त ला० लाजपत राय का अनुसरण करते थे और उच्च राष्ट्रीय विचारों के पोषक थे। हमें उन्होंने अंग्रेजी का एक उपन्यास "A Tale Of Two Cities" प्रसिद्ध उपन्यासकार डिकन्स विरचित इस विशेषता से पढ़ाया था कि उसमें वर्णित दृश्यों का विशिष्ट वायुमण्डल पैदा कर दिया था। वे अपने विद्यार्थियों को सर्वदा उन्नति करने के लिए प्रोत्साहित करते थे। श्री पं० आर्यमुनि जी हमें वैदिक-धर्म के शिक्षा-सम्बन्धी ग्रन्थ पढ़ाते थे, बड़े विद्वान् थे और छात्रों के सम्मुख प्राचीन वैदिक-सभ्यता का उच्च आदर्श उपस्थित कर देते थे। आर्य-जगत् में संस्कृत व वैदिक-साहित्य के क्रान्ति करने वालों में वे विशेष आदरणीय थे। मेरे दर्शन शास्त्र के प्राध्यापक थे प्रोफेसर दीवानचन्द। उनका व्यावहारिक जीवन बड़ा सरल था परन्तु वे एक उच्चकोटि के विचारक थे। वे अपने विषय को सीधी-सादी भाषा में समझाते थे। उनकी गम्भीरता एवं सरलता का मेरे जीवन पर विशेष प्रभाव पड़ा।

अपने उस समय के सहपाठियों में से मैं श्री अच्छूराम के विषय में तो पहले कुछ लिख ही चुका हूँ पर औरों के विषय में भी कुछ बता दूँ

तो मुझे ज्ञात हुआ कि वह सहायता हशमतराय जी द्वारा मिली थी परन्तु उन्होंने कभी इस ओर संकेत तक भी नहीं किया था।

पटियाला पहुँच कर मैं वहाँ कालेज के छात्रावास में ठहरा। वहाँ कालेज तथा छात्राश्रम-भवन बड़े भव्य थे। चारों ओर खुली वायु में भ्रमण करने के लिए विशाल मैदान थे। वहाँ एक बड़ा पुस्तकालय था और एक वाचनालय भी, जहाँ पुस्तकें और समाचार-पत्र पढ़ने का अच्छा अवसर मिल जाता था। कालेज के प्रोफेसर साधारणतया सुयोग्य व्यक्ति थे। श्री लाभसिंह, दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर बड़े विद्वान् और अपने विषय में पूर्णत: निपुण थे। बड़ी योग्यता से दर्शनों पर व्याख्यान देते थे। शेख अब्दुलगनी अंग्रेजी पढ़ाते थे और अपने विषय के अच्छे शिक्षक थे। मैं गणित तो न पढ़ता था पर गणित के प्रोफेसर श्री भगतराम जी का विशेष कृपापात्र था। श्री ईश्वरदास जी भी जो बाद में पंजाब-विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार बने, आकर वहाँ के स्टाफ में सम्मिलित हुए थे। उनको विद्यार्थियों से बड़ा हित था।

अभी कालेज में प्रविष्ट हुए बहुत देर न हुई थी कि पंजाब में ला० लाजपतराय जी और सरदार अजीतसिंह जी को उस समय की सरकार ने देश निकाला दे दिया। इससे जनता में बड़ा रोष फैला। जो विद्यार्थी इस आन्दोलन में भाग लेते थे, उनमें से एक मैं भी था। किसी ने प्रिंसिपल से गुप्त रीति से शिकायत कर दी कि जो विद्यार्थी इस हल-चल में भाग ले रहे हैं, उनके मुखिया शिवदयाल और मूलराज हैं। हमें प्रिंसिपल ने बुलाया और पूछताछ करके चेतावनी दी कि हम ऐसे आन्दोलनों में भाग न लें। शिवदयाल जी तो एक मास के बाद कालेज छोड़ गये पर मैंने ऐसा करना आवश्यक न समझा।

आर्यसमाज से तो मुझे प्रेम था ही। मैंने लाहौर के समान यहाँ भी पटियाला आर्यसमाज के सत्संगों में जाना आरम्भ कर दिया। मेरे

एक मित्र श्री शिवदास भी मेरे साथ ही सत्संगों में उपस्थित हुआ करते थे। उनके और अन्य मित्रों के परामर्श से यह निश्चय किया गया कि स्थानीय आर्यसमाज से अनुमति लेकर एक आर्य-कुमार-सभा की स्थापना की जाय। थोड़े ही दिनों में आर्यकुमार-सभा के लिये नवयुवकों में उत्साह बढ़ गया और जो सदस्य बने उनका एक अधिवेशन निर्वाचन के लिए बुलाया गया। आर्यसमाज की अन्तरंग सभा की ओर से मास्टर लक्ष्मणदास जी बी० ए० सभापति के कार्य के लिये नियुक्त किये गये। निर्वाचन के परिणामस्वरूप उक्त मास्टर जी प्रधान, मैं मंत्री और शिवदास जी उपमंत्री चुने गये।

लाहौर आर्य-कुमार-सभा में मैंने इससे पूर्व दो वर्ष कार्य किया था और अन्य कार्यकर्त्ताओं से बहुत कुछ सीखा भी था। उसको दृष्टि में रखते हुए मैंने आर्य-कुमार-सभा के अधिवेशनों के कार्यक्रम को रोचक तथा उपयोगी बनाने की ओर विशेष ध्यान दिया। योग्य व्यक्तियों के व्याख्यानों के प्रबन्ध के अतिरिक्त समय-समय पर वादविवाद की आयोजना भी करते रहे। इसमें नवयुवकों ने अच्छी संख्या में भाग लेना प्रारम्भ किया और आर्यसमाज के सत्संगों में भी एक विशेषता आ गई। अगले वर्ष अर्थात् सन् १९०८ में दूसरी वार निर्वाचन हुआ। इस वार भी मैं मंत्री और रामजीदास जी उपमंत्री चुने गये। इस वर्ष श्री रामजीदास ने बड़े उत्साह से कार्य किया। इससे मेरा भार बहुत कुछ हल्का हो गया। गत वर्ष की भाँति व्याख्यानों और वादविवादों का प्रबन्ध होता रहा। कालेज के विद्यार्थियों में आर्यसमाज के प्रति विशेष प्रेम-भाव और उत्साह उत्पन्न हुआ।

प्रथम वर्ष की समाप्तिपर जब वार्षिक परीक्षा का परिणाम निकला तो दो विषयों में प्रथम रहने से पारितोषिक वितरणोत्सव पर मुझे दो पारितोषक प्राप्त हुए। बी० ए० के दूसरे वर्ष के लिए कालेज की ओर से एक छात्रवृत्ति भी मिल गई जिस से मेरी आर्थिक चिन्ताएँ घट गईं और मैं अपने अध्ययन में अधिक ध्यान देने के योग्य होगया।

१६०७ के ग्रीष्मावकाश में मैं अपने मित्र बाशीराम जी के पास जिला झंग में इसहाबा बंगला नामक स्थान पर गया। वे वहाँ नहर विभाग में ओवरसियर बनकर गये थे। हमने वहाँ नहर के किनारे पर भ्रमण से बड़ा आनन्द प्राप्त किया। उनके पास वहाँ दो तीन गायें भी थीं। उनके मधुर दुग्ध की स्मृति अब तक बनी हुई है। वैसा स्वादिष्ट दूध मुझे स्मरण नहीं आता कि अपने अब तक के जीवन में कहीं अन्यत्र पिया हो। श्री जगन्नाथ थापर भी उन दिनों वहाँ आये थे। वहाँ हमने घोड़ों की सवारी भी की। हमें इसका अभ्यास तो था नहीं। अभ्यास न होने से उनके चलाने में बड़ी कठिनाई होती थी। वहाँ से नहर की पटरी २ रेल के स्टेशन तक गये।

वहाँ से रेल गाड़ी द्वारा हम मुलतान छावनी चले गये और अपने मित्र डा० सत्यपाल के यहाँ ठहरे। उनके पिता श्री मनीराम जी रेलवे-कार्यालय में अध्यक्ष थे। उनके भी दर्शन हुए। डा०सत्यपाल की धर्मपत्नी श्रीमती ज्ञानदेवी ने बड़े प्रेम भाव से हमारा आतिथ्य किया। अगले वर्ष डा०सत्यपाल सरकारी मेडिकल विभाग में लायलपुर कार्य करते थे। मैं ग्रीष्मावकाश में उस समय भी उनके पास एक सप्ताह के लिए गया था। उन दिनों वर्षा बहुत अधिक हुई। रेलवे लाइन कई स्थानों पर टूट गई। गाड़ी से लौटना अब कठिन हो गया। गाड़ियाँ चलने में अभी विलम्ब था और अधिक ठहरना उचित न समझ कर मैंने पैदल जाने का निश्चय कर लिया। सामान भी थोड़ा ही था। जिस स्टेशन पर गाड़ी मिलती वहाँ उस में बैठ जाता। जहाँ गाड़ी न जाती रेल की पटड़ी-पटड़ी पैदल चला जाता। इस प्रकार उस दिन २६ मील पैदल यात्रा की। लाहौर पहुँचा तो मैं थक कर चूर हो गया था। लाहौर से रेल द्वारा अगली प्रातः गुजरात होते हुए अपने ग्राम में जा पहुँचा।

पटियाला-कालेज के पुस्तकालय व वाचनालय से मैंने पर्याप्त लाभ उठाया। समाचार-पत्रों में मैं ट्रिब्यून अवश्य पढ़ता था। विद्यार्थियों में उन

दिनों अभी समाचार-पत्र पढ़ने का शौक न था। जो थोड़े से विद्यार्थी वहाँ आते थे, उनमें से जिस व्यक्ति ने मेरा ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया वे थे मेरे सहपाठी सरदार सादूर्लसिंह कवीश्वर। वे खेलों में बढ़-चढ़ कर भाग लेते थे और ऐसा प्रतीत होता था कि कभी कालेज की पढ़ाई की ओर ध्यान नहीं देते। पर वे थे बड़े प्रतिभाशाली। जब समाचार पढ़ते हुए मेरी उनसे बातचीत हुई तो मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि वे राष्ट्रीयता के पोषक हैं। उस समय वहाँ का वातावरण ऐसा दूषित था कि मुझे यह विश्वास होना कठिन था कि उनके विचार वास्तव में वही थे। परन्तु जब आगे जाकर उन्होंने देश और जाति के उत्थान में भाग लिया तो मुझे विशेष प्रसन्नता हुई।

मार्च १६०६ में पंजाब विश्वविद्यालय की बी. ए. की परीक्षा हुई। मैं परीक्षा से निवृत होकर अपने ग्राम को चला गया।



१४—विवाह और उसके पश्चात्

एक स्थान पर मैंने पहले संकेत कर दिया है कि मेरा विवाह शादीवाल में हुआ था। मेरी धर्मपत्नी का नाम लक्ष्मी देवी था। वे गोरोवाड़ा वंश के सरदार कश्मीरासिंह की पुत्री थीं। विवाह १८ मई १८९९ ई० तदनुसार ५ ज्येष्ठ १९५६ विक्रमी को हुआ था। उस समय मैं नौवीं कक्षा में पढ़ता था।

सरदार कश्मीरासिंह के दो बड़े भाई सरदार भक्तसिंह और सरदार जगतसिंह थे। सरदार भक्तसिंह और उनके पुत्र हीरासिंह की युवावस्था में ही मृत्यु हो गई थी। सरदार जगतसिंह चिरकाल तक जीवित रहे। उनका लक्ष्मी जी से अत्यन्त स्नेह था। वे विशेषकर वाणिज्य करते थे। उनकी धर्मपत्नी गुरुदेवी जी बड़ी परिश्रमशीला और मधुर-स्वभाव-युक्त देवी थीं। कदाचित् उनके स्वभाव का लक्ष्मी जी पर विशेष प्रभाव पड़ा हो।

सरदार जगतसिंह के पुत्र बूड़सिंह जी लक्ष्मी जी से डेढ़ वर्ष छोटे थे। वे दोनों बहन-भाई बचपन में एक साथ खेले थे। इन दोनों में परस्पर बड़ा स्नेह था। लक्ष्मी जी उन्हें सगे भाई के समान मानती थीं और वे भी इन्हें सगी बहन से बढ़कर जानते रहे।

विवाह के तीन वर्ष पीछे शादीवाल में प्लेग पड़ी जिस में लक्ष्मी जी के माता-पिता चल बसे। थोड़े दिनों के पीछे इनकी ताई भी परलोक सिधार गईं।

लक्ष्मी जी को बचपन में कोई विशेष शिक्षा न मिली थी। केवल गुरुमुखी की प्रारम्भिक शिक्षा ही दी गई थी। उस समय कन्याओं को पढ़ाना लिखाना आवश्यक न समझा जाता था। पर वह गृह कार्यों में दक्ष थीं जिससे उन्हें आगामी जीवन में बड़ी सहायता मिली और वे एक सफल गृहिणी बनीं।

लक्ष्मी जी की तीन बहनें और थीं। दो इनसे बड़ी थीं। उनका नाम मथुरादेवी जी और मायादेवी जी था और सब से छोटी बहन शिवदेवी थीं।

गृहस्थ का आरम्भ–१९०१ में ऐण्ट्रेंस पास करके मैंने डाक-विभाग में काम करना आरम्भ कर दिया। इस सम्बन्ध में मुझे कई स्थानों में जाकर रहने का अवसर हुआ। उस समय लक्ष्मी जी या तो अपने माता-पिता के यहाँ शादीवाल में रहती थीं या मेरे माता-पिता के पास इस्लाम गढ़ में। उनके माता-पिता के देहान्त के दो तीन मास बाद २७ जुलाई १९०३ को मैं जेहलम से बदल कर अपने ग्राम जाने के लिए गुजरात टाँगों के अड्डे पर खड़ा था कि उनके एक सम्बन्धी चतुरसिंह जी घोड़े पर बिठाकर उन्हें ले आये। मैं लक्ष्मी जी को अपने साथ अपने घर टांगे पर ले गया। विवाह के पश्चात् यह पहला अवसर था जब हमने एक दूसरे से वार्तालाप किया।

मैं जलालपुरजट्टाँ के डाकघर में तीन मास से अधिक रहा। उन दिनों हमें एक दूसरे को जानने का अधिक अवसर मिला। नवम्बर के आरम्भ में मुझे फिर कार्यवश १९०४ के अक्तूबर तक शेखूपुरा और जेहलम में क्रमशः रहना पड़ा। १५ अक्तूबर को वहाँ से बदल कर सरगोधे गया। मेरे जाने के एक सप्ताह पीछे मेरी भुआ जी ने मेरी धर्मपत्नी को मेरे पास सरगोधे भेज दिया जहाँ पहली बार हम घर से बाहर एक साथ रहे।

सरगोधे में रहते हुए जब मैंने नौकरी छोड़ने तथा उच्च शिक्षा प्राप्त करने का निश्चय किया तो लक्ष्मी जी ने मेरे मार्ग में बाधक बनने के स्थान पर मुझे उत्साहित किया। इस प्रकार मैं जनवरी १९०५ में लाहौर चला गया और वह इस्लामगढ़ जाकर रहने लगीं।

जून १९०५ में मैंने डी० ए० वी० कालेज लाहौर में प्रवेश किया। १९०७ में एफ० ए० में उत्तीर्ण होकर मैं बी० ए० करने के लिए महेन्द्र कालेज पटियाला चला गया। वहाँ से प्रथम वर्ष में अपनी बहन कृपादेवी के विवाह पर मैं एक सप्ताह के लिए इस्लामगढ़ गया। उस विवाह कार्य में लक्ष्मी जी ने विशेष भाग लिया।

———

१५—शिक्षा-क्षेत्र में

पहले चार वर्ष

मुलतान में—मार्च १९०९ में परीक्षा देकर अपने ग्राम चला गया। वहाँ से मई मास में मैं अमृतसर डा० सत्यपाल के पास गया। दो दिन के पश्चात् ही मुलतान छावनी से उनके एक मित्र का तार आया। वहाँ के एक स्कूल में मुख्याध्यापक की आवश्यकता थी। यह डा० सत्यपाल ने मुझे बताया। मुझे कोई आपत्ति तो थी नहीं अतः मैंने 'हाँ' करदी। इस पर उन्होंने तार द्वारा स्वीकृति भेज दी। दूसरी ओर से स्वीकृति आने पर मैं मुलतान चला गया और स्कूल का चार्ज ले लिया।

बी० ए० पास करने के पश्चात् पढ़ाने का यह पहला ही अवसर था। मुझे इस कार्य में रुचि तो थी ही, अतः उत्साह और परिश्रम से मैं कार्य करने लगा। ऐण्ट्रेंस के पश्चात् भी कुछ मास मैंने जलालपुरजट्टाँ के स्कूल में अध्यापन कार्य में लगाये थे। इससे मेरी रुचि तो वहाँ ही इस कार्य में हो गई थी पर उससे जो अनुभव हुआ था वह भी बड़ा सहायक सिद्ध हुआ। अब मैं केवल पढ़ाने में ही नहीं अपितु प्रबन्ध के कामों में भी पर्याप्त ध्यान देने लगा जिससे स्कूल शनैः शनैः उन्नत होता लगा।

मेरा ध्यान उस स्कूल में कार्य करते हुए विद्यार्थियों की सर्वतो-मुखी उन्नति की ओर था। जहाँ उनको शिक्षा की दृष्टि से आगे बढ़ाने का यत्न करता, वहाँ उनकी शारीरिक तथा मानसिक उन्नति की ओर भी पर्याप्त ध्यान देता था। यह बात भी मैं सदा सन्मुख रखता था कि साथ-साथ वे सामाजिक उन्नति भी करते रहें और उनका मस्तिष्क

अपने समाज के प्रति उदासीन न रहे। इससे ऊँची श्रेणियों के विद्यार्थियों के प्रति मुझ में अतीव स्नेह हो गया।

प्रबन्ध और नियन्त्रण मेरे लिए नये विषय थे। इनमें मुझे कुछ कठिनाई अनुभव हुई। स्कूल के द्वितीय अध्यापक बड़े अनुभवी थे। वे वर्षों से वहाँ काम कर रहे थे। विद्यार्थियों के संरक्षकों और स्कूल के अधिकारियों से उनका परिचय भी था। वे सम्मान के कुछ अधिक इच्छुक थे। वे चाहते थे कि स्कूल के अध्यापक ही नहीं अपितु मुख्याध्यापक भी उनका प्रभाव मानें और कोई भी कार्य उनकी अनुमति लिए विना न हो। अन्य अध्यापक इस को अच्छा नहीं समझते थे। वे उनसे डरते तो थे पर मेरे पास उनकी शिकायत भी करते थे। मैंने सरल रीति से उनको एक दो बार सुझाया कि वे अपने व्यवहार में अधिक उदारता लायें पर इसका प्रभाव हुआ विपरीत। उन्होंने मेरे विरुद्ध भी अधिकारी वर्ग के कान भरने आरम्भ कर दिये।

एक बार मैंने एक अध्यापक के वेतन में वृद्धि करवा दी। मेरा अभिप्राय यह था कि इससे अच्छे अध्यापकों को प्रोत्साहन मिलेगा। पर उन महाशय ने इसको और ही रंग में उपस्थित किया और अधिकारियों से कहना प्रारंभ कर दिया कि ऐसा करने से स्कूल का धन नष्ट हो जायगा।

कुछ अन्य अध्यापकों से इसके विरुद्ध पत्र भी लिखवाये। इसका परिणाम यह हुआ कि उस अध्यापक की वेतन-वृद्धि रुक गई। मुझे इस बात से बड़ा दुःख हुआ। इससे मेरे मन में वह स्थान छोड़ देने का विचार पैदा हो गया।

छोड़ने का अवसर शीघ्र ही हाथ आ गया। नवम्बर के अन्तिम सप्ताह में आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर मैं लाहौर गया हुआ था। एक दिन प्रातः की कार्यवाही के उपरान्त मैं अपने मित्र हशमतराय जी के

साथ गवर्नमेंट कालेज की ओर जा रहा था, वहाँ उनकी ओर से मैं भोजनार्थ निमन्त्रित था। मार्ग में उनके एक और मित्र भी साथ हो लिये। उनके साथ वार्तालाप प्रारम्भ हुआ तो उन्होंने जिक्र किया कि जालन्धर के विक्टर-हाई-स्कूल के लिए एक ऐसे मुख्याध्यापक की आवश्यकता है जो दृढ़ आर्य-समाजी हो। हशमतराय जी ने मेरी ओर संकेत कर दिया। वह सज्जन मुझ से कहने लगे, "यदि आप वहाँ आ जायें तो हमें बड़ी प्रसन्नता होगी।" मैंने कहा कि यदि वहाँ का वातावरण आर्यसमाज के अनुकूल हो तो मुझे वहाँ आने में कोई आपत्ति नहीं। वे बड़े प्रसन्न हुए और कहने लगे कि मैं वहाँ जाकर आपको पत्र भिजवा दूँगा। ऐसा ही हुआ, दिसम्बर के प्रथम सप्ताह में ही जब मैं मुलतान पहुँचा तो मुझे पत्र मिल गया। मैंने स्कूल छोड़ने की बात चीत आरम्भ कर दी और इसके फलस्वरूप १४ दिसम्बर को चार्ज दे दिया।

गुरुकुल मुलतान—अमृतसर में डा० सत्यपाल को जिस सज्जन ने तार दिया था उनका नाम था श्री मदनलाल। वे मुलतान छावनी में फोटोग्राफर थे। दृढ़ आर्यसमाजी थे पर स्थानीय आर्यसमाज में बहुत कम भाग लेते थे। छावनी से कोई ६ मील पर डेराबुद्दू नामक एक ग्राम था। वहाँ एक गुरुकुल खोला गया था जिसके लिए भूमि चौधरी रामकृष्ण ने दान दी थी। मदनलाल जी उस गुरुकुल की कार्य कारिणी समिति के मंत्री थे। उनके कहने पर मैंने भी वहाँ आना-जाना प्रारंभ कर दिया। शीघ्र ही मुझे गुरुकुल का शिक्षा-निरीक्षक नियत कर दिया गया और प्रबन्ध सम्बन्धी कार्यों में भी मेरा परामर्श लिया जाने लगा। अतः मुझे महीने में दो तीन वार वहाँ जाना पड़ता था। यद्यपि यह स्थान ६-७ मील की दूरी पर था परन्तु आने-जाने के लिए मदनलाल जी का ताँगा था। अतः कोई कठिनाई न होती थी। वे भी प्रायः मेरे साथ आया-जाया करते थे।

मेरे मुलतान छोड़ने के पश्चात् गुरुकुल वहाँ से हटाकर मुलतान के निकट एक और स्थान सूर्यकुण्ड पर लाना पड़ा क्योंकि प्रबन्धकर्त्ताओं का चौधरी रामकृष्ण से कुछ मतभेद हो गया था।

मुलतान आर्यसमाज के सत्संगों पर भी मुझे जाने का अवसर मिलता रहता था। समाज के प्रधान पं० श्रीकृष्ण जी से मेरा परिचय हो गया और उनके पुत्र शोभानन्द जी तथा विष्णुदत्त जी से मेरी घनिष्ठता बढ़ गई। मेरे बचपन के एक मित्र और सहपाठी श्री अर्जुनदास भी वहीं पर आर्यसमाज के अधिकारी थे। उनके कारण और भी बहुत से आर्य-पुरुषों से मेल जोल हो गया। इन कारणों से तथा मुख्याध्यापक होने के नाते मेरा परिचय-क्षेत्र विस्तृत हो गया।

निवास—मुलतान में जाकर पहले मैं श्री मदनलाल जी के पास ठहरा। कुछ दिनों के पश्चात् मेरी धर्मपत्नी भी वहाँ आ गईं। तब मैंने अपने लिए अलग मकान ले लिया। मैं जब वहाँ गया था तो मई का प्रारम्भ था। गर्मी शुरू हो गई थी। परन्तु जैसे जैसे दिन बीतते थे, गर्मी बढ़ती जा रही थी। दोपहर के समय सारा मकान तप जाता था और शरीर भुनने लगता था। सोना तक असंभव हो जाता था। दो तीन बार स्नान करने की आवश्यकता अनुभव होती थी। सायं ६ बजे गर्मी का कोप कुछ कम होता तो आँधी चलने लगती थी जिससे भ्रमण के लिए जाना भी कठिन हो जाता। रातें निःसन्देह ठंडी होती थीं।

अगस्त के आरंभ में छुट्टियाँ हुईं तो मैं अपनी धर्मपत्नी सहित अपने ग्राम चला गया। अवकाश के अधिक दिन ग्राम में ही बिताये। सितम्बर के मध्य में अवकाश समाप्त होने पर मुलतान लौट गया। इस बार मेरे परिवार के साथ मेरी बहन कृपादेवी भी गईं। भेरा के ऐञ्जिनीयर श्री सीताराम साहनी उन दिनों मुलतान में थे। उन्होंने मुझे अपनी पुत्री विद्यावती जी को घर पर पढ़ाने के लिए कहा। मैंने स्वीकार कर लिया। हमारे रहने की व्यवस्था उनकी कोठी के एक

भाग में ही हो गई। इसके पश्चात् १४ दिसम्बर पद त्याग करने तक वहीं रहा। मुलतान छोड़कर जालन्धर जाते समय मैं परिवार को तुरन्त साथ न ले जा सका क्योंकि दस दिन पूर्व मेरे घर एक पुत्री का जन्म हुआ था अतः दस दिन तक मेरे परिवार के सब व्यक्ति मेरे मित्र श्री अर्जुनदास के घर पर ही ठहरे रहे।

जालंधर में—१५ दिसम्बर १९०९ को जालन्धर पहुँच कर मैंने विक्टर हाई स्कूल का चार्ज ले लिया और कार्य आरंभ कर दिया। थोड़े दिनों बाद बड़े दिनों की छुट्टियाँ हो गईं। मैं इन छुट्टियों में लाहौर चला गया। वहाँ मैं अपने मित्र श्री जगन्नाथ थापर के पास ठहरा। उन्हीं दिनों लाहौर काँग्रेस का अधिवेशन हो रहा था। मैं दर्शक रूप में इसमें सम्मिलित हुआ। महामना मदनमोहन मालवीय इसके अध्यक्ष थे। किन्हीं कारणों से वे अपना भाषण पहले से न लिख पाए थे। मैंने देखा कि उन्होंने वहीं बैठे बैठे उसका कुछ अंश लिखा। उनके बोलने का समय आया तो कुछ तो वह पढ़ दिया और शेष बातें तत्काल बिना लिखे ही कहीं। इस पर भी उनके व्याख्यान में बल और प्रभाव था। उनकी भाषा में प्रवाह और शैली में ओज था। सुनने वालों के हृदय पर प्रत्येक शब्द और प्रत्येक भाव अंकित होता जाता था। मेरी धर्मपत्नी और बहन कृपादेवी भी मुलतान से उन्हीं दिनों लाहौर आगईं। लाहौर में उन दिनों एक प्रदर्शनी भी हो रही थी। मैं उनको अपने साथ उसे दिखाने ले गया। उनको लाहौर के दर्शनीय स्थान महाराजा रणजीत सिंह की समाधि, गुरु अर्जुनदेव जी का गुरुद्वारा डेरासाहिब, शालामार बाग, जहाँगीर और नूरजहाँ के मकबरे भी दिखाये। अवकाश समाप्त होने से पूर्व उन्हें अपने ग्राम भेज कर मैं जालन्धर लौट गया।

विक्टर स्कूल के उसी गृह में मेरा भी निवास था जहाँ पर कुछ वर्ष पहले आचार्य रामदेव रह चुके थे। इस समय स्कूल के द्वितीय अध्यापक श्री सुखदयाल भी स्कूल में ही रहते थे। वे दृढ़ आर्यसमाजी थे और

दोनों काल सन्ध्या हवन करते थे। मैं भी उनके साथ सम्मिलित होने लगा और आर्य-समाज के सत्संगों में भी जाना प्रारम्भ कर दिया।

स्कूल के प्रबन्धक श्री नारायण दास जी वकील थे। वे आर्यसमाज के प्रधान थे। आर्य-पुत्री पाठशाला का प्रबन्ध भी उनके ही अधीन था। वे वड़े विचारशील और अनुभवी थे। उनके सुप्रबन्ध और संचालन से मैंने बहुत कुछ सीखा। उनकी ही प्रेरणा पर मैंने आर्यसमाज तथा आर्य-पुत्री पाठशाला के कामों में अधिक भाग लेना प्रारंभ किया। कुछ समयोपरान्त आर्यसमाज का निर्वाचन हुआ तो मुझे मंत्री चुना गया। पुत्री पाठशाला का कार्यभार भी मेरे कन्धों पर आ गया।

१९१० मार्च में मैंने पहली बार विद्यार्थियों को मैट्रिक परीक्षा के लिये तैयार करके भेजा। उनमें दो के नाम उल्लेखनीय हैं। वे हैं श्री नेमतराय तथा श्री ठाकुरदास। इन दोनों ने पश्चात् उच्च सरकारी पद प्राप्त किये। इसी श्रेणी में श्री नारायणदास जी का पुत्र श्री विश्वम्भर-दयाल भी पढ़ता था। मैंने उसे उस वर्ष परीक्षा के लिए भेजना उचित न समझा क्योंकि उसकी आयु अभी छोटी थी। मैंने यह विचार उसके पिता के सम्मुख रखा तो वे शीघ्र ही सहमत हो गये। उनकी इस उदार भावना से मैं बड़ा प्रभावित हुआ।

ग्रीष्मावकाश हुआ तो मैं अपने ग्राम इस्लामगढ़ चला गया। वहाँ से लौटा तो मेरी धर्मपत्नी तथा दादी जी मेरे साथ आ गईं। हम स्कूलगृह में ही आकर ठहरे। मुझे तो यह स्थान अच्छा लगता था पर उन दोनों के लिए यह एक प्रकार से ऐकान्त स्थान था। बातचीत करने व मिलने जुलने के लिए आसपास कोई दूसरी स्त्री न थी। अतः उनके आग्रह पर सदरबाजार में निवास की व्यवस्था की गई। हम आर्य समाज के उस समय के पुराने सभासद पं० इन्द्रजीत के मकान के एक भाग में रहने लगे। तीन चार मास वहाँ रहने के पश्चात् हमें एक और स्थान मिल गया और हम उसमें चले गये। वहाँ गये थोड़ी ही देर



जालन्धर छावनी में (१९१० ई०)

हुई थी कि रावलपिंडी से मेरी धर्मपत्नी की बहन मायादेवी जी के देहान्त का समाचार मिला। लक्ष्मी जी तुरन्त ही रावलपिंडी चली गईं। वे लगभग दो सप्ताह के बाद लौटीं। मार्ग में सरदी अधिक थी। मेरी पुत्री सुशीला को निमोनिया हो गया। इससे २८ दिसम्बर को उसकी मृत्यु हो गई। यह हमारी प्रथम सन्तान थी। उसकी मृत्यु से हम सबको दुःख होना स्वाभाविक ही था। मेरी धर्मपत्नी को यहाँ रहना अब अच्छा न लगता था। अतः हमने इसके पश्चात् उस मकान को छोड़ दिया और पुनः स्कूलगृह में आकर रहने लगे। यह स्थान मेरी दृष्टि से तो पहले भी अच्छा था। खुला स्थान था, निर्मल वायु पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध थी। भ्रमण आदि के लिये उद्यान भी था। वहाँ रहते हुए स्कूल के कार्यों में भी अधिक ध्यान दिया जा सकता था। ऐसा ही किया भी गया। इससे स्कूल सम्बन्धी कार्यों में पर्याप्त उन्नति हुई।

पुत्री-पाठशाला और आर्यसमाज के कामों में अब मैंने अधिक समय देना आरम्भ कर दिया। पाठशाला के कार्य में तो मेरी धर्मपत्नी भी मेरा हाथ बटाने लगीं। इन्हीं दिनों मैं और श्री नारायणदास जी जालन्धर आर्यसमाज की ओर से आर्य प्रतिनिधि-सभा-पंजाब के लिये प्रतिनिधि चुने गये और हम ने लाहौर जाकर साधारण अधिवेशन में भाग लिया।

१९११ में जिन विद्यार्थियों ने स्कूल से मैट्रिक पास किया उनमें से दो के नाम मुझे इस समय स्मरण हैं। एक तो थे जगतसिंह जी, जो बाद में खालसा कालेज अमृतसर में पदार्थ-विज्ञान (Physics) के प्रोफेसर हुए। दूसरे थे विश्वंभरदास जी, जिन्होंने आगे चलकर व्यापार-क्षेत्र में बहुत उन्नति की। मेरे भाई दौलतराम जी भी उन दिनों वहीं पढ़ते थे। बाद में वे अपने घर के निकट डायमंड-जुबिली हाईस्कूल वजीराबाद में चले गये थे।

१९१२ का परीक्षा-फल बड़ा सन्तोष-जनक रहा। एक विद्यार्थी को छात्रवृत्ति भी मिली। उसका नाम था फ़ज़लुद्दीन। पश्चात् उसने सरकार के वायुयान-विभाग में बड़ा उच्च स्थान प्राप्त किया। इस समय भी पाकिस्तान के रक्षा-विभाग में एक ऊँचे पद पर है। एक और विद्यार्थी मुकुन्दलालजी



बाईं ओर से—मेरी धर्मपत्नी पुत्र व्यास सहित, देशराज, मैं, मेरी बहन दो बच्चों सहित

भी अच्छे अंक लेकर प्रथम डिवीज़न में उत्तीर्ण हुए। पश्चात् वे अध्यापन कार्य में लग गये और एक सफल अध्यापक सिद्ध हुए।

नवम्बर १६११ में हमारे यहाँ एक बालक का जन्म हुआ। उसका नाम वेदव्यास रखा गया। इस अवसर पर मेरे ग्राम से परिवार के अन्य लोग भी वहाँ पहुँचे। वे सब लोग अगस्त तक वहीं रहे। ग्रीष्मावकाश प्रारम्भ होने पर हम सब इकट्ठे ग्राम चले गये। इस बीच में यह निश्चय हो गया कि मैं उसी वर्ष अक्टूबर मास में ट्रेनिंग कालेज में प्रविष्ट हो जाऊँ। अवकाश के पश्चात् जालन्धर लौट आया। ३० सितम्बर तक स्कूल में काम करके उसी दिन सायं लाहौर चला गया।

————

१६—ट्रेनिंग कालेज में

बी. टी. की शिक्षा

प्रवेश—जैसा कि मैं लिख आया हूँ मैं ३० सितम्बर को काम समाप्त करके जालन्धर से लाहौर चला गया। मेरा निश्चय ट्रेनिंग कालेज में प्रवेश करने का था। वहाँ प्रवेश प्राप्त करने से पूर्व विद्यार्थियों को प्रवेश-समिति के समक्ष उपस्थित होना पड़ता था। इस समिति में कालेज के प्रिंसिपल, वाइस-प्रिंसिपल तथा एक और प्रोफेसर होते थे। वे प्रवेशार्थी से कुछ समय वार्तालाप करके उसकी योग्यता का परिचय प्राप्त करते थे। इस भेंट के समय कपड़ों आदि का विशेष ध्यान रखा जाता था। यह भी देखा जाता था कि विद्यार्थी ने सूट ठीक पहना है या नहीं। बूट साफ सुथरा है अथवा टाई आदि का ढंग ठीक है या नहीं?

मैंने अब तक टाई कभी नहीं बाँधी थी। इस समय नियम-पालन की दृष्टि से प्रथम बार इसका प्रयोग किया। मेरे एक मित्र ने भेंट से पूर्व अपनी टाई मुझे बाँध दी। प्रवेश-समिति से निवृत होकर लौटा तो मैंने वह उतार कर उसे दे दी।

कालेज का जीवन—ट्रेनिंग कालेज के विद्यार्थियों के लिए छात्रा-वास में रहना अनिवार्य था, अतः मैं भी वहीं रहने लगा। वहाँ का अनुशासन अन्य कालेजों के समान उदार न था अपितु स्कूलों की भाँति बड़ा कठोर था। कदाचित् यह इस लिए भी हो कि आगे चलकर उन्हें इस प्रकार का नियन्त्रण रखना आवश्यक होगा। कालेज में ठीक दस बजे उपस्थित होना पड़ता था। व्यायाम करना भी प्रत्येक छात्र के लिए

आवश्यक था। अन्य कालेजों में जो स्वच्छन्दता विद्यार्थियों को होती है वह यहाँ पर न थी। घर के लिए काम दिया जाता था और वह प्रतिदिन करके दिखाना होता था।

कालेज के उन दिनों प्रिंसिपल श्री एच० टी० नोल्टन थे। वे बड़े उच्चकोटि के शिक्षक माने जाते थे। उनके अनुशासन की चारों ओर धाक थी। वाइस-प्रिंसिपल थे श्री ई० टाइडमैन। कुछ दिनों पश्चात् श्री नोल्टन चले गये। उनके स्थान पर करनल डब्ल्यू० टी० राइट आये। पर वे भी कुछ देर के बाद चले गये और श्री टाइडमैन प्रिंसिपल हो गये

कालेज में एक साहित्य-परिषद थी। मुझे उसका मंत्री चुना गया। जब तक मैं बी० टी० में पढ़ता रहा, यह काम मेरे ही पास रहा। नोलटन साहब मुझ से बड़े प्रसन्न थे। जब वे जोधपुर जाने लगे तो हमने उनको साहित्य-परिषद की ओर से एक प्रीतिभोज दिया। उसके पश्चात् फोटो लिया गया।

बहुत से विद्यार्थियों ने उनसे प्रशंसा पत्र लिये। मैं भी उनसे मिलने के लिए गया। मुझ से उन्होंने कहा कि यदि तुम सरकारी नौकरी करना चाहो तो मैं तुम्हारी सहायता कर सकता हूँ। मैंने उनका धन्यवाद किया और कहा कि जब कभी आवश्यकता होगी तो पत्र द्वारा निवेदन कर दूँगा। मैंने ऐसा उत्तर इस लिए दिया क्योंकि मेरे मन में विदेशी सरकार के अधीन काम करने के विरुद्ध भावना पैदा हो चुकी थी।

आर्य कुमार सभा—अक्तूबर १६१२ में जब मैं लाहौर पहुँचा तो कुछ मित्र मेरे पास आये। उन्होंने अनुरोध किया कि मैं आर्यकुमार सभा का कार्य सम्भालूँ। पहले तो मैं कुछ झिझका, पर फिर उनके आग्रह पर सहमत हो गया। अधिकारियों का चुनाव हुआ तो मुझे मंत्री चुना गया। इस वर्ष आर्य-कुमार सभा के कार्य-क्रम में खेलों के

भी सम्मिलित कर लिया गया। इससे कालेजों के विद्यार्थियों के लिए और भी आकर्षण बढ़ गया। इस विभाग के मंत्री श्री रोशनलाल बैरिस्टर के सुपुत्र श्री चुन्नीलाल हुए। इस सभा के प्रधान थे श्री अलखधारी और संयुक्त मंत्री थे दीनानाथजी। सभा में व्याख्यान देने के लिए, हम उस समय के प्रमुख व्यक्तियों, श्री शादीलाल, एम०ए०, बैरिस्टर जो बाद में लाहौर हाई कोर्ट के चीफ-जस्टिस बने तथा श्री मनोहरलाल, ऐम०ए०, बैरिस्टर जो बाद में पंजाब-सरकार के शिक्षा-मंत्री और वित्त मंत्री रहे, और श्री द्वारकादास जी एडवोकेट जो एक उच्चकोटि के विचारक थे और डी० ए० वी० कालेज के स्तंभ समझे जाते थे, इत्यादि को बुलाया करते थे।

एक दुःखद घटना—छात्रावास में मेरे निकट श्री प्रभुदयाल, श्री दौलतराम और श्री अवधविहारी रहते थे। हम लोग पढ़ने के लिए कभी गोल-बाग में, कभी लारैंसबाग में जाया करते थे। एक दिन हमने सुना कि गत रात्रि को लारैंस बाग में बम फट गया है। इस सिलसिले में बहुत से लोगों का नाम लिया जाने लगा। श्री रासविहारी वसु का नाम तो सब लेते ही थे। मेरे साथ रहने वाले श्री अवधविहारी और आर्यकुमार सभा के संयुक्तमंत्री श्रीदीनानाथ भी पकड़े गये।

कालेज से चले जाने के पश्चात् मुझे ज्ञात हुआ कि दीनानाथ भी उस षड्यंत्र में सम्मिलित थे और उन्होंने पुलिस के सम्मुख सब भाँडा फोड़ दिया था, अभियाग चला तो मुझे भी बुलाया गया। मैंने बयान दिया कि मैंने कभी भी इन दोनों को सरकार विरोधी बातचीत करते नहीं सुना। पर इससे कुछ लाभ न हुआ और श्री अवधविहारी को फाँसी हो गई। वे बड़े विचारशील, स्थिरचित्त और गंभीर व्यक्ति थे, देश-भक्ति और देश-प्रेम उनमें कूट-कूट कर भरा हुआ था। शिक्षा-कार्य में वे बड़े निपुण थे और सदा सब का हित चाहते थे।

एक मित्र का विवाह—मार्च १९१३ में मेरे मित्र बाशीराम जी का विवाह हुआ। इस सम्बन्ध में मेरा बहुत सा हाथ था। गत वर्ष मेरा श्री बद्रीप्रसाद वर्मा रोपड़ निवासी से पत्र व्यवहार होता रहा था। बात पक्की होने से पूर्व कन्या को देखने और उसके माता-पिता से मिलने के लिए मैं ही रोपड़ गया था। वर पक्ष की ओर से विवाह की तैयारी गुजरात में उनकी भावज को ही करनी थी क्योंकि बाशीराम जी की माता का देहान्त बहुत छोटी आयु में हो चुका था। उनका हाथ बटाने के लिए मेरी धर्मपत्नी लक्ष्मी जी अपने ग्राम से गुजरात आ गईं।

बारात में सम्मिलित होने के लिए मैं गुजरात तो न पहुँच सका अपितु मार्ग में लाहौर से सम्मिलित हो गया। विवाह वैदिक-रीत्यनुसार सम्पन्न हुआ। और लोग तो इससे बहुत प्रसन्न थे परन्तु बाशीराम जी के ताऊ के पुत्र श्री दामोदरदास जी बड़े क्रुद्ध हुए। वे रिटायर्ड सूबेदार थे। अगले दिन हम जब बारात के डेरे में बैठे हुए थे तो उन्होंने कहा, "हमारी परंपरा के अनुसार कन्या को वरपक्ष के बड़े बूढ़ों के सम्मुख मुँह नंगा नहीं करना चाहिए था। मूलराज ने मुँह नंगा रखवा कर हमें कलंकित कर दिया है। अब हम किसी को मुँह दिखाने के योग्य नहीं रहे। मैं तो जीने की अपेक्षा मर जाना अच्छा समझता हूँ। परन्तु मरने से पहले मूलराज को अवश्य मार दूँगा।" यह कह कर उन्होंने अपनी तलवार उठाई और मुझ पर वार करना ही चाहते थे कि बाशीराम जी के बड़े भाई निहालचन्द जी ने उनका हाथ पकड़ लिया और उन्हें बैठा दिया।

तीसरे दिन बारात लौट पड़ी, मार्ग में मैं लाहौर उतर गया क्योंकि कालेज में उपस्थिति आवश्यक थी।

पुत्र का देहान्त—इसके दो तीन दिन के बाद ही मुझे घर से पत्र मिला कि मेरा पुत्र वेदव्यास बीमार है। वह विवाह के दिनों में गुजरात

में ही बीमार हो गया था। जलालपुर जट्टाँ में उसको इलाज के लिए ले जाया गया। इसके दूसरे ही दिन उसका देहान्त हो गया। मैं अवकाश लेकर घर गया और दो दिन बाद वहाँ से लाहौर लौट आया।

मैंने अनुभव किया कि मेरी धर्मपत्नी पुत्र-वियोग से बहुत शोकातुर है। घर के अन्य लोग भी बहुत दुःखी थे। इससे उनका क्लेश कम होता दिखाई न देता था, इस वातावरण से पृथक् करने की दृष्टि से मैंने उनको लाहौर बुला लिया। मेरा छोटा भाई देशराज भी साथ ही आया। थोड़े दिनों के पश्चात् मेरी बुआ जी का पुत्र हुकूमत राय भी वहीं मेरे पास आ गया।

कालेज के प्रिंसिपल से विशेष आज्ञा प्राप्त करके मैं दाई-भोली की गली में मकान लेकर रहने लगा। अपने दोनों भाइयों को मैंने डी० ए० वी० हाई स्कूल में प्रविष्ट करवा दिया। हमारे मकान में ही आर्य-समाज के पुराने कार्य-कर्ता श्री जीन्दाराम जी रहते थे। उनके प्रेम-मय व्यवहार के कारण हमें वहाँ किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होती थी। उसी मकान के एक भाग में स्वर्गीय आचार्य रामदेव जी के माता पिता और उनकी विधवा बहन भी रहती थीं। इसके अतिरिक्त वह स्थान आर्यसमाज वच्छोवाली के बहुत ही समीप था, इससे रविवार के सत्संग में सम्मिलित होना सुगम हो गया।

लाहौर में रहते हुए इस समय मुझे वेदों के प्रसिद्ध विद्वान् और आर्य-समाज के प्रमुख व्याख्याता श्रीपाद् दामोदर सातवलेकर जी से मिलने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा। आर्यसमाज वच्छोवाली में उनके व्याख्यान प्रायः होते ही थे। आर्यकुमारसभा में भी हमने उनके कुछ व्याख्यान करवाये। इस प्रकार मुझे उनके निकट-संपर्क में आने का अवसर मिला और इससे मुझे बड़ा लाभ हुआ।



बी० टी० परीक्षा के अन्तिम दिवस पर लाहौर में (१३ जून १९

१९१३ के जून मास में बी० टी० की परीक्षा समाप्त हो गई। परिवार के लोग पहिले ही वहाँ से जालन्धर जाने के लिए उत्सुक थे। हम दूसरे ही दिन १४ जून को सायंकाल से पूर्व जालन्धर जा पहुँचे।

पुनः जालन्धर में—मैं बी०टी० के लिए जाते हुए स्कूल का चार्ज श्री गोपाल जी बी० ए० को दे गया था। लौट कर उनसे चार्ज ले लिया और पूर्ववत् मुख्याध्यापक रूप में कार्य करना आरम्भ कर दिया। श्री गोपाल जी ने इस कार्य को बड़ी उत्तमता से निभाया था।

मैंने अपने शिक्षण-कार्य को अब और भी उन्नत करने का यत्न किया। बी० टी० के पश्चात् जो उच्च विचार और आदर्श अपने साथ लाया था उन्हें क्रियात्मक रूप देने की ओर पर्याप्त ध्यान दिया। पर नई प्रणाली स्थापित करने में बड़ी कठिनाई हुई, क्योंकि अध्यापक अभी ट्रेण्ड न थे। शनैः शनैः मैं उन्हें ऐसे ढंग पर ले आया जिससे काम भली-भाँति चल निकला। इस से जहाँ स्कूल के अध्यक्ष श्री नारायण दास जी को प्रसन्नता हुई वहाँ सरकारी शिक्षा-विभाग के निरीक्षक भी प्रसन्न रहने लगे। जनता में स्कूल की उन्नति सम्बन्धी चर्चा दिन प्रति-दिन बढ़ने लगी। पहले एक ही कोठी में स्कूल का शिक्षण कार्य चलता था, अब सड़क से दूसरी ओर भी भवन-निर्माण का कार्य आरम्भ हो गया और नये कमरे बनवा लिये गये।

मुझे पूर्ववत् अब फिर आर्यसमाज और आर्य-पुत्री पाठशाला का मंत्री निर्वाचित किया गया। मैंने अब समाज सम्बन्धी कार्य की ओर अधिक ध्यान देना आरम्भ कर दिया। इसमें भी मुझे पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई। जालन्धर लौटने के आठ मास पीछे ७ फरवरी १९१४ को हमारे यहाँ एक बालक का जन्म हुआ जिसका नाम सत्यव्रत रखा गया।

इसी वर्ष मुझे श्री बालमुकुन्द जी सूरी से पहिली बार मिलने का अवसर हुआ। जब उनसे आर्य समाज के सम्बन्ध में वार्तालाप हुआ तो उन्होंने इसके प्रति प्रेम प्रकट किया और आश्वासन दिलाया कि आर्य-समाज के साप्ताहिक सत्संगों में सम्मिलित हुआ करेंगे। मेरी प्रेरणा पर उन्होंने सत्यार्थ-प्रकाश पढ़ना आरम्भ कर दिया। हम एक दूसरे के घरों में भी जाकर प्रेमपूर्वक मिलते थे। जब कभी हम उन्हें हवनादि के अवसरों पर बुलाते तो वे सहर्ष सम्मिलित होते, उनका परिवार भी आता। इसी प्रकार मैं भी सपरिवार उनके घर जाकर हवनादि में सम्मिलित होता। इस प्रकार हमारी घनिष्टता बढ़ गई। परस्पर मेल-जोल आना-जाना इतना बढ़ गया कि जब १९१६ में मैंने अपना कार्य क्षेत्र बदला तो लक्ष्मी जी अपने भाँजे देशराज को उनके पास ही छोड गईं। वह अभी विक्टर स्कूल में पढ़ता था, उसकी परीक्षा निकट थी अतः उसका वहाँ रहना आवश्यक समझा गया।

इन्हीं दिनों एक और नवयुवक ने जालन्धर आकर अपना कार्य आरम्भ किया। वे थे डाक्टर रामनाथ चोपड़ा। जब डाक्टर सत्यपाल मेडिकल कालेज लाहौर में थे तब ये भी वहाँ शिक्षा पाते थे। एक बार कालेज में विद्यार्थियों की हड़ताल हुई। उसमें इन्होंने भी भाग लिया। मैं उसी समय से इनको जानता था। जालन्धर आने पर इनसे परिचय और भी बढ़ गया। शनैः शनैः ये आर्य-समाज और स्कूल के कार्यों में भाग लेने लगे। मेरी धर्मपत्नी भी आर्य-समाज में जाती आती थीं। इनकी धर्मपत्नी भी उनके साथ कार्य करने लगीं। कुछ ही वर्षों में इन्होंने समाज और स्कूल में अच्छा स्थान बना लिया।

परिवर्तन की ओर—बी. टी. करके मैं विक्टर हाई स्कूल जालन्धर में प्रधान अध्यापक के पद पर कार्य कर रहा था। एक दिन मेरे पास अपने कार्यालय में एक पुस्तक प्रकाशन संस्था के प्रतिनिधि अपने कार्य के लिए बैठे थे कि इसी समय मेरे पास एक अंग्रेज़ महोदय

ने अपना परिचय-पत्र भेजा। उस समय की प्रचलित प्रथा के अनुसार तो चाहिए था कि एक भारतीय को छोड़ कर उस अंग्रेज़ से अवश्य मिलता परन्तु वर्षों से प्रवृत्ति यह हो चुकी थी कि किसी विदेशी को भारतवासी से अधिक ऊँचा नहीं समझना चाहिए। इस समय तो मैंने उसकी उपेक्षा की दृष्टि से तो नहीं प्रत्युत शिष्टाचार की भावना से उचित समझा कि आये हुए व्यक्ति की सुविधा का ध्यान रखा जाय। इसी दृष्टि से मैंने उस समय उस व्यक्ति के लिए बैठने को कुर्सी भिजवा दी और कहला भेजा कि जिस व्यक्ति से इस समय वार्तालाप कर रहा हूँ उससे निवृत्त होने पर मैं उनसे मिल सकूँगा। इस पर अंग्रेज़ महोदय ने कहला भेजा कि यदि अब समय न हो तो वे कल आ सकते हैं। उन्हें मैंने इस प्रश्न का उत्तर 'हाँ' में दिया और उनकी प्रार्थना पर डाक-बँगले तक पहुँचाने के लिए अपना सेवक उनके साथ भेज दिया।

अगले दिन प्रातः वे दस बजे स्कूल मुझसे पुनः मिले कुछ वार्तालाप के पश्चात् उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या मैं कोई पुस्तक लेखन का कार्य करना चाहूँगा ? मैंने उत्तर 'हाँ' में दिया। इसके पश्चात् वार्तालाप करते हुए वे बोले कि क्या मैं किसी पुस्तक प्रकाशक के लिए ऐसा कार्य करना चाहूँगा जिससे उनको मैं शिक्षा सम्बन्धी पुस्तक-प्रकाशन के सम्बन्ध में परामर्श देता रहूँ। पहले तो मुझे संकोच सा हुआ पर फिर मैंने कहा कि मैं इस पर विचार कर सकता हूं यदि उसकी अन्य बातें अनुकूल हों। उन्होंने मुझे वेतन आदि के विषय में सारी सूचना देदी जिसे मैंने स-धन्यवाद अस्वीकार कर दिया।

ये महानुभाव थे श्री ई० मार्सडन, बी० ए०, आई० ई० ऐस०, ऐम० आर० ए० ऐस०, ऐफ़० आर० जी० ऐस० जो कभी मद्रास में इंस्पेक्टर आव स्कूल्स रह चुके थे और उस समय मैकमिलन कम्पनी के प्रमुख प्रतिनिधि के रूप में कार्य कर रहे थे। उन्होंने मुझे यह भी बताया कि सेंट्रल

ट्रेनिंग कालेज लाहौर के उस समय के प्रिंसिपल के द्वारा ही उनको मेरा परिचय मिला था और उसी परिचय के आधार पर वे मुझसे मिलने आये थे।

मेरे 'ना' कर देने पर श्री मार्सडन ने पुनः प्रिंसिपल महोदय से इस विषय में परामर्श किया और उन्होंने अगले वर्ष के एक और विद्यार्थी का नाम दिया। इनका नाम था श्री गुरुचरणलाल सेठी। उन्होंने इस पद को स्वीकार कर लिया किन्तु वर्ष भर भी काम न कर पाये थे कि उन्हें यह अनुभव हुआ कि वह कार्य बड़ा कठिन है। वे अगले वर्ष इस कार्य से पृथक् भी हो गये। इस समय श्री मार्सडन ने मुझे पुनः सूचित किया कि यदि सारी सुविधाएं मेरे अनुकूल हो जायें तब उस अवस्था में क्या मैं इस पद को स्वीकार कर सकता हूँ। इस बार मैंने उत्तर 'हाँ' में दिया। १९१५ की दिसम्बर मास में मुझे बम्बई बुलाया गया।

बम्बई में प्रथमबार—सूचना मिलने पर मैंने बम्बई जाने की तैयारी की। मैं पहली वार ही वहाँ जा रहा था। बम्बई नगर की विशालता व प्रसिद्धि अभी तक केवल पढ़ी और सुनी थी। एक लम्बी यात्रा के पश्चात् मैं बम्बई के विक्टोरिया टर्मिनस स्टेशन पर पहुँचा। यहीं लाहौर से चल कर आने वाली रेलवे-लाइन समाप्त होती है। यह स्टेशन बड़ा विशाल है और इसके भव्य भवन मन को आकर्षित कर लेते हैं। यहाँ से मैं बाहर आकर बम्बई में सुप्रसिद्ध 'सरदार गृह' होटल में जाकर ठहरा। इसके नाम से तो मैं पहले से ही परिचित था। मैं समाचार पत्रों मे पढ़ा करता था कि लोकमान्य तिलक बम्बई आकर 'सरदार गृह' होटल में ठहरे हैं। इससे इस होटल के प्रति मुझे पहले से ही आकर्षण हो गया था। यहाँ मुझे ठहरने के लिए एक स्वच्छ और सुन्दर कमरा मिल गया। यहाँ शौच, स्नान आदि के लिए भी अच्छा प्रबन्ध था। भोजन आदि की भी बड़ी प्रशंसा सुनी थी।

जब भोजन का समय हुआ तो मेरे लिए एक बड़े थाल में भोजन परोस कर लाया गया। थाल में आठ दस कटोरियाँ सुसज्जित थीं। एक में कच्चा घी था, दूसरी में दही और तीसरी में मीठा था। तीन चार दालें और दो तीन सबजियाँ रखी थीं। चावल भी थे और नमक, मिर्च, खटाई आदि सभी आवश्यक वस्तुएँ रखी गई थीं, फुलके भी थे पर नरम और ठण्डे। भोजन के इस विशाल आयोजन को देखकर भूख बढ जानी चाहिए थी पर इसके विपरीत उसे देखकर मुझे अरुचि सी हो गई।

मैंने सर्व प्रथम दालों का आस्वादन किया पर मुझे वे नीरस और बेस्वादु प्रतीत हुई। दही अत्यन्त खट्टा था। सब्ज़ियाँ दालों से भी गई बीती थीं। मुझे याद नहीं आता कि कभी कच्चा घी मैंने खाया हो। लाल मिर्च, दाल, सबजियों को स्वादिष्ट करने के लिए रखी होंगी पर इस प्रकार मैंने इनका कभी प्रयोग नहीं किया था। मैंने पेट भरने के लिए कुछ भोजन खाया तो अवश्य पर मेरा मन न भरा। विचार आया कि भोजन का प्रबन्ध अन्यत्र किया जाय तो उचित होगा, पर आशा हुई कि सायंकाल ठीक भोजन मिल जायेगा। पर रात को भी अनुकूल भोजन न प्राप्त हो सका। मुझे अब यह अनुभव हुआ कि यहाँ भोजन गुजरात व महाराष्ट्र निवासियों के अनुकूल बनाया जाता है। अतः यह समझ कर मुझे भोजन का प्रबन्ध अन्यत्र ही करना पड़ा।

वहाँ श्री मार्सडन से भेंट हुई। उन्होंने मेरा परिचय कम्पनी के अध्यक्ष श्री ऐफ० ई० फ्राँसिस से करवाया। अध्यक्ष महोदय ने मुझे नियुक्ति-पत्र देते हुए कहा कि मैं अपनी सुविधानुसार कार्य करना प्रारम्भ कर दूँ। हम दोनों परस्पर हुए वार्तालाप से पूर्णतया सन्तुष्ट थे।

बम्बई से जालन्धर लौटने के पश्चात् तीन मास तक मैं जालन्धर स्कूल में ही रहा। उसके उपरान्त जब मैं स्कूल-कार्य से मुक्त हो गया, तब मैंने कम्पनी का शिक्षा-सम्बन्धी कार्य प्रारम्भ कर दिया।

घर के सम्बन्ध में—इस बीच में अपने गृहस्थ के सम्बन्ध में कुछ बता देना अनुचित न होगा। मेरे गृहस्थ में मुझे मेरी धर्मपत्नी का सहयोग पूर्ण रूप से प्राप्त था। सारा उत्तरदायित्व वे पूर्ण रूप से निभा रही थीं। हमारे निकट सम्बन्धियों के यहाँ विवाहादि अवसरों पर मेरी धर्मपत्नी ही सम्मिलित हुआ करती थीं। तत्सम्बन्धी सारे आवश्यक कार्य अच्छी प्रकार चल रहे थे। १६१५ के जून मास में मेरी बुआ की पुत्री लक्ष्मीदेवी का विवाह साहोवाला में हुआ। इसी वर्ष ही मेरी बड़ी बहन की पुत्री का विवाह भी रावलपिंडी में सम्पन्न हुआ। इन अवसरों पर वे ही सम्मिलित हुई थीं।

बुआ वजीरदेवी के पुत्र डा० हुकूमतराय का विवाह १६१६ के दिसम्बर में ठिमका में हुआ। डाक्टर जी मेरे भाई होने के साथ-साथ मेरे शिष्य भी थे। नौवीं एवं दशमीं श्रेणी में मेरे पास ही जालन्धर में शिक्षा पाकर मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की थी। अतः उनसे विशेष घनिष्टता थी। इस कारण हमारा समस्त परिवार इस विवाह में सम्मिलित हुआ था। इस अवसर पर मेरा पुत्र सत्यव्रत बहुत बीमार हो गया। परन्तु बहुत कष्ट झेलने के बाद ईश्वर की कृपा से कुछ अच्छा हुआ तो उसे जलालपुर-जट्टाँ ले आये। वहाँ इसका विशेष ध्यान रखकर उपचार कराया गया और वह कुछ दिनों में स्वस्थ हो गया।

———

मेरे संस्मरण

द्वितीय खण्ड

मेरे संस्मरण

द्वितीय खंड

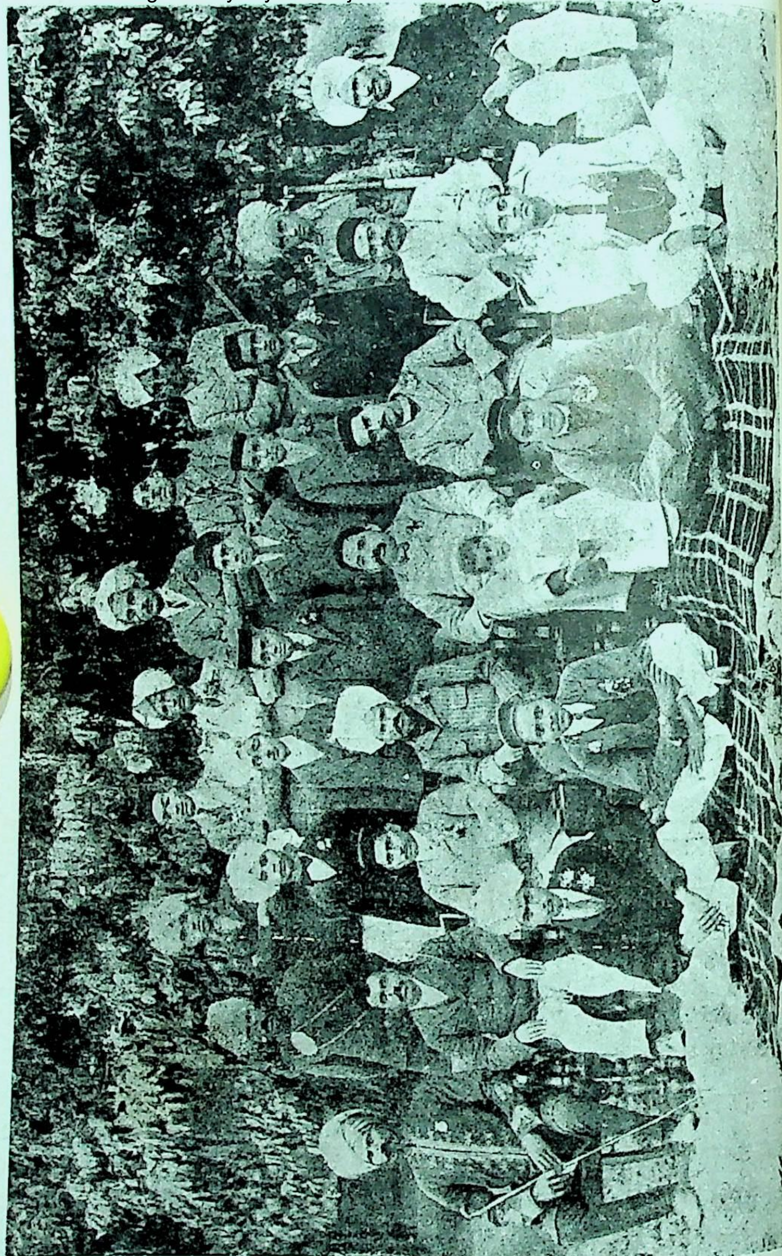


आर्य समाज जालन्धर छावनी की ओर से १९१६ में लाहौर जाने से पूर्व

१—पर्वतीय यात्राओं का आरम्भ

क्षेत्र-परिवर्तन

संक्रमण काल—मैं पूर्व अध्याय में अपने कार्य-परिवर्तन की ओर संकेत कर चुका हूँ। उस समय तक मेरा जीवन अध्ययन और अध्यापन करते हुए व्यतीत हो रहा था। डाक-विभाग के कार्य के पश्चात् मैंने कुछ वर्ष कालेज की शिक्षा में लगाये थे। बी० टी० करने का उद्देश्य तो यह था कि मैं अध्यापन कार्य में अधिक कुशलता प्राप्त करूँ। इसमें मेरी रुचि भी थी और यह इस लिए भी बढ़ रही थी कि एक तो इस कार्य में स्वाध्याय को समय मिल जाता था, दूसरा यह भी कि अध्ययन और अध्यापन कार्य में जो अनुभव मुझे प्राप्त हुए थे उनके अनुसार शिक्षा को उन्नत बनाने का अवसर प्राप्त हो रहा था। इसी दृष्टि-कोण से मैं अपने कार्य में संलग्न था।



विक्टर हाईस्कूल में रहते हुए अध्यापनकार्य में जो उन्नति करने का यत्न किया गया वह मैं पूर्व ही बता आया हूँ। यह कह देना अनावश्यक न होगा कि इस संस्था के विद्यार्थी प्रायः ग्रामों से आते थे। वे खेलों में विशेष भाग लेते थे। यहाँ खेलने के लिए पर्याप्त स्थान भी था और क्रिकेट, फुटबॉल तथा हाकी आदि खेलों का प्रबन्ध भी था। साधारणतः विद्यार्थी नियम-पूर्वक खेलते थे। ग्रामीण होने के कारण वे स्वस्थ तो थे ही पर स्फूर्ति तथा परिश्रमशीलता भी उनमें पर्याप्त थी। फुटबॉल और हॉकी के तो वे बहुत अच्छे खिलाड़ी थे और प्रतियोगिताओं में भी वे बाज़ी ले जाते थे।

जालन्धर से प्रस्थान—मैंने स्कूल कार्य से १९१९ के आरम्भ में ही त्याग पत्र दे दिया था पर अवकाश न प्राप्त कर सका था। मैंने यह निश्चय कर लिया था कि मार्च के पश्चात् वहाँ काम न करूँगा।

जालन्धर की जनता तथा आर्यसमाज के सदस्यों ने मेरा जाना निश्चित समझकर एक दिन प्रीतिभोज का आयोजन किया। सर्वसाधारण, धनीमानी तथा शिक्षित-वर्ग सभी उसमें सम्मिलित हुए।

इस अवसर पर अन्यों के अतिरिक्त श्री नारायणदास वकील, पं० इन्द्रजीत, श्री आशानन्द, मा० रामचन्द, डा० रामनाथ, श्री मेहरचन्द्र वडेहरा तथा अन्य कई सज्जन उपस्थित थे।

स्कूल में भी उस समय अध्यापक-वर्ग तथा उच्च श्रेणियों के विद्यार्थियों ने कुछ सभायें कीं और अपनी-अपनी कक्षाओं में मेरे प्रति सम्मान प्रकट किया।

मेरी यात्राओं का आरम्भ—कार्यक्षेत्र-परिवर्तन के कारण मेरे जीवन में एक नये अध्याय का आरम्भ हुआ। १९१९ के आरम्भ से ही मैंने यात्राओं और भ्रमणों का कार्य आरम्भ कर दिया क्योंकि अपने कार्य के लिए मुझे विभिन्न शिक्षा-सम्बन्धी संस्थाओं के अधिकारियों एवं कार्यकर्ताओं से मिलने के लिए कई स्थानों पर जाना पड़ता था।



इससे कई नये दर्शनीय स्थानों को देखने के अवसर भी होते थे। पर्वतीय स्थानों पर भी जाना होता था जो जलवायु की दृष्टि से स्वास्थ्यप्रद थे नगरों में ऐतिहासिक स्थान देखने को मिलते थे और सुदूरवर्ती स्थानों पर लोगों का रहन-सहन, सामाजिक व्यवस्था आदि ज्ञात होती थी। समुद्र के निकट के स्थानों पर भी जाता था जो न केवल देखने योग्य होते थे अपितु जहाँ पर भ्रमण से जीवन में नवीनता की झलक भी आती थी। १९१६ की गर्मियों में मैंने डलहौज़ी, चम्बा और काश्मीर तीन पर्वतीय स्थान देखे।

डलहौज़ी—सन् १९१६ में सवप्रथम डलहौज़ी गया। वहाँ मेरी धर्म-पत्नी और पुत्र सत्यव्रत भी साथ थे। वहाँ पर अपने परिचित श्री गोविन्द राम के पास ठहरे। वे मेरे एक शिष्य हरिश्चन्द्र के पिता थे और सपरि-वार वहाँ रहते थे। हम एक सप्ताह तक प्रातः सायं शुद्ध-शीतल-वायु में भ्रमण करके वहाँ प्राकृतिक दृश्यों का लाभ उठाते रहे।

चम्बा— डलहौज़ी से दो दिन के लिये मैं चम्बा भी गया। वह स्थान वहाँ से १९ मील की दूरी पर है। इसके निकट ही रावी नदी अपने पर्वतीय भाग में पूरे वेग से प्रवाहित होती है। डलहौज़ी से मैंने अपना सामान एक टट्टू पर लाद लिया। मैं स्वयं पैदल चलकर वहाँ पहुँचा। पहले कुछ मील तक चढ़ाई चढ़नी पड़ी और फिर एकदम उतराई आ गई। मुझे सारा दिन चलने से अधिक थकावट हो गई। मार्ग में एक विशाल हरे-भरे सम-तल भाग के दर्शन हुए। उसे खिजार कहते हैं। यहाँ पानी की एक छोटी सी झील है। इसी के साथ एक छोटी सी बस्ती है। निकट ही एक डाक-बँगला है। थोड़ी देर वहाँ विश्राम किया और फिर चम्बा पहुँच कर मैं अपने मित्र श्री विष्णुदत्त पुरी के पास ठहरा। वे वहाँ राजकीय स्कूल में सहायक-प्रधान-अध्यापक थे। उनके छोटे भाई श्री विश्वम्भरदत्त भी उसी स्कूल में पढ़ाते थे।



ये दोनों भाई भी मेरे साथ भ्रमणार्थ चम्बा और समीपवर्तीय स्थानों पर जाते रहे। मैंने वहाँ के रमणीय दृश्य देखे। नगर में प्रवेश करते ही एक हरी-भरी घास का विस्तृत मैदान है। इसे चौगान कहते हैं। इस मैदान से चम्बा की शोभा कई गुणी अधिक प्रतीत होती है। यहाँ सायं को अच्छी रौनक़ हो जाती है। मैं जब तक रहा इस मैदान में भ्रमण के लिये जाता रहा। यहाँ का अद्भुतालय भी देखा। पर्वतीय प्रान्त के इस अद्भुतालय से कई विशेष बातों की जानकारी होती थी। यहाँ बहुत पुरानी वस्तुएँ भी रखी थीं जिन से इस नगरी के प्राचीन चम्बा साम्राज्य का गौरव स्मरण हो आता था।

यहाँ का रहन-सहन पंजाब से मिलता जुलता है। वेश भूषा में भी कुछ अधिक भेद नहीं है। यहाँ के मन्दिरों से पता चलता है कि वे शैव मन्दिरों के समान हैं। दक्षिण भारत में भी इस प्रकार के मन्दिर मिलते हैं। इससे पता चलता है कि यहाँ का राजवंश शैवमतानुयायी था।

चम्बा से लौट कर जाने में चढ़ाई चढ़नी पड़ी। मार्ग में देवदार के विशाल जंगल दूर-दूर तक फैले हुए थे। देवदार और चीड़ के बड़े २ वृक्ष अपनी अद्भुत शोभा धारण कर रहे थे।

काश्मीर में प्रथम बार—डलहौजी और चम्बा से लौट आने पर अगस्त में काश्मीर जाने का विचार हुआ। एक दिन रात की गाड़ी में लाहौर से चला और अगली प्रातः रावलपिंडी पहुँचा। वहाँ एक दिन ठहरना आवश्यक प्रतीत हुआ जिससे कि काश्मीर के लिए सवारी का प्रबन्ध कर लिया जाय।

उन दिनों काश्मीर को लोग साधारणतया कम ही जाते थे। मोटर-लारियों का तो केवल नाम ही प्रचलित हुआ था। काश्मीर जाने के लिये उस समय दो प्रकार के साधन व्यवहार में लाये जाते थे। एक पैदल, दूसरे टाँगे द्वारा। पैदल जाने वाले लोग सामान के लिए

टट्टू या खच्चर किराये पर ले लेते थे या अपना सामान मजदूरों द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते थे।

मैं यद्यपि पैदल यात्रा करने की बड़ी प्रशंसा सुनता था तो भी मुझे ऐसा करने का साहस न हुआ। कुछ लोग घोड़ों पर भी सवारी करते थे और कई व्यक्ति स्त्रियों के लिए पालकी का भी प्रबन्ध कर लेते थे। किन्तु सर्वसाधारण ऐसा नहीं कर सकते थे और पैदल भ्रमण करना ही उचित समझते थे। इसमें व्यय भी थोड़ा होता था।

दूसरा साधन यात्रार्थ टाँगे थे। वे भी दो प्रकार के थे। एक तो वे थे जो दो दिन में पहुँचा देते थे। उन टाँगों के घोड़े हर पड़ाव पर बदलते रहते थे। इनके किराये की मात्रा भी बहुत अधिक होती थी। इसका प्रबन्ध भी कई दिन पूर्व से ही करना होता था। मेरी यह पहली यात्रा होने से इस से पूर्व यहाँ का मुझे ज्ञान न था। इसी कारण डाक के टाँगे का कोई प्रबन्ध न हो सकता था। दूसरे साधारण किराये के टाँगे भी थे। वे पाँच दिन में श्रीनगर पहुँचाते थे। एक टाँगे का किराया ३०) और ४०) रुपये के बीच में होता था। मैंने एक टाँगा ३५ रुपये को किया। मार्ग में दो तीन स्थानों पर टोल व अन्य कर यात्रियों को देने पड़ते थे, वे इस से अतिरिक्त थे।

टाँगे प्रायः सायंकाल चलते थे। क्योंकि इस समय गर्मी कुछ कम हो जाती थी। प्रायः लोग गर्मियों में ही काश्मीर भ्रमण करने के लिए जाते थे। मेरा टाँगा सायंकाल के समय चला। मार्ग में ५-६ मील पर पड़ाव आ जाता था। उन पड़ावों पर खाने पीने के लिए दूध के अतिरिक्त और कोई पदार्थ न मिलता था। चाय की तो उन दिनों कोई प्रथा ही न थी। डाकबंगले के सिवा कोई ऐसा स्थान न था जहाँ चाय मिलती हो। रात के साढ़े ग्यारह बजे मेरा टाँगा छत्तर के पड़ाव पर पहुँचा, मैं तो इससे बहुत पहले से ही टाँगे में सो गया था। उस समय मुझे ऐसा प्रतीत होता था कि मानों रात्रि समाप्त होने को है किन्तु उस पड़ाव

पर जब पहुँचे तब ज्ञात हुआ कि अभी तो १२ ही बजे हैं। उस समय वहाँ यात्री अपना भोजन खा-पका ही रहे थे। मैं समीप के एक भोजनालय में गया और जो कुछ अपने अनुकूल मिला वही खा लिया।

दो बजे के पश्चात् फिर टाँगे चल पड़े। रात्रि को सभी टाँगे सड़क पर इस प्रकार चल रहे थे मानों कोई बारात जारही हो या कोई काफिला। जहाँ पर चढ़ाई आती थी वहाँ पर सवारियाँ उतार दी जाती थीं। सवारियाँ पैदल चल कर चोटी पर पहुँचतीं और जब सड़क समतल अथवा ढालू आती फिर टाँगे में बैठ जातीं। मैं अपने टाँगे में अकेला ही था अतः मुझको बार बार टाँगे से न उतरना पड़ा। सूर्योदय के पश्चात् मरी के पास सन्नीबैंक पहुँचे। वहाँ पर शौच स्नानादि से निवृत्त हुआ। यहाँ पर कोई अल्पाहार के योग्य खाने का पदार्थ न था अतः आगे चलने के लिये पुनः टाँगे पर बैठ गया। कोई एक मील की दूरी पर मरी पर्वत पर एक ऐसा स्थान आया जहाँ बड़ा शीत अनुभव हुआ, इसका कारण यह था कि वहाँ बहुत अधिक वर्षा हुई थी। वैसे यह स्थान अन्य स्थानों की अपेक्षा अधिक उँचाई पर भी है। वहाँ से चल कर आगे उतराई आजाती है। कोहाला नगर पर हम को पुल पार करना पड़ा। यह नगर जेहलम नदी पर स्थित है। यात्रियों को पुल पार करने के लिए टैक्स देना होता था। इस से दूसरी ओर जम्मू-काश्मीर राज्य आरम्भ हो जाता था। पुल पार करने के पश्चात् बीस-बाईस मील की दूरी पर दोमेल पहुँचा और डाक बँगले में ठहरा। स्थान तो यह बड़ा स्वच्छ था लेकिन यहाँ पर मच्छर अधिक थे। सारी रात करवटें बदलते बदलते व्यतीत करनी पड़ी।

प्रातः उठकर आवश्यक कार्यों से निवृत्त हुआ। हमारा टाँगा चुँगीघर (Customs Barrier) के पास ठहरा। यहाँ पर सभी यात्रियों का सामान देखा जाता था, जिससे चुँगी का सामान बिना कर दिये आगे न जासके। इसी कार्य में यहाँ ग्यारह बज गये। वहाँ से

छुटकारा पाने पर टाँगा ३ घण्टे तक चलता रहा। दो बजे के लगभग एक पड़ाव पर ठहर कर भोजन किया और ४ बजे सायं में उड़ी पहुँचा अब यह काश्मीर राज्य की सीमा का अन्तिम स्थान है। यहाँ पर खाने की सभी आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध थीं। रात इसी स्थान पर आराम से व्यतीत की।

अगली प्रातः मैं यहाँ से चल दिया। सायं तक चलता रहा। रात्रि भी बहुत कुछ मार्ग ही में कटी। दूसरे दिन सायंकाल बारामूला जा पहुँचा। वहाँ डाक बंगले में निवास किया। यह स्थान जेहलम नदी के तट पर है। नदी में मैंने नौका-विहार किया। डाक बंगले में भोजन का उत्तम प्रबन्ध था किन्तु यहाँ मच्छर बहुसंख्या में विद्यमान थे। रात किसी प्रकार व्यतीत की और प्रातः टाँगे में बैठकर चल पड़ा। अब श्रीनगर निकट ही था। दोपहर के लगभग वहाँ पहुँच गया। श्रीनगर पहुँच कर अपने मित्र डाक्टर कुलभूषण के यहाँ ठहरा। इन के विषय में पूर्व ही बता चुका हूँ कि हम १९०५ और १९०७ के बीच आर्यकुमार सभा लाहौर में एक साथ काम करते रहे थे। मैं उस समय डी. ए. वी. कालेज में और वे मेडिकल कालेज में शिक्षा पाते थे। वहाँ से वे विदेश गये जहाँ से डाक्टरी की उच्च शिक्षा प्राप्त करके जब लौटे तो श्रीनगर में स्वास्थ्य विभाग के एक उच्चाधिकारी नियुक्त हुए। उस समय श्रीनगर में कोई अच्छा होटल न था। मेरे लिए काश्मीर जाने का भी यह प्रथम ही अवसर था। इस कारण यह ज्ञात न था कि निवास आदि के लिए कहाँ और कैसे प्रबन्ध करना होगा। डाक्टर जी के यहाँ ठहरने से मुझे सब सुविधायें मिल गईं। उन्होंने एक अलग कमरा रहने को दे दिया जहाँ मैं एकांत में लिख-पढ़ भी सकता था और रात को वहीं सोता था। भोजन भी उनके साथ ही करता था। जितने दिन वहाँ रहा बड़े आनन्द से समय बिताया।

डा० कुलभूषण उस समय जेहलम नदी के तट पर एक कोठी में

रहते थे जो कि बड़े डाकघर से थोड़ी दूर नगर की ओर थी। उनदिनों बा० जीवनमल गुल्हाटी जिला गुजरात के हरियाँवाला ग्राम के निवासी बड़े डाकघर में सहायक पोस्टमास्टर थे। ये मेरे मित्र तथा सम्बन्धी थे। मैं पहले ही बता चुका हूँ कि काश्मीर यात्रा के लिए अभी मोटरें बहुत कम चलती थीं अतः काश्मीर के विभिन्न स्थानों का भ्रमण पैदल अथवा घोड़े पर करना पड़ता था।

मैं श्रीनगर से अनन्तनाग पहुँचा। यह नगर वहाँ से ३३ मील उत्तर की ओर है। वहाँ इसी नाम के पृथक् पृथक् दो स्रोत हैं। उन में से एक से गर्म जल और दूसरे से ठंडा जल निकलता है। समीप ही गर्म और ठंडे जल के दो सरोवर हैं। यहाँ इनके निकट ही एक गंधक के जल का कुण्ड है। समीप ही यात्रियों के लिए एक धर्मशाला है। मैं इसी धर्मशाला में ठहरा परन्तु रात व्यतीत करने में बड़ी कठिनाई हुई। पिस्सू और खटमलों के राज्य में बड़ी बेचैनी रही। प्रातः वहाँ से घोड़े पर सवार होकर अच्छाबल के मार्ग पर डोरू नामक ग्राम में पहुँचा। वहाँ डाकघर के उच्चाधिकारी के यहाँ रात को ठहरा क्योंकि श्री जीवनमल ने मुझे उनके नाम पत्र लिख दिया था। वहाँ प्रातः मेरे लिए भोजन तैयार करा दिया गया जिसे मैंने अपने साथ ले लिया।

अच्छाबल और कुक्कड़ नाग—वहाँ से घोड़े पर चढ़ कर अच्छाबल पहुँचा। यहाँ स्वच्छ जल का एक स्रोत देखा, उससे निकलती हुई एक धारा बड़ी वेग से प्रवाहित हो रही थी। साथ ही था एक प्राचीन समय का उद्यान। वहाँ भी कुछ समय घूमा फिरा। वहाँ रंग बिरंगे पुष्प अपनी छटा दर्शा रहे थे।

अच्छाबल से सात मील की दूरी पर कुकड़नाग गया। यहाँ का भ्रमण बड़ा आनन्द-प्रद था। यहाँ निर्मल और शीतल जल की एक धारा बहती है इसके तट पर बैठकर जो भोजन साथ लाया था वह खाया और

धारा का जल पान किया। समीप ही कुछ कागज़ी अखरोट के वृक्ष एक ग्रामीण ने वृक्ष पर चढ़ कर मुझे कुछ अखरोट उतार दिये। में से कुछ तो मैंने उसी समय तोड़ कर खा लिये और कुछ अ पास रख लिए।

वहाँ से मैं लौट पड़ा। मार्ग में दोनों ओर लहलहाते मक्की के खेत पृथ्वी की शोभा बढ़ा रहे थे। वहाँ खेतों की रखव करने वाले छलियाँ बेच रहे थे। मैंने भी उन से कुछ खरीदीं।

वहाँ से आगे बढ़ा तो दस बीस गज़ पर एक ओर फलों का भारी ढेर लगा हुआ देखा। मैंने अपने घोड़ेवाले से पूछा कि वह है? उसने बताया, सेब हैं। मेरे लिए सेबों का इतना बड़ा ढेर दे का यह पहला ही अवसर था। मैंने अपने साथी से कुछ सेब ख लाने को कहा। उसने मुझ से एक आना लिया और लगभग दो द बढ़िया सेब ले आया। मुझे बताया गया कि यह अमरी सेब है, मीठा होता है। अब वैसा एक दाना श्रीनगर में चार आने को देहली आदि स्थानों पर आठ आने से कम में नहीं मिलता।

कुछ मील दूर आगे बढ़ने पर मार्ग में एक ग्राम और आ जिसके बाहर नास्पाती के वृक्षों का झुंड था। उसी समय एक ग्राम उधर आ निकला। मेरे साथी ने उसे बुलाया और कहा कि ये सा कुछ नास्पाती लेना चाहते हैं। उसने अपनी पुत्री को बुलाया और नास्पाती उतारने की आज्ञा दी। वह तुरन्त ही एक वृक्ष पर चढ़ गई उसे दो चार बार हिलाया। नीचे गिरे हुए दाने ज़मींदार ने उठा और अपनी टोपी में रख कर मेरे पास ले आया। मैं चाहता था उसका मूल्य उसे दूँ परन्तु उसने न लिया और कहा कि "हम अ फल नहीं बेचते। अपने बन्धु एवं इष्ट मित्रों को बिना मूल्य ही देते मैं इसी भावना से यह भेंट आपकी सेवा में लाया हूँ।" मुझे

ग्रामीण की इस भावना ने कितना प्रभावित किया इसका क्या वर्णन करूँ ! यह उस भारतीय सांस्कृतिक भावना की प्रतिरूप थी जिसमें अतिथि सेवा, सत्कार, निरभिमानता, समत्व आदि कितने ही गुणों के दर्शन हो रहे थे और यह प्रत्यक्ष प्रकट हो जाता था कि अतीत में साम्यवाद की आवश्यकता क्यों प्रतीत न हुई !

मैं लौट कर श्रीनगर गया और दो चार दिन पश्चात् अपने स्थान लाहौर चला गया।

यात्रा में रोगोत्पत्ति—भ्रमण और यात्रा से जहाँ नवीन परिचय और मनोरंजन प्राप्त होता है वहाँ स्वास्थ्य में उन्नति की भी आशा होती है। पर कभी कभी थोड़ी सी असावधानी से मनुष्य अपनी हानि भी कर लेता है। मैंने काश्मीर भ्रमण में घोड़े की सवारी अधिक की थी। उसका मुझे विशेष अभ्यास भी न था। निरंतर घोड़े पर बैठने तथा पसीने आदि और रगड़ से मुझे शौचस्थान के निकट एक फुँसी होगई। डाक्टर को दिखाने पर पता चला कि उसके दोनों ओर मुख बन गये हैं इसे फिसचूला (Fistula) कहते हैं। मुझे यह भी बताया गया कि इसको मरहम पट्टी से ठीक करना संभव नहीं। इसका केवल एक मात्र उपचार आपरेशन ही है। लाहौर लौट कर इसका कुछ समय तक उपचार किया परन्तु कोई लाभ न हुआ।

दिसम्बर १६१६ में मैं अपने परिवार सहित लाहौर से जालन्धर चला गया। इस समय मेरे मित्र डा० सत्यपाल अमृतसर के सरकारी अस्पताल में कार्य करते थे। मैंने उन्हें जालन्धर बुलाया। डाक्टर जी ने भी आपरेशन कराने का ही परामर्श दिया। वे इस कार्य के लिए जालन्धर छावनी आये। अन्धेरा हो चुका था, अभी जालन्धर में बिजली भी न लगी थी, अतः मिट्टी के तेल के प्रकाश में वहाँ के डाक्टर रामनाथ चोपड़ा की सहायता से उन्होंने मेरे फिसचूला का ऑपरेशन किया। रात्रि को वे

वहीं ठहरे और प्रातः मुझे देख कर लौट गये। इस बीच में एक दो बार मुझे देखने के लिए आते रहे, उनके इस प्रेम भरे व्यवहार से मुझ पर गहरा प्रभाव हुआ।

आपरेशन के दिनों में मुझे श्री मेहरचन्द जी तथा उनके सुपुत्र सरदार चन्द जी के प्रेम और सेवा भाव का विशेष परिचय मिला। मेरी धर्मपत्नी तो वहाँ हर समय उपस्थित रहती ही थीं किन्तु इन दोनों पिता-पुत्र ने न केवल मेरी सेवा ही की अपितु लक्ष्मी जी का कार्य भार भी अपने ऊपर ले लिया। लक्ष्मी जी को भी अनुभव होने लगा कि वे वहाँ अकेली नहीं अपितु उनके बहन भाई साथ ही हैं। मेरे छोटे भाई देशराज भी मेरी बिमारी का तार पाकर शीघ्र ही जालन्धर पहुँच गये और अपनी भावज का हाथ बटाते रहे। परन्तु अपने लिए उन्हें काम की भी खोज थी अतः अवसर प्राप्त होते ही वे सरकारी सेना के कार्यालय में नियुक्त हो गये। उस समय योरुप का प्रथम महायुद्ध चल रहा था।

२—लाहौर में स्थायी वास

तक्षशिला दर्शन

१९१७ जनवरी के मध्य तक मुझे अपने नये कार्य का साधारण अनुभव हो चुका था। अपने इस कार्य के सम्बन्ध में मैं कई स्थानों पर जाता रहता था। कई बार जालन्धर से मुझे लाहौर जाने का भी अवसर हुआ। जब जब मैं वहाँ जाता तो महाशय कृष्ण से भी प्रायः मिलने का समय निकालता। उनसे बातचीत करते हुए आर्यजगत् की चर्चा अवश्य छिड़ती। उनके देश संबंधी विचार भी मुझे आकर्षित किये बिना नहीं रहते थे। वे सम्भवतः तत्कालीन राजनैतिक स्थिति का भली प्रकार अध्ययन कर रहे थे। प्रतिदिन उनकी रुचि इस ओर बढ़ती प्रतीत होती थी। मैं उनके उत्साह और उनकी कर्मण्यता से बड़ा प्रभावित था। जब कभी एक दो बार मैं उनके पास ठहरा तो उनके साथ हवन-यज्ञ तथा संध्यादि में सम्मिलित होकर आनन्द प्राप्त किया। उन दिनों की स्मृति आज भी ज्यों की त्यों विद्यमान है।

आपरेशन के पश्चात् अभी मेरे शरीर में शिथिलता शेष थी। अवकाश लेकर मैं जालंधर ही रहा और यह समय अपने पुराने स्कूल की उन्नति में लगाया। इस कार्य के अतिरिक्त आर्यसमाज तथा आर्य-पुत्री पाठशाला की कार्य कारिणी समिति के मंत्री रूप में भी सेवा करता रहा।

मरी यात्रा—अगस्त १९१७ में मेरा विचार पर्वत यात्रा का हुआ। अतः मैंने अपनी धर्मपत्नी तथा दोनों पुत्रों सहित मरी पर्वत पर जाने का निश्चय किया। रावलपिंडी होते हुए हम मरी पहुँचे। वहाँ अपने मित्र श्रीजगन्नाथ थापर के पास ठहरे। एक दो दिन पीछे महाशय कृष्ण भी

वहीं आ गये। हम वहाँ पर एक सप्ताह के लगभग एक साथ रहे और वहाँ के स्वास्थ्य-वर्द्धक जलवायु से लाभ उठाया। हम लोगों का वहाँ से रावलपिंडी लौटने का विचार हुआ। उस समय तक सर्व साधारण के लिए किराये की मोटर लारियाँ न चली थीं। मरी से रावलपिंडी तक सैनिकों की लारियाँ आती जाती थीं और वहाँ से यात्रियों को भी ले जाती थीं। यह एक नई सवारी थी जो अधिक शीघ्र पहुँच जाती थी। इस लिए हमने भी लारी में जाने का प्रबन्ध किया। हम लारी में बैठ तो गये किन्तु उसमें सवारियाँ खचा खच भरी थीं। पैट्रोल की असह्य दुर्गन्ध तथा हिचकोलों से सब का चित्त मार्ग में खराब हो गया। जैसे-तैसे हम रावलपिंडी पहुँचे और अपने बन्धु श्री रामलुभाया के घर पर एक दिन रह कर जालन्धर छावनी लौट गये।

लाहौर में स्थायी वास—अपने कार्य के कारण मुझे लाहौर में अधिक जाना आना पड़ता था अतः मन में आया कि किराये का मकान लेकर यहीं रहा जाय। एप्रल १६१६ में अपने परिवार सहित लाहौर आकर ग्वालमंडी में रेलवे रोड पर मेयो अस्पताल के निकट कुछ मास किराये के मकान में रहा। १६१७ में जब मरी यात्रा के पश्चात् मैं जालन्धर लौट आया तो वहाँ से फिर परिवार सहित लाहौर चला गया और शाहाल्मी द्वार के बाहर एक किराये के मकान में रहना आरम्भ किया। इस प्रकार किराये के मकानों को अपनी सुविधा की दृष्टि से बार २ बदलने की अपेक्षा मेरे पिता जी वा मेरी धर्मपत्नी ने लाहौर में स्थायी रूप से रहने का परामर्श दिया और यह तभी हो सकता था जब कि अपना मकान हो।

मेरे एक पुराने परिचित श्री केदारनाथ थापर उस समय रामगली में रेलवे स्टेशन के निकट ही रहते थे। जब वे आर्य-प्रतिनिधि-सभा के मंत्री थे तो मैंने १६०४ में उन्हें एक पत्र में लिखा था कि कोई ऐसा उपाय बतलाइये कि जिससे मैं आप लोगों के समीप रह सकूँ। अब जालन्धर

से लाहौर आने पर उनसे जब मिलने का अवसर हुआ तो उन्होंने मुझे बताया कि इस समय मैं आपको अपने समीप मकान लेकर दे सकता हूँ। मैंने अपने घर वालों के परामर्श पर यह स्वीकार कर लिया। १९१८ के आरंभ में हमने किराये का मकान लेकर रामगली में उनके समीप रहना आरंभ किया। उनके सहयोग से हमें उसी गली में जुलाई मास में मकान मिल गया जिसे हमने ले लिया और सपरिवार वहीं रहने लगे। मेरी वृद्ध दादी जी व पिता जी भी वहां साथ रहते थे। मकान कुछ ठीक रूप से न बना था और उसमें कुछ त्रुटियाँ थीं। मेरे पिताजी व मेरी धर्मपत्नी ने उसे बड़ी सावधानी से ठीक करवा लिया, मैं भी उनके इस कार्य में समय-समय पर अपना परामर्श देता रहा।

प्राचीन भारतीय संस्कृति का स्मारक

तक्षशिला—इतिहास का अध्ययन करते समय मुझे प्राचीन संस्कृति के ध्वंसावशेषों के विषय में भी कुछ जानकारी प्राप्त हुई थी। विद्यार्थी जीवन में इन स्थानों को देखने की इच्छा होना स्वाभाविक ही था। पंजाब स्थित टैक्सला भी एक प्राचीन गौरव-पूर्ण स्थान था। पर इसे देखने का मुझे अब अनायास ही अवसर मिल गया। मैं १९१७ के नवम्बर मास में अपने शिक्षा-सम्बन्धी कार्य के लिए पेशावर जा रहा था। मार्ग में टैक्शला देखने का उपयुक्त अवसर प्रतीत हुआ। यह स्थान रावलपिंडी से २५ मील दूर है। यहाँ रेलगाड़ी जाती है। पहले इसे सराय काला कहते थे। स्टेशन से थोड़ी दूरी पर ही तक्षशिला के प्राचीन ध्वंसावशेष आ जाते हैं। इन्हीं पुराने अवशेषों को अंगरेजी में टैक्सिला कहते हैं। किन्तु इसका शुद्ध नाम तक्षशिला है।

मैंने वहाँ क्या देखा ?

तक्षशिला नगर के ध्वंसावशेष तीन भागों में विभक्त थे। बनीर, हेताल और षण्मुखकोट। नगर के ये तीनों विभाग पृथक् पृथक् परकोटों

में बसे हुए थे। इनसे थोड़ी २ दूरी पर छोटी २ बस्तियाँ भी थीं। यह सब खण्डहर अब ६ मील के घेरे में हैं। मैंने इन खंडहरो को देखा तो प्राचीन दिल्ली के खण्डहरों की स्मृति हृदय में जाग्रत हो गई। षणमुखकोट और जवार स्तूप, हताल आदि की अभी खुदाई होरही थी, इन स्थानों को घूम फिर कर देखने में पर्याप्त समय लग गया।

इस स्थान के मुख्याधिकारी के कार्यालय के निकट एक अद्भुतालय (Museum) भी था। इस में लोहे, ताँबे, शीशे, काँसी और मिट्टी की वस्तुएँ रखी हुई थीं, ये सब खुदाई में प्राप्त हुई थीं। उसके पास ही सुर्मे से चित्रित तांबे की शलाखें, पूजा के लिए काँसी के बर्तन, मिट्टी के छोटे बड़े मटके और सुराइयाँ, लोहे के आधार बहुमूल्य पत्थर, नगीने, सोने के आभूषण और पत्थर की मूर्त्तियाँ रखी हुई थीं।

अद्भुतालय से चिरी शिखर दो मील की दूरी पर है। वहाँ बीच में एक बड़ा स्तूप खड़ा था जिसके चारों ओर मन्दिर और पूजा की कोठरियाँ बनी थीं। वहाँ महात्मा बुद्ध की बहुत सी मूर्तियाँ थीं। उनमें से कई टूट चुकी थीं। कुछ हूणों के आक्रमणों से नष्ट भ्रष्ट हो गई थीं। यहाँ ईसा से ७८ वर्ष पूर्व के कुछ लेख भी मिलते हैं।

तक्षशिला इतना प्राचीन है कि इसका वर्णन रामायण तथा महाभारत में भी आता है। अतः ज्ञात होता है कि यह भी भारतीय इतिहास के साथ-साथ युग-युग की झाँकी दिखाकर बदलता रहा है।

चिरी का स्तूप शाहपुर ग्राम के निकट है। मैं तक्षशिला से वहाँ ताँगे पर गया। इस स्थान के देखने में आध घंटा लगा और वहाँ से लौटते समय पैदल ही आया।

नगर कैसे जाना गया ?—

कहते हैं कि अब से कुछ वर्ष पूर्व यहाँ तिब्बत से कुछ यात्री आये थे। उनके पास बौद्धों के पवित्र स्थानों का एक मानचित्र था। उससे उन्हें ज्ञात हुआ कि अमुक स्थान पर तक्षशिला नगर था। उन्होंने भारत

सरकार से प्रार्थना की कि वह स्थान उन्हें दे दिया जाय। इसके पश्चात् सरकार ने पुरातत्व अनुसंधान विभाग (Arch. Deptt.) को यह कार्य सौंप दिया। यहाँ खुदाई हुई और नीचे से तक्षशिला के खंडहर निकले। पुरातत्व विभाग ने यहाँ के विषय में निम्न बातें प्रकाशित की हैं:—

पहले यह नगर एक किले के रूप में बसा था। उत्तर से दक्षिण तक तीन मील और पूर्व से पश्चिम तक नौ मील तक फैला हुआ था। किले की चार दिवारी में कहीं २ द्वार, गुम्बज़ और विश्रामगृह बने हुए थे। जनरल कनिहम ने ५५ स्तंभों का व २८ बौद्ध विहारों का पता लगाया है जो सर्वसाधारण के लिए विश्रान्त स्थान थे। यात्रियों के लिए रहने सहने की व्यवस्था थी। नगर के बाहर स्तूप, धर्मशाला, व्यायामशाला, उद्यान आदि बने थे। इतिहास वेताओं ने लिखा है "यह नगर बड़ा स्वास्थ्यप्रद था। इसमें सहस्रों धनीमानी पुरुष निवास करते थे।" युनानी इतिहासकार भी लिखते हैं—"इस नगर के वैभव और समृद्धि को देखकर बैबीलोन की स्मृति जाग्रत हो जाती है। गली और बाजार बड़े शानदार और नियमित पंक्तियों में बने हुए थे। नगर के बाहर एक विशाल उद्यान था जो एक मील लम्बा था और उसमे बहुत से जल के स्रोत, फव्वारे और झरने थे। यह नगर प्राचीन कला-कौशल का जीता जागता प्रतीक था।"

महत्व—दो सहस्र वर्ष पूर्व यहाँ एक जगत् विख्यात विश्वविद्यालय था। इसमें पाणिनि जैसा उपाध्याय शिक्षण कार्य करता था, अत्रि ऋषि आयुर्वेद के उपाध्याय थे। ईरान, आसाम तथा अन्य दूर देशों के विद्यार्थी यहाँ आकर शिक्षा प्राप्त करते थे। वैद्यशिरोमणि जीवक जो बाद में मगध सम्राट का राजवैद्य हुआ और जिसने राजा अभयसैन को एक बड़े भयानक रोग से बचाथा था उन दिनों वह यहीं शिक्षा पाता था।

जब सिकन्दर ने ३२७ ईसा पूर्व भारत पर आक्रमण किया तो यूनानियों को भी इस स्थान से परिचय हुआ। वे इस स्थान को तक्षशिला से

टैक्सिला कहने लगे। ईसा की चौथी शताब्दी में जब हुणों ने आक्रमण किया तो उस आक्रमण का प्रहार इस पर भी हुआ। यह समृद्ध शालि कला का केन्द्र नष्ट भ्रष्ठ कर डाला गया और बाद में काल चक्र के प्रभाव से भूमि में दब गया।

तक्षशिला नाम कैसे पड़ा—इस स्थान के नाम के सम्बन्ध में भी जो किंवदन्ती मुझे सुन पड़ी उसे भी यहाँ दे देना ठीक होगा। तक्षशिला की व्युत्पति इस प्रकार बताई जाती है : टीका+शाला : टीकाशब्द इधर राजकुमारों के लिए आता है अतः इस का अर्थ हुआ राजकुमारों की पाठशाला। यहाँ राजकुमार शिक्षा प्राप्त करने आते थे। चन्द्रगुप्त मौर्य ने यहीं शिक्षा पाई थी।

मैंने तक्षशिला नाम पड़ने के और भी कई कारण सुन रखे थे। जिस समय जनमेजय ने समस्त खाण्डव बन में आग लगाकर नाग जाति का विध्वंस कर दिया था उस समय तक्षक नाग ही शेष बचा था। उसने सिन्धु नदी के इस पार आकर अपनी राजधानी बनाई और जब अपने नगर का शिलान्यास किया तब इसका नाम तक्षकशिला अथवा तक्षशिला प्रचलित हुआ।

महाराजा रामचन्द्र जी के अनुज भरत के पुत्र का नाम भी तक्ष था। यहाँ उसने अपना निवास स्थान बनवाया था। उसके मुख्य स्थान का तक्षशाला अथवा तक्ष-शिला नाम पड़ गया। पीछे यहाँ नगर भी बस गया।

प्रसिद्ध ऐतिहासिक यात्री फाह्यान के समय इस स्थान का पतन आरंभ हो गया था। पर यह किसे पता था कि इस की गणना विदेश में होने लगेगी! काल चक्र ने यह सब कुछ करवा दिया!

———

३—प्रथम महायुद्ध के पश्चात्

दयानन्द आश्रम-विद्यालय की स्थापना

१९१८ की ११ नवम्बर को यूरोप का प्रथम महायुद्ध समाप्त हुआ था। जर्मनी की पराजय पर समस्त देश में प्रसन्नता का प्रदर्शन किया गया था। पर जब हमारे देश के नेताओं ने सरकार के दिये गये वचनानुसार जनता के लिए अधिकारों की माँग की तो देश की इस जागृति को दबाने के लिए रौलेट बिल पास कर दिया गया। इसके अनुसार देश भक्तों को अभियोग चलाये बिना केवल सन्देह पर बन्दी बनाया जा सकता था। इस बिल का भारतीय धारासभा में भी प्रभावशाली शब्दों में विरोध किया गया। माननीय गोखले के उत्तराधिकारी श्रीनिवास शास्त्री तथा पं० मदनमोहन मालवीय ने बिल का ज़ोरदार शब्दों में विरोध किया। किन्तु इस विरोध का प्रभाव केवल इतना ही हुआ कि जनता में जागृति उत्पन्न हो गई।

लोकमान्य बालगंगाधर तिलक अभी जेल में ही थे, भारत के राजनैतिक क्षेत्र में अभी गाँधी जी नये-नये ही आये थे, ऐसे कठिन समय में कुछ सम्मानित व्यक्तियों ने महात्मा गाँधी से आग्रह किया कि वे रौलेट एक्ट के विरोध स्वरूप प्रचलित आन्दोलन का नेतृत्व करें। महात्मा जी ने स्वीकार तो कर लिया पर इस बात के लिए जनता से अनुरोध किया कि समस्त आन्दोलन शान्तिमय एवं अहिंसा पूर्ण रहे और यदि उसमें हिंसात्मक साधनों का प्रयोग किया गया तो वे इस कार्य से पृथक् हो जायेंगे।

महात्मा जी ने आदेश दिया कि इस कानून के विरोध में स्थान २ पर हड़ताल की जाय। स्त्रियाँ अपने घरों में उपवास रखें और प्रार्थना

करें कि सरकार इस कानून को वापिस ले ले। इसके लिये पहले ३० मार्च की तिथि नियत की गई थी पर फिर इस दिन को बदल कर ६ अप्रैल का रविवार निश्चित कर दिया गया।

इन्हीं दिनों देहली आर्य समाज के कुछ कार्यकर्त्ताओं की दिल्ली में एक हाई स्कूल खोलने की योजना चल रही थी। इस कार्य में उन्हें लाला नारायणदत्त जी का भी सहयोग प्राप्त था। मैंने भी उसे चालू कर देने का वचन दे दिया था अतः प्रथम अप्रैल को श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज द्वारा विद्यालय का उद्घाटन होना निश्चित हो गया।

दयानन्द आश्रम हाई स्कूल के उद्घाटन से पूर्व में लाहौर से महाशय कृष्ण एवं प्रो० शिवदयालु जी के साथ ३० मार्च को प्रातः दिल्ली पहुँच गया। मैं यहाँ यह भी लिख दूँ कि महाशय कृष्ण इस स्कूल के उद्घाटन में सम्मिलित होने के लिए आये तो अवश्य पर एक अति आवश्यक कार्य को दूसरों के हाथों में छोड़कर। उन्होंने प्रथम अप्रैल से अपने पत्र 'दैनिक प्रताप' का प्रकाशन आरम्भ करना था। वे अपने लेख आदि २९ मार्च को ही दूसरों को सौंप कर हमारे साथ देहली के लिये चल पड़े। 'दैनिक प्रताप' का प्रथम अंक लाहौर में ३० मार्च की सायंकाल ही प्रकाशित हो गया। अमृतसर में इसी दिन डा० किचलू और डा० सत्यपाल पकड़े गये। देश का वातावरण अब और भी क्षुब्ध हो गया। इस पकड़-धकड़ का देहली की घटनाओं पर भी प्रभाव पड़ा।

३० की प्रातः से ही दिल्ली में सभी स्थानों पर निर्जनता छाई हुई थी क्योंकि दिल्ली निवासियों ने गाँधी जी की प्रथम आज्ञानुसार इस दिन हड़ताल तथा विरोध सभा करने का आयोजन कर रखा था। हमने कुछ देर बाद देखा कि अभी अभी जो एक दो दुकानें खुली थीं, वह भी बन्द हो गईं; समस्त जनता ने सरकारी बस टाँगे एवं अन्य वाहनों तक का बहिष्कार कर दिया।

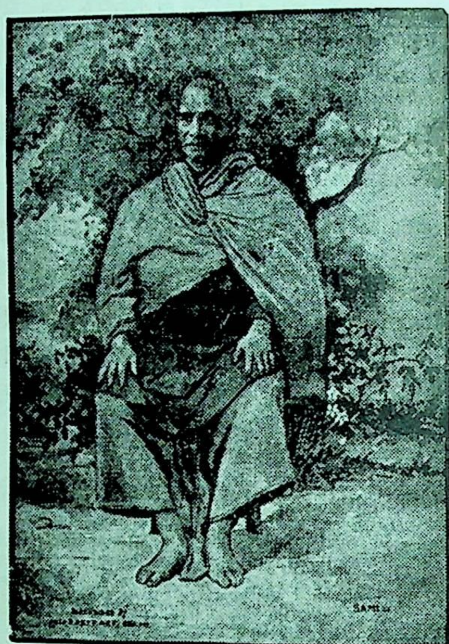
इस समय स्वामी श्रद्धानन्द दिल्ली में धार्मिक एवं राष्ट्रीय कार्य कर रहे थे। इस समय वे दिल्ली राज्य काँग्रेस समिति के उपाध्यक्ष भी थे। स्वामी जी ने इस आन्दोलन को निर्भीकता से गाँधी जी के सिद्धान्तों पर चलाया। उनके साहस, उत्साह एवं कार्यदक्षता को देख मेरे मन पर विशेष प्रभाव पड़ा।

दिल्ली के विभिन्न भागों के स्वयंसेवक जनता को हड़ताल के लिए उत्साहित कर रहे थे। उन्होंने हौजकाजी पर एक मोटरकार को रोका जिसमें पुलिस कप्तान विराजमान थे। पुलिस कप्तान इस दृश्य को देखकर क्रुद्ध हो उठे और उन स्वयंसेवकों को पुलिस द्वारा बन्दी बना लिया। इसी प्रकार दो अन्य व्यक्तियों को स्टेशन पर भी हड़ताल कार्य में भाग लेने के कारण बन्दी बना लिया गया।

सरकार का इस विरोधी नीति का समाचार पाकर जनता स्टेशन की ओर तेजी से बढ़ने लगी। हजारों की संख्या में जनसमुदाय ने ब्रिटिश नौकरशाही के कर्णाधारों से कहा कि "बन्दी स्वयं-सेवकों को मुक्त किया जाय।"

किन्तु सरकार ने बन्दियों को तो न छोड़ा अपितु जनता पर आतंक जमाने के लिये मशीनगनों एवं सेना का आश्रय लिया। लोग इस आतंक से भयभीत न हुये पर सरकार भी चुप न रही और शीघ्र ही जान पड़ा कि एक चौदह वर्षीय बालक को मशीनगन द्वारा सदैव के लिये सुला दिया गया है।

पुलिस की बन्दूकों ने गोलियाँ उगलनी प्रारम्भ कीं जिससे बहुत से लोग घायल होकर धराशायी होगये। पुलिस उनकी लाशों को घसीट कर कम्पनी बाग ले गई। जनता के एक एक व्यक्ति को बलपूर्वक बाग से निकाल दिया गया। जन-समूह बाग़ से निकल कर घण्टाघर के समीप एकत्र हो गया।



स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज

स्वामी श्रद्धानन्द जी समाचार पाकर इस अवसर पर घटना-स्थल पर पहुँचे। उन्होंने नौकरशाही से घायल एवं मृत व्यक्तियों को लौटाने की माँग की, पर पुलिस अधिकारी टस से मस न हुये। इस समय दोपहर के २॥ बजे थे। इसके कुछ देर बाद अर्थात् ४ बजे सार्वजनिक सभा का आयोजन था। स्वामी जी ने विशाल जन समूह को किसी कार्य में लगाना उचित समझा।

अतः उन्होंने सार्वजनिक सभा तत्काल आरम्भ करने की घोषणा कर दी। जन-समूह कम्पनी बाग में, जिसे अब गाँधी ग्राउंड कहते हैं, एकत्र हो गया। अभी सभा प्रारंभ न हुई थी कि समाचार पहुँचा कि

घण्टाघर पर पुलिस ने गोली चला दी है। स्वामी जी ने समाचार पाकर भी जनता को शांत रहने का ही आदेश दिया।

लगभग ४॥ बजे निश्चित समय के अनुसार सभा प्रारम्भ हुई। सभा के चारों ओर पुलिस एवं सैनिक टिड्डीदल के समान छाये हुये थे। इस अवसर पर चीफ कमिश्नर तथा डिप्टी कमिश्नर भी उपस्थित थे। स्वामी जी ने चीफ कमिश्नर को आश्वासन दिलाया कि यदि इस स्थान को आपकी सेना तथा पुलिस रिक्त कर दे तब यहाँ किसी प्रकार के उपद्रव होने की सम्भावना नहीं, सभा के सभी वक्ताओं ने जनता को शांत रहने का आदेश दिया।

सभा समाप्ति के पश्चात् लोग सभा-स्थल से अपने घरों को वापिस जा रहे थे। जब कुछ लोगों का झुण्ड घण्टाघर पर पहुँचा तब हमने देखा कि वहाँ पर गुरखा सैनिक अपनी बन्दूकें ताने खड़े हैं। एक सिपाही ने गोली चला दी। इस पर जब स्वामी जी ने प्रश्न किया तो एक सिपाही ने कहा, "यहाँ से हट जाओ अन्यथा हमारी संगीनें तुम को भी छेद देंगी!"

स्वामी जी पर इस धमकी का कुछ प्रभाव न हुआ और वे आगे बढ़कर बोले 'चला गोली'। इसी समय पुलिस के एक उच्चाधिकारी ने सैनिकों को हटा दिया। स्वामी जी के साथ-साथ जन समूह भी नया-बाज़ार होता हुआ अपने घरों को चला गया।

३१ मार्च को उन दो व्यक्तियों का अन्तिम संस्कार होना था जो रेलवे स्टेशन पर फ़ौज की गोली से मरे थे। उनमें से एक हिन्दू और दूसरा मुसलमान था। अर्थी जा रही थी, श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी व श्री हकीम अजमलखाँ उनके आगे आगे चल रहे थे। सैंकड़ों नर-नारी उनके पीछे पीछे थे। उस समय हिन्दू मुसलिम जय के नारे सुनने में आ रहे थे।

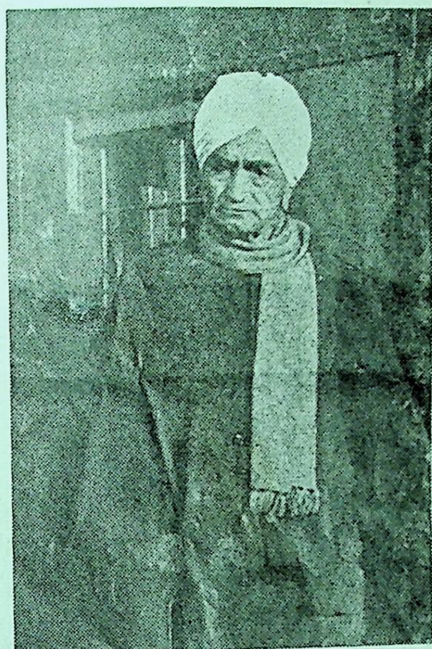
राजनैतिक स्थिति में इस प्रकार परिवर्तन होते देख कर महाश कृष्ण तो लाहौर लौट गये परन्तु मैं और प्रो० शिवदयालु अगले दि स्कूल के उद्घाटन के सम्बन्ध में वहीं ठहरे रहे।

स्कूल का उद्घाटन—प्रथम अप्रैल को स्वामी जी के कर कमल द्वारा दयानन्द आश्रम हाई स्कूल का उद्घाटन हुआ जिसमें दिल्ल वासियों ने अपना विशेष प्रेमभाव प्रदर्शित किया। इस दिन मैंने स्कू संचालन का कार्य भार सम्भाल लिया।

देश का राजनैतिक वातावरण दिन दिन विगड़ता जा रहा था महात्मा गाँधी पंजाब भ्रमण के लिये आ रहे थे। उन्हें देहली के निक कोसी के रेलवे स्टेशन पर गाड़ी से उतार कर लौटा दिया गया। पंजा में वैशाखी के दिन विरोध सभा में जनता एकत्र हुई। अमृतस के कार्य कर्त्ताओं ने स्थानीय जलयाँवाला बाग में एक विरोध सभ का आयोजन किया। सरकार को यह शांत-सभा फूटी आँख न सुहाई अंग्रेज़ी सेना के जनरल डायर ने निशस्त्र जनता का मशीन गन द्वार भून डाला। पंजाब के कई भागों में मार्शलला घोषित किया गया दिल्ली एवं पंजाब के आवागमन के प्राय: सभी मार्ग बन्द कर दि गये। यात्रियों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक आने जाने में बड़ी कठिनाई होने लगी। यात्री विशेष आज्ञा पत्र प्राप्त होने पर ही यात्रा क सकते थे। इस कठिन अवस्था में मेरी धर्मपत्नी अपने दोनों पुत्रों सहि मेरे पास दिल्ली आईं और लगभग चार मास तक वहीं रहीं।

ला० नारायणदत्त जी—दयानन्द आश्रम स्कूल का वर्णन कर हुए मुझे दिल्ली के वे महानुभाव स्मरण आते हैं जिन्होंने इस संस्था क सफल बनाने में भाग लिया था। उनमें से प्रमुख थे ला०नारायणदत्त जी

वे काम तो करते थे ठेकेदारी का परन्तु आर्य समाज से उन्हें इतन प्रेम था कि उसके लिये वे अपना समय और धन दोनों देने को तत्प रहते थे। वे आर्य समाज के दृढ़ स्तंभ थे। मैं जब दिल्ली गया तो उन



स्वर्गीय ला० नारायणदत्त

पास ठहरा और जब तक मेरे स्वतंत्र निवास का प्रबन्ध न हुआ मैं उनके पास ही रहा। उनके साथ उस समय काम करने वालों में से ला० बुलाकीदास, ला० दीवानचंद, ला० ज्ञानचंद और बावा मिलखासिंह के नाम मुझे भली प्रकार स्मरण हैं। वे सब इस कार्य में पूर्ण



स्कूल का प्रथम सेशन चार मास के पश्चात् सफलता पूर्वक समाप्त हुआ। मैंने यह अनुभव किया कि अब मैं बिना किसी भय के यह कार्य और हाथों में सौंप सकता हूँ। उसी ग्रीष्म ऋतु का दीर्घावकाश भी आ गया। मैं अवकाश के दिनों में लाहौर चला गया। अवकाश समाप्त होने पर जब सितम्बर में स्कूल खुला तब उचित प्रबन्ध करके मैं लाहौर लौट गया। इसके कुछ दिनों बाद मा० सुन्दर सिंह, बी० ए०, बी० टी० ने कार्य भार संभाल लिया।

सितम्बर के अन्त तक मैं अपने कार्यों के सम्बन्ध में जालन्धर, शिमला, मरी, रावलपिण्डी, आदि स्थानों पर गया। मरी पर्वत के स्वास्थ्य-वर्द्धक जलवायु का एक सप्ताह सेवन करके एबटाबाद भी गया। यह पर्वतीय स्थान बड़ा महत्वपूर्ण है। लगभग चार हज़ार फीट की ऊँचाई पर स्थित है। यह नगर है तो छोटा सा पर इसके बाज़ार पर्याप्त चौड़े और स्वच्छ हैं। यहाँ सभी प्रकार की वस्तुएँ प्राप्त होजाती हैं और मैदानों के समान सड़कों पर टाँगे आदि भी चलते हैं।

ऐबटाबाद में उस समय अंग्रेज़ी सेना रहती थी। यहाँ बालक बालिकाओं के कई विद्यालय थे। मैं चार दिन वहाँ ठहरा और वहाँ के स्वास्थ्य प्रद वायु का सेवन किया।

अमृतसर काँग्रेस—गत मार्च और अप्रेल की राजनैतिक हलचलों में जो हृदय-वेधक घटनाएँ हुईं उनसे सारे देश में बड़ा असन्तोष फैल गया था। मार्शल्ला के दिनों में पंजाब की जनता को अनेक अत्याचार सहने पड़े थे। जनता भयभीत थी। अंग्रेज़ी सरकार के विरुद्ध कुछ कहना तो दूर रहा, देश की उन्नति के विषय में भी उस समय कोई कुछ न कह सकता था। ऐसी अवस्था में पं० मोती लाल नेहरू और पं० मदन मोहन मालवीय ने पंजाब का भ्रमण किया, लोगों के भय को दूर करने का प्रयास किया और उनको धीरज बंधाया।

पंजाब के नेताओं में उस समय श्री स्वामी श्रद्धानन्द अग्रसर हुए और उन दोनों महानुभावों को अपना पूर्ण सहयोग दिया। यह निश्चय हुआ कि पंजाब में काँग्रेस का अधिवेशन बुलाया जाय। श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज को स्वागत समिति का अध्यक्ष चुना गया और उन्होंने अधिवेशन का कार्य भार अपने ऊपर ले लिया। साधारणतः उस समय लोग कार्य क्षेत्र में आगे आने में भय प्रकट करते थे पर फिर भी जब स्वामी जी ने लोगों को इस पवित्र कार्य में भाग लेने की प्रेरणा की तो बड़ी सफलता प्राप्त हुई।

लोगों में भय की मात्रा दूर होनेपर पंजाब के नेताओं ने भी यह विचार करना आरम्भ किया कि राजनैतिक उन्नति की ओर किस प्रकार पग उठाया जाय। परिणाम यह हुआ कि जालन्धर में एक प्रान्तीय राजनैतिक सम्मेलन बुलाया गया जिसके प्रधान श्री हरि किशनलाल चुने गये। इस सम्मेलन में श्री मनोहरलाल, सर फ़जले हुसेन, डा० गोकुल चन्द नारंग, डा० सत्यपाल, रायज़ादा हंसराज और अन्य कयी कार्यकर्ता भी सम्मिलित हुए, मैं भी इसमें साधारण प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित था।

जब विषय निर्धारिणी समिति का निर्वाचन हुआ तो उस में मुझे भी लिया गया। मैं समिति की सब बैठकों में सम्मिलित हुआ। इस सम्मेलन में बड़े महत्व के प्रस्ताव स्वीकृत हुए। इससे जनता के उत्साह में वृद्धि होने लगी।

दिसम्बर मास में अखिल भारतीय कांग्रेस का विशेष अधिवेशन अमृतसर में हुआ। इसके सभापति पं० मोतीलाल नेहरू और स्वागताध्यक्ष स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज थे। इस अधिवेशन में देश के प्रमुख नेता सम्मिलित हुए। इन मेंसे श्री लोकमान्य बालगंगाधर तिलक, पं० मोतीलाल नेहरू, पं० मदन मोहन मालवीय, श्री चितरंजन दास,

श्री मोहनदास कर्मचन्द गाँधी आदि के नाम प्रमुख हैं। लाला लाजपतराय इन दिनों विदेश में थे। इसी अधिवेशन में मौलाना मुहम्मद अली और शौकत अली कारागार से मुक्त होकर आये थे। इस से लोगों का साहस और उत्साह और भी दुगना हो गया था।

इस अधिवेशन में मैं प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित हुआ और पहली बार मुझे यहाँ लोकमान्य तिलक व गाँधी जी के दर्शनों का अवसर मिला। काँग्रेस के इस अधिवेशन के प्रस्तावों द्वारा क्या लाभ हुआ, इसे छोड़ कर मैं कह सकता हूँ कि जनता में न केवल भय की मात्रा कम हुई अपितु उसमें आशा दीप की ज्योति जाग्रत हो गई, नव शक्ति का संचार हो उठा, उत्साह बढ़ने लगा और देश में स्वतन्त्रता के लिए त्याग के भाव प्रबल हो गये। देश पुनः स्वराज्य प्राप्ति के लिए संघर्ष करने को तैयार हो गया।

४—काश्मीर तथा बम्बई

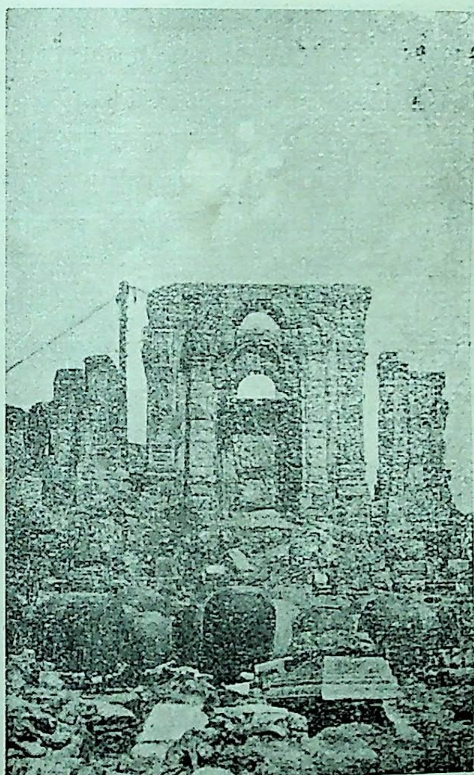
दूसरी बार

यद्यपि मैंने अपने क्षेत्र-परिवर्तन के कारण विक्टर हाई स्कूल जालन्धर में अध्यापन कार्य को छोड़ दिया था पर वहाँ के संचालन कार्य से मेरा सम्बन्ध पूर्ववत् बना रहा। मेरे पश्चात् वहाँ के मुख्याध्यापक नियुक्त हुए थे श्री आत्मानन्द, बी. ए., बी. टी.। क्षय रोग के कारण १९२० में उनका देहान्त हो गया। स्कूल के प्रबन्धक श्री नारायण दास जी ने मुझे प्रेरणा की कि अपना कुछ समय उनके स्कूल को दूँ और उसे पुनः उन्नति की अवस्था में लाने का प्रयास करूँ। इस पर मैंने कुछ समय पुनः स्कूल में व्यतीत करना स्वीकार कर लिया। इस हेतु मैं ३–४ मास वहाँ ठहरा और स्कूल की अवस्था सुधारने का प्रयत्न किया। इसमें मुझे सफलता भी हुई और स्कूल पुनः अपने पाँव पर खड़ा हो गया। वहाँ रहते हुए मैं पूर्ववत् आर्य समाज और पुत्री पाठशाला के लिए भी समय देता रहा।

काश्मीर में—स्कूल में ग्रीष्मावकाश हुआ तो मैं लाहौर चला गया। गर्मी अधिक होने से मैंने काश्मीर-भ्रमण का कार्यक्रम बनाया और लाहौर से श्रीनगर के लिए चल दिया। १९१६ में भी मैं वहाँ हो आया था। विगत स्मृतियों को नवीन करता हुआ मैं श्रीनगर पहुँचा। वहाँ से प्रकृति के दृश्य देखने तथा खुली वायु में भ्रमण करने के विचार से अनन्तनाग गया। वहाँ से अच्छाबल देखने चला जो अनन्तनाग से ६ मील की दूरी पर है। वहाँ इसी नाम का एक सुन्दर उद्यान है जिसमें स्वच्छ जल की एक धारा बहती है जो निकट ही एक स्रोत से निकलती है। यह सारे दृश्य बड़े रमणीय थे और जब उद्यान की हरी भरी घास

और रंग बिरंगे फूलों पर दृष्टि जाती थी तो यह दृश्य और भी अधिक मनोरम प्रतीत होता था।

श्रीनगर के बीचों-बीच जेहलम नदी बहती है। दोनों किनारों पर श्रीनगर के बाज़ार अपनी निराली शोभा धारण करते हैं। जेहलम नदी वैरीनाग से निकलती है, मैं उसे देखना चाहता था। अच्छाबल से



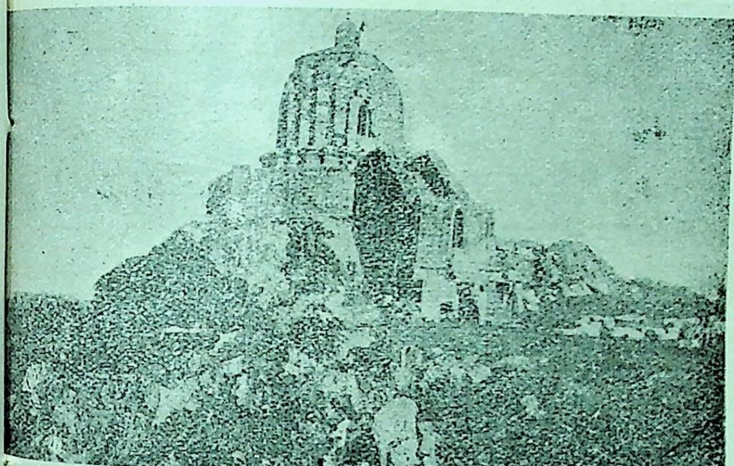
मार्तण्ड का मन्दिर (काश्मीर)

मैं वहाँ घोड़े पर गया और उस स्रोत को देखा। मुगल सम्राट् जहाँगीर और शाहजहान ने इस स्रोत को गहरा और पक्का करवा दिया था। वैरीनाग में मुझे मटन निवासी पं० रघुनाथ मिले। उन्होंने मुझे मटन आने और उनके यहाँ ठहरने के लिए निमंत्रित किया। वहाँ से दूसरे दिन ही मैं मटन पहुँचा और उनके यहाँ ठहरा। उन्होंने पं० अनन्तराम को साथ लेकर मुझे वहाँ के सब प्रसिद्ध स्थान दिखाये। उनमें से एक मार्तण्ड का विशाल मंदिर था उसके अब खण्डहर ही शेष रह गये थे। मुझे बतलाया गया कि मटन शब्द मार्तण्ड से ही बना है। वहाँ एक बड़ा स्रोत और उसके आगे एक सरोवर है। इस में यात्री स्नान करना पुण्य समझते हैं। इसमें मछलियाँ बहुत हैं। वहाँ यात्री उन्हें अन्न आदि डालते हैं। उस समय वहाँ किसी को मछली पकड़ने की आज्ञा नहीं थी। हमने वहाँ से कुछ दूर जाकर बामनी गुफा भी देखी। मटन में मुझे पं० अनन्तराम ने अपनी हस्तलिखित वहियाँ दिखाईं जिनमें वे यात्रियों के नाम व उनके वंश का ब्योरा लिखते हैं। उनकी वही में मेरे पूर्वजों के निम्न नाम अंकित थे :—श्री नत्थूमल जी, श्री भागमल जी, श्री झंडामल जी, श्री नारायण सिंह जी और श्री फतहसिंह जी। इनमें अन्तिम नाम मेरे पिता जी का है।

शंकराचार्य का मन्दिर—जब मटन से लौट कर मैं श्रीनगर पहुँचा तो वहाँ मैंने एक दिन निशात और शालामार बाग के भ्रमण में ब्यतीत किया। एक प्रातः मैं शंकराचार्य का प्राचीन मंदिर भी देखने गया। यह मन्दिर श्रीनगर के समीप ही उत्तर की ओर पर्वत के शिखर पर स्थित है।

कहते हैं कि इस मन्दिर को काश्मीर के महाराज गोपादित्य ने बनवाया था। कभी यहाँ हिन्दू और मुसलमान सभी पूजार्थ आते थे। यह भी सुनने में आया कि उदार हृदय बादशाह जेनुलआब्दीन ने अपने

समय में इस की मरम्मत करवाई थी। हम वहाँ जाने के लिये जब पर्वत पर चढ़ रहे थे तो बड़ी मंद २ शीतल वायु बह रही थी पर जब शिखर पर पहुँचे तो पवन वेग से बहने लगी और वर्षा के चिह्न दीखने लगे अतः मैं मंदिर पर थोड़ी देर ठहर कर उतर गया।



शङ्कराचार्य का मंदिर (श्री नगर)

इस प्रकार काश्मीर का भ्रमण करके लाहौर लौट गया।

इन दिनों देश का वायु मंडल अधिक उग्र होता जा रहा था। राजनैतिक जागृति से देश के शिक्षित लोग अधिक परिचय प्राप्त करते थे। आर्य समाजियों पर राजनैतिक परिस्थिति का प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता था। विक्टर हाई स्कूल जालन्धर के प्रबन्धक श्री नारायणदास जी पर भी अंग्रेज सरकार की कोप दृष्टि हो गई। इन दिनों स्कूल के मुख्याध्यापक श्री काशीनाथ बी. ए., ऐल. एल. बी. नियुक्त हुए थे। ब्रिटिश सरकार ने श्री नारायण दास जी पर सरकार विरोधी कार्य करने का आरोप लगाया। उन्हें आदेश मिला कि वे जालन्धर छावनी में न रहें।

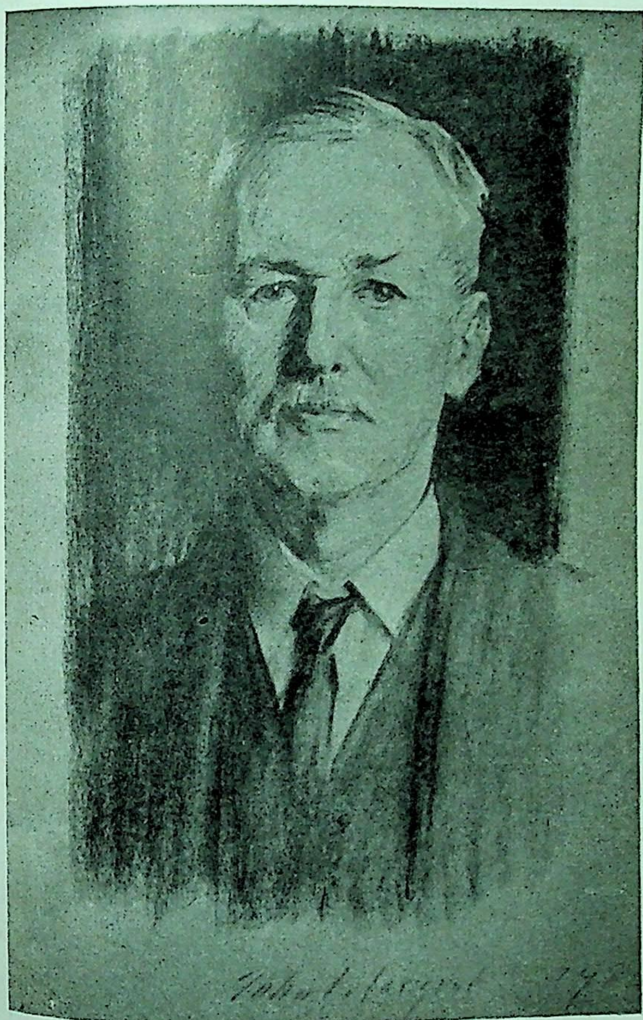
उन्हें विवश होकर वाहर जाना पड़ा उस समय स्कूल के प्रबन्ध करने का भार एक बार फिर मेरे पर आगया। मुझे अपना कार्य करते हुए स्कूल के निमित्त कई वार जालन्धर जाना होता था।

मुझ पर इस राष्ट्रीय चेतना का प्रभाव कुछ वर्ष पूर्व ही पड़ चुका था और इस आंदोलन की गति-विधियों से बहुत कुछ परिचित भी था। लोगों पर लोकमान्य तिलक का प्रभाव तो था ही पर उनके पश्चात् महात्मा गाँधी का प्रभाव शीघ्र ही बहुत बढ़ गया।

बम्बई में—१९२१ की जनवरी में मैकमिलन कम्पनी के मुख्य-संचालक श्री मॉरिस मैकामिलन भारत आये। मैं इस कम्पनी के प्रतिनिधिरूप में काम कर रहा था। उन्होंने मुझ से भी मिलने की इच्छा प्रकट की। अतः निमन्त्रण आने पर मैं बम्बई गया और उनसे भेंट की।

शिक्षा सम्बन्धी विषयों पर विचार-विनिमय करने के लिए समय निश्चित था। उस दिन नियत समय पर हम मिले। वहाँ बम्बई कार्यालय के मैनेजर श्री फ्राँसिस भी उपस्थित थे।

मैं जब उनसे मिला तो पहली बात जिसने मुझे प्रभावित किया वह थी उनकी आयु। वे वयोवृद्ध थे और इस वृद्धावस्था में भी दीखते थे स्वस्थ और सुदृढ़। उनके अँगों प्रत्यङ्गों में स्फूर्ति झलकती थी। दूसरी बात जिससे मैं चकित हुआ वह थी उनकी कम्पनी के विभिन्न कार्यों की विस्तृत जानकारी। इसमें उनकी सहायक थी एक स्मरण पुस्तिका जिस पर उन्होंने विभिन्न कर्मचारियों पर सम्यक् रूप से कुछ नोट लिखे हुए थे। कई विषयों पर विचार विनिमय हुआ। मैंने अपने अनुभव के अनुसार सब विषयों पर अपने विचार प्रकट कर दिये। उस समय की एक विशेष बात जो उल्लेखनींय हैं वह यह थी कि जब यह प्रश्न आया कि किस किस पुस्तक में क्या-क्या सुधार करने आवश्यक हैं तो मैंने एक पुस्तक का नाम लिया जिसे अंग्रेज़ी में "Modern Indian Worthies" कहते हैं। हिन्दी में उसे "वर्तमान



श्री मौरिस मैकमिलन

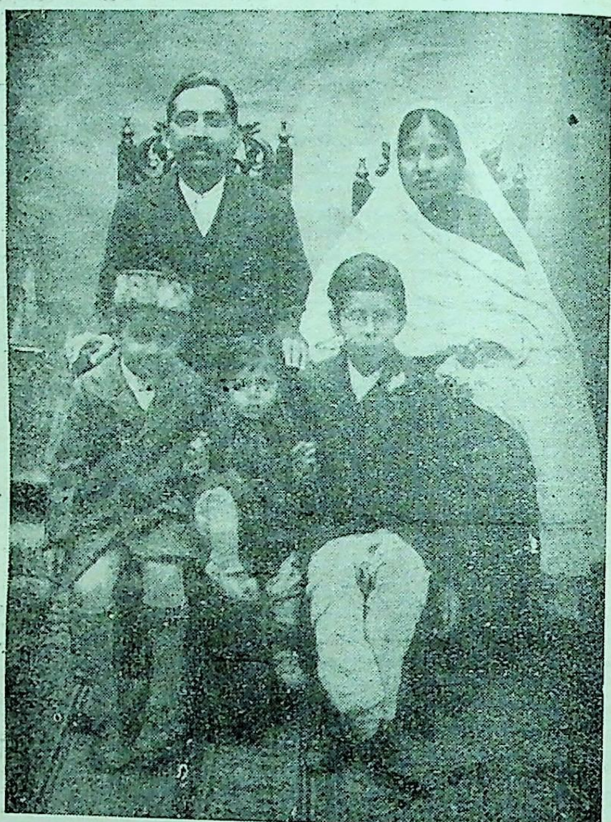
(By Courtesy of John Sargent A.R.A.)

भारत के निर्माता" कहा जा सकता है। मुझ से पूछा गया कि इसमें क्या नहीं है जो हमें और देने की आवश्यकता है। मैंने उत्तर में कहा कि इस में औरों के अतिरिक्त लोकमान्य तिलक और गाँधीजी की जीवनियाँ अवश्य होनी चाहिये। उनको यह बात नहीं भाई और उन्होंने इसका प्रत्युतर देते हुए कहा कि "गाँधी की जीवनी छापें, यह नहीं हो सकता। हम यह तो पसन्द करेंगे कि अपना बोरिया बिस्तर बाँध भारत से चले जायें इस की अपेक्षा कि गाँधीं का जीवन चरित्र छापें।" मैंने उत्तर में कहा, "यदि गाँधी जी को अपने कार्य में सफलता प्राप्त हुई, तो पुस्तक-प्रकाशक एक दूसरे से बढ़ चढ़ कर उनकीं जीवनियाँ छापने का आग्रह करेंगे। यदि उनके प्रयत्न सफलता न पा सके, तो दूसरी बात है।"

हो सकता है इस बात को उन्होंने कुछ अच्छा न समझा हो पर उन्होंने और कुछ नहीं कहा। मुझे भी इस से कोई चिन्ता न हुई। मुझे सन्तोष था कि मैंने जो ठीक समझा उसे वैसा ही कह दिया।

१९१९ के अन्त में हमारे यहाँ एक बालक का जन्म हुआ था। उसका नाम था राजेन्द्र। यह बालक बड़ा सुन्दर, स्वस्थ और सुडोल था। ज्यों ज्यों दिन बीतते गये त्यों त्यों उसका स्वास्थ्य बढ़ता गया, वह अच्छा हृष्ट-पुष्ट बनता जा रहा था, छोटी सो आयु में ही चलने-फिरने भी लग गया था।

मार्च १९२१ में लाहौर में भयानक इनफ्लुएंज़ा फैला। मेरी धर्म-पत्नी और बच्चे भी इस रोग में ग्रसित हो गये। राजेन्द्र को जो अभी एक वर्ष चार मास का ही था इस रोग के साथ निमोनिया भी हो गया। इसकी भरसक चिकित्सा की गई पर दैव को यह स्वीकार न था कि उसका सम्बन्ध हम से अधिक रहे। वह बालक १५ मार्च को प्रातः काल चल बसा। इसकी मृत्यु से हम सभी को दुःख हुआ।



मेरी धर्म-पत्नी और तीन पुत्र (१९२२ ई०)

१२ नवम्बर १९२१ को राजेन्द्र की मृत्यु के लगभग ८ मास पश्चात् पुत्र ओंप्रकाश का जन्म हुआ। इस बच्चे के जन्म से पिछला दुःख कम होने लगा और वात्सल्य भाव के कारण पिछली याद धीरे धीरे विस्मृत होने लगी।

५—शिमला-काँगड़ा भ्रमण

शिमला-काश्मीर-डलहौज़ी आदि स्थानों पर मैं भ्रमण कर चुका था। शिमला भी पंजाब का प्रमुख पर्वतीय स्थान था। वहाँ जाने की इच्छा स्वाभाविक ही थी। यह स्थान उन दिनों अंग्रेज़ों व उच्च श्रेणी के व्यक्तियों के भ्रमण के लिए प्रसिद्ध था। साधारण व्यक्ति वे ही वहाँ रहते थे जो किसी सेवा-कार्य में थे। शिक्षा की दृष्टि से भी यहाँ अंग्रेज़ बच्चों के अच्छे २ विद्यालय थे जहाँ मुझे जाने का अवसर होता था। मैं वहाँ के शिक्षण कार्य को अवश्य देखता।

४ अगस्त १९२२ को शिमला जाने के विचार से लाहौर से कालका मेल में बैठा। अगली प्रातः कालका पहुंच गया, यहाँ से शिमला को छोटी लाइन जाती है। इस गाड़ी के डिब्बे छोटे छोटे थे और उनकी संख्या भी ४-५ से अधिक न थी। शिमला के लिए इस गाड़ी में बैठ गया।

शिमला का जलवायु ठंडा है। इस लिए ग्रीष्म ऋतु में उसके शीतल जलवायु में स्वास्थ्य लाभ करने के लिए अनेक व्यक्ति वहाँ जाते हैं। उनके साथ प्रायः बड़े और भारी बिस्तर होते हैं। गर्म कपड़ों की भी वहाँ आवश्यकता होती है अतः सामान अधिक हो जाता है।

कालका स्टेशन पर सब सामान के बड़े बड़े नगों को बिस्तर सहित बुक कराना आवश्यक होता है पर इसमें बिस्तर का कोई किराया नहीं लिया जाता। इस सामान के लिए पृथक् एक डिब्बा नियत होता है। यदि सवारियों के डिब्बे में ही यात्री अपना सामान रख लें तो उनमें बैठना कठिन हो जाय।

मैंने भी इस प्रकार अपना सामान बुक करा लिया और गाड़ी में बैठ गया। नियत समय पर गाड़ी चल पड़ी। गाड़ी की चाल बड़ी धीमी थी। थोड़ी थोड़ी दूरी पर लाइन मुड़ती थी जहाँ गाड़ी के पहिये चीं चीं करते चल रहे थे। रेल पथ पहाड़ों में काट कर बनाया गया था। आवश्यकतानुसार पहाड़ों को काट कर उनमें सुरंगें भी बनाई गई हैं। शिमला-कालका के मध्य १०२ सुरंगें हैं। इनमें दो सुरंगे बहुत बड़ी हैं। एक तो कोटी स्टेशन पर आती है और दूसरी सोलन के पूर्व बड़ोग स्टेशन के निकट पड़ती है। तारा देवी की सुरंग भी अच्छी लम्बी है।

मैं मार्ग में सोलन उतरा। यह उस समय एक पहाड़ी रियासत थी, इसे बघाट कहते थे। सोलन इस राज्य की राजधानी थी। मैं यहाँ चार दिन ठहरा। प्रातः सायं भ्रमण में ही अधिक समय मैंने व्यतीत किया। इस समय ऋतु बड़ी सुहावनी थी। चारों ओर से खुली वायु तो बहती ही थी पर वहाँ के प्राकृतिक दृश्य भी बड़े सुहावने थे। यह स्थान शिमला जैसा शीतल तो न था पर फिर भी यहाँ गर्मी न थी।

८ अगस्त को शिमला पहुँचा। यहाँ दो सप्ताह ठहरा। पर्वतीय स्थानों में शिमला बहुत ही बढ़ चढ़ कर है। उस समय यहाँ के राज्य के प्रमुख अधिकारी गर्मियों में आकर शीतल वायु का लाभ उठाते थे। भारत की राजधानी दिल्ली से कई कार्यालय भी यहीं आ जाते थे। वायसराय के ठहरने के लिए एक विशाल भवन निश्चित था। वह सपरिवार गर्मियों में आता था। घुड़ दौड़ के लिए यहाँ पर अननडेल का विशाल मैदान है।

यहाँ की माल रोड पक्की बनी हुई है और बड़ी ही दृढ़ है। इस पर मैले कुचेले वस्त्र पहने और बोझा उठाने वाले लोगों को जाने की आज्ञा न थी। इस सड़क पर उच्च स्थिति के स्त्री पुरुष ही आते जाते दीखते थे। घोड़े मोटर पर केवल वायसराय अथवा प्रधान सेनापति ही जा सकते थे। यहाँ के सरकारी भवनों की विशालता भी दर्शनीय थी।

यहाँ यूरोपियन बच्चों की शिक्षा के लिए कई शिक्षा-केन्द्र थे जिनमें अंग्रेजी परिपाटी के अनुसार बच्चों की शिक्षा-दीक्षा होती थी। इनमें से कुछ शिक्षणालय कैथोलिक समुदाय की देख रेख में चलाये जाते थे। उन्हें कोनवेंट के नाम से पुकारा जाता था। ऐसे स्थानों पर केवल कन्याएँ ही शिक्षा पाती थीं। वहाँ की आचार्या को रेवरेण्ड मदर (पूज्य माता), अध्यापिकाओं को सिस्टर (बहन) कहा जाता था। ऐसे शिक्षणालयों में जहाँ उत्तम प्रकार की शिक्षा का प्रबन्ध था वहाँ उनका नियंत्रण भी सराहनीय था। बच्चों में माता-पिता तथा अध्यापिकाओं के प्रति बड़े आदर सम्मान के भाव भरे जाते थे और परस्पर एक दूसरे से प्रेम भाव का व्यवहार सिखाया जाता था।

अगले वर्ष १९२३ में पुनः जब मैं शिमले आया तो उस समय मेरा पुत्र सत्यव्रत भी मेरे साथ था। उसके साथ एक दिन मध्याह्न के समय जाकू पर्वत पर गये। यहाँ एक पुराना मंदिर है। यहाँ बन्दर भी भारी संख्या में हैं। जब यात्री ऊपर जाते हैं तो उन्हें आशा होती है कि इनसे कुछ खाने को अवश्य मिलेगा। यात्री भी अपने साथ भुने चने ले जाते हैं। वे उनके आगे खाने को बखेर देते हैं। वहाँ बन्दरों के झुण्ड के झुण्ड एकत्र हो जाते हैं। लोग ऐसा मनोरंजन की दृष्टि से भी करते हैं। मेरा पुत्र सत्यव्रत भी इस दृश्य से बड़ा प्रसन्न हुआ।

शिमला से लौटते हुए मार्ग में धर्मपुर ठहरे और वहाँ से कसौली, सनावर आदि स्थानों पर गये। सनावर में सरकार की ओर से बालक-बालिकाओं के लिए पृथक् पृथक् हाई स्कूल थे। अंग्रेज़ सैनिकों के छोटे बालकों के लिए एक पृथक् प्रारम्भिक विद्यालय भी था। हम कसौली में डाक बंगले में ठहरे हुए थे। एक दिन सायं काल के समय हम बाजार गये। वहाँ अपने परिचित श्री गोविन्दराम जी रहते थे। उनके यहाँ गये और वहीं भोजन किया। पर रात अधिक बीत गई, रात थी भी अंधेरी।

लौटते समय एक ऐसा स्थान आया जहाँ से दो तीन मार्ग जाते थे। हम मार्ग भूल गये। उस ओर चले गये जो डाक बंगले से बड़ी दूरी पर था। वहाँ अंग्रेज़ी सेना का कैंप था। थोड़ी दूरी पर ही हमें अंग्रेज़ी सेना के तीन सैनिकों ने ललकारा। हमारे उत्तर दे देने पर कि हम डाक बंगले को जाना चाहते हैं उन्होंने मार्ग बता दिया। हम साढ़े दस बजे अपने स्थान पर पहुंचे।

कसौली से कालका को धर्मपुर होते हुए भी जा सकते हैं और सीधे पहाड़ी मार्ग से भी। पगडंडी द्वारा पार करके जाने का यह मार्ग कसौली से कालका तक ६ मील का है। इस मार्ग पर टाँगे आदि नहीं चलते। धर्मपुर के लिये टाँगे मिल जाते हैं। वहाँ से फिर रेल मार्ग से जाना होता है। इस वर्ष तो मैं धर्मपुर मार्ग से ही कालका गया पर अगले वर्ष जब मैं इधर आया तो मैंने कसौली से सीधे कालका जाना अच्छा समझा। इसमें मुझे कोई कठिनाई प्रतीत न हुई। कालका पहुँच कर रात की गाड़ी से मैं प्रातः लाहौर पहुँच गया।

काँगडा को ओर--शिमला, कसौली आदि स्थानों को देखकर अभी लौटा ही था कि मेरा विचार काँगड़ा-धर्मशाला जाने का बन गया। यहाँ पर जाने का विचार केवल भ्रमण की दृष्टि से ही था। वैसे काँगड़ा जिला पंजाब में क्षेत्रफल में सबसे बड़ा है। हिमालय पहाड़ को चोटियाँ तथा घने वृक्षों की पंक्तियाँ इस पर्वतीय प्रान्त को अत्यन्त सुन्दर बना देती हैं। स्थान २ पर शिक्षणालय भी सरकार द्वारा चल रहे हैं। यह जिला कुल्लू तक फैला हुआ है जहाँ के लोग तब एक प्रकार से हम लोगों के लिए नवीन से थे। कुल्लू के सेब, ऊनी कम्बल तथा पशमीने की चादरें बड़ी प्रसिद्ध हैं, इसलिए ही इन स्थानों के नाम यदा कदा हमारी जीभ पर आते हैं। पर इनके मध्य योगेन्द्र नगर, पालमपुर, वैजनाथ, पपरौला, मंडी आदि स्थान भी अपनी विशेष महत्ता रखते हैं। मैंने इस सारे प्रान्त के भ्रमण की

योजना तो अभी न बनाई थी पर धर्मशाला तक जो इस ज़िले का प्रमुख नगर था जाने का विचार कर रखा था।

२४ अगस्त १९२२ को काँगड़ा जाने के विचार से लाहौर से पठानकोट नगर पहुँचा। वहाँ से काँगड़ा के लिए छोटी लाइन जाती है। यह लाइन काँगड़ा नगरोटा होती हुई योगेन्द्र नगर तक जाती थी। इस लाइन का पर्वतीय पथ भी शिमला के समान बड़ा सुन्दर है पर मार्ग में सुरंगें बहुत कम पड़ती हैं।

काँगड़ा एक ऐतिहासिक स्थान है। इस प्रदेश में निकट ही ज्वालामुखी पर्वत है। इसी कारण यहाँ १९०५ में एक विनाशकारी भूकम्प आया था। यह नगर उस भूकम्प से नष्टभ्रष्ट हो गया था। उसके पश्चात् आजतक नगर का वह समृद्ध रूप नहीं बन सका। कुछ ही मील की दूरी पर ज्वाला मुखी का एक मन्दिर है। मंदिर में स्वयमेव तीन चार स्थानों पर प्रतिक्षण ज्वाला निकलती है। वहाँ के पुजारी इसे देवीं का प्रभाव समझ कर घी द्वारा और तीव्र कर देते हैं और कभी बुझने नहीं देते। हिन्दुओं पर यह प्रभाव बैठ गया है कि यह देवी का चमत्कार है। यह तीर्थ स्थान उत्तर भारत के पर्वतीय निकटवर्ती स्थानों पर अपना बड़ा महत्त्व रखता है।

धर्मशाला—काँगड़ा के ज़िले का प्रमुख नगर है धर्मशाला। मैं वहाँ भी गया। उन दिनों वहाँ मोटर लारियाँ नहीं चलती थीं। इसकी ऊँचाई ५००० फीट है पर ऐवटाबाद के समान यहाँ नगर में टाँगे, कार, मोटरें नही चल सकते थे। यहाँ के दर्शक व निवासी पैदल ही एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते थे। बाद में पठानकोट से कांगड़ा, धर्मशाला, पालमपुर आदि स्थानों पर होती हुई पक्की सड़क कुल्लू तक बन गई है और बसों द्वारा भारी यातायात होने लगा है।

धर्मशाला का प्राचीन नाम भागसू है यह स्थान धर्मशाला से २००० फीट अधिक ऊँचा है। मैं इसे भी देखने गया। यहाँ देवदार के बड़े जंगल हैं। इसी नाम का एक बड़ा शीतल जल का स्रोत भी यहाँ पर है जिसमें प्राय: दर्शक स्नान करना आवश्यक समझते हैं। इस स्थान के निकट पर्वत से एक झरना भी गिरता है।

मैंने धर्मशाला में एक दो दिन व्यतीत किये। वहाँ से लौटता हुआ कोटला गया और पठानकोट होता हुआ रात की गाड़ी में बैठकर अगली प्रात: लहौर जा पहुँचा।

छोटी बहन का विवाह– फरवरी १९२३ में मेरी छोटी बहन अमरदेवी का विवाह था। लाहौर में रहते हुए भी अभी तक हमारे यहाँ सामाजिक कृत्य अपने ग्राम इस्लामगढ़ में ही होते थे। इस अवसर पर हम सभी वहाँ गये। मेरा विचार तो था कि अमरदेवी का विवाह किसी आर्य युवक से किया जाय और इसके लिए एक वर्ष पूर्व ही उसे सत्यार्थ-प्रकाश पढ़ाना आरंभ भी कर दिया था। किन्तु मेरे पिता जी ने अपने जान पहचान के एक सिख परिवार में उसका सम्बन्ध कर दिया। मेरे आग्रह पर उन्होंने यह स्वीकार कर लिया कि विवाह वैदिक-रीत्यनुसार ही किया जायेगा।

मेरे ग्राम में यह दूसरा वैदिक विवाह था। इस से बहुत वर्ष पूर्व मेरे ग्राम निवासी और उस समय के प्रसिद्ध आर्यसमाजी पं० कालूराम जी भूषण की बहन निहालदेवी का विवाह श्री प्रभुदयाल से हुआ था उक्त महाशय वर्षों तक गुजरात आर्यसमाज के प्रधान तथा वहाँ की पुत्री पाठशाला के एक मात्र संचालक के रूप में कार्य करते रहे।

अमरदेवी का विवाह २३ माघ के दिन इस्लामगढ़ में सम्पन्न हुआ। श्री हाकिम राय जी उस समय उस प्रदेश में आर्यसमाज के कार्य को प्रगति देने के लिए बड़े प्रयत्नशील थे। मेरी प्रार्थना पर वे भी सम्मिलित हुए और विवाह कार्य उन्होंने सम्पन्न कराया

विवाह के पश्चात् मैं शीघ्र ही लाहौर लौट आया क्योंकि मुझे एक अंग्रेज महोदय श्री हैसलप से मिलना था, वे उसी समय विलायत से पधारे थे। इसके पश्चात् अपने कार्य के सम्बन्ध में इधर उधर जाना पड़ा। गर्मियों में कुछ सप्ताह मैं मियादी बुखार से पीड़ित रहा। उधर रावलपिंडी में मेरी पत्नी की भांजी दुर्गादेवी का विवाह श्रीपेशावरीलाल छाबड़ा से हुआ। रुग्णावस्था में मेरा जाना सम्भव न था। मेरी धर्मपत्नी ही रावलपिंडी गईं और उस विवाह कार्य में सम्मिलित हुईं।

पुत्री का जन्म--इसी वर्ष आठ अगस्त को मेरी पुत्री सुशीला का जन्म हुआ। मेरी पहली पुत्री का नाम भी सुशीला था। वह छोटी आयु में कालकवलित हो गई थी उस स्मृति को स्थिर रखने के लिए इसका भी यही नाम रखा गया।

दो दुःख भरी घटनाएँ--मेरी माता मथुरा देवीजी लाहौर में निमोनिया से बीमार हो गईं। दो सप्ताह रोगी रह कर सितम्बर के अन्त में परलोक सिधार गईं। इस दुर्घटना से हमारे परिवार को बड़ा दुःख हुआ।

अभी माताजी की मृत्यु के आँसू भी न सूखे थे कि एक और असह्य दुःख देने वाली घटना ने हमें शोक सागर में निमग्न कर दिया। हमें पता लगा कि मेरी छोटी बहन अमर देवी के पति शादीवाल में बीमार हैं। इस समय उनकी बिमारी ने भयंकर रूप धारण कर लिया था और फरवरी १९२४ में उनका देहान्त होगया। मेरी वृद्धा दादीजी और पिताजी के लिए तो यह दुःख अत्यन्त कष्टदायक था मेरी धर्मपत्नी वहाँ गईं और अमरदेवी को अपने साथ लाहौर ले आईं। वहाँ उसकी शिक्षा आदि का यथोचित प्रबन्ध कर दिया गया।

६—काश्मीर में सपरिवार

दयानन्द-जन्म-शताब्दी

मेरी धर्मपत्नी अपनी बड़ी बहन के पुत्र देशराज के विवाह पर रावलपिंडी गई थीं। वहाँ से लौटते समय पुत्र ओंप्रकाश को निमोनिया हो गया। जब चिकित्सा से कुछ स्वस्थ हुआ तो हमने निश्चय किया कि इसे किसी पर्वतीय स्थान पर ले जाया जाय ताकि उसके स्वास्थ्य में वृद्धि हो।

तदनुसार १७ जुलाई १९२४ को मैं अपने परिवार के साथ काश्मीर के लिये चला। हम अगले दिन प्रातः रावलपिंडी पहुँचे। वहाँ से जाकर मरी में एक सप्ताह रहे। वहाँ प्रातः सायं भ्रमण करने से बड़ा आनन्द रहा। बच्चे तो समय २ पर घोड़ों की सवारी भी करते थे पर मैं और मेरी धर्मपत्नी पैदल ही घूमते थे।

मरी से पाँच अगस्त को काश्मीर के लिये चल पड़े। सायं हम दुमेल पहुँचे। यह स्थान वहाँ से ५० मील की दूरी पर है। यहाँ से जेहलम पार करके २ मील की दूरी पर मुजफ्फराबाद गये। इस समय मोटर बसें चलनी आरम्भ हो गई थीं। मोटर बस में बैठ कर ३ अगस्त को सायंकाल से पूर्व बारामूला पहुँचे।

यह स्थान जेहलम नदी के तट पर है, हम नदी तट पर सैर करने निकले। हमने वहाँ कुछ बग्गूगोशे, जो एक प्रकार की उत्तम श्रेणी की नाशपाती है, मोल लिये। हम ने नदी में नौकाविहार किया, फलों को जेहलम के शीतल जल में धोया फिर ठंडे और मधुर फल हम सबने मिल कर खाये। उनका एक एक दाना पाव पाव भर के लगभग था और एक एक पैसे को मिलता था। भारत के

अन्य स्थानों पर तो उसका मूल्य कई गुना था। अंधेरा होने से पूर्व ही हम अपने स्थान पर लौट गये।

अगले दिन प्रातःकाल श्रीनगर के लिये चल पड़े। बारामूला से श्रीनगर तक का मार्ग समतल है। ३३ मील तक सीधी सड़क है। सड़क के दोनों ओर सफेदे के ऊँचे ऊंचे वृक्ष लगे हैं। इस सुहावने दृश्य को देखते हुए हम श्रीनगर पहुँचे। वहाँ हम बर्बरशाह के घाट पर एक हाऊस-बोट में ठहरे।

अगले दिन रविवार था। हम हजूरी बाग आर्यसमाज के सत्संग में सम्मिलित हुए। दोपहर बाद नगर के निकट के प्रसिद्ध स्थान देखने चले। सर्वप्रथम हम चश्माशाही गये।

यह शुद्ध और शीतल जल का स्रोत है। इसके सामने ही एक सुन्दर वाटिका है। इस में बैठकर हमने भोजन किया। चश्माशाही का शीतल जल पाचक और स्वास्थ्यप्रद है अतः जल पीने की इच्छा बार बार होती है। इससे आगे निशात बाग और शालामार बाग दोनों ही बड़े सुन्दर उद्यान हैं। इनमें प्राचीन समय से फव्वारे लगे हुए हैं। रंग बिरंगे फूल क्यारियों में खिल रहे थे। ऊँचे ऊँचे सफेदे और चिनार के वृक्ष अद्भुत दृश्य उपस्थित करते थे। हम इन बागों में इधर उधर घूम कर उनकी सुन्दरता का आनन्द प्राप्त करते रहे। बच्चे दौड़ भाग में लगे रहे। निशात और शालामार देखकर हम हारवन गये।

यह स्थान श्रीनगर से ११ मील दूर है। यहाँ जल की एक बड़ी झील है जिसके दो ओर पर्वत हैं, उनसे ही यह जल यहाँ पहुँचता है। हम इन्हें देखकर लौट पड़े और सायं को अपने स्थान पर पहुँच गये।

साधारणतया लोग यह जानते हैं कि वहाँ के रहने वाले जेहलम नदी के किनारे पर भव्य गृहों में रहते हैं पर रहने के लिये वहाँ नौका-गृह भी हैं। इन नौकागृहों में रहने सहने के लिये सभी सुविधायें होती

है। खाने, पीने, सोने और बैठने के पृथक्-पृथक् कमरे होते हैं। रसोई के लिये एक पृथक् नौका साथ ही होती है जिसे डूँगा कहते हैं। इधर उधर जाने के लिए एक छोटी सी नौका और भी होती है जिसे शिकारा कहा जाता है। मानो वह नदी पर चलने का टाँगा है। हम ने एक ऐसे ही नौकागृह में अपने निवास का प्रबन्ध किया था।

एक घटना—एक दिन की बात है कि स्नान आदि के पश्चात् जब मैं संध्या कर रहा था तो मेरी धर्मपत्नी का पैर हाउस बोट से डूँगा में जाते हुए फिसल गया और वे नदी में गिर गयीं। शोर सुनने पर जब मैं बाहर निकला तो मुझे कुछ भी पता न चला। इतने में उनका शिर पानी से ऊपर उठा तो मेरी समझ में आया कि क्या बात हुई है। मैंने झट उन्हें पकड़ लिया और माँझी के एक छोटे से बालक की सहायता से ऊपर खींच लिया। वे पानी में डूबने से मूर्छित हो गई थीं। इन्हें थोड़ी देर लिटाया गया। आधा घंटा बाद उन्हें चेत हुआ।

अब हमें यह अनुभव हुआ कि नौकागृह का निवास भय से रहित नहीं है अतः किसी अन्य सुरक्षित स्थान की खोज आरंभ की। बहुत शीघ्र तो मकान मिलना कठिन था। हमने यह निश्चय किया कि निकट के स्थानों में बाहर जाकर कुछ दिन व्यतीत करें तदनुसार हमने अनन्त-नाग जाने की व्यवस्था की।

केसर का देश—इस निश्चय के अनुसार एक दिन श्रीनगर से अनन्तनाग के लिये ताँगे पर चल पड़े। उस समय तक वहाँ मोटर लारी नहीं चलती थी। अनन्तनाग वहाँ से ३३ मील दूर है। मार्ग में पामपुर पड़ता है। वहाँ केसर के खेत हैं। इसे "केसर का देश" भी कहते हैं।

एक और घटना—मार्ग में चलते हुए ताँगे का घोड़ा किसी किसी स्थान पर आकर रुक जाता था। एक ढलवान पर आकर तो घोड़ा ऐसा अड़ा कि कोचवान के चाबुक मारने पर भी न हिला। कोचवान के अधिक विवश करने पर पीछे की ओर लुढ़क गया। वहाँ से पन्द्रह बीस

फीट नीचे की ओर एक गढ़ा था। टाँगा गिरते-गिरते ढलवान पर एक वृक्ष से टकरा कर अटक गया। इस समय मेरा पुत्र ओंप्रकाश ताँगे की अगली सीट पर मेरी गोद में बैठा था। झटका लगने से वह नीचे गढ़े में गिर पड़ा। वहाँ काँटेदार झाड़ियाँ बिखरी पड़ी थीं। उसका सारा शरीर काँटों से छिद गया। मैं तुरन्त ही नीचे कूदा और उसे उठा लिया। उसके शरीर के काँटे आदि निकाले। मेरी धर्मपत्नी व अन्य बच्चे भी झट ताँगे से कूद कर नीचे हो गये। प्रभु की दया से इस समय सब बाल बाल बच गये।

साथ के नगर में पहुँच कर एक और टाँगा लिया और सायंकाल अनन्तनाग पहुँचे। वहाँ एक धर्मशाला में ठहरे। इस स्थान पर तीन ऐसे ताल हैं जिनमें से एक में स्वच्छ शीतल जल भरा था, दूसरे में गर्म जल आता था और तीसरे में गंधक का जल था। अगली प्रातः हमने तीनों सरोवरों में बारी बारी से स्नान करके वहाँ प्राकृतिक आनन्द का अनुभव किया। इस प्रकार सरोवरों में स्नान करने का मेरे परिवार के लिए यह पहला ही अनुभव था। यहाँ पर दो दिन रहकर नगर तथा बाहर के समीपस्थ स्थान घूम फिर कर देखते रहे। अनन्तनाग के फरश पर बिछाने के कालीन, नमदे, लोइयाँ तथा गब्भे प्रसिद्ध हैं। वहाँ से कुछ सामान हमने घर के वास्ते लिया।

श्रीनगर लौटकर कुछ दिन ठहरे। वहाँ पर स्थानीय पुत्री पाठशाला के प्रबंधक की प्रेरणा पर इस संस्था का निरीक्षण किया। सितम्बर के मध्य में हम लाहौर लौट गये।

इस समय तक मेरे पुत्र सत्यव्रत और इन्द्रदेव आठ वर्ष से उपर हो गये थे। उनका यज्ञोपवीत संस्कार वैदिक रीत्यनुसार दिसम्बर मास में हुआ। इसी अवसर पर पुत्री सुशीला का मुण्डन संस्कार भी हुआ।

फिल्लौर का किला—जनवरी १९२५ में मैं एक शिक्षा सम्बन्धी कार्य के लिए कपूरथला गया हुआ था, वहाँ से मैं फिल्लौर पहुँचा।

उस दिन लोहड़ी का पर्व था अतः वहाँ किला देखने का अवसर मिल गया। यह उस समय पंजाब पुलिस का शिक्षा-केन्द्र था। किले में मैंने देखा कि कर्मचारियों को कैसे शिक्षा दी जाती है, पुलिस के विभिन्न कार्यों के लिए कौन-कौन से स्थान हैं, ड्रिल का क्या स्वरूप है और शस्त्राभ्यास का प्रबंध कैसा है। इसके अतिरिक्त एक विशेष बात जो देखी वह यह थी कि वहाँ एक मुसलमान पीर अब्दुल्लाशाह बियाबानी का मज़ार था। वहाँ के एक पुजारी ने बताया कि यह किला मुगल काल में एक सराय के रूप में था। उस सराय के साथ उन्नीसवीं शताब्दी की एक घटना सम्बन्धित है। कहते हैं कि एक वृद्धा का इकलौता पुत्र किसी डाकू द्वारा उस समय मारा गया। जब महाराजा रणजीत सिंह उधर सैर पर आये तो वृद्धा ने महाराजा से शिकायत की कि यह स्थान सुरक्षित नहीं है इस पर महाराजा ने वहाँ पर एक किला बनवा दिया। इतिहास की दृष्टि से यह कहाँ तक सत्य है, मैं इस विषय में खोज नहीं कर सका। फिल्लौर से अम्बाला, जगाधरी, छछरौली आदि स्थानों पर जाकर कई व्यक्तियों को मिला।

दयानन्द जन्म-शताब्दी—

१९२५ की फ़रवरी में शिवरात्रि पर महर्षि दयानन्द-जन्म-शताब्दी महोत्सव मथुरा में बड़े समारोह से मनाया जाना निश्चय हुआ। महर्षि के जन्म को सौ वर्ष होने वाले थे। आर्यसमाज के लिये यह प्रेरणा देने वाला उत्सव था। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने इस अवसर पर उपदेशक विद्यालय खोलने का निश्चय किया था। श्री स्वामी सत्यानन्दजी ने आर्य समाजों से एक लाख रुपयों की अपील की। उनके अनथक प्रयत्नों द्वारा धन एकत्रत होगया। लाहौर गुरुदत्त-भवन में दयानन्द उपदेशक विद्यालय की स्थापना हुई और श्री स्वामी स्वतंत्रानन्द जी वहाँ के आचार्य बने।

जन्म-शताब्दी उत्सव की तिथियाँ १५ फरवरी से २१ फरवरी तक थीं, मैं १६ फरवरी की सायं काल मथुरा पहुँचा। मेरे मित्र श्री काशीराम भी सपरिवार नागपुर से पधारे थे। उत्सव कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण

रहा। आर्य समाज की हलचलें उत्साह प्रदान कर रही थीं, चारों ओर समाज रूपी सागर की लहरें उठ रहीं थीं, सम्मेलन हो रहे थे। श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज भी पधारे थे। श्री मुंशी नारायण प्रसाद जी, जो पीछे नारायण स्वामी जी बने, पहली बार उनके मैंने दर्शन किये थे। आचार्य रामदेव, महाशय कृष्ण, पं० विश्वंभर नाथ, डा० बालकृष्ण, प्रिंसिपल, राजाराम कालेज कोल्हापुर से मिलने का भी अवसर हुआ। अपने मित्रों में से श्री विष्णुदत्त पुरी, मुख्याध्यापक, बालकराम हाई स्कूल, पानीपत, उनके छोटे भाई श्री विश्वंभरदत्त, मिडिल स्कूल बैलून डलहौजी, श्री लालचन्द, मुख्याध्यापक, डी. ए. वी. स्कूल मुलतान आदि से भी मिलने का अवसर हुआ।

शताब्दी के अवसर पर एक बड़े भारी जलूस की व्यवस्था की गई थी। मार्ग में वह स्थान भी पड़ता था जहाँ महर्षि दयानन्द ने अपने गुरु श्री स्वामी विरजानन्दजी से शिक्षा प्राप्त की थी। वहाँ के कार्यकर्ताओं ने वह स्थान भी दिखाने का प्रबंध किया हुआ था, मैंने भी वह देखा। इसी प्रकार मैं महोत्सव में अगले दो दिन भी सम्मिलित रहा। पर मुझे दिल्ली विश्वविद्यालय में एक आवश्यक कार्य था अतः १८ को रात्रि को ही वहाँ से दिल्ली के लिए गाड़ी में बैठ गया।

दादी जी का स्वर्गवास—

मेरी दादी जी इस समय ६० वर्ष की आयु को पहुँच चुकी थीं। बचपन में मेरी माता जी के देहावसान के पश्चात् उन्होंने ही मेरा पालन पोषण किया था। उससे पहले भी वे मेरा सब प्रकार से ध्यान रखती थीं। जब मैंने डाक विभाग में काम करना आरम्भ किया तो वे ही मेरे साथ जाती रहीं। जब मैं जालन्धर में रहा तब भी बहुधा मेरे पास ही रहती थीं। लाहौर में निवास-स्थान बन जाने पर निरन्तर वहीं रहती रहीं। अब जब वे बीमार पड़ीं तो मैं कार्यवश बाहर गया हुआ था। मैं लौटकर क्या देखता हूँ कि वे मृत्यु शय्या पर पड़ी हैं। अभी श्वास चल



मैं, मेरी दादीजी, पिताजी, देशराज, इन्द्रदेव
और सत्यव्रत

रहा था। मैंने समझा कि सर्दी लगने से मूर्छा आ गई है। मैं तुरन्त ही पंडित ठाकुरदत्त मुलतानी के यहाँ से औषधि लाया पर मेरे लौटने से पूर्व ही उनके प्राण-पखेरू उड़ चुके थे।

दादी जी की मृत्यु से मुझे सूनापन-सा प्रतीत होने लगा। मुझे अनुभव हुआ कि मुझ पर से एक प्रेम का हाथ उठ गया है। मेरे जीवन में वास्तविक रूप से सरसता लाने का श्रेय दादी जी को ही था। पर विधाता के नियम अटूट हैं!

श्री हैसलप के साथ —

श्री हैसलप मैकमिलन कम्पनी की ओर से लाहौर आने वाले थे। मैं लायलपुर आदि स्थानों पर गया हुआ था। सूचना मिलने पर लाहौर लौट आया। १८ मार्च को वह भी नियत समय पर पहुँच गये। वे दो सप्ताह वहाँ ठहरे। मेरे साथ शिक्षा सम्बन्धी अवस्था का अध्ययन किया। मैं और वे डा० डनीक्लिफ़, प्रिंसिपल, गवर्नमेंट कालेज, सैण्ट्रल ट्रेनिंग कालेज के प्रिंसिपल, डा० व्हाइटहाउस, डी. ए. वी. कालेज के प्रो० देवीदयाल, शिक्षा-विभाग के अधिकारी रायबहादुर सुन्दरदास सूरी और डी. ए. वी. हाईस्कूल के प्रधानाध्यापक, बख्शी रामरतन से भी हमारी शिक्षा के सम्बन्ध में बातें हुईं।

अक्टूबर १६२६ में जब वे पुनः भारत आये तो उन्हें पेचिश का रोग हो गया। वे उपचार के लिए दिल्ली में हिन्दूराव हस्पताल में प्रविष्ट हो गये। तार मिलने पर मैं भी वहाँ गया। वे दो सप्ताह बिमार रहे। मैं प्रति दिन उन्हें देखता रहा और उनके उपचार के लिए डाक्टरों व नर्सों से वार्तालाप करता रहा। बीच में दो एक दिन तो उनकी अवस्था बड़ी चिन्ताजनक होगई। एक सप्ताह उन्होंने बड़ा कष्ट उठाया। १५ नवम्बर तक इस योग्य बन सके कि आराम कुर्सी पर बैठ सकें। इस कष्ट के पश्चात् श्री हैसलप के मन पर ऐसा भय छागया कि पुनः कभी भारतवर्ष में आने का साहस न कर सके।

एक प्राचीन ग्राम — १६३१ की मार्च में मैं रावलपिंडी गया हुआ था। इसके समीप ही १५–२० मील पर एक प्राचीन ग्राम काहूटा है।

इस ग्राम के विषय में मैंने पहले से ही बहुत कुछ सुन रखा था। मैं जब इस ग्राम को गया तो वहाँ प्राचीनता के चिह्न स्पष्ट दृष्टिगोचर हुए। लोगों के रहन सहन में प्राचीनता की झलक थी। वास्तव में वह ग्राम प्राचीनता का एक नमूना था। वहाँ लोगों के स्वास्थ्य सरलता, तथा शिष्टाचार साधारण व्यक्ति को भी प्रभावित किये बिना न रह सकते थे।

७—आर्यसमाज

लाहौर में स्थायीरूप से निवास करने पर मैं आर्यसमाज बच्छोवाली का सभासद बन गया। पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा का सदस्य तो मैं कई वर्ष पूर्व से चला आ रहा था पर अब उस के कार्यों में भी भाग लेने का अवसर मिल गया। सभा का मुख्य उद्देश्य वैदिकधर्म का प्रचार करना रहा है। इस कार्य की पूर्ति के लिए प्रान्त की सब समाजें प्रतिनिधिसभा के साथ सम्बन्ध रखती हैं। वैतनिक तथा अवैतनिक उपदेशक, प्रचारक और भजनोपदेशक आदि समाजों में जाते, प्रचार करते तथा शंका समाधान आदि करते हैं।

शिक्षा-प्रचार की दृष्टि से वेद-विद्या के प्रसार तथा ब्रह्मचर्य आश्रम के पुनरुद्धार के लिए गुरुकुल खुले हुए हैं। गुरुकुल काँगड़ी गुरुकुलीय-शिक्षा का मुख्य केन्द्र है। इसके संस्थापक श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज [पूर्व महात्मा मुंशीराम जी] के साथ २० वर्ष पूर्व से मेरा परिचय था। उनकी संरक्षता में मैंने संस्कृत का अध्ययन आरंभ किया था। शनैः शनैः मुझे गुरुकुल का कुछ कार्यभार भी सौंपा गया, विशेषतया प्रारंभिक विद्यालय का निरीक्षण-कार्य।

गुरुकुल से सम्बन्ध—मेरा विचार हुआ कि अपने पुत्र इन्द्रदेव को गुरुकुल में शिक्षा दिलाऊँ। मेरी धर्मपत्नी भी सहमत थीं। १९२४ के ईस्टर के अवकाश पर मैं परिवार सहित गुरुकुल के उत्सव पर गया। मेरे साथ मेरे पड़ोसी श्री लक्ष्मणदास आहूजा भी सपरिवार गये। उन्हें भी अपने दो पुत्रों का प्रवेश कराना था। इस वर्ष इन्द्रदेव का तो प्रवेश न हो सका पर उनका पुत्र परमानन्द प्रविष्ट हो गया।



लाहौर में (१९२५)

हम अगले वर्ष उत्सव में पुनः सम्मिलित हुए। इन्द्रदेव प्रविष्ट हो गया। नवीन ब्रह्मचारियों का वेदारंभ-संस्कार पूज्य स्वामी सत्यानन्द जी महाराज द्वारा हुआ। मैंने प्रविष्ट हुए ब्रह्मचारियों को आशीर्वाद देते हुए कहा :—

"ब्रह्मचारियो, तुम अपने माता-पिता, भाई-बहिनों को छोड़कर इस कुल में प्रवेश कर रहे हो। यह इसलिए कि तुम अपने मन तथा मस्तिष्क को उन्नत करके आत्मोन्नति कर सको और देश-जाति के सच्चे भक्त बन सको। तुम्हें यहाँ रह कर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना, तपोमय जीवन व्यतीत करना और घर के आराम को भूल जाना होगा। अब यहाँ के गुरुजन ही तुम्हारे माता-पिता भी हैं। उनकी आज्ञा पालन करना तुम्हारा परम कर्त्तव्य है, यह तुम्हें न भूलना चाहिए। तुम ब्रह्मचारीवर्ग को अपना भाई समझो, एक दूसरे से सहानुभूति रखते हुए विद्याध्ययन में जुट जाओ। अपना जीवन सफल बनाओ। इससे जहाँ तुम्हारा भविष्य उज्वल होगा वहाँ तुम्हारे माता-पिता भी कृत्य-कृत्य होंगे।"

जब मैं अपना वक्तव्य समाप्त कर चुका तो महाशय कृष्ण, जो मेरे पास ही बैठे थे और जिन्होंने मुझे बोलते हुए इससे पूर्व न सुना था, ऐसा प्रतीत हुआ कि इन शब्दों को सुन कर उन्हें प्रसन्नता हुई। उन्होंने ऐसा कुछ भाव प्रकट भी किया। समीप ही आचार्य रामदेव जी भी उपस्थित थे।

इस अवसर पर वैशाखी होने से अन्य भी बहुत से लोग हरिद्वार आये हुए थे। उनमें से कुछ गुरुकुल देखने भी आये। इससे गुरुकुल का समारोह और भी बढ़ गया। प्रचार तथा प्रभाव की दृष्टि से भी सफलता मिली। गुरुकुल के प्रति सभी में श्रद्धा की भावना बढ़ती हुई प्रतीत होती थी।

हमने उत्सव के पश्चात् आस-पास के स्थान भी देखे और १७ अप्रैल को लौटकर लाहौर चले गये।

आर्य प्रतिनिधि सभा—

सभा के वार्षिक साधारण अधिवेशन में प्रति वर्ष बजट आदि के अतिरिक्त अधिकारी वर्ग का चुनाव होता है। सभा के मंत्री पद पर महाशय कृष्ण कई वर्ष से बड़ी योग्यता से कार्य कर रहे थे। काम करने वालों के अपने पृथक् पृथक् ढंग होते ही हैं और उनमें त्रुटियाँ भी होती हैं। इसी कारण ऐसे वातावरण में मतभेद हो जाना संभव है। अतः सभा में भी अपनी २ नीति के आधार पर दो पक्ष बन गये थे। महाशय कृष्ण का पक्ष प्रबल था। पर अन्य पक्ष वाले भी प्रभाव रखते थे। उनमें भी कार्य करने की लग्न और उत्साह था, अतः उन्हें किसी किसी समय यह आशा हो जाती थी कि उनके पक्ष का भी कोई व्यक्ति मंत्री बन सकता है। इस पक्ष के नेता थे श्री काशीराम वैद्य। वे बड़े योग्य, अनुभवी, लग्नशील कार्य-कर्त्ता थे। वर्षों आर्य समाज वच्छोवाली के प्रधान रूप से सेवा करते रहे। वे प्रभावशाली वक्ता भी थे। श्रोताओं के बड़े से बड़े समूह को अपनी वक्तृत्व शक्ति के प्रभाव से मंत्रमुग्ध की भाँति अवाक् बना देते थे।

दूसरे पक्ष के नेता स्वयं महाशय कृष्ण थे जो आर्यसमाज में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाये हुए थे। वर्षों से सभा के मंत्री का कार्य योग्यतापूर्वक करते आ रहे थे। अपने व्यक्तित्व से आर्यसमाज के बहुमत को इन्होंने अपने हाथ में किया हुआ था। लेखन और वक्तृत्व शक्ति से जनता को वश में कर लेते थे।

इनके हाथ में दो पत्र थे। एक साप्ताहिक प्रकाश जो आर्यसमाज में प्रचारार्थ ही कार्य करता था। दूसरा दैनिक उर्दू प्रताप था, जो कार्य तो राजनैतिक क्षेत्र में करता था पर आर्यसामाजिक कार्यों का भी समर्थन करता था। इस प्रकार सभी पर इनका बड़ा प्रभाव था।

मैं इन दोनों पक्षों में से किसी का भी अनुयायी न था। यद्यपि मेरी मित्रता दोनों ही पक्षों के कार्यकर्त्ताओं से थी और जहाँ भी मुझे

समाज का हित प्रतीत होता था, मैं उनको सहयोग देता था। इस समय तक आर्यसमाज का नेतृत्व तो स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ही करते थे परन्तु आर्यसमाज के संगठन का कार्य महाशय कृष्ण कर रहे थे। श्री काशीराम जी वैद्य भी आर्यसमाज के प्रमुख कार्य-कर्त्ताओं में से थे।

उपर्युक्त दोनों पक्षों में अल्पपक्ष यत्नशील रहता था कि उसका बहु-पक्ष बन जाय। वह अपनी शक्ति को जाँचता ही रहता था। इस वर्ष जब मंत्री पद के लिए नाम आये तो उनमें महाशय जी का नाम प्रस्तावित हुआ। कुछ और नाम भी आये। कुछ व्यक्तियों ने तो महाशय कृष्ण के पक्ष में अपने नाम लौटा लिये। मैं अपना नाम लौटाने के लिए खड़ा हो ही रहा था कि कुछ सदस्यों ने मुझ से अनुरोध किया कि मैं ऐसा न करूँ और उनको यह जाँच करने का अवसर दूँ कि वे ऐसे चुनाव में क्या आशा रख सकते हैं।

परिणाम वही हुआ कि जिस की आशा थी। महाशय जी ही मंत्री निर्वाचित हुए। यहाँ एक बात और भी उल्लेखनीय है, और वह यह कि एक प्रतिनिधि ने उठकर यह प्रस्ताव किया कि यदि मुझे मंत्री पद पर निर्वाचित नहीं किया गया तो उपमंत्री पद अवश्य दिया जाय। इससे अच्छा मनोरंजन रहा क्योंकि उपमंत्री पद के लिये निर्वाचन की कोई व्यवस्था न थी।

गर्मियाँ आगई थीं, मैं शिमले चला गया। वहाँ मा०नत्थन लाल जी गवर्नमेंट स्कूल में कार्य करते थे। वे आर्यसमाज की उन्नति में विशेष भाग लेते थे। आर्य पुत्री पाठशाला के मंत्री भी थे। पदार्थ विद्या के विशेषज्ञ थे। उनसे जब भेंट हुई तो उन्होंने अनुरोध किया कि मैं वहाँ की आर्य कन्या पाठशाला का कार्य-निरीक्षण करूँ। तदनुसार मैंने ऐसा किया और उन्नति विषयक परामर्श दिये।

शिमला से लौटते हुए मैं कसौली, धर्मपुर और सनावर आदि स्थानों पर भी गया। सनावर में अंग्रेज बच्चों के लिये सरकार की ओर से कुछ

शिक्षा संस्थाएँ चल रही थीं। बालक-बालिकाओं के लिये पृथक् पृथक् दो हाई स्कूल थे। अध्यापक और अध्यापिकाओं के लिये एक ट्रेनिंग कालेज था। छोटे बालक-बालिकाओं के लिये एक आरंभिक विद्यालय भी चल रहा था। इस का प्रबंध केवल स्त्रियों के हाथ में था। क्योंकि वे ही माता के रूप में उनकी देखरेख और शिक्षा का ध्यान भली-भाँति रख सकती थीं। एक बात जो साधारण शिक्षालयों में न दीख पड़ती थी वह वहाँ स्पष्टरूप से विद्यमान थी कि स्थान और वस्त्रों की स्वच्छता व सुनियन्त्रण। सब बच्चों के लिए खेलना आवश्यक था और इस पर क्रियात्मक आचरण हो रहा था।

आर्य पुत्री पाठशाला-बच्छोवाली—

सितम्बर मास के अन्त में लाहौर लौट आया और आर्यपुत्री-पाठशाला बच्छोवाली की प्रबन्ध-कर्तृ-समिति की बैठक में सम्मिलित हुआ। इस बैठक में विचारणीय विषय यह था कि पाठशाला के कार्यक्रम में क्या नवीनता लाई जाय और यह किस प्रकार किया जाय। इससे पूर्व एक दो वर्षों से आर्यसमाज लाहौर के अधिकारियों व अन्य कार्यकर्ताओं में कुछ मतभेद पैदा होगये थे। ये मतभेद सिद्धांत सम्बन्धी न थे। इससे आर्य समाज की प्रगति तथा पाठशाला का कार्य शिथिल हो रहा था। बहुसंख्यक दल ने जब निर्वाचन में विजय प्राप्त की तो पाठशाला के प्रबन्ध में भी परिवर्तन स्वाभाविक था। मैं इस मतभेद से परिचित अवश्य था पर इसमें कोई भाग न लेता था। आचार्य रामदेव जी जब पाठशाला के अधिष्ठाता हुए तो उनकी प्रेरणा पर मैंने सहयोग देना स्वीकार कर लिया। आचार्य जी चाहते थे कि अभी वे लाहौर में रहकर समाज-सेवा करें पर सभा के अधिकारियों की इच्छा थी कि वे गुरुकुल के आचार्य-पद का भार संभालें। अन्त में उन्होंने इस बात को मान लिया और वे गुरुकुल चले गये। उनके गुरुकुल चले जाने पर मुझे अधिष्ठाता नियुक्त किया गया। आचार्य जी से पूर्व दो वर्षों की अनियमितता से पाठशाला

के कार्य में शिथिलता आ चुकी थी और छात्राओं की संख्या बहुत घट गई थी। सरकारी शिक्षा-विभाग से सम्बन्ध टूटने के कारण आर्थिक सहायता भी बन्द हो चुकी थी।

अगले दो वर्षों (१६२६-२७) में मैंने जहाँ सुयोग्य और ट्रेण्ड अध्यापिकाएँ रखीं वहाँ उनके कार्य का सावधानी से निरीक्षण भी करता रहा। अब शिक्षा-कार्य में उन्नति होने लगी। छात्राओं की संख्या बढ़ गई। संरक्षकों की प्रेरणा पर शिक्षा में अंग्रेज़ी को भी स्थान दिया गया। शीघ्र ही शिक्षा-विभाग के साथ सम्बन्ध स्थापित होगया तथा उससे पुनः आर्थिक सहायता प्राप्त होने लगी।

जाति-पाति-तोड़क मण्डल —

१६३० से दस वर्ष पूर्व का समय आर्यसमाज के लिए विशेष महत्त्व रखता है। देश में राजनैतिक आन्दोलन बड़े वेग से चल रहा था। आर्यसमाज के सदस्य भी उस ओर खिचे चले जा रहे थे। परन्तु आर्य समाज के कार्यकर्ता अपने कर्त्तव्य को नहीं भूले थे। आर्य समाज की ओर से प्रचार का कार्य भी उत्साहपूर्वक किया जा रहा था। जहाँ नगरों और ग्रामों में आर्यसमाज का प्रचार हो रहा था वहाँ आर्य-समाज के आदर्शों को क्रियात्मक रूप देने की ओर भी पग बढ़ाया जा रहा था। आर्यसमाज सामाजिक-मर्यादा को उन्नत करने का भी प्रयत्न करता था। जन्मजाति को आर्यसमाज निमूल मानता था और गुण कर्म-स्वभाव को ही वर्णव्यवस्था का आधार समझता था। परन्तु अभी तक इसको कोई क्रियात्मक रूप न दिया जा सका था। इससे उत्साही नवयुवकों के अन्दर असन्तोष उत्पन्न हो गया था। वे सोचने लगे कि वैदिक वर्णव्यवस्था को क्रियात्मक रूप देने के लिए यह आवश्यक है कि सर्व प्रथम जन्म की जाति-पाति को त्याग दिया जावे।

उपर्युक्त वातावरण में आर्यसमाज के कुछ सदस्यों ने मिलकर विचार किया कि एक ऐसी समिति का निर्माण किया जाय जो जन्म की

जाति-पाति के महत्त्व को निर्मूल करे। तदर्थ श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज की सेवा में एक डेपूटेशन गया। इसमें श्री सन्तराम, श्री भूमानन्द, श्री परमानन्द, श्री रोशनलाल, श्री नन्दलाल आर्य और उनके साथ मैं भी सम्मिलित था।

हम पूज्य स्वामी जी से मिले। उनसे इस सम्बन्ध में विचार-विनिमय हुआ। उन्होंने जन्म की जाति-पाति के विषय में वही मत प्रकट किया जो महर्षि दयानन्द का था। जहाँ उन्होंने जन्म की जाति-पाति सम्बन्धी कठिनाइयाँ दूर करने की हमें प्रेरणा की वहाँ उन्होंने यह भी कहा कि जाति का आधार गुण-कर्म-स्वभाव है और इसी पर हमें बल देना चाहिए। यह भी कहा कि जाति से तात्पर्य ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्णों से है।

इस लक्ष्य को संमुख रखते हुए "जाति-पाति-तोड़क-मंडल" की स्थापना हुई। लाहौर आर्यसमाज के उत्सव पर इस मंडल ने अपना एक विशेष सम्मेलन बुलाया। तथा प्रगतिशील संस्थाओं ने इस का अच्छा स्वागत किया। जब कभी इस मंडल की ओर से सम्मेलन होता तो जो अन्तरंग सदस्य इस विचारधारा के न थे वे इसकी प्रगति में बाधा डालने का प्रयत्न करते थे। इस लिए आर्यसमाज बच्छोवाली के जो सदस्य इस विचार को ठीक समझते थे और मंडल की सफलता चाहते थे उन्होंने एकत्र होकर निश्चय किया कि आर्यसमाज बच्छोवाली के वार्षिक चुनावों में उन्हीं को मत दिया जावे जो इन विचारों के समर्थक हों। तदनुसार १९३३ में जब चुनाव हुआ तो मैं प्रधान, श्री रोशनलाल उपप्रधान तथा श्री नारायणदास बहल मंत्री निर्वाचित हुए।

चुनाव के पश्चात् यह यत्न किया गया कि जहाँ पारिवारिक सत्संगों की प्रथा पर बल दिया जाय वहाँ पुरोहित जी का आर्य समाज के कार्यक्रम

में यह कर्त्तव्य निश्चित किया गया कि जिन-जिन आर्यपरिवारों में अविवाहित पुत्र व पुत्रियाँ हैं, उनके विवरण लिखकर एक सूची बनावें जिससे उनके गुण, कर्म, स्वभावानुसार विवाह सम्बन्ध निश्चित करने में सरलता हो। यह कार्य-क्रम शीघ्र ही आरंभ कर दिया गया।

इस मंडल के मंत्री के रूप में वर्षों तक श्री सन्तराम, बी० ए० कार्य करते रहे और पीछे प्रधान भी रहे। मैं भी कुछ वर्षों तक सहयोग देता रहा। दो चार बार मंडल का उपप्रधान भी रहा और अन्तरंग सदस्य तो निरन्तर चुना जाता रहा। ६-७ वर्ष तक तो इसी प्रकार कार्य चलता रहा।

शिक्षा-सम्बन्धी लेखन-कार्य— इस वर्णन के साथ-साथ कुछ निजीकार्य सम्बन्धी बातें भी लिखदूँ तो अनुचित न होगा। १९२४-२५ में अपने शिक्षा सम्बन्धी कार्य करते हुए कुछ पाठ्य-पुस्तकें लिखने का कार्य भी किया। प्रारंभिक श्रेणियों के लिए गणित और महापुरुषों के जीवन पर तीन तीन पुस्तकें लिखीं। प्रथम श्रेणी के लिए एक प्राइमर भी लिखी जो पंजाब में पाठ्य-पुस्तक के रूप में पढ़ाई जाती रही और जो इसके अतिरिक्त देहली, बंगाल और बिहार में भी प्रचलित रही।

पुनः डलहौज़ी में—डलहौज़ी बड़ा सुन्दर पर्वतीय स्थान है। इस वर्ष वहाँ प्रो० शिवदयालु जी जाकर ठहरे हुए थे। मैं भी वहाँ गया तो आरंभ में उन्हीं के पास ठहरा। वहाँ भ्रमण करने का कार्य नित्य-प्रति होता रहा। मेरे साथ स्थानीय स्कूल के मुख्याध्यापक श्री विश्वंभरदत्त भी जाते थे। एक दिन हम कालाटोप पर श्री सूर्यभान के यहाँ गये थे कि वहाँ वर्षा आरंभ हो गई। वर्षा के समाप्त होने पर वहाँ का दृश्य बड़ा रमणीय प्रतीत हुआ। हम भ्रमण करने आगे जंगल में निकल गये। जंगल में दयार, चील, कैल, और तुन के वृक्षों के अतिरिक्त चिकड़ी और सन्नाह के वृक्ष भी अपनी अद्भुत शोभा दिखा रहे थे। इसी प्रकार स्वास्थ्य-वृद्धि करते हुए अगस्त मास व्यतीत होगया।



डलहौज़ी से लाहौर लौटने पर विक्टर-हाईस्कूल सम्बन्धी समस्या सुलझाने के लिए जालन्धर गया। १६२२ में वहाँ के संचालक श्री नारायणदास जी वकील का देहान्त होगया था। ये जालन्धर आर्यसमाज के प्रधान भी थे। उनके पश्चात् स्कूल की प्रबन्ध कर्तृसभा ने श्री विश्वंभरदयालु को प्रबन्धक और मुझे मंत्री नियुक्त किया।

गुरुकुल काँगड़ी में—जालन्धर से लौटकर १० और ११ सितम्बर को हरद्वार जाकर मायापुर में गुरुकुल काँगड़ी के प्रारंभिक विद्यालय का निरीक्षण किया। मेरे साथ श्री स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज भी थे। श्री स्वामी जी ब्रह्मचारियों की दिनचर्या, उनके कार्य व्यवहार और स्वास्थ्य के सम्बन्ध में विशेष रुचि रखते थे और प्रत्येक बात की तह तक पहुँचते थे। साधारणतया वे बड़े सरल स्पष्ट हितयुक्त भाव से सब कार्य देखते और उसपर प्रेमपूर्वक सम्मति देते थे। हाँ त्रुटियाँ दिखाने में किसी प्रकार का संकोच न करते थे। निरीक्षण कार्य के पश्चात् आचार्य रामदेव जी से मिलकर उनके सामने आवश्यक परामर्श रखे और उनसे इस विषय में वार्तालाप भी की। अगले दिन सनातन धर्म द्वारा संचालित ऋषिकुल विद्यालय हरिद्वार जाकर देखा। वहाँ कोई ऐसी नवीनता न दीख पड़ी जिससे लाभ उठाया जा सके।

आर्य प्रतिनिधि सभा—कई वर्षों से मैं पंजाब-आर्य-प्रतिनिधि-सभा का अन्तरंग सदस्य निर्वाचित होता आया था। इस बार जब साधारण सभा का अधिवेशन हुआ तो मैंने श्री भीमसैन विद्यालंकार द्वारा इस विषय का एक प्रस्ताव प्रस्तुत करने का अनुरोध किया कि जहाँ अन्तरंग सभा के लिए प्रतिष्ठित सदस्यों का चुनाव होता है, वहाँ आर्यसमाज के सदृश प्रतिनिधियों के समूह बनाकर उनमें से प्रतिनिधि रूप से भी कुछ सदस्य अन्तरंग सभा में लिए जाया करें। यह प्रस्ताव उपस्थित हुआ और स्वीकार भी हो गया। इसका प्रभाव मुझ पर भी पड़ा। इससे पूर्व

में वर्षों तक अन्तरंग सभा में लिया जाता रहा था परन्तु इस नई प्रथानुसार मुझे प्रतिष्ठित सदस्यों में स्थान मिलना समाप्त हो गया और समूहों द्वारा भी प्रतिनिधि रूप से अन्तरंग सभा में जाना दुष्कर होगया क्योंकि इसके लिए घूम-फिर कर प्रतिनिधियों से कहना अनिवार्य था। इसे अपनी रुचि के अनुसार न पाकर मैंने एक बार से अधिक प्रयत्न नहीं किया अतः कई वर्षों से मैं अन्तरंग सभा में नहीं आया। हाँ विद्यासभा द्वारा सेवा का अवसर अवश्य मिल रहा है।

———

८—भारत की सीमा पर

कन्धार की ओर

क्वेटा के लिए—भारत के सीमाप्रान्तीय स्थानों में कन्धार (गान्धार) की ओर क्वेटा और चमन महत्वपूर्ण स्थान हैं। इन स्थानों में चमन अंगूरों के लिए बड़ा प्रसिद्ध रहा है। क्वेटा एक बार पूर्व भी देख चुका था, पर उससे आगे चमन अभी न देख पाया था। १६ सितम्बर १६२५ को जब मैं क्वेटा के लिए पुनः चला तो यह भी इच्छा हुई कि इस बार चमन भी देखना चाहिए। गाड़ी ज्यों-ज्यों क्वेटा के मार्ग पर चलती जा रही थी त्यों-त्यों धूल भी बड़े वेग से उड़ती जा रही थी। यह अवस्था सिंध तक रही। हम धूल से भर गये। दिन में तो मार्ग के दृश्य रोढ़ी तक दीख पड़ते रहे पर रात्रि को कुछ दृष्टिगोचर न हुआ।

जब गाड़ी क्वेटा स्टेशन पर पहुँची तो प्लेटफार्म पर मेरे मित्र श्री सरदारचन्द्र आये हुए थे। क्वेटा में उनकी माता जी भी साथ थीं, उनसे मिलने पर मुझे वे सब बातें स्मरण आ गईं, जब कि हम एक साथ जालन्धर में रहते थे। उस समय उनका स्नेहमय हाथ मेरे परिवार पर था। उससे पूर्व श्री सरदार चन्द्र विक्टर हाई स्कूल में ही मुझसे शिक्षा पा चुके थे। इस समय वे एम०ए०, बी०टी० पास करके यहाँ के डी० ए० वी० हाई स्कूल में प्रधानाध्यापक का कार्य कर रहे थे। मैंने इनके साथ एक सप्ताह से अधिक व्यतीत किया। हम प्रातः सायं भ्रमण के लिए इकट्ठे ही बाहर जाते रहे। इसी बीच में मैंने उनका स्कूल भी देखा और उनके कई मित्रों से मेरा परिचय भी हुआ।

पर्वत के शिखर पर—एक दिन मैं और सरदार चन्द्र जी सायंकाल को समीप के एक पर्वत पर भ्रमण के लिये गये। मार्ग में कुछ दूरी पर एक शुद्ध और पवित्र जल का सरोवर देखा। वहाँ एक छोटी सी वाटिका भी थी। थोड़ी देर वहाँ बैठ कर हमने साथ के पर्वत पर चढ़ना प्रारम्भ किया। एक पगडंडी द्वारा उपर चढ़ते गये और शिखर पर जा पहुँचे। इस कार्य में हमें कठिनाई प्रतीत न हुई। पर्वत के शिखर पर शीतल वायु चल रही थी। चारों ओर जो पर्वत दीख रहे थे उन पर घास तो न थी, किन्तु यहाँ का दृश्य बड़ा ही सुन्दर दिखाई देता था। पर्वत के शिखर पर एक समतल स्थान था जहाँ थोड़ी देर घूमे फिरे। कुछ देर के पश्चात् अंधेरा होने लगा। हमने सोचा कि अब हमको नीचे उतरना चाहिए। जब हम नीचे को उतरने लगे, तब मार्ग आँखों से ओझल हो गया और ऐसा दीखने लगा कि यहाँ से नीचे जाने के लिये कोई पथ नहीं है। मन में आया कि किसी दूसरी ओर से नीचे जाने का विचार करना चाहिए। हमको यह भी भय था कि अंधेरा हो रहा है। यदि इधर उधर भटक गये तो ऊपर आना कठिन हो जायेगा। न नीचे ही जा सकेंगे और रात्रि को इसी स्थान पर ठिठुर कर समाप्त हो जायेंगे। यदि बच भी गये तो जंगली पशुओं से खाये जाने का भय था। हममें निराशा की मात्रा बढ़ने लगी। यह भी भय था कि यदि मार्ग में सीधा उतरना प्रारम्भ कर दिया तो सम्भव है किसी ढलवान से गिरकर प्राण देने पड़ें। अन्त में निश्चित दीखने लगा कि या तो हम यहीं समाप्त हो जायेंगे या छलाँग मार कर अथवा फिसल कर नीचे जा गिरेंगे। इन दोनों अवस्थाओं में जीवन की आशा थोड़ी ही थी। ऐसी निराशा में हम दस पग ही आगे बढ़े थे कि मार्ग स्पष्ट दीख पड़ा और उससे हमने नीचे उतरना प्रारम्भ कर दिया। हमने परमात्मा को धन्यवाद दिया कि उसने

हमारी ऐसी विकट स्थिति में रक्षा की । यहाँ से कोई एक घण्टे में लौट कर हम घर पहुँचे ।



श्री सरदारचन्द्र, ऐम० ए० (१६२५)

२६ सितम्बर को दशहरे का अवकाश आरंभ होता था। मैंने सरदारचंद्र जी से चमन चलने के लिये कहा। उनके सहमत होने पर हम दोनों चमन जाने वाली गाड़ी में बैठ गये। रेल मार्ग से चमन ८६ मील दूर है। चमन में सरदारचंद जी के एक परिचित सज्जन रहते थे उनके यहाँ हम जाकर ठहरे। उनकी जानकारी रेलवे-स्टेशन पर भी थी। उनसे चमन तथा उसके निकटवर्ती स्थानों की जानकारी प्राप्त की।

चमन साधारणतया अंगूर की भूमि समझी जाती है परंतु वहाँ पर अंगूर बहुत थोड़ी मात्रा में होता है और होता भी बहुत साधारण प्रकार का है। अच्छा अंगूर कन्धार एवं अन्य निकटवर्ती स्थानों से आता है। अनार तथा अन्य फल भी कन्धार की ओर से आते हैं। स्टेशन के समीप एक बड़ा शेड (shed) बना हुआ है। पठान लोग जो फल आदि अफ़गानिस्तान से गधों पर लादकर लाते हैं, उस स्थान पर लाकर उतार देते हैं। यहाँ पर फलों की टोकरियों को बिना खोले ही निलाम कर दिया जाता है।

यह कहना अनावश्यक न होगा कि चमन में वह रेल-गाड़ियाँ भी खड़ी होती हैं जिनके द्वारा अंगूर बाहर भेजा जाता है। इन गाड़ियों में यह विशेषता होती है कि गर्मी होने पर भी फल सुरक्षित रहता है। गर्म ऋतु का प्रभाव इन गाड़ियों पर नहीं होता क्योंकि इनमें बर्फ लगी होती है।

कन्धार की सीमा पर—इस दिन २७ सितम्बर की सायंकाल सरदार चन्द जी और मैं चमन रेलवे स्टेशन से घूमते हुए कुछ दूरी पर जा रहे थे। हमें यह बताया गया था कि रेलवे स्टेशन से थोड़ी दूरी पर ही अफगानिस्तान की सीमा आरम्भ हो जाती है। यदि कोई व्यक्ति बिना आज्ञा-पत्र लिये वहाँ चला जाये और उस पर कोई व्यक्ति

आक्रमण कर दे तो भारत सरकार इसमें कोई हस्तक्षेप नहीं करती। हमने इस बात को साधारण ही समझा और इस पर कुछ ध्यान न देते हुए कुछ दूर आगे चले गये। अभी बहुत दूर न गये थे कि एक पठान हमारी ओर आता हुआ दिखाई दिया। हमें सन्देह हुआ कि यह अवश्य ही हम पर आक्रमण करना चाहता है। हम दोनों रेलवे स्टेशन की ओर वापिस चल दिये। वह भी हमारे पीछे-पीछे हो लिया। हम भयभीत हो गये क्यों कि यदि वह हम पर वार कर देता तो हमारे पास अपनी रक्षा के लिये कोई साधन न था। यह हम जानते थे कि पठान लोग साधारणतया अपने पास बन्दूक छुरा या अन्य शस्त्र अवश्य रखते हैं। हम तनक तेज़ी से पग बढ़ाने लगे और स्टेशन के कुछ समीप आ गये। इतने में हमने पीछे मुड़कर देखा तो वह दूसरी ओर मुड़ रहा था। हो सकता है कि वह किसी काम जा रहा हो पर हमने ऐसा अनुभव किया कि हम एक बार फिर संकट से बचे हैं। हमने अपने स्थान पर आकर परिचित व्यक्तियों से इस घटना को बताया तब उन्होंने कहा कि ऐसे निर्जन स्थानों पर आक्रमण हो जाना साधारण सी बात है।

२६ सितम्बर को हम चमन से क्वेटा लौट आये। अगले दिन मैंने वहाँ की आर्य-पुत्री-पाठशाला का निरीक्षण किया। वहाँ के गवर्नमेंट हाई स्कूल के प्रधानाध्यापक थे श्री नेमतराय। ये भी मुझसे जालन्धर में शिक्षा पा चुके थे, यहाँ इनसे मिलने का अवसर हुआ। एक दिन इनके निमंत्रण पर मैंने इनके यहाँ भोजन भी किया। वहाँ इनके पिता श्री चौथूराम जी से भी भेंट हुई। वे मेरे पुराने मित्र थे और कई वर्ष पूर्व जालन्धर छावनी में मेरे साथ वहाँ की आर्यसमाज में काम कर चुके थे। अब यह बृद्धावस्था में अपने पुत्र के पास विश्राम कर रहे थे।

वहाँ के शिक्षणालयों के निरीक्षक थे खाँ साहब नजम्मुद्दीन। मैं उनसे भी मिला और शिक्षा सम्बन्धी विषयों पर उनसे वार्तालाप की।

एक प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्होंने बताया कि यद्यपि यह प्रदेश और प्रान्तों से बहुत पीछे है तो भी वहाँ का शिक्षा-विभाग उसे ऊँचे स्तर पर ले जाने का भरसक प्रयत्न कर रहा है। उनसे हुए वार्तालाप से ऐसा प्रतीत हुआ कि वे संकुचित जातीय भेद-भाव से ऊँचे हैं और इस आधार पर किसी को अनुचित हानि लाभ पहुँचाने के विरोधी हैं। क्वेटा से लौटकर मैं लाहौर गया। एक सप्ताह वहीं ठहर कर मैंने कार्य की ओर ध्यान दिया। इस बीच में मुलतान शिक्षा-सम्मेलन का निमन्त्रण आ गया और उसमें भाग लिया। वहाँ शिक्षा-कार्य को उन्नत करने की योजनायें उपस्थित की गईं। उनपर वाद-विवाद भी हुआ। शिक्षा सम्बन्धी सामग्री की प्रदर्शनी का भी आयोजन किया गया। इसमें पुस्तकें, मानचित्र तथा कन्याओं का शिल्पसम्बन्धी सामान भी प्रदर्शित था। इसमें शिक्षकवर्ग को अच्छी जानकारी प्राप्त हो सकती थी।

लाहौर लौट कर मैं कुछ दिन वहीं ठहरा। अब मेरा अपनी जन्म-भूमि के दर्शनार्थ जाने का विचार हुआ। इन्हीं दिनों २७ अक्तूबर १९२५ को हमारे यहाँ एक बालक का जन्म हुआ। जिसका नाम बाद में बलराज रखा गया। एक सप्ताह के लिए मैं जलालपुर जट्टाँ गया। वहाँ अपने दो पुराने शिक्षकों मा० पीराँ दित्ता तथा मा० ताले मंद से मिला। अपने पुराने सहपाठी श्री देवी दास से भी मिलने का अवसर हुआ। ये उस समय विक्टोरिया भ्रातृ हाई स्कूल में मुख्याध्यापक थे।

यहाँ से मैं अपने जन्मस्थान इस्लामगढ़ गया। वहाँ जाकर अपना घर देखा। इन दिनों हमारे परिवार का कोई व्यक्ति भी वहाँ न था। मेरे पिता जी लाहौर में ही थे। पुराने परिचित व्यक्तियों से मिलकर ग्राम सम्बन्धी परिचय प्राप्त किया। कुछ पुराने मित्रों ने यह इच्छा प्रकट की कि मैं वर्ष में एक बार अवश्य वहाँ आकर कुछ समय रहा

करूँ इससे जहाँ मुझे स्वास्थ्य लाभ होगा वहाँ ग्राम के लोग भी कई अंशों में लाभ उठा सकेंगे। इस पर मेरी भी यह इच्छा हुई कि अपने गिरते हुए घर को पुनः बनवाया जाय जिससे यहाँ कभी आकर रहें तो असुविधा न हो।

शिक्षा-सम्बन्धी अपने कार्य करने के लिए मैं कुछ स्थानों पर होता हुआ जेहलम पहुँचा। वहाँ मुझे अपने स्कूल समय के एक अध्यापक मास्टर ढेरासिंह के दर्शन हुए। ये मुझे कई वर्षों पीछे मिले थे अतः इनसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। यहाँ से मैं रावलपिंडी गया। वहाँ डी० ए० वी० कालेज के प्रिंसिपल श्री रामदित्ता मल से मिला। वे बड़े सज्जन व्यक्ति थे, उनसे मिलकर मुझे सदा आनन्द होता था वे बड़े प्रसन्न मुख थे, और बड़े आदर और प्रेम से मिलते थे। उनके साथ आर्यसमाज तथा शिक्षा सम्बन्धि विचार-विनिमय हुआ।

अगले मास लायलपुर गया। वहाँ मुझे एक कार्य यह भी था कि मेरा छोटा भाई देशराज इस समय २५ वर्ष से ऊपर हो चुका था। वह शिक्षा पाकर अपने कार्य में लग गया था। उसके विवाह सम्बन्धी वार्तालाप करने के लिए मैं अपने मित्र श्री दीवान चन्द द्वारा डा० रामशरणदास से मिला। इस बातचीत के परिणाम स्वरुप उन्होंने शगन भी दे दिया। विवाह की तिथि भी निश्चित होगई। मैं वहाँ से लाहौर लौट गया।

१९२६ फरवरी में बसन्त पंचमी आई। यह पर्व इन दिनों लाहौर आर्य समाज की ओर से विशेषरूप से मनाया जाता था। इस में आर्य नर-नारी अपने बच्चों सहित सम्मिलित होते थे। यहाँ बालक बालिकाओं में खेल कूद तथा धर्मशिक्षा सम्बन्धी विषयों पर प्रतियोग्यताएं होती थीं और उनके परिणाम पर पारितोषिक भी दिये जाते थे। यह एक ऐसी परिपाटी चली थी जो पाकिस्तान बनने से पूर्व वहाँ अक्षुण्णरूप से चलती रही।

यह उत्सव गत वर्षों की भाँति गुरुदतभवन में मनाया गया। इस में वच्छोवाली आर्य-पुत्री पाटशाला की कन्यायें भी सम्मिलित हुईं। मैं पाटशाला का अध्यक्ष भी था अत: इसके प्रबंध में भाग लेना मेरे लिए और भी आवश्यक होगया। सायंकाल पारितोषिक वितरण के पश्चात् बालक-बालकाओं को सदाचार सम्बन्धी उपदेश भी दिये गये।

कुछ दिन पीछे मैं पेशावर गया वहाँ जब कभी जाता तो नैशनल हाई स्कूल के प्रधानाध्यापक श्री भगत राम से अवश्य मिलता। वे मेरे पुराने मित्र थे इस बार भी उनसे भेंट हुई। इनसे जहाँ आर्यसमाज के प्रचार के सम्बन्ध में वार्तालाप चली वहाँ धर्म-शिक्षा के सम्बन्ध में भी प्रकाश मिला। इनके अनुभव जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

इसके अतिरिक्त वहाँ इस्लामिया हाई स्कूल के प्रधानाध्यापक, मौलवी अब्दुलरहीम रियाज़ से मिला। उनसे मेरा परिचय १९०७ से था जबकि हम एक साथ महेन्द्र कालेज पटियाला में पढ़ते थे। उन्होंने इतनें वर्षों के पश्चात् मिलने पर भी बड़ा प्रेम प्रकट किया।

यहाँ से मैं मुलतान होते हुए डेरा गाज़ी खाँ गया। वहाँ हिन्दू हाई स्कूल के प्रधानाध्यापक श्री राम रतन वर्मा से मिला। वे बड़े सुहृदय व्यक्ति थे। उनसे मिलकर इस नगर की शिक्षा सम्बन्धी जानकारी प्राप्त की।

यहाँ मौलवी गुलाम रसूल शौक से भी भेंट हुई। यह उस समय डेरागाजी खाँ के जिला इन्सपेक्टर थे। ये उर्दू के अच्छे कवि थे और लेखक भी। इन्होंने कुछ अपने लेख पढ़कर भी सुनाये। उनकी इच्छानुसार मैंने उन्हें परामर्श दिया कि किस प्रकार उनकी रचना छात्र-छात्राओं के लिए अधिक उपयोगी हो सकती है।

मुलतान डिवीज़न के इन्सपेक्टर चौधरी फ़तेहदीन से भी गत कुछ वर्षों से मेरा परिचय था। उनसे भी भेंट हुई। वे उस समय निरीक्षणार्थ वहाँ गये हुए थे। उनसे वार्तालाप में पता चला कि वे मातृ-भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने के प्रबल पक्ष में हैं।



श्री देशराज तथा उनकी धर्मपत्नी विद्यावती जी

लाहौर लौटकर मैं गुरुकुल के उत्सव पर काँगड़ी गया। मेरा पुत्र इन्द्रदेव वहीं शिक्षा पा रहा था। उत्सव पर दो-तीन दिन ठहरा और इन्द्रदेव से मिला। उत्सव में दूर दूर से आर्य-नर-नारी आकर सम्मिलित हुए थे। वहाँ उत्सव बड़े समारोह से मनाया गया। वैशाखी का पर्व निकट था। लाहौर में यह पर्व रावी पर बड़े समारोह से मनाया जाता था। इस दिन यहाँ वैसे ही बड़ा भारी मेला लगता था। उसमें आर्यसमाज की ओर से भी नववर्ष के रूप में एक बृहद्-यज्ञ किया जाता था और वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार होता था। १३ की प्रातः मैं लाहौर पहुँच गया था अतः मैं भी सपरिवार रावी तट पर जाकर उस यज्ञ में सम्मिलित हुआ।

वर्षा के दिन आये। मैं भी पर्वतों पर भ्रमणार्थ गया। इस वर्ष मरी-पर्वत के घोड़ागली में बालक-बालिकाओं की शिक्षा-सम्बन्धी संस्थायें देखीं। इनके प्रिंसिपल थे कर्नल डब्ल्यू टी०राइट०। मैंने १४ वर्ष पूर्व ट्रेनिंग कालेज-लाहौर में इनसे शिक्षा पाई थी। मैंने वहाँ की शिक्षा आदि के विषय में जानकारी करनी चाही। उन्होंने सहर्ष इसका प्रबन्ध कर दिया और मैंने विभिन्न विभागों को देखा और आवश्यक परिचय प्राप्त किया।

अब मेरे छोटे भाई देशराज की विवाह-तिथि निकट आ रही थी। मैं लाहौर गया और विवाह की तैयारी में लगा। हमारे परिवार में अबतक विवाहादि कार्य हमारे ग्राम में जाकर होते थे। सारा प्रबन्ध वहाँ करने में बड़ी असुविधा होती थी। इस बार हमारा विचार यह विवाह कृत्य लाहौर में ही करने का हुआ। नियत विवाह-तिथि पर बारात लायलपुर गई और विवाह कार्य सादर सम्पन्न हुआ।

———

९—स्वामी श्रद्धानन्द जी का बलिदान

१९२६ के अन्त में जो एक विशेष घटना घटी वह पूज्य स्वामी श्रद्धानन्द जी का बलिदान था। २३ दिसम्बर की सांयकाल से पूर्व ही मुझे सूचना मिली कि स्वामी जी दिल्ली में गोली का निशाना बन गये हैं। इस सूचना से सारे लाहौर में शोक की घटायें छा गईं। रात की गाड़ी से बहुत से आर्य लोग दिल्ली के लिए चल दिये। जिस गाड़ी में मैं था, महाशय कृष्ण तथा पं० विश्वंभरनाथ भी उसी में जा रहे थे। सब के चेहरे पर उदासी के चिन्ह विद्यमान थे।

अगली प्रातः दिल्ली पहुँच गये। भारत के भिन्न-भिन्न नगरों, प्राँतों तथा दूर २ से लोग एकत्र हो रहे थे। स्वामी जी दिल्ली में हिन्दू-मात्र की चर्चा का विषय बने हुए थे। वे गत कई दिनों से रुग्ण चले आ रहे थे। २३ की प्रातः उनका चित्त कुछ स्वस्थ हुआ था पर डाक्टर ने उन्हें अभी आने-जाने वालों के साथ विशेष बात करने से मना कर रखा था। सायं तीन बजे के लगभग एक मुसलमान उनके स्थान पर आया। उसने स्वामी जी से कुछ देर बातचीत करने की इच्छा प्रकट की। पर सेवक ने उसे मना कर दिया। संभवतः स्वामी जी यह सुन रहे थे। उन्होंने सेवक को कहा कि 'आने दो'। उसके आने पर स्वामी जी ने बताया कि वे अभी तो रुग्ण हैं, कुछ दिन बाद बातचीत कर सकेंगे। इसके पश्चात् उसने पीने को पानी माँगा। सेवक ने स्वामी जी के कहने पर उसे पानी पिलाया। पानी पिलाकर सेवक लोटा रखने अन्दर गया ही था कि उस धर्मान्ध ने अपनी रिवाल्वर से एक दम स्वामी जी पर गोलियाँ चलाईं।

पहली ही गोली से स्वामी जी के प्राण उनके नश्वर शरीर को त्याग कर उड़ गये। गोली चलने की आवाज सुनकर सेवक भागते हुए आया। उसने ज्योंही उस हत्यारे को पकड़ना चाहा त्योंही उसने उसपर भी गोली चलादी। उसकी टाँग घायल हो गई, इसी समय स्वामी जी के निजी मंत्री श्री धर्मपाल जो साथ के ही कमरे में बैठे हुए थे दौड़ते हुए आए और उस धर्मान्ध को सीड़ियों से दोड़ते हुए पकड़ लिया। उसकी रिवालवर में अभी एक गोली शेष थी, जिससे उसने उन्हें भी गोली का निशाना बनाना चाहा पर उन्होंने भी इस कुशलता से उसे पकड़ा कि उसका कुछ वश न चल सका। अब तो आस पास के लोग भी दौड़ आये। २० मिनट में ही पुलिस भी वहाँ पहुँच गई। हत्यारे को पुलिस को सौंप दिया गया। उसने अपना नाम अब्दुलरशीद बताया।

स्वामी जी पर यह आक्रमण क्यों हुआ, वे एक विधर्मी की गोली के शिकार क्यों हुए? इसमें भी एक रहस्य था। वे लगभग ७० वर्ष के हो चुके थे और स्वयं ही अपने जीर्न-शीर्ण चोले को बदलने के लिए तय्यार थे। फिर भी उन्हें अपना बलिदान देना पड़ा! स्वामी जी इन दिनों देश की राजनीति में भी पूर्ण उत्साह से भाग ले रहे थे। इस जीवन में जब से उन्होंने मौलाना मोहम्मदअली और शौकतअली के कारनामे देखे, राजनीति की आड़ में मुसलमानों द्वारा हिन्दू-जाति के भूले-भटकों को अपने जाल में फ़ंसाते देखा तो उन्होंने यह भाँप लिया कि मोपलों और मलकाना राजपूतों के हिन्दुओं के से नाम और वैसा ही रहन-सहन होने पर भी उन्हें किस प्रकार हिन्दुओं से अलग किया जा रहा है। उनका हृदय तड़प उठा। वे उन्हें अपने धर्म में लौटाने का प्रयत्न करने लगे। इसके साथ ही वे जन्म के मुसलमानों को भी हिन्दू धर्म में लाने के लिए यत्नशील हुए। इसके लिए उन्होंने हिन्दू-संगठन का बिगुल बजा दिया।

भारतीय हिन्दू-शुद्धि-सभा की स्थापना हुई। वे उसके प्रधान-नेता बने। आगरा के राजपूतों को तैयार कर लिया कि वे मलकानों को

अपने में पुनः मिला लें। तभी से मुसलमानों के भाव उनके प्रति बदल गये। वे उनके इस हिन्दू-संगठन के कार्य को न सह सके।

बस इस प्रकार से कुछ अन्धविश्वासी मुसलमान उनके शत्रु बन गये और उनके प्राण लेने की टोह में रहने लगे। इसी उद्देश्य से धर्मान्ध अब्दुलरशीद ने यह दुस्साहसपूर्ण कार्य किया और इसके परिणामस्वरूप श्री स्वामी जी महाराज अमर हो गये!

स्वामी जी ने अपने जीवन-काल में आर्यसमाज और हिन्दुओं की ही नहीं किन्तु मनुष्य मात्र की भरसक सेवा की इसमें किसी को सन्देह नहीं। जो कार्य वे अपने जीवित रूप में नहीं कर सके थे वह उनकी मृत्यु से शीघ्र ही हो गया। हिन्दुओं में जो अकथनीय जाग्रति पैदा हुई, उसका परिचय उनकी अर्थी के समय मिलता है। उनकी अर्थी ६ बजे बलिदान भवन से निकली। नये बाजार में जनसमूह उमड़ा पड़ता था। लोग आश्चर्य में थे कि दिल्ली में तो इतनी जनसंख्या नहीं है, क्या सारा भारत ही यहाँ आगया है? चारों ओर हिन्दू ही हिन्दू उमड़े पड़ते थे। उनके चेहरों पर अनुद्विग्नता थी, रोष था और शोक से वे परिपूर्ण थे। नगर में हड़ताल थी। अर्थी नये बाजार से चली, खारीबावली, फतहपुरी काजी होज़, चावड़ी बाजार, चाँदनी चौक होती हुई यमुना की ओर बढ़ी। लोग लाखों की संख्या में थे। दिल्ली से बाहर जितने जहाँ स्वामी के के बलिदान का समाचार पाया देहली में आगया। कई लोग अर्थी के साथ वेद-मन्त्रों का उच्चारण कर रहे थे। उनके पीछे मण्डलियाँ ईश्वर-स्तुति के भजन बोलती जाती थीं। नगर की उच्च अट्टालिकाओं से स्त्री और बच्चे यह दृश्य देख रहे थे और पुष्प वर्षा कर रहे थे।

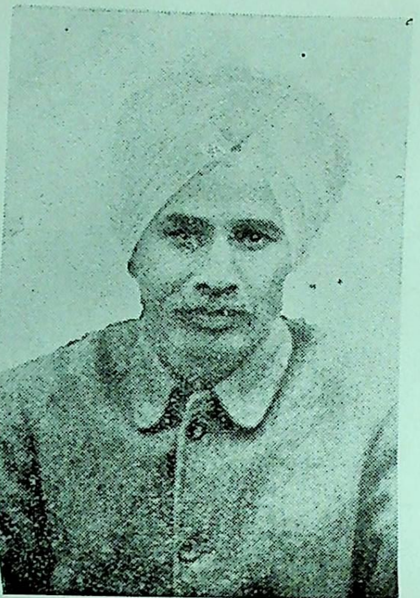
सायं काल अर्थी यमुना तट पर पहुँची। वहाँ जन समूह उमड़ा पड़ता था। चन्दन की चिता तैयार हुई। वेदमंत्रों की गूँज में दाह-संस्कार हुआ। लोग अपने प्रिय नेता के शोक में विह्वल हो रहे थे। कुछ समय

पश्चात् लोग उदास मुख लिए लौटने लगे। वे ऐसे दुःखी हो रहे थे, मानो उनका कोई आत्मीय बिछुड़ गया हो। मैं यह सब कुछ देख रहा था। उनके जीवन की स्मृति मेरी दृष्टि के सामने नृत्य कर रही थी!

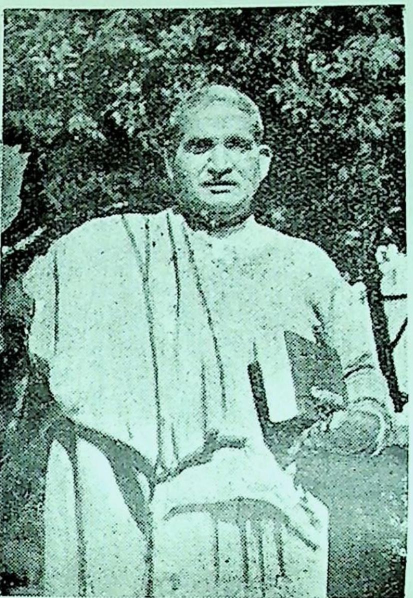
सिंहावलोकन—

श्री स्वामी जी आर्यसमाज के सर्वस्व थे। वे संन्यास लेने से पूर्व ही आर्यसमाज का नेतृत्व बड़ी योग्यता, निर्भीकता व बुद्धिमत्ता के साथ कर रहे थे। उस समय वे महात्मा मुन्शीराम के नाम से विख्यात थे। उन्होंने आर्यसमाज को प्रगति देने के साथ-साथ गुरुकुल विश्वविद्यालय काँगड़ी की स्थापना भी की थी और वर्षों तक उसका सफल संचालन किया था। आर्य समाज पर होने वाले आक्षेपों का वे जिस प्रबलता से समाधान करते थे उससे विरोधी समुदाय भी अवाक् रह जाता था। सरकार ने १९०७ में जब ला०लाजपतराय को देश निकाला दिया था उस समय स्वामी जी ने ही बड़े प्रबल रूप से घोषित किया था कि वे आर्यसमाज के सदस्य हैं और हम में से एक हैं। १९१० में पटियाला सरकार ने आर्यसमाज पर सत्यार्थप्रकाश के सम्बन्ध में अभियोग चलाया। आर्य समाज को राजनैतिक संस्था बता कर सब आर्य समाजियों को गिरफ्तार कर लिया गया। उस समय आर्यसमाज के कर्णधार बनकर स्वामी जी ने ही इसकी डगमगाती नौका को पार लगाया था। देहली में जामा मसजिद की वेदी पर केवल मुसलमान ही बैठकर भाषण दे सकता है पर मुसलमान न होते हुए भी भाषण देने का श्रेय केवल मात्र इनको ही मिला। पंजाब में जलियाँवाले काण्ड के कारण वहाँ की राजनैतिक भावनाएँ दबसी गई थीं उन्हें पुनः जागृत करने का श्रेय इन्हीं को है। अपने अन्तिम जीवन में हिन्दू संगठन का बिगुल बजाकर देश भर में शुद्धि आन्दोलन चलाने वाले स्वामी जी ही थे जिस पर कि इन्हें अपना बलिदान भी देना पड़ा।

———



श्री राम लाल जी



प्रो० शिवदयालु जी ऐम० ए०

१०—पंजाब-आर्य-शिक्षा-समिति

गत कई मास से पंजाब में शिक्षासम्बन्धी कार्य करते हुए मुझे यह आवश्यक प्रतीत होता था कि आर्य समाज के शिक्षणालयों को एक सूत्र में बाँध दिया जाय। इससे जहाँ उनके नियन्त्रण में सुविधा रहेगी वहाँ आर्य शिक्षा पद्धति के अनुसार धर्म-शिक्षा भी दी जा सकेगी। इसके सम्बन्ध में कई आर्य नेताओं से भी विचार-विनिमय हुआ।

१९२५ के जून मास के तीसरे सप्ताह में मुझे स्यालकोट जाने का अवसर हुआ। रविवार के साप्ताहिक सत्संग में श्री गंगाराम प्रधान आर्य समाज से भेंट हुई। उनके साथ आर्य समाज की उन्नति विषयक वार्तालाप हुई। वे स्थानीय आर्य-हाई-स्कूल के अधिष्ठाता भी थे। समाज की उन्नति कैसे हो, इस विषय पर वार्तालाप करते हुए जहाँ शिक्षा को अधिक उपयोगी बनाने के विषय में मैंने कुछ सुझाव दिये वहाँ इस प्रसंग पर भी विचार रखा कि क्यों न आर्य समाज की संस्थाओं की एक केन्द्रीय संस्था स्थापित की जाय जो इन में धार्मिक शिक्षा को एक रूप दे सके। उन्होंने मेरे विचार का समर्थन किया और कहा कि वे इस विषय में सहयोग देंगे। अगले दिन मैं लाहौर लौट गया।

लाहौर में प्रो० शिवदयालु तथा आचार्य रामदेव जी से आर्य-शिक्षणालयों के सम्बन्ध में वार्तालाप हुई। स्थानीय पुत्री-पाठशाला की उन्नति पर भी चर्चा छिड़ी। प्रो० शिवदयालु तो मेरे इस सुझाव से सहमत थे कि हम भिन्न-भिन्न स्थानों पर चलने वाले आर्यविद्यालयों को एक सूत्र में बाँध कर एक केन्द्रीय संस्था की स्थापना करें जिससे कि धर्मशिक्षा के प्रचार का रूप सुव्यवस्थित और प्रगतिशील बनाया जा सके। इसके पश्चात् अन्य स्थानों पर जाकर भी इस सम्बन्ध में विचार विनिमय हुआ।

लुधियाने में आर्य हाईस्कूल के प्रधानाध्यापक श्री रामलाल थे। हम साथ २ ही कई वर्षों से शिक्षा कार्य करते आये थे। हमने एक ही कालेज में शिक्षा भी पाई थी। जब मैं लुधियाने जाता तो इनके पास ही ठहरता। जब इस बार भी मैं वहाँ गया तो इस विषय में उनसे परामर्श लिया। हमने वहाँ इस कार्य की रूप रेखा तैयार की। बातचीत करते हुए आर्य समाज की कई समस्याओं पर भी प्रकाश डाला गया। इसी प्रकार लाहौर में महाशय कृष्ण, पं० विश्वंभरनाथ आदि कई आर्य-नेताओं से विचार-विनिमय हुआ। वे सभी इस योजना के पक्ष में थे। आर्य जगत् में इस विचार का हार्दिक समर्थन होते देखकर १६२६ के आर्य प्रतिनिधि सभा के साधारण अधिवेशन पर इस संस्था को जन्म देने का निश्चय हो गया।

२६ और ३० अप्रेल १६२६ को गुरुदत्तभवन में आर्य-प्रतिनिधि-सभा का अधिवेशन हुआ। इसमें जहाँ अधिकारी-वर्ग का निर्वाचन हुआ वहाँ अगले वर्ष के लिए आय-व्यय का बजट भी स्वीकृत हुआ। तत्पश्चात् एक प्रस्ताव के अनुसार आर्य स्कूलों और आर्य-पाठशालाओं को संगठित करने तथा इनमें धर्म-शिक्षा का प्रचार करने के उद्देश्य से एक केन्द्रीय शिक्षा-संस्था खोलने का प्रस्ताव स्वीकार किया गया। संस्था का नाम निश्चित हुआ 'पंजाब-अर्थ शिक्षा-समिति। यह भी निश्चय हुआ कि इस समिति में सभा की ओर से १० प्रतिनिधि प्रतिवर्ष लिये जाया करेंगे। और कि इस समिति की रजीष्ट्री भी पृथक् कराई जायेगी। इसके पश्चात् समिति का निर्वाचन भी कर दिया गया जिसमें प्रधान श्री राय बहादुर मोहनलाल और मुझे मंत्री चुना गया।

मई में जब मैंने अपने कार्य से अवकाश लिया तो कुछ मास लाहौर ही रहा। आर्य-शिक्षाणालयों का संगठन करने के लिए मैंने उनके अधिकारियों से पत्र-व्यवहार आरंम्भ कर दिया। इसके साथ ही धर्म-शिक्षा का पाठ्य-क्रम बनाने के लिए आर्यसमाज के कुछ विद्वानों का सहयोग प्राप्त

किया। उनमें प्रमुख श्री स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज, पं० चमूपति जी, पं० भीमसैन जी तथा मा० रामलाल जी थे। धर्म-शिक्षा की पाठ-विधि तैयार होने पर उसे अन्तरंग सभा की स्वीकृति लेकर प्रकाशित किया गया।



श्री स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज उस समय श्रीमद्यानन्द-उपदेशक विद्यालय के आचार्य थे और वेद-प्रचार के अधिष्ठाता। स्वामी जी का स्थान आर्य समाज में बड़ा महत्वपूर्ण रहा है। इने-गिने लग्नशील संन्यासियों में इनकी गणना होती है। आर्य-शिक्षा-समिति के संमुख जब-जब कोई

समस्या आ खड़ी होती थी तो स्वामी जी के सहानुभूति पूर्ण परामर्श उसे सुलझाने में सहायक सिद्ध होते थे।

श्री पं० चमूपति जो आर्य-शिक्षा-समिति के सदस्य तो न थे पर उनके विद्वता-पूर्ण परामर्शों से समिति के कार्यों को बड़ा लाभ पहुँचता था। जहाँ उन्होंने धर्म-शिक्षा के विभिन्न विषयों को संकलन करने में हमारी सहायता की वहाँ उनकी सम्मति से हम उसके पाठ्य-क्रम को सरलता से श्रेणी बद्ध कर सके।

शनैः शनैः बहुत सी आर्य कन्या-पाठशालाएं तथा आर्य हाईस्कूल समिति से सम्बन्धित हो गये। इनमें समिति की पाठविधि के अनुसार धर्मशिक्षा आरंभ करदी गई परन्तु उन्होंने अनुभव किया कि पाठ्य-क्रम के अनुसार पुस्तकें भी होनी चाहियें। तदनुसार पुस्तकों की व्यवस्था भी ही हो गई।

आर्य-शिक्षा-समिति के संगठन को विस्तृत और सुदृढ़ करने के लिए मैं रावलपिंडी, मरी, श्रीनगर, शिमला आदि स्थानों पर गया। वहाँ की पाठशालाओं के अधिकारीवर्ग ने अपने शिक्षणालयों का समिति से सम्बन्ध स्वीकार कर लिया। शिमला समाज के प्रधान रायबहादुर मोहन-लाल जी शिक्षा-समिति के भी प्रधान थे। उनसे समिति के कार्य-क्षेत्र को अधिक बढ़ाने के विषय में विचार-विनिमय हुआ।

जालन्धर में लभूराम द्वाबा-हाई-स्कूल तथा विक्टर हाई-स्कूल का सम्बन्ध भी समिति से स्थापित हो गया। उस समय विक्टर हाई स्कूल के कार्य में कुछ बाधाएं उपस्थित हो रही थीं। उनका निवारण करने के लिए स्कूल समिति ने श्री प्रेमचन्द, बी० ऐस० सी०, बी० टी० को वहाँ का मुख्याध्यापक नियुक्त कर दिया। वे उस समय द्वाबा हाई स्कूल में कार्य करते थे और उनकी गणना वहाँ के योग्य अध्यापकों में थी। वहाँ के मुख्य-अध्यापक थे श्री कृपाराम एम० ए०। प्रेमचन्द जी की नियुक्ति उनसे पूछे विना कर लेना उन्होंने अच्छा न समझा। मैं शिक्षा समिति और विक्टर हाई-स्कूल दोनों का मंत्री था और पं० श्रीराम द्वाबा हाई-स्कूल के प्रधान थे और विक्टर-हाई-स्कूल

के प्रबन्धकर्ता थे। उन्होंने विश्वास दिलाया कि वे आवश्यक कार्यवाही कर लेंगे परन्तु वे ऐसा न कर सके। परिणामस्वरूप द्वाबा स्कूल का सम्बन्ध शिक्षा-समिति से हटा लिया गया। इससे मुझे बड़ा दुःख हुआ। पुनः सम्बन्ध के लिए यत्न किया गया पर सफलता न हुई।

नवम्बर में मैं लुधियाना गया और श्री रामलाल प्रधानाध्यापक आर्य-हाईस्कूल के यहाँ ठहरा। ये आर्य शिक्षा-समिति के अन्तरंग सदस्य थे। उनसे मैंने श्री प्रेमचन्द की नियुक्ति पर परामर्श लिया। उनकी सम्मति थी कि अब इस नियुक्ति में कोई हस्तक्षेप न होना चाहिए। मैंने भी यही उचित समझा। इसके पश्चात् भी दो तीन बार स्कूल के सम्बन्ध में जालन्धर जाना पड़ा ताकि कार्य ठीक चलता रहे।

मिटगुमरी में आर्यसमाज के पुराने सदस्य श्री मोहरीराम थे। वे कमेटी के प्राइमरी-स्कूल में प्रधानाध्यापक थे। अब जब मैं मिटगुमरी गया तो जहाँ इनसे आर्यसमाज सम्बन्धी वार्तालाप करके बड़ी प्रसन्नता हुई वहाँ स्थानीय आर्य स्कूल और पुत्री-पाठशाला का सम्बन्ध आर्य शिक्षा-समिति से स्थापित करना भी स्वीकार हो गया।

दिसम्बर मास में सेंट्रल माडल स्कूल लाहौर में शिक्षा सम्बन्धी प्रदर्शनी हो रही थी। जब मैं उक्त स्कूल में गया तो वहाँ शिक्षकवर्ग से मिलते हुए चौधरी ज्ञानसिंह, डिपुटी इन्सपेक्टर से मिलने का अवसर हुआ। आर्य समाज के सम्बन्ध में इनके विचार बड़े क्रान्तिकारी थे। वे जन्म की जाति-पाति के बड़े विरोधी थे। गुणकर्म-स्वभावानुसार वर्ण-व्यवस्था पर इनका बड़ा विश्वास था। उनसे वार्तालाप करके बड़ी प्रसन्नता हुई। उनका यह दृढ़ विचार था कि यदि आर्य जाति के लोग इसे क्रियात्मक रूप दे दें तो बहुत उन्नति की आशा हो सकती है।

यहीं मैं पंजाब के प्रसिद्ध कहानीकार श्री सुदर्शन से मिला। उन्होंने जहाँ अपने कार्य के सम्बन्ध में परिचय दिया वहाँ मुझे अपने कहानी-संग्रह 'पारस' एवं 'अमृत' भेंट किये। यहीं मुझे जालन्धर के

श्री रामधन ठेकेदार से मिलने का स्मरण आता है। उन्हें उर्दू कविता का बड़ा शौक था। फ़ारसी और उर्दू के बहुत से पद्य उनको कण्ठस्थ थे। उन्होंने मुझे प्रभुभक्ति-युक्त कई पद्य सुनाये। उनमें से निम्न याद आते हैं:—

१—हैफ़! सद हैफ़! दर चश्मेज़दन
सोहबते यार आख़िर शुद।
रूए गुल सैर न दीदम,
कि बहार आख़िर शुद॥

अर्थ—यह अत्यन्त शोक की बात है कि मित्र से मेल तो हुआ किन्तु आँख झपकने न पाई थी कि उसका अन्त भी हो गया। फूल का मुख जी भर कर भी न देखा था कि वसन्त समाप्त हो गई।

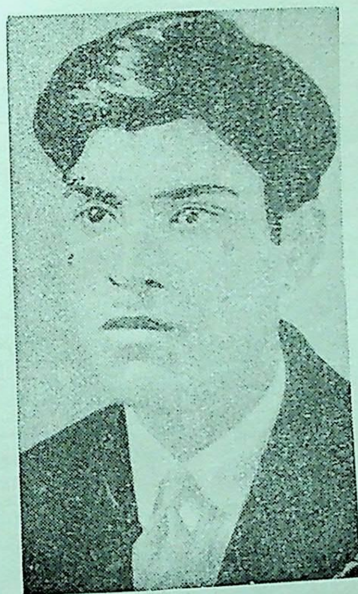
२—हर शब गोयम कि फ़र्दा तर्के ईं सौदा कुनम।
मी बाज़ चूँ फ़रदा शवद इमरोज़ रा फ़रदा कुनम॥

अर्थात् मैं नित्य रात को यह कहता हूँ कि इस दुष्ट भाव का त्याग कर दूँगा किन्तु जब कल आता है तो मैं इसी बात को दूसरे दिन पर टाल देता हूँ और उसी प्रकार कार्य में लग जाता हूँ।

मई १९२७ में मैं हरियाना गया हुआ था, वहाँ डी० ए० बी० कालेज, लाहौर के एक साथी श्री बरकतराम डी० ए० बी० स्कूल के मुख्याध्यापक थे। यह जानकर बड़ी प्रसन्नता और सन्तोष हुआ कि वहाँ आर्यसमाज का काम बड़ी उत्तमता से चल रहा है, वहाँ की पुत्री पाठशाला के प्रमुख कार्यकर्ता श्री काशीराम से भी वार्तालाप हुई। मैं होशियारपुर गया और वहाँ डी० ए० वी० कालेज के प्रिंसिपल, श्री रामदासजी के पास ठहरा। इनसे इस प्रदेश की शिक्षा तथा समाज सम्बन्धी अवस्था ज्ञात हुई, यहाँ से महात्मा हंसराज जी के जन्म स्थान बजवाड़ा में भी गया।

अगस्त में आर्य-पुत्री-पाठशाला सोलन का उद्घाटन होना था। मुझे जब निमन्त्रण मिला तो वहाँ गया और अधिकारियों से मिलकर उनको पुत्री पाठशाला की उन्नति विषयक परामर्श दिये।

पंजाब पुस्तक भण्डार—दो तीन वर्षों से मेरा विचार हो रहा था कि अपनी सन्तान को ऐसी शिक्षा देनी चाहिए जिससे वे किसी व्यापार के कार्य में लग सकें क्योंकि नौकरी में कई प्रकार से बाधाएँ आती रहती हैं। इसमें मनुष्य का स्वतन्त्र रहना कठिन हो जाता है और गृहस्थ जीवन के अपने दैनिक कर्तव्य निभाने में भी कई बार असह्य कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। मेरा अनुभव है कि यदि मनुष्य अपने कार्य में लग्न से परिश्रम करता जावे तो अवश्य सफलता प्राप्त होती है। यदि वह अपना स्वतन्त्र कार्य हो तो उसमें तत्कालिक सफलता के अतिरिक्त स्थिर लाभ की भी आशा हो सकती है।



श्री रामनाथ मदान

मुझे शिक्षा तथा पुस्तक निर्माण के सम्बन्ध में इस समय तक पर्याप्त जानकारी प्राप्त हो चुकी थी। मैंने अपने मन में सोचा कि इस प्रकार का

कार्य उन्हें लाभ अवश्य पहुँचायेगा। इस विचार से मैंने एक व्यवसाय आरम्भ कर दिया। इसका नाम पंजाब स्कूल सप्लाई डिपो रखा गया। हिन्दी पुस्तक प्रकाशन की दृष्टि से 'पंजाब पुस्तक भण्डार' भी शीघ्र ही प्रचलित होगया। इन्हीं दिनों मेरे भाई रामनाथ मदान कालेज में शिक्षा प्राप्त करने लाहौर आये थे और मेरे पास ही ठहरे थे। मैं उनकी योग्यता तथा विचार-शीलता से परिचित था ही। उन्होंने इस कार्य के संघटन में मुझे अपना सहयोग भी दिया था अतः उनकी रुचि देखकर मैंने यह कार्य अस्थिर रूप से उनको सौंप दिया।

पहले-पहल पुस्तक-प्रकाशन का कार्य बहुत साधारण रूप में प्रारम्भ किया गया। आरम्भ में मैंने पुस्तकों का स्टाक अपने घर पर ही रखवा दिया और विज्ञापन द्वारा सूचना दे दी। इससे पुस्तक-विक्रेता अपनी आवश्यकाताओं के अनुसार वहीं से पुस्तकें ले जाने लगे। परन्तु शीघ्र ही एक दुकान मोहनलाल रोड पर लेकर वहाँ कार्य आरम्भ करा दिया गया। जब नियमित कार्य प्रारम्भ हुआ तो श्री रामनाथ के साधारण निरीक्षण में एक प्रबन्धक उस कार्य को चलाने के लिए नियुक्त कर दिया गया।

शिक्षा-सम्बन्धी पुस्तकों के प्रकाशन में सहायता देते हुए यह मुझे अनुभव हो चुका था कि उस समय की पाठ्य-पुस्तकें त्रुटिपूर्ण हैं। उनमें ज्ञान-विज्ञान, इतिहास, नागरिक ज्ञान आदि की कमी थी। इस कमी को दूर करने के लिए आवश्यक था कि उनमें उन विषयों पर पाठ दिये जायें। तदर्थ पंजाब पाठ्य पुस्तक समिति (पंजाब टेक्स्ट बुक कमेटी) के कार्यालय में जाकर मैंने श्री रामचन्द्र, एम० ए०, रिपोर्टर—आनबुक्स से पुस्तक निर्माण के विषय में वार्तालाप करना आरम्भ किया। इसी बीच में सनातन धर्म कालेज के प्रिंसिपल श्री रघुबर दयाल एम० ए० पधारे और उन्होंने भी इस वार्तालाप में भाग लिया। उनका विचार था कि बच्चों के लिए ऐसी पुस्तकें निर्मित होनी चाहिए जिनमें अपने देश के इतिहास, प्राकृति दृश्यों व नागरिक कार्यों का समावेश हो।

———

११—शिक्षाक्षेत्र के कुछ कार्यकर्ता

मेरा वर्त्तमान कार्य ऐसा था कि जिसके लिए मुझे शिक्षा-अधिकारियों तथा शिक्षकों के पास उनसे जानकारी प्राप्त करने तथा परामर्श लेने के लिए जाना होता था। इसके अतिरिक्त अब आर्य-शिक्षा-समिति के संचालन का भार भी मुझ पर था। मेरे लिए और भी आवश्यक था कि मैं जहाँ सम्बन्धित शिक्षणालयों की कठिनाइयों की जाँच करूँ वहाँ उन्हें दूर कराने के लिए शिक्षा-विभाग तथा विश्वविद्यालय के अधिकारियों से मिलूँ। इसी उद्देश्य को सम्मुख रखते हुए गत वर्षों की भाँति मैं इस वर्ष १९२७ में भी कई महानुभावों से मिला।

श्री साईंदास—उपर्युक्त उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए मैं डी० ए० वी० कालेज के प्रिंसिपल साईंदास से मिला। जब वे स्कूल में अष्टम श्रेणी में पढ़ रहे थे, मैं उस स्कूल की चतुर्थ कक्षा में था। तभी से मैं उनको जानता हूँ। उससे कई वर्ष पश्चात् जब मैं कालेज में गया तो मेरा उन से परिचय हुआ था। तत्पश्चात् भी मुझे उनसे मिलने का अवसर होता था। आरंभ से ही जिस बात ने मुझे उनकी ओर आकर्षित किया वह थी उनकी सादगी और सरलता। उनमें नम्रता और मधुरता भी कूट कूट कर भरी हैं।

ज्यों ज्यों मुझे उनसे अधिक परिचय हुआ त्यों त्यों मुझ पर उनके नम्र और मधुर स्वभाव का प्रभाव अधिक गहरा होता गया। इस बार जब मैं मिला तो मुझे उनसे विश्वविद्यालय सम्बन्धी कुछ बातों पर जानकारी की आवश्यकता थी। उन्होंने बड़े हर्ष से शीघ्र ही सब विषयों पर प्रकाश डाला।

सर मनोहरलाल—पंजाब सरकार के शिक्षा-मंत्री सर मनोहर लाल से मेरा गत कई वर्षों से परिचय था। जब वे विश्वविद्यालय अथवा व्यवस्थापिका सभा के लिये चुनाव में खड़े होते थे तो मैं भी उनके निर्वाचन-कार्य में सहयोग देता रहता था। ७ जनवरी १९२७ को पंजाब में शिक्षा सम्बन्धी एक कार्य के लिए मैं उनसे मिला। शिक्षामंत्री होने के कारण उनके परामर्शों की विशेष महत्ता इसलिए भी थी कि उनसे यह पता चल सकता था कि पंजाब शिक्षा-विभाग किस प्रकार शिक्षा की उन्नति चाहता है ताकि उसी प्रकार पाठ्य पुस्तकों के निर्माण में ध्यान रखा जाय। शिक्षा सम्बन्धी बहुत सी योजनायें मैंने इनके समक्ष रखीं और थोड़ी ही बातचीत से उनका दृष्टिकोण स्पष्ट हो गया।

डी० ए० वी० स्कूल रावलपिंडी के मुख्याध्यापक श्री हाड़ीमल जहाँ आर्यसमाज के प्रमुख कार्यकर्त्ता थे वहाँ उन्हें शिक्षाकार्य का अच्छा अनुभव था। जब मैं इन दिनों रावलपिंडी गया तो उनसे भी मिला। उनसे धर्मशक्षा के विषय पर वार्तालाप हुई। हम स्कूल और कालेजों में धर्मशिक्षा किस प्रकार दें कि जिससे वह अधिक प्रभाव युक्त सिद्ध हो सके। इस विषय पर उनके कुछ अनुभव प्राप्त हुए। उनका विचार था कि धर्मशिक्षा का प्रबन्ध प्रत्येक संस्था में नियमित रूप से निरन्तर रहना चाहिए। इस से जहाँ धार्मिक सिद्धान्तों की जानकारी बढ़ेगी वहाँ जीवन भी शनैः शनैः क्रियात्मक बन जायेगा।

गुजराँवाला मिशन हाई स्कूल के प्रधानाध्यापक थे श्री० बी० सी. चटर्जी। ये बड़े अनुभवी और उदार शिक्षक थे। जब मैं गुजराँवाला गया तो उनसे मिला। इनके ईसाई मत संबन्धी विचारों व उनकी शिक्षा योजनाओं से मैं बड़ा प्रभावित था। ईसाई और आर्यसमाज प्रचार मार्ग में एक ही प्रकार से चले अवश्य पर उनके साधन बड़े प्रबल ढंग से प्रयोग में लाये जाते थे। उनका माधुर्य भाव और प्रेम तो

सचमुच अनुकरणीय था। ईसाइयों ने भारत में प्रबल साधनों के उपयोग के साथ ही अतुलनीय धन भी व्यय किया पर फिर भी भारत को वे ईसाई न बना सके। यह आर्यसमाज के श्रेष्ठ सिद्धान्तों का प्रभाव हो था अन्यथा आर्य-समाज के साधन सर्वथा दुर्बल और आकिंचन थे। गुरुकुल गुजराँवाला देखने के पश्चात् मिंटगुमरी होता हुआ मैं फीरोजपुर गया। यहाँ के सिख-कन्या-महाविद्यालय के विषय मे कुछ वर्षों से सुन रखा था। उसके संचालक थे भाई तख्त सिंह जी। वे इस संस्था को बड़ी उत्तम रीति से चला रहे थे। धर्म शिक्षा के सम्बन्ध में उनके अनुभव बड़े उपयोगी प्रतीत हुए। जब मैं उनसे मिला तो उनके सादा जीवन और उच्च विचारों को जान कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

लौटते हुए मैं २६ मार्च को रोहतक वैश्य हाई स्कूल के मुख्याध्यापक श्री दौलत राम वर्मा के पास ठहरा। ये सज्जन कई वर्ष पूर्व ट्रेनिंग कालेज में मेरे सहपाठी थे। एक और पुराने मित्र चौ० बलदेव सिंह से भी मिला। उन से वहाँ की शिक्षा तथा अन्य कार्यों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त हुई। अगले दिन मैं लाहौर लौट गया।

मई मास में लाहौर में ईद के अवसर पर हिन्दु-मुसलिम झगड़ा हो गया। तीन चार दिन बाद जाकर कहीं नगर में शान्ति हुई और लोग पुनः अपने अपने काम में लगे।

एक गाथा—इस मास मैं कई और स्थानों पर भी गया। एकबार अकालगढ़ भी जाना हुआ। वहाँ के गवर्नमेंट स्कूल के मुख्याध्यापक से मिला। उन से बातचीत में वहाँ के प्रसिद्ध दीवान मूलराज की बात चल पड़ी। वार्तालाप करते हुए पता चला कि उनके पिता दीवान सावनमल महाराजा रणजीत सिंह के मंत्री थे। कुछ समय पीछे उन्हे मुलतान का शासक नियुक्त किया गया। वहाँ उन्होंने जिस योग्यता से शासन कार्य चलाया उसके विषय में कुछ गाथाएँ प्रचलित हैं। एक कहानी में बताया गया कि गजनी का एक पठान इस प्रदेश में

आया और उसने एक जंगल में डेरा लगाया। जब वह वहाँ से चला गया तो उसे पता चला कि उसकी सोने की मोहरों की एक थैली गुम है। उसने लौटकर खोज की। जब उसे न मिली तो उसने दीवान जी तक बात पहुँचा दी। दीवानजी ने उसे बुलाया और आश्वासन दे दिया कि उसकी थैलो की पूरी-पूरी खोज की जायेगी और जब वह मिल जायेगी तो उसके घर गज़नी पहुँचा दी जायगी। उन्हें उसके मिल जाने की पूर्ण आशा थी।

उपर्युक्त घटना वर्षा ऋतु की थी। कुछ दिनों में वर्षा ऋतु बीत गई और जंगल की घास सूख गई। जब इस घास को कटवाया गया तो मोहरों की थैल वहीं पड़ी पाई गई। दीवान सावनमल ने वह थैली पठान के लिए और कुछ वस्त्र भेंट रूप में अमीर काबुल के पास भेजे। इस पर जहाँ उस पठान को वह थैली मिली वहाँ काबुल के अमीर के हृदय में दीवान सावनमल तथा महाराजा रणजीत सिंह के प्रति अच्छे भाव उत्पन्न हुए। उसने दोनों को धन्यवाद लिखते हुए दोनों के लिए बहुमूल्य खिलअत भेजी और इससे दोनों राज्यों के सम्बन्ध घनिष्ट हो गये।

यह घटना दर्शाती है कि किसी समय छोटे से छोटा कार्य भी कितना महत्व रखता है।

इस विषय में आगे चल कर यह भी विदित हुआ कि १८४८ में सिखों और अंग्रेजों के दूसरे युद्ध में दीवान मूलराज पकड़े गये। उन पर लाहौर में अभियोग चलाया गया। इस पर उन्हें अपने देश से निकाले जाने की आज्ञा मिली। परन्तु वे वहाँ जाते हुए १८५० में बनारस में रुग्ण होकर चल बसे। उनकी मृत्यु पर अंग्रेजों ने उनके पुत्र दीवान हरिसिंह को ई० ए० सी० बना दिया। उनकी सन्तान में से उस समय भी कुछ व्यक्ति अकालगढ़ में रहते थे। मुझे गुजरात में रहते हुए एक दीवान हरिसिंह ई० ए० सी० को १८९९ और १९०१ के बीच जानने

का अवसर हुआ था। संभवतः ये वही दीवान हरिसिंह हों। वे अपने घर से कचहरी तक ट्राइसिकल पर चढ़ कर जाया करते थे और यह पहले व्यक्ति थे जिन्हें उस समय मैंने ट्राइसिकल पर चढ़ते देखा था।

इस प्रकार शिक्षा सम्बन्धी कार्यों के लिये प्रायः कई स्थानों पर मैं जाता रहा। मेरी यह इच्छा होती कि मैं उन स्थानों के विषय में ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त करूँ। साथ ही मैं अच्छे अनुभवी तथा योग्य व्यक्तियों से भी मिलता रहता।

डा० इकबाल—इन्हीं दिनों मैं डा० मुहम्मद इकबाल से मिला। वे उस समय पहले गवर्नमेंट कालेज लाहौर में फ़िलासफ़ी के प्राफ़ेसर थे और बैरिष्टरी करते थे। वे उर्दू फारसी के उच्च कोटि के कवि थे और अब भी इस कार्य में अपना पर्याप्त समय लगाते थे। वे बड़े सरल स्वभाव के थे और सबसे प्रीतिपूर्वक मिलते थे। उस समय उनके विचार प्रगतिशील थे। उनका यह पद बहुतों को याद भी होगा:—

सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा।
हम बुलबुले हैं इसकी यह गुलस्ताँ हमारा॥

डा० इकबाल के साथ हुए वार्तालाप में उन्होंने मुझे उपालंभ दिया कि हम अन्य प्रान्तों के लेखकों तथा विचारकों का उत्साह बढ़ाते हैं और अपने प्रान्त की उपेक्षा करते हैं। मैंने उनसे पूछा कि वह कौनसी बात है जिससे आपने यह अनुमान लगाया। उन्होंने कहा श्री रवीन्द्र नाथ की पुस्तकें छपवाकर उनको बड़ा मान दिलाया। मैं भी तो कविता के क्षेत्र में कुछ सेवा कर रहा हूँ। मैंने बताया कि डाक्टर टैगोर की पुस्तकें अंग्रेज़ी भाषा में छपवाने का श्रेय मुझे प्राप्त नहीं परन्तु यदि आप चाहें तो मैं आपका प्रबन्ध कराने में यथाशक्ति सहायता कर सकता हूँ। तदनुसार मैंने इस विषय में उन्हें उचित परामर्श दिये।

डा० इकबाल फारसी और उर्दू के उच्चकोटि के कवि थे। उनकी कविताएँ पुस्तकों के रूप में आचुकी थीं। उनमें से फारसी की कविता

'इसरारे खुदी' नामक पुस्तक विद्वत्समाजमें बड़ी अच्छी ख्याति प्राप्तकर चुकी थी। डा० इकबाल ने मुझे बताया कि उसका अंग्रेज़ी अनुवाद उन्होंने किया था और एक अंग्रेज मित्र को आवश्यक संशोधन के लिये दिया हुआ था। इसे छापने की व्यवस्था मैंने करादी। उनकी वह पुस्तक "Secrets of the Self" के नाम से मैकमिलन कम्पनी की ओर से प्रकाशित हुई। शीघ्र ही इसे यूरोप में इतनी प्रसिद्धि प्राप्त हुई कि वह वहाँ की तीन अन्य भाषाओं में भी छप गई। इसकी प्रशंसा ब्रिटिश अधिकारियों तक जा पहुँची और परिणाम यह हुआ कि डा० इकबाल को 'सर' की उपाधि मिल गई। यह सारा कार्य पांच वर्षों के अन्दर अन्दर हो गया।

शिमले में रहते हुए एक दिन मैं एक विद्यालय में गया जिससे कानवेंट आफ जीज एण्ड मेरी (Convent of Jesus & Mery) कहते थे। उसके अधीन वहाँ दो तीन विद्यालय चल रहे थे। वहाँ की आचार्य वहीं से मिला। जिसे मदर सुपीरियर (Mother Superior) कहा जाता था। उन्होंने मुझे अपना स्कूल और इससे सम्बन्धित सेंट बीडज (St. Beadies) ट्रेनिंग कालेज भी दिखाया। वहाँ का सारा प्रबन्ध स्त्रियों के हाथ में है। वहाँ के स्वच्छ वातावरण व उत्तम अनुशासन को देखकर में बड़ा प्रभावित हुआ। मैं बिशप काटन स्कूल (Bishop cotton school) में भी गया। इस समय वहाँ के प्रिंसिपल थे श्री जे० ई० पाकिसन। ये सण्ट्रल ट्रेनिग कालेज लाहौर के भी प्रिसिपल थे। ग्रीष्म अवकाश में उन्हें यह कार्य भी सौंपा गया था। उनका अनुभव अंग्रेज व देशी सभी स्कूलों के सम्बन्ध में बहुत अच्छा था। उन्होंने मेरे अनुरोध पर इस संस्था के शिक्षणकार्य एवं प्रबंध सम्बन्धी जानकारी कराई।

रायबहादुर आत्माराम—उन्हीं दिनों रायबहादुर आत्माराम ऐम० ए० इंसपेक्टर आफ स्कूलज़ अम्बाला डिविजन से भी मिलने का

अवसर हुआ। मैंने उनसे बी० ए० की श्रेणियों में कुछ मास तक शिक्षा पाई थी। उन्होंने मुझसे बड़े प्रेम से वार्तालाप की। शिक्षा सम्बन्धी मुझे अच्छे-अच्छे परामर्श दिये। जहाँ मुझे अपने निजू कार्यों के लिये उनके परामर्श की आवश्यकता थी वहाँ मैंने उनसे पंजाब आर्य-शिक्षा-समिति से सम्बन्धित विद्यालयों की सहायतार्थ विचार-विनिमय किया।

कुछ दिन पीछे लाहौर लौट आया। लाहौर ट्रेनिंग कालेज में श्री सोहनलाल बी० ए०, बी० टी० भूगोल के विशेषज्ञ थे। मैं उन्हें मिलने गया था। तभी अपने पुराने मित्र पं० वासुदेव ड्राइंग के प्रोफेसर से भेंट हुई। ये और मैं १९०५ के आरंभ में एक साथ लाहौर रह चुके थे।

डा० शान्ति स्वरूप भटनागर आज बहुत बड़े वैज्ञानिक हैं। उनसे मेरी प्रथम वार १९२७ की २८ अगस्त को भेंट हुई थी। वे उन दिनों पंजाब विश्वविद्यालय में रसायन-विभाग के अध्यक्ष थे।

इन दिनों लाहौर में एक शिक्षा सम्बन्धी प्रदर्शनी हुई। वहाँ कई शिक्षा-विशेषज्ञों से भेंट हुई। लुधियाना गवर्नमेंट कालेज के प्रिंसिपल श्री हारवे से शिक्षा के सम्बन्ध में विचार-विनिमय का अवसर तभी हुआ था। वे शिक्षा के सम्बन्ध में स्वतंत्र विचार रखते थे, परन्तु दूसरों के विचार सुनकर उन्हें प्रोत्साहन देते थे।

————

१२—भारत की अन्तिम सीमा

काबुल की ओर

पेशावर के लिए—१९२५ में कन्धार की ओर भारतीय सीमा देखने का अवसर तो मुझे मिल गया था पर काबुल की ओर की भारतीय सीमा अभी न देख पाया था। १९२८ में यह अवसर भी मिल गया। मैं ६ मई को लाहौर से पेशावर पहुँचा। वहाँ स्वर्गीय श्री नारायण-दास वकील जालन्धर के पुत्र श्री विश्वंभर दयाल अग्रवाल से अकस्मात् मेरी भेंट होगई। ये विक्टर-स्कूल जालन्धर में मुझसे शिक्षा पा चुके थे। श्री नारायणदास जी की मृत्यु के पश्चात् ये उस स्कूल के प्रबन्धक भी रह चुके थे। हम दोनों को एक दूसरे से मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। बातों ही बातों में उन्होंने मुझे बताया कि वे खैबर दर्रे से आगे भारतीय सीमा लंडी कोतल में ठेकेदारी का काम कर चुके हैं। वहाँ के कुछ व्यक्तियों से उनका परिचय भी था। मेरी इच्छा हुई मैं भी खैबर-दर्रा व अन्य सीमान्तवर्ती दर्शनीय स्थान देखूँ। श्री विश्वंभरदयाल ने इसका तुरन्त ही प्रबन्ध कर दिया।

दस मई की प्रातःकाल ८ बजे पेशावर छावनी से एक टैक्सी में बैठकर हम चल पड़े। वहाँ से चलकर पहले पहल हम जिस स्थान पर पहुँचे, वह गवर्नमेंट द्वारा चलाया हुआ इस्लामिया कालेज था। यह स्थान पेशावर छावनी से ३ मील दूर था। इसे तो मैं कई बार पहले भी देख चुका था अतः हम यहाँ न ठहरे और आगे चल दिये। एक स्थान मार्ग में ऐसा आया जिसे हरिसिंह नलवे का बुर्ज़ कहते थे। वहाँ उस समय पुलिस चौकी थी। उसके समीप एक दरियाई नाला बहता था। कहते हैं कि इस नाले का जल बड़ा ही लाभकारी और

शक्तिदायक है। बहुत से अंग्रेज़ यहाँ से इस जल को बोतलों में भरकर ले जाते थे। इससे आगे एक दो मील पर बोर्डर पोस्ट या कच्ची गढ़ी है। यहाँ से जमरूद का किला ११ मील है। यह पेशावर से स्पष्ट दिखाई पड़ता है। यद्यपि यह किला कच्चा है पर है दृढ़। इसके सामने ही हरिसिंह नलवा की श्वेत समाधि दीख पड़ती है। उस दिन था बृहस्पतिवार। सप्ताह में दो दिन मंगल और बृहस्पति के दिन काफ़ला चलता था। यह काफ़ला जाता हुआ हमें मार्ग में मिला। उसमें बहुत से ऊँट; टट्टू और गधे सामान से लदे हुए जा रहे थे। कई ऊँटों पर स्त्रियाँ व बच्चे भी बैठे थे। मर्द ऊँटों, टट्टुओं आदि के साथ या आगे आगे पैदल चल रहे थे। मार्ग में अकेले चलना सुरक्षा की दृष्टि से उचित न था। इसीलिए प्राचीन काल से इकट्ठे काफ़िलों में अर्थात् समूहों में चलने की प्रथा चली आ रही है। इस प्रदेश को जिससे हम गुजर कर जा रहे थे "दर्रा खैबर" कहते हैं। जमरुद में हमारी कार को कुछ देर ठहरना पड़ा क्योंकि वहाँ पोलिटिकल तहसीलदार द्वारा यात्रियों की तलाशी ली जाती थी।

जमरूद रेलवे स्टेशन भी है। यहाँ थोड़ी सी दुकानें और किले में काम करने वालों के निवास स्थान भी समीप ही हैं। जमरूद के स्टेशन से एक दो फर्लांग की दूरी पर छोटी छोटी पहाड़ियाँ दीखती हैं। किले के पश्चिम की ओर भी पर्वतमाला अपनी छटा दिखाती है। जमरूद से आगे निकट ही याग़स्तानी प्रदेश के कुछ मिट्टी के बने हुए किले हैं जहाँ कई प्रकार के शस्त्र, बन्दूक आदि बनाये जाते हैं।

आगे चलकर शाहगई (Shahgai) का किला आता है। यह गर्मी से बचने का स्थान है। इसे अंग्रेज़ी में हीट-स्ट्रोक कैंप (Heat Stroke Camp) कहते थे। उस समय समीप ही पी० डब्ल्यू० डी० के अधिकारियों के निवास के लिए बंगले बन रहे थे। यह स्थान एक अच्छी खासी चढ़ाई पर स्थित है। इसके पश्चात् अलीमस्जिद का किला था। उसमें सैनिकों की पर्याप्त संख्या रहती थी। उस समय यह

निश्चय हो चुका था कि वहाँ की सेना शाहगई के निकट जो किला बन रहा था उसमें चली जायेगी

वहाँ से हम शीघ्र ही लंडीकोतल पहुँच गये। उस स्थान पर खाँसाहब हाजी मुहम्मद गुलाम हसन सैनी ठेकेदार और शालिगराम कम्पनी के अध्यक्ष श्री बूड़ामल से मिले। दोनों सज्जनों ने हमारी बड़ी आवभगत की। पहले भाई ने हमें अपनी कार से लंडीखाना तक पहुँचा दिया क्योंकि हम अपनी टैक्सी लंडी कोतल तक ही लाये थे। लंडीकोतल से आगे जाने के लिए वहाँ के पोलिटीकल तहसीलदार की आज्ञा आवश्यक थी वह ले ली गई।

दो मील आगे जाकर सड़क बन्द थी उस पर पहरा था। वहाँ पर यह आश्वासन देना होता था कि आज्ञा ली जा चुकी है क्योंकि यह आज्ञा लिखित न होती थी, केवल मौखिक ही होती थी। शोफ़र ने सन्तरी से पूछा 'परवर' उसने उत्तर में कहा 'वल्द' (ऐसा प्रतीत होता था कि यह उनकी भाषा के तदनुकूल आशय को प्रकट करने वाले निश्चित शब्द थे और सन्तरी उन्हें समझता था)। उसने तुरन्त लकड़ी की 'बार' (bar) उठाई और हमारी कार वहाँ से गुज़र गई। हमने लंडी खाना पहुँचकर देखा कि वहाँ कुछ बैरकें थीं जिनमें कुछ सैनिक निवास करते थे। हम उसके निकट ही एक दो फलाङ्ग की दूरी पर उस स्थान तक गये जहाँ हिन्द की सीमा का अन्त था और अफ़ग़ानिस्तान की सीमा आरंभ होती थी। वहाँ दाईं ओर एक बैरक बनी हुई थी जहाँ आज्ञा-पत्र (परमिट) और पासपोर्ट देखने वाले लोग रहते थे। सीमा की सड़क के आर पार एक कृष्ण-श्वेत रंगयुक्त गोल-दण्ड मार्ग रोकने के लिए लगा हुआ था। एक बोर्ड पर कुछ सूचना लिखी थी—

उसका हिन्दी रूपान्तर इस प्रकार है:—

भारतीय सीमान्त स्थान

"यात्रियों को यह सीमा तब तक पार करने की आज्ञा नहीं है जब तक

कि उनके पास वैधानिक आज्ञा-पत्र न हो।"

लण्डीकोतल में डाकखाना के समीप खैबर निवासी पठानों के झुण्ड के झुण्ड दीख पड़ते थे। वृद्ध, युवा तथा बाल सभी वहाँ पर उपस्थित थे, मानो किसी विशेष उत्सव पर आयें हों। सब ने शस्त्र धारण किये हुए थे पर युद्ध के लिए उद्यत प्रतीत न होते थे। प्रश्न करने पर पता चला कि इस प्रदेश के सब छोटे बड़े अंग्रेज़ी सरकार से १६) सोलह रुपये प्रति व्यक्ति मासिक वेतन लेते हैं। यह नीति इसलिए कार्य में लाई जाती थी कि उस प्रदेश के स्वतंत्र लोगों को अनुशासन में रखा जासके।

इसके अतिरिक्त उनको ऐसे कार्य दिये जाते थे कि जिसमें उनका ध्यान लगा रहे। उदर-पूर्ति के लिये व बिना किसी उद्देश्य के वे डाके आदि न डालें। ठेके आदि का कार्य भी उनको दिया जाता था। यह प्रदेश साधारणतया शुष्क था, वर्षा नाम मात्र को ही होती थी। पीने के लिए जल कहीं कहीं ही मिलता था। सरकार ने उनके लिए कई स्थानों पर पानी का प्रबन्ध कर दिया था। वहाँ से उनकी स्त्रियाँ पानी भरकर ले जाती थीं। स्त्रियाँ साधारणतया काले वस्त्र पहनती थीं। उनकी आकृति अच्छी थी, रंग गोरा था और वे स्वस्थ प्रतीत होती थीं अतः उन्हें सुन्दर कहा जा सकता है। बच्चों का स्वास्थ्य भी उत्तम था। पुरुष बोझ ढोने के लिए ऊँट, गधे और खच्चर रखते थे जो एक स्थान से दूसरे स्थान तक सामान ले जाते थे। उनके घर कच्चे थे और मिट्टी के बने हुए थे। वे घरों में बन्दूक चलाने के लिए छेद अवश्य रखते थे। गाँव के मध्य में एक ऊँचा स्तंभ होता था जिस पर चढ़कर आवश्यकता-नुसार बन्दूक चलाकर अपने शत्रुओं से लड़ते थे। उनमें परस्पर कभी २ लड़ाइयाँ भी हो जाती थीं। ऐसे स्थानों को गढ़ी कहते थे।

लंडीकोतल देखकर हमने सालिगराम एण्ड कम्पनी के यहाँ भोजन किया। भोजन के उपरांत हाजी मोहम्मद गुलाम हसन की मोटर लारी द्वारा पेशावर लौट आये।

१३—सामाजिक क्षेत्र में

लाहौर काँग्रेस

रामगली की रक्षा-समिति—मैं १९१८ में रामगली में स्थित अपने मकान में वास करता था। इस मोहल्ले में प्रायः हिन्दू ही निवास करते थे। केवल एक दो घर मुसलमानों के थे। उनके साथ समस्त हिन्दुओं का मित्रतापूर्ण व्यवहार था।

रामगली के समीप ही मुसलमानों का एक अलग मोहल्ला भी था जिसमें प्रायः अहमदी मुसलमान रहते थे। उसे अहमदिया मोहल्ला कहा जाता था। ये लोग भी हिन्दुओं के सदृश सुशिक्षित और सभ्य थे। हाँ हिन्दुओं का धार्मिक दृष्टिकोण में मतभेद इनसे अवश्य था।

रामगली से थोड़ी ही दूरी पर उत्तर-पश्चिम की ओर लंडा बाज़ार था। वहाँ भी मुसलमान बहुसंख्या में थे। उनके आजीविका-सम्बन्धी कार्य बहुत उन्नत न थे। उनमें से बहुत से प्रायः टाँगा चलाते, कबाड़ी का काम करते, भूसा या चारा बेचते तथा चल फिर कर छाबड़ी द्वारा साग-सब्जी या फल आदि बेचने का कार्य करते थे। कई लुहार, तरखान राज अथवा श्रमजीवी थे। इससे उनके शरीर पुष्ट होते थे और ऐसे अन्य कार्य भी कर लेते थे जिनमें शारीरिक बल की आवश्यकता हो।

अहमदिया मोहल्ले से थोड़ी दूर पश्चिम की ओर नहर के किनारे किनारे गूजरों के घर थे। वे लोग गायें भैंसें रखते और उनका दूध बेचते थे। इनके कार्य में भी अच्छे परिश्रम की आवश्यकता थी अतः इनके शरीर भी बलवान और पुष्ट थे।

१९२० में रामगली में रात को चोरियाँ होने लगीं। किसी किसी दिन तो दिन में भी चोरी हो जाती थी। इससे रामगली क्षेत्र में कुछ आतंक

उत्पन्न हो गया। मुहल्ले के लोग एकत्र हुए और इस पर विचार किया गया। निश्चय हुआ कि एक रक्षा-समिति बनाई जाय जिसका उद्देश्य चोरी आदि से अपने क्षेत्र की रक्षा का प्रबन्ध करना और परस्पर प्रेम-संगठन को दृढ़ करना था। समिति बनी और निर्वाचन हुआ। उसके प्रधान बने सरदार साहब तेजासिंह, रिटायर्ड पोस्टमास्टर लाहौर और मुझे मंत्री का कार्य मिला। उद्देश्य पूर्ति के लिए मोहल्लों में रक्षार्थ गोरखे और सिख पहरेदार नियुक्त कर दिये गये। यह कार्य दो तीन वर्ष भली प्रकार चलता रहा। फिर चोरी आदि की घटनाओं में कमी हो जाने के कारण इस प्रबन्ध में कुछ शिथिलता आगई।

१६२५ में पुनः कुछ पूर्व जैसी अवस्थाएँ पैदा होने लगीं। उस समय न केवल रात को ही चोरी आदि का भय था किन्तु दिन को भी उपद्रव एवं बलवे हो जाने का डर रहता था। नया निर्वाचन हुआ। इस समय समिति के प्रधान श्री पोहलोरामजी बने। वे उस समय पोस्टमास्टर-जनरल के कार्यालय में अध्यक्ष पद से अवकाश पा चुके थे। उसके बाद कई वर्ष तक वे रामगली आर्यसमाज के प्रधान भी रहे। इस समिति ने पुनः मुझे अपना मन्त्री चुना। इस बार वैतनिक पहरेदार तो रक्षार्थ नियुक्त न किये गये अपितु स्वयंसेवकों द्वारा ही रक्षा का कार्य चलाया गया और इसमें पर्याप्त सफलता हुई। थोड़े दिनों में ही वातावरण शान्त हो गया और परस्पर भय दूर होगया।

अरोड़वंश सुख सभा—जब से मैंने रामगली में स्थायी निवास का प्रबन्ध किया मुझे अपने पड़ौसियों के साथ मेलजोल के अधिक अवसर मिलने लगे। मेरे एक ओर ला० शंकरदास बजाज रहते थे, वे फोटोग्राफर के नाम से प्रसिद्ध थे। परन्तु वे फोटोग्राफी को छोड़कर मैशीनरी मर्चेंट बन चुके थे। उन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त न की थी परन्तु थे बड़े समझदार और अनुभवी। उन्हें अपने परिश्रम और बुद्धिमत्ता से अपने व्यापार में बड़ी सफलता प्राप्त हुई और वे अच्छे धन-सम्पत्तिवान बन गये।

उनके बड़े भाई श्री सालिगराम कभी २ उनके पास आते थे, उनसे भी मेरा परिचय होगया। चार पाँच वर्ष बीत जाने पर उन्होंने मुझे वार्तालाप के बीच में यह कहा कि जिस जाति में हम उत्पन्न हुए हैं और रहते हैं उसकी उन्नति की ओर भी हमें ध्यान देना चाहिए। मैंने उन्हें बताया कि हमारा उद्देश्य तो मनुष्य मात्र की सेवा करना है और किसी एक विशेष अंग की ओर ध्यान देने से हम अपने उद्देश्य को संकुचित बना लेंगे। उन्होंने उत्तर में कहा कि सब की भलाई चाहना तो अच्छा है ही परन्तु इसके अर्थ यह नहीं कि अपनों की उपेक्षा की जाय। १९२४ या २५ के आरम्भ में उनकी मुझ से फिर वार्तालाप हुई। जिसमें उन्होंने मुझसे कहा कि मैं उनके शिक्षा सम्बन्धी कार्य में सहयोग दूँ। मैंने इसे मान लिया। उन्होंने बताया कि यह कार्य अरोड़वंश मुख सभा की ओर से हो रहा है और जाति के नवयुवक तथा नवयुवतियों को शिक्षा के लिए धन रूप में सहायता दी जाती है। इसके लिए प्रार्थनापत्र बहुत संख्या में आते हैं। उनमें सुपात्र विद्यार्थियों का चुनाव एक विशेष उप-समिति के अधीन है। इस बार मैंने इस कार्य में सहयोग देना स्वीकार कर लिया।

कुछ मास पश्चात् उसी सभा का एक सम्मेलन होने वाला था। उसके लिए भी मुझे निमन्त्रित किया गया। उनके परामर्श पर मैं सदस्य बन गया और प्रतिनिधि रूप में उस सम्मेलन में सम्मिलित हुआ। श्री हर-किशनलाल जो पंजाब में औद्योगिक और व्यापार-क्षेत्र में अग्रणी थे, उस सम्मेलन के प्रधान थे। मुझे भी एक दो विषयों पर बोलने का अवसर मिला जिसके परिणामस्वरूप "अरोड़वंश को-ओपरेटिव बैंक" बनाने का प्रस्ताव स्वीकार हुआ और मुझे इसका संयोजक निर्वाचित किया गया। यह एक लम्बी कहानी है। उस समय श्री हरकिशन लाल पंजाब सरकार के मन्त्री थे। उनका प्रभाव सरकार में होते हुए तथा सारे वर्ष निरन्तर यत्न करते रहने पर भी उस बैंक की स्वीकृति न मिल सकी।

उक्त सभा के प्रधान थे श्री रामचन्द्र मंचंदा वकील। वे बड़े सुयोग्य तथा अनुभवी व्यक्ति हैं। अपने कार्य को भली भाँति चलाना जानते हैं। उनके साथ सभा के प्रधान मन्त्री थे प्रो० सन्तराम ग्रोवर। वे एक उच्च-कोटि के शिक्षक होने के अतिरिक्त बड़े मिलनसार भी हैं।

इसके पश्चात् सभा के कार्य की ओर कई वर्षों तक मैंने कोई ध्यान न दिया। मेरा विचार हुआ कि इस ओर से समय बचाकर आर्यसमाज की ओर ही अधिक समय लगाऊँ अतः मैंने इधर ध्यान देना बहुत कम कर दिया और आर्यसमाज के कार्यों में संलग्न होगया।

लाहौर काँग्रेस—इस प्रकार मेरा सामाजिक रूप से जहाँ जनता की अन्य समितियों से सम्बन्ध बना रहा वहाँ कांग्रेस समितियों द्वारा भी मैं बराबर राष्ट्रीय कार्यों में भाग लेता रहा। अखिल-भारतीय-काँग्रेस का वार्षिक-अधिवेशन पुनः दिसम्बर १९२९ को लाहौर में हुआ। इस अधिवेशन के लिए लाहौर में रावी के तट पर बड़ी भारी तैयारियाँ हुईं। जनता में अकथनीय उत्साह था।

गत १५ वर्षों से भारतीय स्वतन्त्रता के लिए जहाँ कांग्रेस ने अपना उत्साह पूर्ण प्रयत्न आरम्भ किया हुआ था वहाँ महात्मा गाँधी ने उस सारे आन्दोलन को अहिंसात्मक बनाया हुआ था। देशके कुछ कर्णधार इसे इतना महत्व न देकर क्रान्तिकारी व आतंकवादी बने हुए थे। हिंसात्मक कार्यों द्वारा सरकार पर आतंक जमाना चाहते थे। १९२८ की कलकत्ता काँग्रेस में उन्हें हिंसायुक्त कार्यों को छोड़ देने की अपील की गई थी। महात्माजी ने उन्हें आश्वासन दिया था कि यदि ब्रिटिश सरकार ने ३१ दिसम्बर १९२९ को रात के बारह बजे तक औपनिवेशिक स्वराज्य न दिया तो काँग्रेस का लक्ष्य होगा "पूर्ण-स्वतन्त्रता" और इसके लिए वे स्वयं अहिंसात्मक देशव्यापी आन्दोलन आरम्भ कर देंगे।

लाहौर काँग्रेस के अध्यक्ष थे पं० जवाहरलाल नेहरू। वे इस वर्ष तीसरी बार प्रधान चुने गये थे, इन पर देश को बड़ी आशाएँ थीं। देश

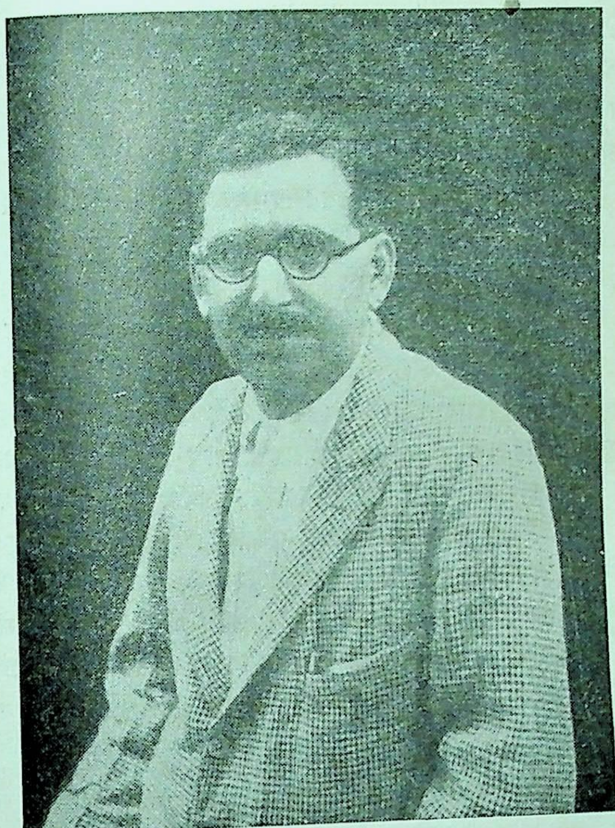
के बड़े चुने हुए सेवक इस अधिवेशन में सम्मिलित थे। लाहौर के प्रमुख बाज़ारों में पं० जवाहरलाल नेहरू का जलूस निकाला गया। वे घोड़े पर बैठे थे और उनके पीछे हज़ारों की संख्या में लोग पैदल चल रहे थे। यह दृश्य भारतीय इतिहास में अभूतपूर्व था।

ब्रिटिश शासकों ने भारतीयों की माँग पर कोई ध्यान न दिया। रात के १२ बजे तक प्रतीक्षा की गई। बारह बजेके पश्चात् प्रथम जनवरी १९३० आगई और उस दिन कांग्रेस ने "पूर्ण-स्वाधीनता" की घोषणा कर दी। प्रतिज्ञा लेने के लिए २६ जनवरी को 'स्वतन्त्रता दिवस' मनाया गया।

काँग्रेस में—इस बीच में मुझे काँग्रेस में कार्य करने का अवसर मिला। मैं नियमित रूप से काँग्रेस का सदस्य बना चला आता था। जहाँ तक हो सका मैंने अपने ढंग से काँग्रेस की सेवा की। जब १२ मार्च को महात्मा गाँधी ने डाँडी यात्रा की और उसके पश्चात् भारतीय युवक काँग्रेस के कारण जेल चले गये तो जो शेष व्यक्ति पीछे से कार्य करते रहे उनको मैंने भी सहयोग दिया तथा आवश्यकतानुसार कुछ सभाओं में भाषण भी दिये।

सन् १९३० में लाहौर म्युनिसिपल समिति का चुनाव होने वाला था। काँग्रेस ने अपनी ओर से कोई उम्मीदवार खड़ा न किया था। इसका कारण था काँग्रेस में दो पक्षों का होना, जिनमें कोई समझौता न हो सका था। एक दल के नेता थे डा० सत्यपाल और दूसरे दल के, डा० गोपीचन्द भार्गव।

उधर अपने इलाके में मैं मन्त्री रूप से रक्षा-समिति का कार्य कर रहा था। समिति अपने वार्ड से किसी धनी व्यक्ति को खड़ा करना नहीं चाहती थी। सर्व-सम्मति से यह प्रस्ताव किया गया कि मैं इसके लिए खड़ा हो जाऊँ। नौलक्खा वार्ड कमेटी की ओर से किसी को खड़ा होते न देखकर तथा काँग्रेस के दोनों पक्षों की प्रेरणा पाकर मैं इस चुनाव के लिए खड़ा हो गया।



कांग्रेस में कार्य करते हुए (१९३०)

काँग्रेस के दोनों पक्षों से मेरा मेल-जोल था। यद्यपि मैं काँग्रेस की ओर से उम्मीदवार न था किन्तु इस चुनाव में दोनों ने मेरा साथ दिया। प्रान्तीय काँग्रेस के मन्त्री डा० सत्यपाल ने मेरे समर्थन में सभाओं में भाषण भी दिये। डा० गोपीचन्द भार्गव मेरे कालेज के सहपाठी थे। वे भी समय २ पर मुझे परामर्श देते रहे। मेरे सब रामगली निवासी मित्रों का

काँग्रेसी कार्यकर्ताओं ने मेरे चुनाव कार्य में सहयोग दिया। किन्तु मेरा प्रतिद्वन्दी चुनाव-कार्य में मुझ से अधिक अनुभवी था। उसे इस कार्य की सभी कठिनाइयों एवं साधनों का ज्ञान था जिसके कारण वह अपने कार्य में सफल हुआ।

पिताजी का स्वर्गवास—मेरे पिता सरदार फतहसिंह जी १६३२ में ७६ वर्ष की अवस्था प्राप्त कर चुके थे। यद्यपि उनका शरीर अब कुछ शिथिल होता जा रहा था फिर भी वे अच्छी तरह चलते-फिरते थे। जहाँ कथा वार्ता होती अथवा धार्मिक सत्सङ्ग होता वहाँ अवश्य जाते थे। अपने मित्रों और संबंधियों के पास हर्ष एवं शोकादि के अवसरों पर अवश्य पहुँच जाते थे। १६३२ के दिसंबर में मेरी बुआजी के सुपुत्र मुकुन्दलाल जी की पुत्री का विवाह था। उन्होंने स्यालकोट से हमें निमन्त्रण भेजा। मैं तो उस समय वहाँ न पहुँच सकता था परन्तु मेरे पिता जी वहाँ जाने को तैयार हो गये। वे विशेषतया इस लिए भी तैयार हुए थे कि मेरे फूफा श्री सावनमल स्यालकोट जा रहे थे। जहाँ उनकी प्रेरणा ने पिताजी को वहाँ जाने को उद्यत किया वहाँ उनके परस्पर प्रेम ने भी कुछ दिन एक साथ रहने को विवश कर दिया। स्यालकोट जाकर वे अपने भाँजे डा० जगदीशचन्द्र के यहाँ श्री सावनमल के साथ ही ठहरे।

स्यालकोट जाने से पूर्व उनके हाथ की एक अंगुली में कील लग गई। उससे थोड़ा सा खून भी निकल आया। उस पर मलहम लगा दी गई पर उस समय वे सरल स्वभाव से बोले कि "यह घाव मेरा अन्त लाने वाला है।"

स्यालकोट रहते हुए एक दिन उन्हें तीन चार दस्त हुए। इससे शरीर में उन्हें कुछ विशेष दुर्बलता प्रतीत हुई। जब पुनः एक बार शौच के लिए गये तो उस समय उनके निकट कोई न था। शौच-स्थान पर बैठे हुए वहीं गिर पड़े और अपने को न संभाल सके।



मेरे पिता स० फतह सिंह जी (१६३२)

कुछ देर बाद डा० जगदीशचन्द्र वहाँ आये तो देखा पिताजी बेहोश पड़े हुए हैं। उन्हें उठाकर बिस्तरे पर लिटा दिया गया। मुझे १७ दिसम्बर को लाहौर के पते पर तार दिया गया पर मैं पेशावर

गया हुआ था। मेरी अनुपस्थिति में मेरी धर्मपत्नी तथा छोटे भाई की धर्म-पत्नी दोनों स्यालकोट पहुँच गईं।

अकस्मात् मैं भी उसी दिन लाहौर पहुँचा और इस समाचार को पाकर स्यालकोट रवाना होगया। जब मैंने पिताजी के दर्शन किये, वे बिस्तरे पर बेहोश पड़े थे। मैंने उन्हें दो-तीन बार बुलाया और उन्हें होश में लाने का प्रयत्न किया किन्तु सफलता न हुई। मेरे वहाँ पहुँचने के थोड़े समय पश्चात् ही रात के समय उन्होंने प्राण त्याग दिये। मेरी धर्मपत्नी की प्रेरणा पर पिताजी का शव लाहौर लाया गया और वहाँ वैदिक रीत्यनुसार उनका दाह-कर्म संस्कार हुआ।

१४---बम्बई में सपरिवार

कुछ वर्षों से मेरा सम्बन्ध मकमिलन कम्पनी के शिक्षा-सम्बन्धी प्रकाशन से चला आरहा था। इस कम्पनी के भारत में तीन कार्यालय हैं:— एक बंबई में, दूसरा मद्रास में और तीसरा कलकत्ते में। मेरा विशेष सम्बन्ध बम्बई कार्यालय से था।

अपने क्षेत्र-परिवर्तन के पश्चात् मुझे इस संस्था में कार्य करते हुए पन्द्रह वर्ष होने वाले थे। मैं इस के कार्य के सम्बन्ध में कई स्थानों पर भ्रमण कर चुका था। मुझे इस समय तक उसकी गति-विधियों का अच्छा अनुभव हो चुका था। अपने कार्य के विषय में बम्बई लिखता रहता था पर फिर भी कुछ वर्षों पीछे बम्बई जाकर मौखिक वार्तालाप करना भी आवश्यक होता था। इसी दृष्टि से १९३० के आरंभ में मैं बम्बई गया। मेरी धर्मपत्नी पुत्र धर्मवीर सहित मेरे साथ थीं। मार्ग में हम एक सप्ताह के लिए दिल्ली रुके और आवश्यक कार्यों से निवृत्त होकर बम्बई के लिए चल पड़े। दूसरे ही दिन वहाँ हम पहुँच गये।

बम्बई कार्यालय का समय दिन में ९ बजे से ५ बजे तक था। मैं भी इसी बीच में वहाँ जाता और आवश्यक विचार-विनिमय करता। एक दिन वहाँ के मैनेजर श्री ऐरु० ई० फ्रांसिस से अपने कार्य के विषय में कुछ समय तक वार्तालाप हुआ।

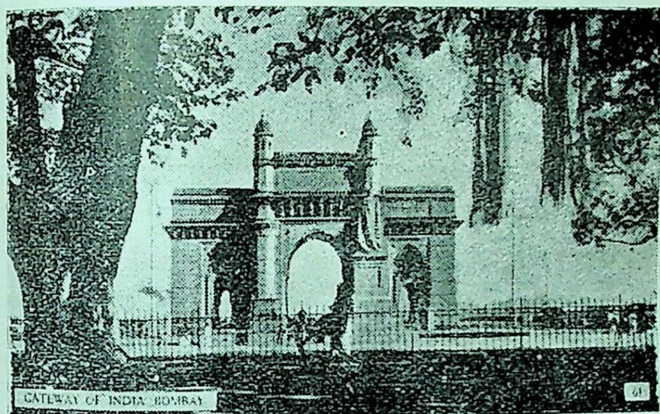
पंजाब के स्कूलों के सम्बन्ध में चर्चा चली। प्रसंगानुसार मैंने भी एक दो अनुभव सुनाये और बताया कि जब मैंने प्रतिनिधिरूप से कार्यारंभ किया था तो अभी एक दो अंग्रेज प्रकाशकों ने ही अपनेप्रतिनिधि नियुक्त किये थे। भारतीय प्रकाशकों का तो इस ओर ध्यान भी न गया था।

उस समय केवल इन्सपेक्टर लोग ही टाँगे अथवा गाड़ी में बैठकर स्कूलों में निरीक्षणार्थ जाते थे। मैंने जब कार्य आरंभ किया तो स्कूलों में टाँगे में ही जाता था। कुछ एक स्थानों में ऐसा हुआ कि मुख्याध्यापक स्वागत के लिए बाहर आगये। ऐसी भ्रमयुक्त अवस्था में उनके भीतर भय का अंश भी उत्पन्न होजाता था। पर वास्तविक स्थिति का ज्ञान होने पर वह भय उपेक्षा में परिवर्तित हो जाता था। इससे कार्य में प्रायः कठिनाई आजाती थी। मैंने यह भी बताया कि कुछ एक मुख्याध्यापक ऐसे भी देखने में आये हैं कि जब उन्हें किसी पुस्तक को प्रचलित करने की प्रेरणा की गई तो वे निःसंकोच कहते कि हमें ऐसा करने का अधिकार नहीं। जब उन्हें स्थिति स्पष्ट भी कर दीजाती कि उन्हें उस विषय में निर्णय करने के अधिकार प्राप्त हैं तो भी वे उस ओर चलने का सहास न करते थे। इसके साथ ही कुछ एक ऐसे भी थे जो शिक्षा-सम्बन्धी विचार-विनिमय के लिए उद्यत हो जाते थे पर वे किसी एक बात पर आग्रह कर बैठते थे। वे अपनी युक्ति पर अड़े रहते थे, चाहे वह निराधार ही क्यों न हो।

एक समय ऐसा भी आया जब कि भारतीय प्रकाशकों ने भी अपने प्रतिनिधि इस कार्य के सम्बन्ध में भेजने प्रारंभ कर दिये परन्तु वे आरंभ में सुरक्षित न थे और इस कार्य का वह अनुभव न रखते थे. जो सफलता के लिए आवश्यक हैं। अतः अपनी कार्य-सिद्धि के लिए जैसे भी हो सकता प्रयत्न करते थे। वे ऐसे ढंग भी उपयोग करने में न हिचकते थे कि जिसका व्यापारिक दृष्टि से भी समर्थन नहीं हो सकता।

इसी प्रकार बम्बई मे रहते हुए अपना कार्य करके सायं काल अपने निवास को लौट आता। अब कार्यक्रम ऐसा बना लिया कि जिससे मैं अपनी धर्मपत्नी और पुत्र को वहाँ के दर्शनीय स्थान दिखा सकूँ। सुविधानुसार ऐसा होता भी रहा। हम जहाँ वहाँ के बड़े २ बाजारों तथा दर्शनीय स्थानों को देखने जाते वहाँ समुद्र तट पर भी नित्य वायु-सेवनार्थ जाते

और भारत-द्वार के पास बेंचों पर बैठकर समुद्री-दृश्य देखकर आनन्द उठाते। भारत द्वार के एक ओर ठाठें मारता विशाल समुद्र था तथा दूसरी ओर था आकाश से बातें करता हुआ कलात्मक रूप से बना ताज होटल जो एक विशेष प्रभावशाली दृश्य उपस्थित करता था। एक दो बार हमें वहाँ समुद्र-तट पर नौकाविहार का भी अवसर हुआ।



भारत द्वार बम्बई में समुद्र तट पर

इस बार हम बम्बई के प्रसिद्ध स्थान चौपाटी एवं मालाबार हिल पर भी गये। मैं पहले ही लिख आया हूँ कि मैकमिलन कम्पनी के मैनेजर श्री ऐफ० ई० फ्राँसिस थे। उनसे मेरा घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। वे बड़े शुद्ध और उदार हृदय तथा मृदुभाषी थे।

इससे पूर्व भी गत पन्द्रह वर्षों में उनसे तीन बार मिल चुका था। वैसे तो हमें एक दूसरे के पत्र-प्रतिदिन आते ही थे किन्तु एक दूसरे से मिलने का अवसर कभी न कभी होता था। उनकी धर्मपत्नी से भी मुझे परिचय प्राप्त था। जब उन्हें पता चला कि इस बार मेरी धर्मपत्नी भी मेरे

साथ आई हैं तो उन्होंने हमें अपने घर पर निमन्त्रित किया। २३ जनवरी को हम बाँदरा में उनके निवास स्थान पर गये। उनकी कोठी समुद्रतट के समीप एक ऊँचे स्थान पर बनी थी। वहाँ से समुद्र का दृश्य भली प्रकार दीख पड़ता था।

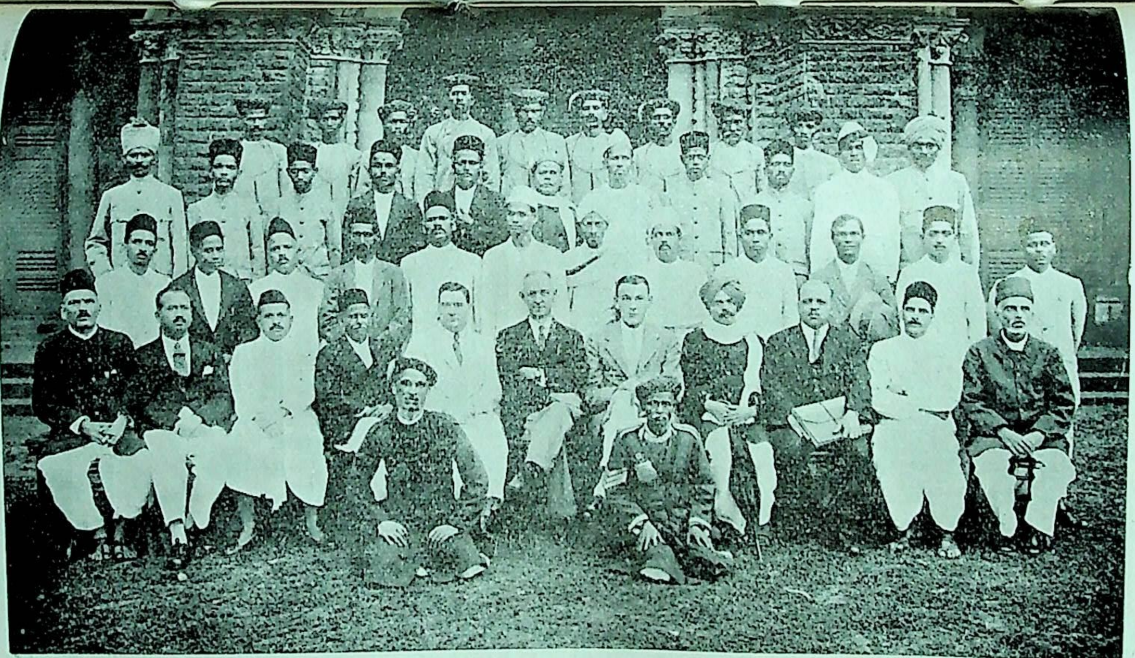
हम उनके यहाँ दो घंटे तक ठहरे। वहाँ हमारे लिए चाय आदि का प्रबन्ध था। उनको यह पहले ही से ज्ञात था कि मैं और मेरी धर्म-पत्नी निरामिष भोजी हैं। अतः विशेष रूप से ऐसी वस्तु ही मेज पर रखी गई जो हमारे अनुकूल थी।

इस बार तो हमारा साधारण रूप से ही वार्तालाप हुआ और हम वहाँ से अपने स्थान को लौट आये। यथा समय बम्बई का कार्य करके हम लाहौर लौट गये।

बम्बई-यात्रा १९३४—मैकमिलन कम्पनी के अंग्रेज अधिकारियों को पाँच वर्ष के पश्चात् कम से कम छः-सात मास का दीर्घावकाश मिला करता था। तदनुसार श्री फ्राँसिस भी इस अवकाश पर मई के अन्त में लंदन जारहे थे। ऐसे अवसरों पर वे अपने भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के कार्य-कर्त्ताओं से परिचय प्राप्त करते थे जिससे कि वे संचालकों को पूरी जान-कारी दे सकें। अतः इस अवसर पर मुझे भी बुलाया गया। मैं बम्बई के लिए अपनी धर्मपत्नी सहित चल पड़ा। इस बार मेरा सबसे छोटा पुत्र यशपाल साथ था।

श्री फ्राँसिस के सम्मान में एक प्रीति भोज दिया जाना था। मैं भी उसमें निमंत्रित था पर यत्न करने पर भी मैं ठीक समय पर बम्बई न पहुँच सका। उसी समय कंपनी के कार्य कर्त्ताओं का एक चित्र भी लिया गया था।

जब तक मैं बम्बई ठहरा, प्रतिदिन कार्यालय में जाकर वार्तालाप करता रहा। एक दिन श्री फ्राँसिस से



मैकमिलन कम्पनी बम्बई के अधिकारी तथा कर्मचारी १९३४ में

अपने कार्य के सम्बन्ध में विचार-विनिमय हो रहा था। उनके प्रश्न करने पर मैंने बताया कि आजकल किसी स्कूल में पुस्तकें प्रचलित करने में क्या-क्या कठिनाइयाँ आती हैं। मैंने कहा, निस्संदेह इस कार्य को उत्तम रीति से निभाने के लिए जहाँ विश्वविद्यालयों और शिक्षा-विभाग के अधिकारीवर्ग से मिलना आवश्यक है वहाँ शिक्षा-संस्थाओं के प्राध्यापकों, मुख्याध्यापकों से भी मिलना अनिवार्य होता है, और यह भेंट होती है व्यापारिक रूप से। शिक्षा-विशेषज्ञों से तो केवल शिक्षा सम्बन्धी जानकारी ही प्राप्त होती है। इससे नये प्रकाशनों को पाठविधि अनुसार बनाने में सहायता मिलती थी पर स्कूलों से यह भी आशा होती थी कि वे पुस्तकों को अपने स्कूल में प्रचलित करेंगे। अनुभव ने यह बताया कि इस आशा की पूर्ति किसी नियम पर निर्भर नहीं। इसमें बहुत कुछ व्यक्तिगत सम्बन्ध और प्रभाव से सिद्धि होती है। यह प्रभाव कैसे डाला जाय, यह तो तत्कालीन परिस्थिति पर ही निर्भर है पर निरन्तर इतने वर्ष कार्य करने पर मैंने यह निश्चय कर रखा था कि किसी से विशेष सफलता की आशा करके कहीं न जाऊँ, अपितु कर्तव्य-पालन की दृष्टि से निसंकोच मिलूँ अवश्य।

श्री फ्रांसिस से अन्य भी कई विषयों पर वार्तालाप होती रही, और इस प्रकार दिन का कार्यक्रम चलता रहा।

मैं बम्बई जाकर वहाँ एक होटल में ठहरा हुआ था। सायंकाल को मैं अपनी धर्मपत्नी व पुत्र यशपाल के साथ विभिन्न स्थानों को देखने जाता था। श्रीमती फ्राँसिस ने हमें इस बार भी चाय पर निमन्त्रित किया। हम नियत तिथि को उनकी कोठी पर पुनः बाँदरा पहुँचे।

यदि यहाँ बाँदरा का कुछ वर्णन किया जाय तो अनुचित न होगा। बाँदरा किसी समय पुर्तगाल वालों कि बस्ती थी। यह स्थान महिम से थोड़ी दूरी पर स्थित है और बम्बई से १२ मील पड़ता है।

हम वहाँ चर्चगेट के स्टेशन से रेल द्वारा गये। उस स्थान पर अंग्रेज अधिक संख्या में रहते थे। उसके समीप ही पाली पर्वत पर और भी बहुत से सुन्दर बंगले बने थे। इस स्थान को अच्छी प्रकार घूम-फिर कर देखने के लिए हमने बाँदरा स्टेशन से एक गाड़ी किराये पर ली। उसमें बैठकर पाली की पहाड़ी पर चारों ओर चक्कर लगाये। इस पहाड़ी पर लगे हुए वृक्षों का दृश्य अत्यन्त रमणीय था। बस्ती के मध्य में प्राचीन गिरजा था जहाँ से समुद्र के तट तक एक सड़क जाती थी। उसके बीच एक पथ बाँदरा के लिए भी जाता था। किला तो अब नहीं रहा, उसके खण्डहर ही रह गये थे। वहीं एक पारसी सैनिटोरियम है जो अपने ढंग का दर्शनीय स्थान है।

इसी स्थान के निकट श्री फ्राँसिस एक बंगले में रहते थे। श्रीमती फ्राँसिस और उसकी पुत्री कुमारी एडिथ (Miss Edith) ने हमारा स्वागत किया। उन्होंने हमें सम्मान-पूर्वक बिठाया। मेरी धर्म-पत्नी अंग्रेज़ी न जानती थी और श्रीमती फ्राँसिस को हमारी भाषा न आती थी। अतः साधारणतया मैं दुभाषिये का कार्य कर रहा था और दोनों की बातें एक दूसरी को उनकी भाषा में बताता था। कुमारी फ्राँसिस लक्ष्मी जी से वार्तालाप करने के लिए बड़ी उत्सुक थीं। उन्होंने पास ही रहने वाली एक अंग्रेज़ महिला को जो हिन्दुस्तानी भी जानती थीं वहाँ बुला लिया और आपस में बहुत देर तक वार्तालाप करती रहीं। पाँच बजे सबने मिलकर जलपान किया और ६ बजे की गाड़ी से हम वहाँ से बम्बई लौट गये।

बम्बई में रहते हुए इस बार जब मैं ५ बजे अपने कार्य से लौटता तो अपनी पत्नी और पुत्र को भ्रमण के लिए बाजार तथा अन्य स्थान दिखाने के लिए जाता रहा। इस बीच में निम्न दो उल्लेखनीय स्थान भी देखे:—

अफग़ान मेमोरियल चर्च—पश्चिमीय भारत में यह अत्यन्त

सुन्दर स्थान है। इसकी नींव बम्बई के तत्कालीन गवर्नर ने सन् १८४७ में रखी थी। भवन का निर्माण अंग्रेज़ी कला के आधार पर किया गया था।

ज्योतिःस्तंभ—इस स्थान से एक मील दूर एक ज्योतिःस्तम्भ समुद्र के बीचों-बीच बना हुआ है। इसका प्रकाश समुद्र पर १८-१८ मील तक पहुँचता है। यह स्तंभ समुद्र के बीच में मार्ग दर्शक का कार्य करता है। यह एक अत्यन्त भयंकर चट्टान पर खड़ा है और अपने नमूने का सबसे बड़ा भवन है। इसके बनाने में ६ लाख रुपया व्यय हुआ था।

बम्बई से लौटते हुए—१२ मई १९३४ को हम गाड़ी पर बैठ कर १३ को खंडवा पहुँचे। हमारे एक सम्बन्धी स० दयालसिंह जी का थोड़े दिन पूर्व देहान्त हो गया था। उनकी विधवा की कुछ सम्पत्ति कुछ दूरी पर चैनपुर ग्राम में थी। उसकी सहायतार्थ लक्ष्मी जी की प्रेरणा पर हम चैनपुर जाने के लिए बस द्वारा चल पड़े।

अभी एक पड़ाव ही गये थे कि ज्ञात हुआ कि चैनपुर जाकर उसी दिन लौट कर खंडवा आना संभव नहीं। अतः उस पड़ाव पर एक वकील से मिले। यह वकील उक्त सरदार जी का परिचित था। उसको मैंने उनकी सम्पत्ति सुरक्षित कराने का प्रबन्ध करने के लिए प्रेरित किया। उनके स्वीकार करने पर हम खण्डवा स्टेशन को लौट आये।

वहाँ से रेलगाड़ी पर सवार होकर इटारसी होते हुए सुहागपुर गये। वहाँ मेरे मित्र बाशी राम जी सपरिवार रहते थे। हम उनके पास ठहरे। सायंकाल बाहर हम सैर करने गये। वहाँ सैर करते हुए पलकमती नदी के किनारे पानों के खेत देखे जो हमारे लिये एक नवीन बात थी।

वहाँ से इलाहाबाद पहुँचे। प्रयाग में गंगा-यमुना का संगम देखा। यह प्रसिद्ध तीर्थ दर्शनीय स्थान है। कहते हैं कि यहाँ तीन नदियों का

संगम स्थान है। तीसरी नदी है सरस्वती। यह प्रकट रूप में नहीं दीख पड़ती थी। बताया जाता है कि यह भूमि के अन्दर ही अन्दर बहती है। है तो यह एक विचित्र बात, पर इसमें सचाई भी हो सकती है।

इलाहाबाद में पं० मोतीलाल नेहरु का निवास स्थान था। उन्होंने एक भव्य भवन बनवाया था जिसे आनन्द-भवन कहते हैं। उसका एक भाग उन्होंने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी को दान दे दिया था। उनके इस त्याग ने उनकी कीर्ति को चार चाँद लगा दिये। आनन्द भवन के उस भाग को स्वराज्य भवन के नाम से पुकारा जाता है। इस रमणीय स्थान को देखकर हम लाहौर लौट गये।

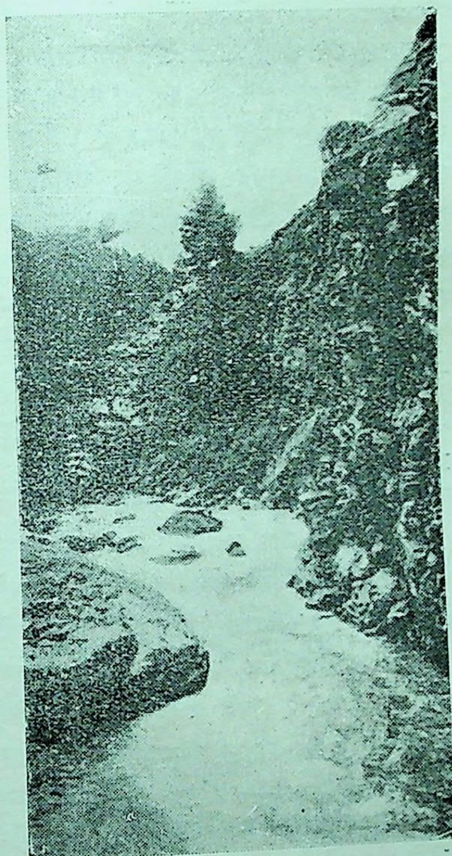
१५—काश्मीर की चार यात्राएं

(१९३० से १९३८ तक)

१—सन् १९३० की गर्मियों में जब काश्मीर जाने का विचार हुआ तो मेरे साथ मेरी धर्मपत्नी, पुत्री सुशीला, पुत्र इन्द्रदेव और धर्मवीर भी जाने को तैयार हो होगये। पूर्व वर्षों में तो हम रावलपिंडी होते हुए काश्मीर जाते रहते थे पर इस वर्ष हमने जम्मू के मार्ग से जाने का निश्चय किया। १६ अगस्त को हम सब जम्मू पहुँचे। वहाँ से एक बस द्वारा श्री नगर को चले। मार्ग में ऊधमपुर, कुद्द, बटौत, रामबन और बानिहाल के पड़ाव आये। इस मार्ग में पर्वत-मालाएँ, नदी-नाले, विशाल वृक्ष एवं भिन्न-भिन्न प्रकार की वनस्पत्तियाँ दीख पड़ी। प्राकृतिक दृश्य बड़े ही रमणीय थे। बानिहाल से पीरपंजाल पर्वत की चढ़ाई प्रारंभ होती है। इस पहाड़ में सड़क गोल चक्कर काटती हुई जाती है। इस पर मोटर, बस, कार आदि का यातायात होता है। ऊपर चढ़ते-चढ़ते नौ हज़ार फीट की ऊँचाई आजाती है। वहाँ हम सुरंग के मार्ग से पर्वत के दूसरी ओर गये और यहीं से उतराई आरंभ होगई।

बैरीनाग—नीचे उतरते हुए दस मील तक चले गये। यहाँ से एक सड़क बैरीनाग को जाती है। इसी बस द्वारा हम उस मार्ग से बैरीनाग गये। यहाँ वह स्रोत है जिससे जेहलम नदी निकलती है। इससे पानी निकलकर जिसकुण्ड में एकत्र होता है वह पहले कच्चा था। किन्तु जब मुग़ल बादशाह जहाँगीर अपनी पटरानी मल्का नूरजहाँ के साथ यहाँ आया तब उसने उसे पक्का बनवा दिया था। उसके पश्चात् जब शाहजहाँ आया तो उसने तालाब को और भी गहरा और विशाल करवा दिया। इसके समीप ही एक सुन्दर वाटिका भी है जो उस

समय बड़ी अच्छी अवस्था में थी। निकटवर्ती पर्वतों की ढलवान पर चारों ओर चीड़ और देवदारु के वृक्ष मानो सीधे आकाश से बातें करते हुए अनुपम छटा दिखा रहे थे। दृश्य बड़ा ही मनोरम था। उसी दिन सायंकाल हम श्रीनगर जा पहुँचे।



गुलमर्ग का नाला

गुलमर्ग—श्रीनगर पहुँचकर हमने दो दिन विश्राम किया और इस बीच में वहाँ के दर्शनीय स्थान देखे। २३ की मध्याह्न के समय गुलमर्ग को चले। ३ बजे हमारी लारी तंगमर्ग पहुँची। वहाँ से घोड़ों पर सवार होकर तीन मील की दूरी पर गुलमर्ग गये। अल्पाहार के पश्चात् इधर-उधर भ्रमण किया और गुलमर्ग नाम के नाले तक गये। रात को वहाँ एक होटल में ठहरे। अगले दिन प्रातः खिल्लन मर्ग का चश्मा देखने गये। यह चश्मा तीन मील की दूरी पर एक ऊँचे पर्वत पर स्थित है। इस पर्वत की चढ़ाई भी बड़ी कठिन है। मैं तथा मेरे पुत्र और पुत्री तो यात्रा में घोड़ों पर सवार हो गये पर मेरी पत्नी ने पैदल चलना ही अच्छा समझा। गुलमर्ग नौ हजार फीट ऊँचा था। वहाँ से आल-पत्थर देखने हमें पाँच हजार फीट और ऊँचा जाना पड़ा।

अल-पत्थर-झील—हम ऊँचे चढ़ते गये। जब ऊपर गये तो धूप चमक रही थी। यद्यपि चढ़ाई चढ़ने से शरीर में गर्मी आई हुई थी किन्तु अधिक ऊँचाई के कारण वहाँ शीत प्रतीत होने लगा। थोड़ी दूर चलकर हम बर्फ के पानी की उस झील पर पहुँचे जिसे अलपत्थर कहते हैं। वहाँ इधर-उधर घूमघाम कर थोड़ी देर उसके तट पर बैठे पर शीत इतना अधिक था कि अधिक बैठना उचित न समझा।

उस समय मंद-मंद वायु चल रही थी। प्राकृतिक दृश्य बड़ा ही रमणीय था। वहां से हम शीघ्र ही लौट पड़े। हमें उतरते-उतरते दो बज गये। अपने होटल में लौटकर भोजन किया। कुछ विश्राम के पश्चात् सायंकाल के पूर्व पुनः एक दो घंटे बाहर सैर की। अगले दिन भी गुलमर्ग में ही भ्रमण किया। १० बजे के पश्चात् वहाँ घोड़ों पर बैठकर तंगमर्ग आये और वहाँ से बस द्वारा मध्यान्ह के पश्चात् लौटकर श्रीनगर जा पहुँचे।

डल झील में नौका विहार—चार बजे हम नौका-विहारके लिए चले। जेहलम नदी से नौका में बैठकर डलझील में पहुँच गये। डलझील के

किनारे स्थान-स्थान पर हाऊस बोट खड़े थे। उनमें बहुत से तो दो मंज़िले थे। जिनकी छाया झील के स्वच्छ और निर्मल जल में अद्भुत दृश्य उपस्थित कर रही थी। उस समय इन हाऊसबोटों में प्रायः अंग्रेज परिवार रहते थे। इस प्रकार डल और जेहलम नदी का भ्रमण करते हुए रात को आठ बजे हम लोग अपने निवास स्थान को वापिस आये।

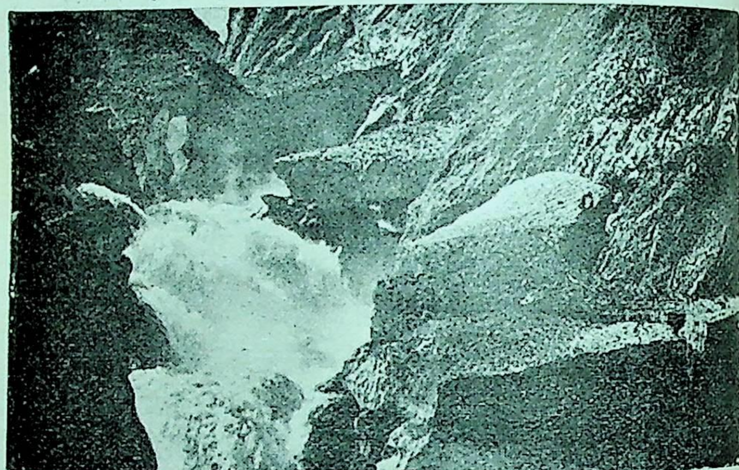
प्रदर्शनी में—दूसरे दिन सायं से पूर्व प्रदर्शनी में गये। इसका आयोजन रियासत सरकार की ओर से किया गया था। इसमें रियासत की उपज, शाक और फलों के नमूने, रेशम, सूत और ऊन के बने हुए वस्त्र प्रदर्शित किये गये थे। इसके अतिरिक्त चाँदी और काँसी के वर्तन, लकड़ी और पेपरमेशी की वस्तुएँ भी प्रदर्शित की हुई थीं। हमने इन सब वस्तुओं कों घूम-फिर कर देखा।

पहलगाम को—अगले दिन हम लोग मोटरलारी में बैठकर श्रीनगर से अनन्तनाग होते हुए पहलगाम गये और वहाँ एक होटल में ठहरे। समीर ही लीद्दड़ की घाटी में एक बर्फ के पानी की नदी बहती है जिसे लिद्दड़ या शेषनाग नदी कहते हैं। उसके किनारे-किनारे स्वच्छ वायु में भ्रमण किया और वहाँ की सुन्दर मनोहर छटा देखते रहे।

अगली प्रातः स्नान आदि से निवृत्त होकर भोजन किया और फिर घोड़ों पर सवार होकर चन्दनवाड़ी के लिए चल पड़े। यह स्थान पहलगाम से सढ़े सात मील की दूरी पर स्थित है। अमरनाथ कीय त्रा के लिए यही पहला पड़ाव है।

चन्दनवाड़ी—चन्दनवाड़ी का मार्ग शेषनाग नदी के किनारे-किनारे जाता है। यह दृश्य सुन्दर एवं अत्यन्त रमणीय है। मार्ग की हरी-भरी वनस्पतियाँ शोभायमान प्रतीत होती हैं। बीच बीच में रंग-विरंगे सुन्दर फूल खिले हुए थे, जो दृश्य को और भी अधिक मनोहर बना देते थे।

चन्दनवाड़ी पहुँचकर देखा कि वहाँ पर एक बर्फ का बड़ा तौदा (Glacier) पड़ा है। यह कोई एक फर्लांग से कुछ ही कम होगा। इसके नीचे नदी बहती है। ऐसा लगता है कि मानों यह बर्फ का पुल बना है।



चन्दनवाड़ी पर बर्फ का पुल

इसे पार करके हम उस पार चले गये और चारों ओर बर्फीली चोटियों का दृश्य देखते रहे।

ग्लेशियर को देखकर हम चार बजे वहाँ से लौट पड़े और कोई एक घंटे के पश्चात् पहलगाम आ गए। अगले दिन प्रातः उठकर वहाँ के जंगल में घूमने निकल पड़े। जब हम लौट कर आये तब धूप निकली हुई थी। नदी के तट पर जाकर तेल की मालिश की और शीतल जल से स्नान किया। इस नदी की गहराई तो कम है किन्तु यहाँ की भूमि पथरीली है। इस कारण जल का वेग पानी में पैर न जमने देता था। के इससाथ ही उस समय शीतल वायु चल रही थी। पूछने पर पता

चला कि इस समय वायु सदैव ऐसे ही चलती है। स्नान के उपरान्त हम लौटकर अपने निवास स्थान को चले गये।

अभी हमें लौटे थोड़ी देर ही हुई थी कि आकाश पर बादल छा गये बूँदा-बूँदी होने लगी। कुछ देर बाद जब बूँदें थमी तो हमने पहलगाम से लौटने का निश्चय किया। हम एक मोटर लारी में बैठ गए। मार्ग में कीचड़ अधिक था जिस पर मोटर के फिसलने का भय था। पर हम ईश्वर की कृपा से निर्विघ्न मटन पहुँच गये।

मटन—३१ अगस्त को प्रातः मटन के समीप मार्तण्ड के कुण्ड में जाकर स्नान किया तथा प्रातः राश के पश्चात् भ्रमणार्थ चल दिये। मेरी धर्मपत्नी साधारणतया जहाँ भी जाती थी, घर के लिए वहाँ से कुछ न कुछ वस्तुएँ स्मृति रूप में ले आती थी। इसी विचार से हम वहाँ के गब्भे और लोइयों के व्यापारियों के पास गये और घर के लिए वहाँ से कुछ आवश्यक सामान ले आये।

मध्याह्न के पश्चात् भोजन किया। विश्राम करके सायंकाल से पूर्व वहाँ वामनी गुफा देखने के लिए चल पड़े। कहा जाता है यह गुफा बहुत प्राचीन है। इसको महाराजा शालिवाहन ने बनवाया था। मैं अपनी धर्मपत्नी सहित गुफा के अन्दर गया। बहुत दूर तक तो मैं न जा सका पर लक्ष्मी जी कोई बीस गज की दूरी तक अन्दर गईं। आगे बढ़कर एक ऐसा स्थान आया जहाँ पर टार्च का प्रकाश भी क्षीण होने लगता था। अतः वह आगे न जा सकीं और वहीं से लौट आईं। गुफा देखने के बाद हम अनन्तनाग होते हुए श्रीनगर लौट गये। वहाँ से एक दिन बारामूला गये। यहाँ से लौटते हुए मार्ग में मरी पर्वत पर ठहरे और एक सप्ताह तक वहाँ की स्वच्छ वायु का भ्रमण करके लाभ उठाया। तत्पश्चात् रावलपिंडी होते हुए लाहौर लौट गये।

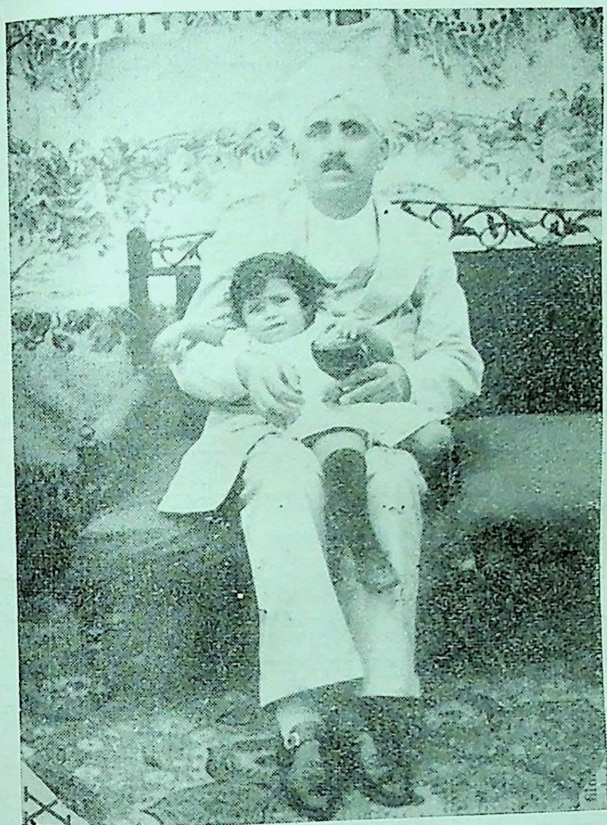
असहयोग आन्दोलन—इन दिनों देशभर में असहयोग आंदोलन जोरों पर था। महात्मा गाँधी, पं० जवाहरलालनेहरू आदि नेता

गिरफ्तार हो चुके थे। नमक कानून, लगान विरोधी आँदोलन, जंगल सम्बन्धी कानून तथा धारा १४४ भंग की जा रही थीं। इन दिनों लंदन में गोल मेज सम्मेलन भी हुआ था। हमारे देश से सरकार ने प्रसिद्ध भारतीयों को लंदन बुलाया था। महात्मा गाँधी जेल में होने के कारण सम्मिलित न हो सके थे और काँग्रेस ने गोलमेज का बहिष्कार कर दिया था।

इस सम्मेलन में कुछ भी निर्णय न हो पाया। अनुभव किया जाने लगा कि महात्मा गाँधी का सम्मेलन में होना अनिवार्य है अतः दिल्ली में गाँधी-इर्विन समझौते की बातचीत आरम्भ हो गई। इसके परिणाम-स्वरूप गाँधीजी ने अगले गोलमेज़ सम्मेलन में सम्मिलित होने क स्वीकृति दे दी।

१९३१ का वर्ष आया। इन दिनों फरवरी में गाँधी-इर्विन समझौता होगया। देश के नेता जेलों से बाहर आगये। इन्हीं दिनों हमारे यहाँ ६ अप्रैल को एक बालक का जन्म हुआ इसका नाम यथा समय यश-पाल रखा गया। मुझे गत वर्ष से असहयोग आन्दोलन में विशेष रुचि रही है अतः इस वर्ष मैंने काश्मीर जाने का विचार स्थगित कर दिया और आवश्यकतावश निकटवर्ती पर्वतीय स्थानों पर गया।

२—जब दूसरी बार गोलमेज परिषद् बैठी तो महात्मा गांधी भी अगस्त मास में लन्दन गये। इस बैठक में सबसे अधिक उल्लेखनीय घटना यह हुई थी कि उनमें कुछ वक्ताओं ने हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष का दोषी ब्रिटिश सरकार को ठहराया था। प्रमाण में यह कहा गया था कि हिन्दू और मुसलमानों में उपद्रव केवल ब्रिटिश-भारत में ही होते हैं। देशी राज्यों में नहीं। महाराजा अलवर और महाराजा काश्मीर ने बड़े गौरव से अपनी रियासतों के विषय में कहा था कि वहाँ हिन्दू और मुस्लिम संघर्ष नाम मात्र को भी नहीं हैं न कभी वहाँ उपद्रव हो हुए हैं। दिसम्बर में परिषद समाप्त हुई। जनवरी के आरम्भ में महात्माजी भारत आते ही



यशपाल सहित

पकड़ लिए गये। कुछ ही समय पश्चात् काश्मीर और अलवर में प्रथम वार हिन्दू-मुस्लिम दंगे हुए। मैं १६३२ के सितम्बर मास में काश्मीर भ्रमण करने अकेला ही श्रीनगर गया हुआ था। २२-२३ सितम्बर को श्रीनगर में हिन्दू-मुस्लिम दंगा हुआ। यह ऐसा यहाँ पहला ही अवसर था, सुनने में यह भी आया था कि मेवों ने इसी प्रकार का आन्दोलन अलवर में खड़ा कर रखा था उसके फलस्वरूप वहाँ भी दंगे हुए थे।

कहीं २ पर इस झगड़े ने उग्ररूप भी धारण कर लिया था। श्रीनगर में हिन्दू-मुसलमानों में मारपीट की नौबत आगई और दोनों पक्षों के कुछ लोग मारे गये तथा घायल हुए। सरकार को पुलिस के अतिरिक्त सेना भी बुलानी पड़ी। मुझे इसका गूढ़ रहस्य गोलमेज परिषद् का वह उल्लेखनीय वह वाद-विवाद ही प्रतीत हुआ।

इस उपद्रव में श्रीनगर में एक विशेष बात यह देखने में आई कि यद्यपि गलियों और बाजारों में काश्मीरी हिन्दू मुसलमानों में मार-पीट होती थी किन्तु पंजाबी स्त्री-पुरुष स्वच्छन्दता पूर्वक घूमते,-फिरते नजर आते थे। झगड़ालू लोग उन पर आक्रमण करने का साहस न करते थे। हो सकता है कि इस झगड़े को वे घरेलू ही समझते हों। यह भी सम्भव है कि पंजाबियों का प्रभाव उन्हें ऐसा करने पर बाध्य करता हो। उन झगड़ों में जो व्यक्ति घायल हुए उनकी तात्कालिक चिकित्सा के लिए वहाँ के नागरिक सहायता न पहुँचा सकते थे। इस काम को पंजाबियों ने अपने हाथ में लिया और रोगियों को अस्पताल पहुँचा कर उन्हें डाक्टरी सहायता पहुँचाई। मैंने भी अस्पताल में जाकर घायल व्यक्तियों को देखा और जहाँ आवश्यक प्रतीत हुआ सहायता भी दी।

दुर्घटना से रक्षा—काश्मीर की यात्रा प्रायः गर्मियों में ही होती है। पहाड़ों पर उन दिनों वर्षा बहुत जोरों की होती है। इस वर्षा से पहाड़ टूटते हैं, नदियों में अधिक बाढ़ आने से पुल भी टूट जाते हैं, सड़कें चलने के योग्य नहीं रहती हैं। कई बार इससे वहाँ मार्ग में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। १६३६ की जुलाई में मैं काश्मीर के लिए चला। इस यात्रा में मेरी धर्मपत्नी के अतिरिक्त मेरी पुत्री सुशीला और मेरा बड़ा पुत्र सत्यव्रत अपनी धर्मपत्नी सहित तथा सबसे छोटा पुत्र यशपाल साथ ही थे। रावलपिंडी से बस द्वारा दुमेल पहुँचे। अगले दिन प्रातः जब दुमेल से चले तो वर्षा बड़े वेग से हो रही थी। मार्ग में सड़क खराब हो जाने से बस कठिनाई से चल रही थी। सड़क के एक

और साथ साथ ऊँची पर्वत-शृंखला भी थी जिससे स्थान-स्थान पर पत्थर भी गिर रहे थे। हम डर रहे थे कि कोई संकट न आ जाय। बस धीरे धीरे चल रही थी। हमारी बस ओड्यूसा के पुल के समीप पहुँच गई। पुल के नीचे नाला बड़े वेग से बह रहा था। मुझे यह सूझ पड़ा कि पुल से गुजरने से पूर्व गाड़ी से लोगों को उतर जाना चाहिए। मैंने ऐसा भाव लोगों से प्रकट कर दिया पर मेरे पक्ष में कोई न था। मैंने स्वयं उतर जाने के लिये अनुरोध किया और मैं उतर भी गया। शेष यात्री बस में बैठे रहे। बस चल पड़ी। अभी बस पुल आरम्भ होने वाले स्थान पर ही पहुँची थी कि पुल धड़ाम से गिर पड़ा। यदि बस एक मिनिट पूर्व भी जा पहुँची होती तो सवारियों का कहीं पता भी न चलता। बस से सब उतर आये और परमात्मा का धन्यवाद किया कि जिसने सब यात्रियों की जान बचाई। यह पुल श्रीनगर से ३१ मील है।

इस बस में हमारे परिचितों में श्री धर्मपाल (प्रो० डी० ए० वी० कालेज लाहौर) और उनकी बहन थीं। हम सब वहाँ पास ही के एक छोटे से स्कूल में ठहर गये। वहाँ खाने को कुछ न मिलता था। बहुत दूर किसी ग्राम में जाकर थोड़े से चावल और मक्की का आटा मिला और उसे बनाकर थोड़ा थोड़ा सबको दिया।

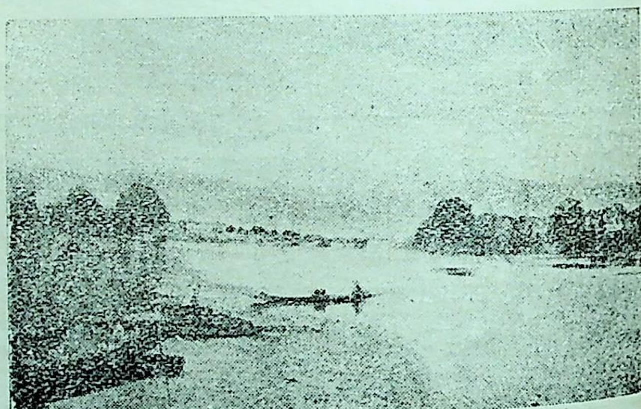
पहली जुलाई को प्रातः आठ बजे पुल इस योग्य होगया कि वहाँ से यात्री पैदल जा सकें। हम भी वहाँ से चलकर सायंकाल बारामूला पहुँचे तब कहीं कुछ खाने को प्राप्त हुआ। हम वहाँ ठहरे नहीं, अंधेरे में ही इससे आगे बस द्वारा ३ मील की दूरी पर श्रीनगर जा पहुँचे।

अगली प्रातः हम श्रीनगर से पाँच मील की दूरी पर चश्माशाही गये। उससे सम्बन्धित एक सुन्दर वाटिका है इसमें रंग-बिरंगे फूल खिले थे। यात्रियों के बैठने के लिए बड़े सुथरे लान बने हुए थे। वहाँ सबने बैठकर भोजन किया। यहाँ से चार मील की दूरी पर शालामार बाग है। वहाँ भी भाँति-भाँति के फूल खिल रहे थे। वहाँ स्थान-स्थान पर हरी नरम

घास के मैदान थे, बीच में नहर बह रही थी, फव्वारे भी चल रहे थे। एक दो जल प्रपात भी थे जिनसे पानी की धारा नीचे गिर रही थी। बड़ा ही रोचक सुन्दर अद्भुत दृश्य था।

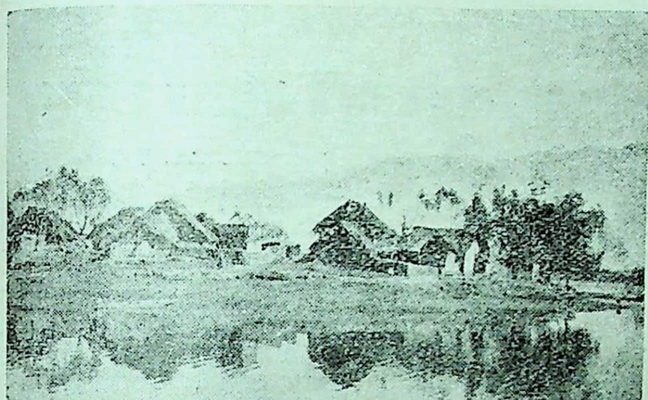
+

४—गत वर्षों में मैं काश्मीर कई बार आ चुका था। गुलमर्ग अलपत्थर व अनन्त नाग तो १९३० में भी हो आया था। १९३९ में जब अपनी धर्मपत्नी लक्ष्मीजी, पुत्री सुशीला और पुत्र बलराज, धर्मवीर तथा यशपाल सहित काश्मीर भ्रमण को आया तो मेरी धर्मपत्नी पुत्रों तथा पुत्री सुशीला सहित गुलमर्ग गईं। वहाँ से बच्चों को लेकर समीप ही पर्वत की चोटी पर अलपत्थर झील दिखाने ले गईं। २७ अगस्त को वे लौट आईं। तब तक मैं श्रीनगर में ही रहा।



सोपर (काश्मीर)

तीन दिन पश्चात् सोपोर (Sopor) गये। वहाँ नौका लेकर वूलर झील में दूर तक नौका विहार किया। यह भारत भर में मीठे पानी की सबसे बड़ी झील है।



वूलर झील (काश्मीर)

श्री मोहनलाल टण्डन—इस यात्रा में ही एक दिन पंजाब नैशनल बैंक में मेरी श्री मोहनलाल टण्डन से भेंट हुई। ये बैंक के जनरल मैनेजर थे। काश्मीर शाखा का निरीक्षण करने आये थे। इनका मुझसे ४० वर्ष पूर्व का परिचय था। जब मैं मिशन हाई स्कूल गुजरात में पढ़ता था तो ये उस समय स्थानीय एम० बी० हाई स्कूल के विद्यार्थी थे।

इस वर्ष सितम्बर मास में मैंने काबुल यात्रा का निश्चय कर रखा था। उन्होंने भी मुझे वहाँ जाने में सुविधा की दृष्टि से पेशावर छावनी तथा पेशावर नगर के दो मित्रों के नाम परिचय पत्र लिख दिये थे। यात्रियों के लिए आवश्यक था कि काबूल आने से पूर्व माता व हैजा के टीके लगवा कर प्रमाण-पत्र उपस्थित करें। मैंने भी वहीं अपने मित्र डा० कुलभूषण से टीके लगवा लिये।

श्रीनगर से ६ सितम्बर को लौटकर ११ को लाहौर पहुंच गया।

१६--अर्द्धशताब्दी महोत्सव अजमेर

पंजाब में शिक्षा-सम्बन्धी कार्य करते हुए मुझे सरकारी व प्राईवेट स्कूलों व कालेजों में जाने का अवसर होता था। सरकारी शिक्षा संस्थाएं प्राय: अपना कार्य सुविधानुसार कर रही थीं। किन्तु शिक्षा कार्य बहुत बढ़ रहा था और प्राईवेट स्कूलों के विद्यार्थियों की संख्या प्रांत में दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। इन संस्थाओं की वृद्धि का यह भी एक कारण था कि जनता अपनी इच्छानुसार सरकारी संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा प्राप्त न करसकती थी। अत: आर्य समाजी, सनातन धर्मीत था सिख अपने २ उद्देश्यों एवं धर्म प्रचार की दृष्टि से अपनी देख रेख में शिक्षा संस्थाएँ चला रहे थे। जैसा पहले ही बता आया हूँ, एक ऐसी ही शिक्षा-संस्था के संचालन में मेरा भी हाथ था। उसका नाम था विक्टर हाई स्कूल। यह संस्था जालन्धर छावनी में १८८६ से चल रही थीं। इस प्रकार कितनी ही संस्थाएँ शिक्षा-प्रसार का कार्य कर रही थीं। परन्तु प्रान्त भर में शिक्षा सम्बन्धी कार्य करते हुए मुझे प्रतीत होता था कि निजू शिक्षा संस्थाओं में प्रबन्ध सम्बन्धी बड़ी त्रुटियाँ हैं। उनमें शिक्षक भी असन्तुष्ट थे। जहाँ उनमें शिक्षा के लिए आवश्यक सुविधाएं प्राप्त न थीं, वहाँ उनको अपनी उन्नति के साधन भी मिलने कठिन थे। इसके अतिरिक्त सरकारी शिक्षा-विभाग उन संस्थाओं की सहायता से भी हाथ खींच रहा था। इन कई कारणों से इन संस्थाओं का भविष्य बहुत उज्ज्वल न दीख पड़ता था।

इन सब बातों का ध्यान रखते हुए १९३१की मई में एक वृहद् शिक्षा-सम्मेलन बुलाया गया। प्राईवेट संस्थाओं के अध्यापक व प्रबन्धक सभी ने उसमें भाग लिया था। मैं अपने स्कूल के प्रतिनिधि रूप से इस

सम्मेलन में सम्मिलित हुआ। इस सम्मेलन में इन सभी समस्याओं पर विचार हुआ। यह बताया गया कि किस प्रकार इन संस्थाओं को कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। यह भी सामने आया कि किस प्रकार उनके काम की आलोचना की जाती है तथा सरकारी शिक्षा-विभाग इनकी धन सम्बन्धी सहायता से क्यों हाथ खींच रहा है।

इस के अतिरिक्त उस समय शिक्षक वर्ग और संचालक मण्डल वर्तमान पाठविधि से सन्तुष्ट न थे। वे उसमें संशोधन चाहते थे। इस पर भी कुछ प्रस्ताव स्वीकृत हुए। उनसे लाभ उठाने के लिए जहाँ शिक्षा-विभाग के अधिकारियों को प्रस्ताव भेजे गये, वहाँ जनता की सूचनार्थ उन्हें समाचार-पत्रों में भी प्रकाशित कराया गया।

कुछ पर्वतीय स्थानों पर—पर्वतीत यात्रा का उद्देश्य होता है स्वास्थ्य- सुधार। गर्मियों में मैदानों की गर्मी से शारीरिक शिथिलता पैदा होती है और इससे स्वास्थ्य बिगड़ने का डर होता है। ऐसे समय में सम्पन्न व्यक्ति पहाड़ों पर जा कर स्वास्थ्य लाभ करते हैं। पर प्रभु की लीला विचित्र है। मैं एक बार मरी पर्वत पर जाकर अस्वस्थ होगया और स्वस्थ होंने के लिए लाहौर लौटना पड़ा। यह घटना ग्रीष्म ऋतु की है। ६ जून १६३६ कों मैं सपरिवार मरी पहुँचा और आर्यसमाज की विश्राम शाला में ठहरा। अगले दिन सर्व प्रथम पंजाब आर्य-शिक्षा समिति की ओर से स्थानीय आर्य-पुत्री पाठशाला का निरीक्षण किया। विचार था कि यहाँ दो सप्ताह ठहरेंगे पर ऐसा न हो सका। एक दिन मैं घोड़ागली के लारैंस कालेज में गया। वहाँ के प्रिंसिपल को मिला और वहाँ बालक-बालिकाओं के विद्यालये देखे। उस समय वहाँ वर्षा हो रही थी। मैंने एक मित्र के यहाँ चाय पी ली। जब अपने निवासस्थान पर लौटा तो पाँच बज चुके थे। लौटकर वहाँ भी चाय पी, क्योंकि वर्षा के कारण ठंड थी। उसी सायंकाल मुझे गुर्दे में पीड़ा उठी।

उससे वड़ा कष्ट हुआ। अगले दिन वहाँ सिविल डिस्पेंसरी के डाक्टर अब्दुल्ला को बुलाया। उन्होंने बड़े ध्यान और प्रेम से आकर उपचार किया और फिर भी दो चार बार देखने के लिए आये। मेराउनसे पुराना परिचय था। वे किसी समय विक्टर-हाई-स्कूल में मेरे साथ सहायक अध्यापक के रूप में कार्य कर चुके थे।

१६ जून को पुनः मुझे वैसी ही पीड़ा हुई। एक सप्ताह तक यह कष्ट रहा। अब तो मुझे डाक्टर अब्दुला ने यह परामर्श दिया कि मैं वहाँ से लाहौर चला जाऊँ तो शीघ्र ही निरोग होने की आशा है। अतः मैं २६ को मरी से रावलपिंडी होता हुआ लाहौर लौट आया।

श्रीमद्दयानन्द निर्वाण-अर्द्ध शताब्दी--प्रातः स्मरणीय महर्षि दयानन्द को अपनी नश्वर-देह छोड़े हुए ५० वर्ष हो गये थे। १६३३ में अर्द्ध शताब्दी महोत्सव मनाने का आर्य नेताओं ने निश्चय किया, महर्षि का निर्वाण अजमेर नगर में हुआ था। अनासागर के तट पर यह स्थान है। अतः सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने इस वर्ष दीपावली पर निर्वाण अर्द्ध शताब्दी महोत्सव मनाने की तैयारी आरंभ कर दी।

जिन्होंने मथुरा जन्मशताब्दी देखी थी वे इस मेले को देखे विना कैसे रह सकते थे। सारे भारत के आर्य-भाइयों से मिलने का यह अपूर्व अवसर था।

१६३३ में दीपावली २० अक्टूबर को पड़ती थी। मैं भी इस महोत्सव में सम्मिलित होने के लिए १४ अक्टूबर को देहली से चल पड़ा। कई दिन पहले से ही महर्षि के निर्वाण स्थान पर चारों वेदों का ब्रह्मपारायण महायज्ञ होना आरंभ हो गया था। इस यज्ञ को सर्व प्रकार से सर्वाङ्ग सम्पूर्ण बनाने का यत्न किया गया था। शाहपुराधीश श्री उम्मेद सिंह जी इस यज्ञ में यजमान बने। महोत्सव के प्रधान भी थे। आर्य

समाज के प्रधान नेता श्री नारायण स्वामी जी, श्री महात्मा हंसराज जी, आचार्य रामदेव जी, स्वामी स्वतंत्रानन्द जी, महाशय कृष्ण आदि अनेक महानुभाव यहाँ पहुँचे थे।

यज्ञ की पूर्णाहुति १५ अक्टूबर को प्रातः ८ बजे हुई। तभी जलूस आरम्भ हो गया। जलूस क्या था, एक न समाप्त होने वाला उछलता कूदता गाता बजाता और महर्षि की जय जयकार करता हुआ एक पंक्ति-बद्ध मानव-समूह था। जिसने यह दृश्य देखा वह आजन्म उसे नहीं भूल सकता। जलूस के लौटते समय वह स्थान सब देखते जाते थे जहाँ महर्षि रोगशय्या पर पड़े रहे थे। वह कमरा सब के लिए खुला था। मैंने भी वह स्थान देखा। उसके पश्चात् उस वाटिका में भी गया जहाँ महर्षि के परलोक गमन के पश्चात् उनकी शेष अस्थियाँ और राख उनके आदेशानुसार भूमि में डाल दी गई थीं।

अजमेर में परोपकारिणी सभा का कार्यालय है। यह सभा महर्षि ने वेदादि सत्य शास्त्रों के तथा अपने ग्रंथ छपवाने के लिए अपने जीवन-काल में ही स्थापित कर दी थी। श्री शाहपुराधीश ही इसके प्रधान थे और श्री हरविलास शारदा आदि कई विद्वान् सभा के सदस्य थे। वहीं पर वैदिक-यंत्रालय भी था जहाँ कि ये ग्रंथ छपते थे। मैंने भी वह स्थान देखा और उसके कार्यालय में गया तथा वहाँ के अधिकारियों से वार्त्तालाप किया।

अनासागर के पार एक विशाल पाँडाल एक लाख के जन-समूह के बैठने के लिए बना हुआ था। वहीं पर बड़े बड़े नेताओं, साधु महात्माओं के भाषण हुए। आर्यसमाज की उन्नति और प्रचार के गम्भीर विचार आर्यों के सामने रखे गये।

२१ को वहाँ से मैं लौट पड़ा। मार्ग में जयपुर के दर्शनीय स्थान देखने को एक दिन ठहर गया और कुछ दिन दिल्ली ठहर कर २६ को मैं लाहौर पहुँचा।

आर्य शिक्षा-सम्मेलन—पंजाब आर्य-शिक्षा-समिति के कार्यक्रम के अनुसार शिक्षा-सम्मेलन वर्ष-दो वर्ष के पश्चात् समय समय पर होते रहे थे ताकि उनसे शिक्षा-समिति की प्रगति के लिए नये-नये सुझाव प्राप्त होते रहें। निर्वाण अर्द्धशताब्दी महोत्सव से लौट कर नवम्बर में जब लाहौर समाज का वार्षिकोत्सव हुआ तो एक शिक्षा सम्मेलन की भी आयोजना की गई। वैसे तो मैं लाहौर समाज का उस वर्ष प्रधान था और शिक्षा समिति का मंत्री अतः दोनों ओर मुझे पर्याप्त समय देना पड़ा।

इस वर्ष सम्मेलन के प्रधान थे बाबू भगवान् दासजी। ये बनारस के प्रकांड पण्डित थे। इन्हें शिक्षा-क्षेत्र का बड़ा भारी अनुभव था, अन्य बड़े-बड़े विद्वान् भी इस सम्मेलन में पधारे थे।

१९३६ में पुनः १० अप्रेल को एक सम्मेलन बुलाया गया। इस के प्रधान महात्मा हंसराज जी थे। इस सम्मेलन में डा० गोकुलचन्द नारंग, प्रो० शिव दयालु, श्री राजेन्द्र कृष्ण कुमार और श्री चरणदास पुरी स्यालकोट निवासी आदि सज्जनों ने अपने विचार प्रकट किये। अपने भाषणों में इस बात पर बहुत बल दिया गया कि आर्यसमाज को समस्त भारत में शिक्षा-कार्य अपने हाथ मे लेकर संगठित रूप से चलाना चाहिए तथा हिन्दी और संस्कृत की वृद्धि करने का प्रयास करना चाहिए तथा शिक्षा के साथ विद्यार्थियों की शारीरिक अवस्था व मानसिक पवित्रता का विकास करना आवश्यक है। सबसे अधिक बल इस बात पर दिया गया कि छात्र-छात्राओं में धर्म-शिक्षा का प्रचार संगठित रूप से किया जाय और इस कार्य का निरीक्षण करने की भी नियमित व्यवस्था की जाय।

स्वामी सत्यव्रति जी—१९३७ में स्वामी सत्यव्रति जी द्वारा यज्ञों की लाहौर में बड़ी धूम-धाम थी। स्वामी जी लाहौर के समीप शाहदरा में

रहते थे। वे वानप्रस्थी हैं। उनका गृहस्थ समय का नाम श्री बालमुकुन्द सूरी था। उस समय जालन्धर में मेरी उनसे बड़ी घनिष्ठता थी। इनका स्वाध्याय और आर्य समाज के प्रति उनकी लग्न तथा यज्ञ की धारणा बढ़ती जा रही थी। वानप्रस्थी बन जाने पर उन्होंने स्थान-स्थान पर जाकर यज्ञ समारोह कराने आरम्भ कर दिये।

वे कई स्थानों पर यज्ञ करा चुके थे। मैंने सुना कि रामगली आर्य समाज ने उन्हें यज्ञ के निमित्त आमन्त्रित किया है वहाँ उनसे मेरा साक्षात्कार हुआ और हमने एक दूसरे को पहचान लिया। बड़ी प्रसन्नता हुई। अपने यहाँ यज्ञ कराने के लिए निमंत्रण भी दिया। यज्ञ आर्यसमाज की ओर से मेरे घर के बाहर गली में ही होता था। वे सायंकाल यज्ञ कराते थे और वेद मंत्रों का अर्थ भी करते थे।

इन्हीं दिनों मेरे घर का दक्षिणी भाग बन रहा था। जब वह पूर्ण हो चुका तो एक दिन उन्हें गृह प्रवेश पर निमंत्रित किया। यज्ञ हुआ और उन्होंने सारी विधि गृह प्रवेश के रूप में सम्पन्न कराई।

अक्टूबर में दीपावली आई। वह पर्व आर्यसमाज में ऋषि-निर्वाण उत्सव के रूप में मनाया जाता रहा है। रामगली आर्य समाज ने भी इसे विशेष समारोह के साथ मनाना चाहा। मैं रामगली समाज का सभासद तो न था पर कभी कभी उनके विशेष उत्सवों में सम्मिलित होता रहता था। मेरी धर्मपत्नी यहाँ की स्त्री समाज में विशेष भाग लेती थी। वे स्त्रीसमाज की प्रधाना भी रह चुकी थीं।

इस उत्सव को मनाने के उपलक्ष में प्रभात-फेरी हुई। उत्सव का समय रखा गया दिन के १२ बजे से ४ बजे तक का। मुझे उस समारोह के प्रधान के लिए कहा गया जिसे मैंने सहर्ष स्वीकार किया।

मैं समय पर समाज पहुँचा, पर कुछ समारोह का ढंग न देख कर मुझे आश्चर्य हुआ। अस्तु पर्व तो मनाया गया पर उसका रूप फीका ही

रहा। मैंने भी सबसे पीछे संक्षेप से ऋषि के जीवन पर कुछ शब्द कहे।

पश्चात् मुझे पता चला कि उत्सव में क्यों फीकापन आगया था? बात साधारण सी थी कि उस दिन अधिकारी-वर्ग एक बृहद् यज्ञ करना चाहते थे और चाहते थे इसके पश्चात् यज्ञशेष बाँटना। पर कुछ पुराने अधिकारियों ने इसे उचित न समझा, क्योंकि उनके विचार से इस दिन ऋषि के वियोग होने से प्रसाद बाँटने का कोई अर्थ न था। उन्होंने आपत्ति उठाई तो उनकी बात मानी गई और वर्त्तमान अधिकारी असन्तुष्ट हो गये। उनकी दृष्टि में महापुरुषों के जन्म और मृत्यु दोनों ही संसार के उत्थान में सहायक होते हैं और वह यज्ञ तो नव-शस्येष्टि यज्ञ से सम्बन्ध रखता था इसलिए वे यज्ञशेष बाँटना आवश्यक समझते थे।

१७—प्रसिद्ध वैज्ञानिक के साथ

सम्राट् पंचम जार्ज की रजत-जयन्ती—१६३५ में ब्रिटिश सम्राट् पंचम जार्ज को राज्य करते हुए २५ वर्ष होने वाले थे। अतः इसवर्ष रजत-जयन्ती मनाई जाने वाली थी और सम्राट् के दीर्घायु होने के लिए शुभ-कामनाएँ प्रकट की जा रही थीं।

मई में मैकमिलन कम्पनी के एक प्रतिनिधि कैल्सन फोर्ड लाहौर आये और उनके साथ पटियाला जाकर राज्य के कृषि मंत्री श्री दीवान जर्मनी दास से मिला और उनके द्वारा शिक्षा मंत्री से भेंट की। यहाँ भी सम्राट् की रजत जयन्ती पर शहर को सजाया जा रहा था। सरकारी कार्यालय बन्द थे।

यद्यपि रजत जयन्ती मनाने में सरकारी कर्मचारी लगे हुए थे पर उनमें कोई विशेष उत्साह न दीख पड़ता था। जनता तो बिलकुल इस खुशी से दूर थी। देश में असहयोग का वातावरण छाया हुआ था। लोग अपने कार्य में संलग्न थे।

जब मैं लाहौर पहुँचा तो देखा कि वहाँ भी ठीक वैसी ही अवस्था है। बाह्य दृष्टि से समारोह हुए। बाजार सजाये गये और उत्सव मनाये गये। सरकारी भवनों पर रात्रि को दीप मालायें भी हुईं और स्कूल के बच्चों को मिठाइयाँ बाटीं गई। यूनियन जैक भी फहरा रहा था परन्तु प्रजा का हृदय शान्त न था। कुछ लोग चाबुक के डर से भागते हुए घोड़े के समान सहयोग दे रहे थे। कुछ अपने पेट के लिए उत्साह प्रकट कर रहे थे परन्तु

उस समारोह से सब उदासीन थे। कोई प्रसन्नता व उल्लास की झलक दृष्टिगोचर न होती थी।

इस प्रकार रजतजयन्ती का दिन आया और चला गया।

गत वर्षों में साधारणतया ग्रीष्म ऋतु में मैं पर्वतों पर भ्रमण थं जाता रहता था। इस वर्ष मई के अन्त में कोयटा जाता जाता रह गया। कुछ मास बाद अगस्त में मेरे पुत्र सत्यव्रत का विवाह था अतः उसकी ओर भी कुछ ध्यान देना पड़ा। २१ अगस्त को विवाह तिथि नियत थी। बारात उसी दिन सायं को स्याल कोट पहुँच गई। उसी रात्रि को श्री हवेलीराम जी की सबसे छोटी पुत्री शान्ति देवी से विवाह संस्कार सम्पन्न हुआ।

सर रिचर्ड ग्रेगरी—अपना वर्तमान शिक्षा-सम्बन्धी कार्य करते हुए मुझे सबसे अधिक लाभ यह था कि कई प्रसिद्ध व्यक्तियों से मिलने का अवसर होता रहता था। सर रिचर्ड ग्रेगरी पदार्थ विज्ञान के एक प्रसिद्ध विशेषज्ञ थे। इनका निवास स्थान लंदन में था। इन्होंने मैकमिलन कम्पनी के लिए पदार्थ-विद्या पर कई ग्रंथ लिखे थे और उनके लिए विज्ञान के एक पत्र 'नेचर' (Nature) का सम्पादन भी करते थे। इस प्रकार उनका इस कम्पनी से घनिष्ट सम्बन्ध था।

१९३६ में वे अपनी पत्नी सहित भारत में आ रहे थे। इसकी सूचना मुझे मैकमिलन के बम्बई कार्यालय से मिली। तदनुसार मैं लाहौर से २५ की प्रातः दिल्ली आया। इसी सायं को सर और लेडी ग्रेगरी दिल्ली पहुँच गये। मैं स्टेशन पर उनसे मिला और उनका दिल्ली का कार्यक्रम बनाने के लिए अगली प्रातः १० बजे का समय नियत हुआ।

वे सेसिल होटल में ठहरे थे। नियत समय पर मैं वहाँ पहुँचा। उनसे और लेडी ग्रेगरी से मिला और दिल्ली के शिक्षणालय तथा शिक्षा केन्द्र देखने का कार्यक्रम बनाया। वे दिल्ली विश्वविद्यालय के रसायन-विभाग

को देखना चाहते थे। वह निकट काश्मीरी गेट के अन्दर था। सर ग्रेगरी और मैं पैदल ही चले और निकल्सन गार्डन में से होते हुए रसायनशाला में पहुँच गये। तत्पश्चात् वे पदार्थ-विज्ञान-विभाग देखने गये। वहाँ पर इस विभाग के अध्यक्ष श्री प्रो० खूबराम से उनका परिचय कराया। तब उन्होंने अपने विभाग की तत्सम्बन्धी सामग्री सर ग्रेगरी को दिखाई। अगले दिन सेंट स्टीफेंस कालेज तथा हिन्दू कालेज दिखाने ले गया और वहाँ के प्रिंसिपल तथा प्रोफेसरों से उनका परिचय कराया।

सायंकाल, कालेजों के भिन्न भिन्न विभागों के विज्ञान प्राध्यापकों और अध्यक्षों ने उन्हें प्रतिभोज दिया। इस भोज में शिक्षा विभाग और विश्व-विद्यालय के जो अध्यक्ष तथा प्रोफेसर सम्मिलित हुए उनमें से कुछ नाम ये हैं:--

अर्थ शास्त्र के प्रो० श्री चावलानी, शिक्षा-विभाग के अध्यक्ष श्री चटर्जी, पदार्थ-विभाग के प्रो० खूब राम, सेंट स्टीफन्स कालेज के प्रिंसिपल श्री मुकर्जी, हिन्दू कालेज के प्रिंसिपल प्रो० दवे, प्रो० पुरी और प्रो० अग्रवाल।

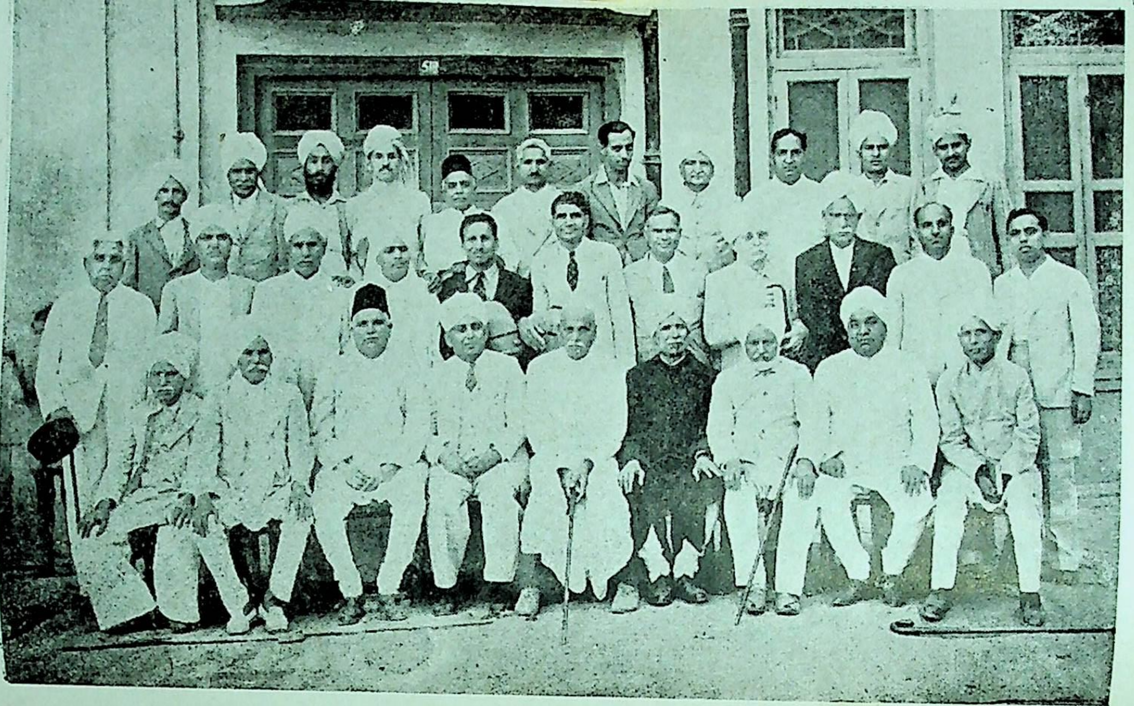
भोज के उपरान्त पदार्थ विज्ञान की भिन्नभिन्न शाखाओं के सम्बन्ध में वार्तालाप होती रही। यह कार्य-क्रम डेढ़ घण्टे में समाप्त हुआ। इस कार्य-क्रम में श्री ग्रेगरी दम्पत्ति के अतरिक्त मैं भी निमंत्रित था। श्री ग्रेगरी से मैंने सब उपस्थित महानुभावों का परिचय कराया। मैंने श्री ग्रेगरी को परामर्श दिया कि वे लाहौर चलकर वहाँ के विश्वविद्यालय की प्रयोग शालाओं को भी देखें पर समयाभाव से वे ऐसा न कर सके। २८ की रात को वे देहली से चले गये और प्रथम फरवरी को मैं भी लाहौर लौट गया।

मुझे इसके पश्चात् जम्मू जाने का अवसर हुआ। वहाँ मैं महिला शिक्षा-विभाग की उपसंचालिका मिस ई० चानर से मिला। ये वह अंग्रेज़

महिला थीं जिनके अधीन समस्त रियासत की स्त्री-शिक्षा-विभाग को चलाया जारहा था। मैं इन से कितनी ही बार पूर्व भी मिल चुका था। इनसे मेरा शिक्षा-संबन्धी एवं पुस्तक प्रकाशन पर विशेष रूप से वार्तालाप हुआ। बातचीत का विषय कितना ही शुष्क एवं कटु क्यों न था पर उन सभी पर इस देवी ने अपनी सनम्र सहमति प्रकट की और उनके भाल पर उग्रता और कटुता की रेखा भी न दिखाई दी।

पंजाब में हिन्दी-संस्कृत का विशेष अध्ययन आर्य कन्या-विद्यालयों व सनातनधर्म कन्या विद्यालयों में ही होता था। पर वहाँ तब शिक्षा का माध्यम हिन्दी रखना बड़ा कठिन था। फिर भी आर्यसमाज हिन्दी को प्रोत्साहन देता रहता था। आर्य बालक-विद्यालय जतोई जिला मुजफ्फरगढ़ का शिक्षा का माध्यम हिन्दी था। बस इसी कारण से उस विद्यालय की स्वीकृत रद्द करदी गई थी। मैं मुलतान गया और स्कूलों के इंसपेक्टर डा० के० सी० खन्ना से मिला। उनसे अन्य वार्तालाप करते हुए जतोई विद्यालय के सम्बन्ध में भी कहा। डा० खन्ना ने इस ओर विशेष ध्यान देने का आश्वासन दिया।

मार्च १९३८ में मैं पुनः पटियाला गया। दिवान जर्मनीदास, राज्य के कृषि मंत्री के यहाँ ठहरा। इनका विवाह मेरे मित्र श्री शिवदास जी बी० ए० बी० टी० की पुत्री सुशीला से हुआ था। मैं राज्य के शिक्षा मंत्री से मिलना चाहता था। उन्होंने शिक्षा मंत्री को अपने यहाँ भोजन के लिए निमंत्रित किया। मैं भी उसमें सम्मिलित था। हम दोनों ने उसी समय विचार-विनिमय किया। श्री शिवदास जी के पुत्र महाराज कृष्ण भी इस समय यहीं इनके पास ठहरे हुए थे। मुझे अपने निकट का एक डेरी फार्म दिखाने ले गये। पूर्वी पंजाब में मैंने ऐसा स्वच्छ और सुव्यस्थित डेरी फार्म इस से पूर्व न देखा था।



अरोड़वश मुखसभा लाहौर के साधारण अधिवेशन के पश्चात १९४३ में

वहाँ गौत्रों आदि पशुओं के रखने के स्थान बड़े स्वच्छ थे और सुविधा के अनुसार बने थे। पशुओं को बाहर व अन्दर आवश्यकता के अनुकूल रहने की व्यवस्था थी। चारा दाना और पानी की स्वच्छता की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था। गोबर तथा मूत्र तत्काल ही साफ कर दिये जाते थे। दूध निकालने के बर्तन बड़े स्वच्छ और सुरक्षित रखे जाते थे। मक्खियाँ और मच्छर न होने के बराबर थे। सारा वातावरण स्वच्छतापूर्ण था।

पुनः जातीय सभा की ओर—१९३६ से पूर्व ही मेरी सन्तान के विवाह आदि के सम्बन्ध विचाराधीन थे। मैं जाति-पाति तोड़क मंडल में गत दस वर्षों से कार्य कर रहा था। दो तीन वर्षों तक उसका उप प्रधान भी रहा। अन्तरंगका सदस्य तों प्रतिवर्ष निर्वाचित होता था। मंडल के कार्यों की उन्नति में यत्नशील रहता था। परन्तु इस क्षेत्र का अध्ययन करने से यह अनुभव होने लगा कि जाति को तोड़ कर विवाह विशेष अवस्थाओं में ही हो सकते हैं। कोई उच्चशिक्षा प्राप्त या किसी ऊँचे पद पर नियुक्त हुए युवक कों जातियों के बाहर भी लोग विवाह के लिए सहर्ष चुन लेते हैं। परन्तु साधारण श्रेणी के लोगों में ऐसा सम्भव नहीं।

एक बड़ी कठिनाई यह भी आती है कि केवल ऐसे विचारों को सम्मुख रखते हुए कोई विशेष समाज नहीं बनता। एक संकुचित अल्प संख्या के क्षेत्र के बाहर यहाँ के कार्य-कर्ताओं और उनकी सन्तानों को कोई नहीं जानता। उनमें ऐसे संबन्ध हो सकने की संभावना बहुत थोड़ी है। अतः विवाहादि कार्यों में उनके मार्ग में बड़ी कठिनाइयाँ आती हैं। यत्न करने पर भी इन कठिनाइयों को मैं दूर न कर सका। इन विषयों में जानकारी प्राप्त करने की दृष्टि से मुझे अरोड़वंश के कार्य-कर्त्ताओं से पुनः सम्पर्क बढ़ाना पड़ा। उन्होंने जहाँ इस विषय में सहायता का वचन

दिया वहाँ मुझे प्रेरणा भी की कि मैं पुनः उस क्षेत्र में आकर विधवाओं, अनाथों और विद्यार्थियों की सहायता के कार्यों में सहयोग दूँ।

काबुल यात्रा से लौट कर मैं पुनः उनके इस कार्य में सहयोग देने लग गया। १९४७ तक यह कार्य लाहौर में चलता रहा। मेरा अधिक कार्य विधवाओं को सहायता देने, विद्यार्थियों को उनकी शिक्षा के संबन्ध में आर्थिक सहायता के विषय में परामर्श देने तक सीमित रहा।

मेरे संस्मरण

तृतीय खण्ड

विषय-सूची

१—विदेश-यात्रा

क्वेटा और काबुल

क्वेटा को—मैं क्वेटा इससे १३ वर्ष पूर्व गया था। उस समय की चहल-पहल, शीतल और सुहावना जलवायु, सुन्दर और स्वादिष्ट अंगूर, अनार, सेब आदि फल तथा अंग्रेजी और भारतीय शिक्षा-केन्द्र अभी तक मेरी स्मृति में विद्यमान थे। तीन वर्ष हुए १९३५ के मई मास में मेरे क्वेटा जाने का कार्य-क्रम बन चुका था परन्तु स्मरण नहीं आता कि किस कारणवश मार्ग में बाधा पड़ गई और मैं न जा सका। उन्हीं दिनों ३१ मई को क्वेटा में एक भयानक भूकंप आया जिस से सारा नगर नष्ट-भ्रष्ट हो गया, न कोई दुकान बची न मकान। हज़ारों नर-नारी, बाल-युवा-वृद्ध जहाँ के तहाँ दब गये। उनमें से बहुत से मर गये, कईयों को मलबे से निकाला गया जिनमें से कुछ अंग-हीन हो गये।

यद्यपि पुनर्निर्माण का कार्य तुरंत ही आरम्भ हो गया परन्तु इस विनाश-कारी प्रलय से लोग इतने हताश और निरुत्साहित हो गये कि वे इस कार्य को शीघ्रता-पूर्वक करने में असमर्थ थे। कार्य निरन्तर चलता रहा और १९३७ में जाकर इस नगर का कुछ रूप बन सका। १९३८ के आरम्भ में मेरी इच्छा हुई कि इस नगर को नये रूप में जाकर मैं देखूँ। तदनुसार २७ मार्च को लाहौर से चल कर वहाँ पहुँचा। जब मैं घूमने गया तो चारों ओर नया रंग-ढंग दृष्टि-गोचर हो रहा था। कोई ऐसे स्थान न दीख पड़ते थे जिनसे मैं परिचित था। बड़े २ महलों के स्थान पर एक मंज़िल वाले ही मकान सब ओर बने दिखाई देते थे। मैं अपने निवास के लिए स्थान की खोज में था जब कि मेरी भेंट क्वेटा आर्य-समाज के मंत्री श्री सोहनलाल से हुई।

उनसे पता चला कि वे जलालपुरजट्टाँ के वधावन परिवार में से हैं। मैं उनके पिता श्री परमानन्द से भलि-प्रकार परिचित था। वे किसी समय स्थानीय सनातन-धर्म-सभा के स्तम्भ समझे जाते थे। मुझे यह जान कर प्रसन्नता हुई कि वे मेरे निकटवर्ती हैं। पर अब यह जान कर मैं अधिक हर्षित हुआ कि वे सनातन-धर्मी पिता के पुत्र होते हुए इतने दृढ़ आर्य-समाजी हैं। मैंने उनके अनुरोध पर उनके पास ठहरना स्वीकार कर लिया और उनके साथ एक सप्ताह बड़े सुख-पूर्वक व्यतीत किया।

इस बीच में जहाँ मुझे आर्य-समाज के सत्संग में सम्मिलित होने का अवसर हुआ वहाँ उस समाज के सदस्यों से परिचय प्राप्त किया और आर्य-समाज की गति-विधि जानकर बड़ा सन्तोष हुआ।

एक दिन मैं बिलोचिस्तान शिक्षा विभाग के उच्चतम अधिकारी श्री लीच विलसन से मिला। इस से पूर्व वे इस्लामिया कालेज लाहौर के प्रिंसिपल तथा रावलपिंडी डिविजन के इन्सपेक्टर भी रह चुके थे। मैंने कोई एक घंटा उनसे वार्तालाप की। वहाँ के कुछ शिक्षणालय भी देखे जिनमें मुझे सेंट क्रिष्टोफर कन्या पाठशाला का वातावरण तथा नियन्त्रण विशेष प्रशंसनीय प्रतीत हुआ। वहाँ की आचार्या थीं मिस वुडसन, मैं उनसे भी मिला।

पंजाब-आर्य-शिक्षा-समिति का मंत्री होते हुए मेरा यह भी कर्तव्य था कि मैं आर्य शिक्षणालयों की देख-भाल करूँ, अतः एक दिन मैंने आर्य कन्या पाठशाला का निरीक्षण किया और उसकी उन्नति के लिए मौखिक और लिखित परामर्श दिये।

क्वेटा से लौटते हुए मार्ग में सक्खर ठहरा। यहाँ मैं इससे पूर्व कभी न गया था। उस नगर के बाजारों से होकर 'न्यू मोडल स्कूल' देखने गया। उस दिन स्कूल में अवकाश था। शिक्षा-सम्बन्धी काम के स्थान पर वहाँ सिंध-व्यवस्थापिका सभा का पोलिंग हो रहा था। रात को सक्खर से गाड़ी द्वारा चल कर अगली प्रातः लाहौर जा पहुँचा।

काबुल के लिए लाहौर से तो मैंने सितम्बर मास में चलना था। इस से पूर्व जून में वजीराबाद गया हुआ था। वहाँ से एक प्राचीन ग्राम सोधरा में एक बंधु मदनलाल के विवाह के अवसर पर मेरा जाना हुआ।

इस ग्राम के प्रति मेरा इतना आकर्षण क्यों था इसका कारण मैं समझता हूँ कि बचपन में उस समय से ५० वर्ष पूर्व मैं अपनी दादी जी के साथ उनकी माता के गृह पर दो-चार बार गया था। तब वहाँ के प्राप्त दुलार की स्मृति अभी तक मेरे हृदय पर अंकित थी। मुझे कुछ सम्बन्धियोंके केवल नाम ही याद थे। उनमें से एक व्यक्ति श्री पिड़मल थे, वे मेरे पिता जी के मामा लगते थे। उनसे अपने पूर्वजों के बारे में बड़ी देर तक बात-चीत करके कुछ जानकारी प्राप्त की।

भाई परमानन्दजी के साथ—पंजाब का प्रत्येक हिन्दू देवता-स्वरूप भाई परमानन्द जी को खूब जानता है। भाई जी का जीवन एक कट्टर आर्य-समाजी, प्रसिद्ध राष्ट्रीय नेता एवं देश-भक्त के रूपमें प्रसिद्ध रहा है। वे १६३८ में केन्द्रीय विधान सभा के सदस्य थे। कुछ वर्ष पूर्व हम दोनों पंजाब में जात-पात तोड़क-मंडल में एक साथ ही कार्य करते रहे थे। जब मैं शिमले जाने को स्टेशन पर गया तो वे भी वहाँ जा रहे थे। वे भी उसी डिब्बे में थे जिसमें कि मैं बैठा था। शिमले पहुँच कर उन्होंने मुझसे आग्रह किया कि मैं उनके पास ठहरूँ क्योंकि उनके पास निवास के लिए अच्छा विशाल भवन था। जलवायु की दृष्टि से भी वह स्थान अधिक उपयुक्त था। मैंने उन से कहा कि इस समय तो मेरे निवास की व्यवस्था है पर जब मेरा परिवार आयेगा तो मैं आपके इस निमन्त्रण से अवश्य लाभ उठाऊँगा। मैंने ऐसे ही किया भी। कुछ दिनों में मेरे परिवार के लोग आ गये और मैं भाई जी के पास जा ठहरा।

काबुल के राजदूत से भेंट—इन दिनों मेरा विचार अफगानिस्तान जाने का हो रहा था। भारत-स्थित अफगान राजदूत सरदार सलाहुउद्दीन सलजूकी शिमला में ही रहते थे। मै इस अवसर

पर उनसे मिलने गया। मैं ने उन्हें बताया कि मैं शीघ्र ही अफ़गानिस्तान की यात्रा करना चाहता हूँ। सरदार सलजूकी ने इस यात्रा में मेरी सहायता करने का पूर्ण आश्वासन दिया और उनसे भिन्न-भिन्न विषयों पर देर तक वार्तालाप होती रही। उनसे यह भी ज्ञात हुआ कि जिस समय पंडित मोती लाल नेहरू मास्को गये थे वे भी वहीं उपस्थित थे और पंडित जी से मिले थे। उन्हों ने रूस की तत्कालीन अवस्था का वर्णन किया। पं० मोती लाल जी से अपने विचार विनिमय का सारांश भी मुझे बताया। उनसे हुए वार्तालाप से मुझे स्पष्ट होगया कि वे भारत की स्वतंत्रता के कितने पक्षपाती हैं। इससे मेरा उत्साह बढ़ गया और मैं इसके बाद भी दो एक अवसरों पर उन से मिला।

विदेश-यात्रा के लिये—पिछले पृष्ठों पर मैंने यह संकेत किया है कि मैं काबुल-यात्रा के लिए प्रयत्न-शील हूँ। विदेशों की यात्रा करने का विचार मेरा गत कई वर्षों से था। इस विषय में मैंने पर्याप्त जानकारी प्राप्त कर ली थी। अब उससे लाभ उठाने का समय आ गया था। विदेश यात्रा का जो कार्यक्रम मैं ने बनाया था उसमें यूरोप, जापान आदि कई देश सम्मिलित थे। इन में से सर्व प्रथम काबुल जाने का अवसर हुआ। अप्रेल १६३८ में मैं अपने भाई डा० रामनाथ मदान के साथ सब-जज श्री सरदारी लाल से मिला। उन्होंने मुझे एक पत्र लिख दिया कि जिससे मुझे पासपोर्ट मिलने में अनावश्यक विलम्ब न पड़े। मैंने पासपोर्ट के लिए प्रार्थना-पत्र भेज दिया, आज्ञा पत्र मिलने पर मैं काबुल जाने को तैयार हो गया।

मैं १४ सितम्बर को पेशावर पहुँचा। श्री मोहन लाल टण्डन से जो परिचय-पत्र श्रीनगर में लिया था उससे भी मुझे काबुल के लिए 'विज़ा' [visa] प्राप्त करने में सहायता मिली।

अफ़गान सरकार का एक कार्यालय पेशावर में था। मैंने भारतीय अफगान राजदूत सरदार सलाहउद्दीन सलजूकी को शिमला तार दिया।

उन्होंने अपने पेशावर स्थित कार्यालय को तार द्वारा आदेश भेजा कि 'विज़ा' देदिया जाय'। १६ सितम्बर को जब मैं कार्यालय में गया तो 'विज़ा' मिल गया और काबुल जाने वाली सरकारी बसमें मेरे लिए स्थान सुरक्षित कर दिया गया। अगले दिन बस के स्थान पर जाकर पता चला कि बस उस दिन न जा सकेगी। दूसरे दिन अफ़गान ट्रेड एजेण्ट के कार्यालय में गया, वहाँ से ही मेलवान (mail van) चलती थी। उस दिन भी देर हो गई और ड्राइवर ने चलने से इन्कार कर दिया। उसने बताया कि मार्ग में हम को तूरखम ठहरना पड़ेगा जो सुरक्षा की दृष्टि से उपयुक्त स्थान नहीं। वहाँ भोजन तथा जल का भी ठीक प्रबन्ध न था। बताया गया कि मेलवान यहाँ से सोमवार को चलेगी।

काबुल के मार्ग में—यहाँ से डाक गाड़ी (mail van) काबुल के लिए सोमवारको प्रातःकाल ही चल पड़ी। पेशावर से पहला पड़ाव जमरुद का किला पड़ता है। यह स्थान पेशावर से ११ मील पर है। वहाँ पासपोर्ट देखा गया। कर्मचारियों ने मार्ग खोल दिया। तब शाहगई, अली मसजिद, लंडी कोतल होते हुए लंडी-खाना पहुँचे जो जमरूद से २३ मील की दूरी पर है। वहीं पर निकट ही भारत की अन्तिम सीमा थी। इसे कहते थे भारतीय तूरखम। यहाँ हमारी बस एक बजे के पश्चात् पहुँची। इस सीमा तक तो मैं उससे दस वर्ष पूर्व भी हो आया था।

यहाँ भी पासपोर्ट देखा गया। अब इस स्थान को पार करके हमने अफ़गानिस्तान की सीमा में प्रवेश किया। थोड़ी ही दूरी पर हम अफ़गान तूरखम में पहुँच गये। वहाँ से अगला पड़ाव आठ मील की दूरी पर है। इसे डक्का कहते हैं। यहाँ भी पासपोर्ट दिखाना पड़ा। यहाँ से आगे जाने वाला मार्ग पहाड़ी और पथरीला है। वहाँ जाते हुए कई स्थानों पर गाय भैंसों के रेवड़ मिले। उन के साथ स्त्री-पुरुष, युवा-बाल-वृद्ध भी थे। ऐसा प्रतीत होता था कि वे घास चारे के लिए अपना स्थान परिवर्तन कर रहे हैं। उनके मुख पर प्रातःकालीन उषा

के समान लालिमा विद्यमान थी। इसका एक मात्र कारण वहाँ के निवासियों का स्वच्छन्द वातावरण में विचरण करना था। उनको मुख-मंडल की लालिमा के लिए नगरों की भाँति बनावटी लालिमा न लगानी पड़ती थी। वहाँ के लोग हृष्ट-पुष्ट एवं सुडोल थे। उनके मुख पर स्फूर्ति, उत्साह और प्रसन्नता नाचती हुई दीख पड़ती थी।

डक्का से जलालाबाद कोई ४५ मील की दूरी पर है। वहाँ हम रात के नौ बजे पहुँचे। यह स्थान समतल है तथा अफगान सरकार की शरद्-कालीन राजधानी थी। इस नगर से १०-१२ मील दूर तक पक्की सड़क चली गई है। सड़क बड़ी अच्छी बनी थी, इसके दोनों ओर हरे-भरे वृक्ष लगे थे, नगर के निकट सड़कों पर पानी का छिड़काव भी हुआ हुआ था और नगर के बाज़ारों में प्रकाश का भी प्रबन्ध था।

वहाँ से रात्रि को आगे चल पड़े। मार्ग में गंडमक तथा निमला होते हुए खाके-जब्बार २॥ बजे रात्रि को पहुँचे। इस पड़ाव पर किराये की चारपाई मिलती थी। मैंने भी एक चारपाई ली और सड़क के एक ओर बिछा कर लेट गया। रात दो-ढाई घंटे ही शेष थी।

काबुल पहुँच गया—प्रातः ही ड्राइवर ने सवारियों से कहा कि शीघ्र ही बैठ जाओ जिससे कि समय पर काबुल पहुँच सकें। सूर्य निकलते ही गाड़ी चल पड़ी और १२ बजे हम काबुल जा पहुँचे। मार्ग में जहाँ भी पासपोर्ट देखा जाता, वहाँ बाहर से आने वाली वस्तुओं पर चुंगी (Customs Duty) लेने के लिए यात्रियों के सामान की तलाशी भी ली जाती थी। इससे सभी यात्रियों को कष्ट होता था पर यह सभी को सहना पड़ता था। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है मुझे कोई कष्ट नहीं हुआ। काबुल नगर में भी मुझे साधारण पूछताछ के बाद प्रवेश की आज्ञा मिल गई। कष्टम कार्यालय के पास ही सब यात्रियों को उतरना पड़ा। उतरते ही वहाँ टाँगे खड़े थे। मैंने भी टाँगा लिया और एक अन्तर्जातीय होटल, 'होटल डी काबुल' में चला गया और वहाँ जा ठहरा।

२—काबुल में

प्रथम चार दिन

निवास—काबुल में सरकार की ओर से एक होटल था, जिसमें प्रायः विदेशों के यात्री आकर ठहरते थे। इसे 'होटल डी काबुल' कहते थे। वहाँ मुझ को एक अच्छा और स्वच्छ कमरा मिल गया। उसमें कालीन बिछा हुआ था। कुर्सी, मेज, सोफा तथा पलंग आदि का उत्तम प्रबन्ध था। इससे सम्बन्धित स्नानागार में गर्म और शीतल दोनों प्रकार के जल का प्रबन्ध था। शौचालय में फ्लश की व्यवस्था थी। इस प्रकार यहाँ यात्री को सब सुविधाएं प्राप्त थीं। वहाँ पहुँच कर मैंने गर्म जल से स्नान किया। संध्या करके वस्त्र बदले और भोजन के लिए तैयार हो गया।

भोजन—मैंने पहुँचते ही होटल के अध्यक्ष को सूचित कर दिया कि मैं निरामिष भोजी हूँ अतः मेरे अनुकूल शाकाहार का प्रबन्ध होना चाहिए। जब मैं भोजन के लिए बैठा तो मैंने देखा कि मेज़ पर एक ओर अंगूर और नाशपाती हैं, समीप ही डबल रोटी के दो तीन टुकड़े रखे हैं।

तत्पश्चात् सर्व प्रथम मेरे लिए सूप लाया गया। मैंने पूछा कि यह किस वस्तु का है। उत्तर मिला कि "यह बिलकुल आपके अनुकूल है।" मैंने कहा, "किस प्रकार ?" तो बताया गया कि इसमें सब्जियाँ बहुत डाली गई हैं। मेरे अधिक पूछने पर पता चला कि इसमें सब्जियाँ तो अवश्य हैं पर माँस भी है। अतः मैंने उसे लौटा दिया। इसके पश्चात् सब्ज़ियों की बारी आई तो सब्ज़ियों की प्लेट में कुछ और भी था। पूछने पर मुझे ज्ञात हुआ कि यह चिकन है। साथ ही यह भी कहा गया कि यह तो माँस नहीं है। मैंने कहा "मैं तो इसे भी माँस

समझता हूँ।" उत्तर में मुझ से कहा गया कि "यदि आप चिकन भी नहीं खाते तो कैसे निर्वाह करेंगे?" मैंने कहा कि, "वनस्पतियों और फलों पर।" मैंने फल खाना आरम्भ कर दिया। अन्त में एक मीठी वस्तु लाई गई यह कहते हुए कि "यह तो पुडिंग (Pudding) है, यह सर्वथा आपके अनुकूल है। इसमें माँस लेश मात्र नहीं है।" मैंने उसे देखा और उसमें पीलापन प्रतीत हुआ। मुझे सन्देह हुआ कि इसमें अंडा है। पूछने पर मुझे बताया गया कि "इसमें मांस का प्रयोग तो नहीं किया गया पर अंडा तो मांस नहीं होता।" मैंने कहा, "मैं तो इसे भी मांस की श्रेणी में ही समझता हूँ।" इस पर वह सेवक बड़ा ही विस्मित हुआ। वह अपने साथियों से कहने लगा कि हमारे यहाँ एक ऐसे सज्जन आये हैं जो न केवल यह कि माँस ही नहीं खाते अपितु चिकन और अंडे को भी माँस बताते हैं।

'होटल डी काबुल' के विषय में मैं बता चुका हूँ कि यह होटल सरकार की ओर से चल रहा था। इसमें सभी देशों के यात्री आकर निवास करते थे। सब के लिए भोजनादि का प्रबन्ध एक जैसा था। किन्तु विशेष अवस्था में किसी के लिए पृथक् भी कोई वस्तु तैयार करके दे दी जाती थी। यहाँ के प्रबन्ध-कर्त्ता एक उच्च सरकारी अधिकारी थे। उसके सहायक कार्य-कर्त्ता और कर्मचारी, बहरे व अन्य सेवक सरकार से ही वेतन पाते थे। जो धन निवास तथा भोजन शुल्क का आता था वह भी सरकारी कोष में ही जाता था। सभी सेवक यहाँ तक कि भोजन परोसने वाले तक कोट पेंट और बूट पहनते थे और स्वच्छ-श्वेत वस्त्र धारण करते थे। होटल के एक कमरे का निवास-शुल्क उस समय के तीस काबुली अर्ध-अफ़गानी रुपये था। इसके अतिरिक्त भोजन शुल्क प्रतिदिन १४ रुपये अर्ध अफ़गानी था। काबुल का एक रुपया (अफ़गानी) भारत की अठन्नी के बराबर होता था। उस समय अर्ध-अफ़गानी जो भारत की चवन्नी के बराबर होती है, चलती थी। इस प्रकार भारत के अनुसार कुल व्यय ग्यारह रुपये प्रति-दिन होते थे।

अगले दिन मैं काबुल के हबीबिया कालेज में गया पर ग्रीष्मावकाश के कारण वह बन्द था। एक दो दिन में कालेज खुलने वाले थे। अतः मैं काबुल की जनता के सम्बन्ध में कुछ जानने के हेतु वहाँ से बाजार गया। बाजार से होता हुआ मैं बड़े डाकखाने (G. P. O.) गया और वहाँ से ब्रिटिश दूतावास में। खान-बहादुर सिकन्दर खान लीगेशन कार्यालय के मन्त्री थे, वहीं उन से मिला और नियमानुसार पास-पोर्ट अंकित करा दिया। वार्तालाप में उन्होंने बताया कि वहाँ के कौंसलर मेजर ए० मकन्न हैं, मैं उनसे मिला। वे बड़े सज्जन व्यक्ति थे। उन्होंने काबुल के विषय में कई विशेष बातें बताईं। मैंने उन से पूछा कि काबुल के किसी विभाग में कोई अंग्रेज़ व्यक्ति नहीं है, क्या इस में कोई रहस्य है? उन्होंने उत्तर दिया कि "हम यहाँ के शासन में कोई ऐसा भाग नहीं लेते कि जिससे परस्पर मतभेद उत्पन्न होने की संभावना हो।" इसी बीच में उनकी पत्नी भी आ गई। भारत में शिक्षा सम्बन्धी विषयों पर वार्तालाप करते हुए इस देवी ने मुझ से पूछा कि क्या मैं ऐसी विधि बता सकता हूँ कि जिससे वह शीघ्र ही हिन्दी पढ़ना लिखना सीख जायं। इस विषय में मैंने अपना उचित परामर्श दिया। इसके पश्चात् भारत की राजनीति पर बातचीत चली। उन्होंने भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन से सहानुभूति प्रकट की।

मैं वहाँ से लौट पड़ा। मार्ग में बाबर का रौजा पड़ता था, पर अंधेरा हो रहा था अतः उसे देखने के लिए न ठहरा, होटल में लौट गया।

२२ सितम्बर को था शबे मेहराज अतः सरकारी अवकाश था, भ्रमण का अच्छा अवसर था। उसी होटल में कृपाराम ब्रादर्स पेशावर के एक कार्यकर्त्ता श्री धर्मदेव ठहरे हुए थे, उनसे भेंट हुई। वे मुझे वहाँ के पारसी व्यापारी श्री रुस्तम जी अब्बास की दुकान पर ले गये। मेरा उनसे परिचय कराया। मुझे उन से काबुल के सम्बन्ध में कई आवश्यक बातों का परिचय मिला। मैं वहाँ के शिक्षा-विभाग के

संचालक से मिलना चाहता था। थे मौलवी जमालुद्दीन अहमद। वे सरकारी ट्रेनिंग कालेज के प्रिंसिपल भी थे और पगमान में रहते थे। पता चला कि समय-समय पर अपने कार्य के सम्बन्ध में पगमान से आते रहते हैं। रुस्तम जी की दुकान पर फोन था। मैंने फोन पर मौलवी जमालुद्दीन से मिलने का समय नियत कर लिया।

उस दिन मध्याह्न के पश्चात् श्री धर्म देव के साथ ईरान के दूतावास में गया। वहाँ ईरान की राजनीति व शिक्षा के विषय में बात चीत हुई। वहाँ के कुछ स्थानों के सम्बन्ध में भी मैं ने पूछ-ताछ की। वार्तालाप से ईरान देश के प्रति विशेष आकर्षण न हुआ।

होटल में भोजन का समय नियत था। हम ठीक समय तक अपने होटल में लौट आये और मैं भोजनशाला में गया। आज प्रातःकाल जिस समय चाय पी थी तो होटल के अध्यक्ष से कह दिया था कि मुझे रोटी के साथ केवल सब्जियाँ चाहिए। मैं ने वे सब्जियाँ भी नोट करवा दी थीं जिन्हें मैं अनुकूल समझता था। तदनुसार सेवक मेरे सामने फल आदि रख गया। मुझे बता गया कि मेरे लिये विशेष सब्जियों का प्रबन्ध किया गया है। वह सब्जियाँ लाया और प्लेट में डालने लगा तो मैं ने देखा कि उसकी प्लेट में पहले से कुछ और भी रखा था। मैं ने उसे जानना चाहा। उसे बताते हुये सेवक ने कहा कि वह किसी अन्य यात्री के लिए है।

मेरे लिये तो शाकादि पृथक् ही तैयार किये गये थे। उनमें से मैं ने थोड़ा सा आवश्यकतानुसार ले लिया और सेवक को बता दिया कि वह मेरे लिये पृथक् पात्र में सब्जी लाया करे। उस ने ऐसा करना स्वीकार कर लिया।

वहाँ बातचीत फारसी में होती थी। मैं ने भी फारसी कई वर्ष तक पढ़ी थी इसलिए समझने में तो कोई कठिनाई न हुई परंतु मुझे फारसी बोलने का अभ्यास नहीं था। मैं ने साधारण बोल चाल के लिए कुछ शब्द और वाक्य नोट कर रखे थे जिन्हें मैं वार्तालाप के समय प्रयोग में

जाता था।

यहाँ यह लिख देना अनुपयुक्त न होगा कि मैं ने स्वास्थ्य की दृष्टि से सायँकाल का भोजन त्याग रखा था, अतः मुझे भोजन सम्बन्धी कठिनाई केवल एक ही बार होती थी। इसे सरल बनाने के हेतु मैं ने फलों का अधिक प्रयोग प्रारम्भ कर दिया था। काबुल में भाँति भाँति के अच्छे फल मिल जाते थे और वे थे भी सस्ते।

पगमान में—२३ सितम्बर को सरकारी अवकाश था। मैं काबुल से बस द्वारा पगमान पहुँचा। यह स्थान काबुल से लगभग १८ मील की दूरी पर है। य पि यह छोटा सा नगर है किन्तु यहाँ पर सभी श्रेणियों के व्यक्ति निवास करते हैं। उन की भव्य कोठियाँ यहाँ बनी हुई थीं जिन के अहातों में छोटी २ वाटिकाएं थीं। वाटिकाओं में रंग-बिरंगे पुष्प प्रकृति को सौन्दर्य प्रदान कर रहे थे। यहाँ का जलवायु सुहावना और शीतल था। यह स्थान समुद्र-तल से ८००० फीट से अधिक ऊँचा है।

पगमान में मुझे प्रिंसिपल जमालुद्दीन अहमद के घर पहुँचा दिया गया। वे मुझ से बड़े प्रेम से मिले। उन्होंने मेरा अपने विद्यालय के अध्यापकों से परिचय कराया। मेरे लिए भोजन का प्रबन्ध भी अपने ही घर पर किया। उन्होंने मेरी इच्छानुसार ही सब्जियाँ बनवाईं। इस निरामिष भोजन में वह स्वयं तथा उन के अन्य साथी भी सम्मिलित हुए। भोजन का अधिकांश भाग फलों से युक्त था।

मैंने पगमान में उन के पास तीन चार घंटे व्यतीत किये। इस के पश्चात् हम दोनों वहीं भ्रमणार्थ गये। अफगानिस्तान के भूतपूर्व सम्राट अमानुल्लाह के समय ग्रीष्म ऋतु में वहाँ विधान-सभा के अधिवेशन होते थे। अधिकतर मंत्रिमण्डल के सदस्य भी शाह के साथ वहीं आकर निवास करते थे। मंत्रियों व उच्च अधिकारियों ने जो यहाँ पर अपनी कोठियाँ बनाई हुई थीं उन्हें भी मुझे देखने का अवसर मिला। एक ओर कुछ खंडहर दीख पड़े। उन के विषय में पूछने पर पता चला कि

यह एक प्राचीन मन्दिर के खण्डहर हैं। मुझे बताया गया कि जनवाद के अनुसार वहाँ किसी समय शिव मंदिर था। परन्तु जब मैंने उसे देखा तो उस समय कोई धार्मिक चिन्ह न दीख पड़ा और न कोई ऐसी बात समझ में आई कि जिस से इस जनवाद की पुष्टि होती हो।

उसी समय वहाँ एक बस आई। मुझे उस में स्थान मिल गया और एक घंटे के पश्चात् मैं काबुल पहुँच गया।

जब मैं होटल में आया तो श्री धर्मदेव से मिला। उन्होंने मेरा परिचय अपने एक मित्र प्रो० अब्दुल हकीम से कराया। हकीम जी ने वचन दिया कि वे प्रति दिन होटल में मुझ से मिला करेंगे और काबुल के दर्शनीय स्थान तथा शिक्षा-सम्बन्धी संस्थाएं दिखाते रहेंगे।

चौथा दिन—इस दिन प्रो० अब्दुल हकीम मेरे पास १० बजे से पूर्व आ गये। हम दोनों मिल कर गाजी स्कूल में गये। इसी स्कूल में प्रो० अब्दुल हकीम कार्य करते थे। इस स्कूल को कालेज बनाने का निश्चय हो चुका था। वहाँ के प्रिंसिपल अंग्रेजी न जानते थे। इस लिए उन से फारसी में ही वार्तालाप हुआ। यहाँ से हम दोनों हबीबिया कालेज में गये और वहाँ से होते हुए मकतबे इस्तकलाल में पहुँचे।

काबुल की शिक्षा के सम्बन्ध में यह जानना भी आवश्यक है कि वहाँ तीन प्रकार के महाविद्यालय थे। एक में तो अंग्रेजी भाषा माध्यम थी, दूसरे में फ्रेंच और तीसरे में जर्मन। यहाँ के महाविद्यालय भारत के इण्टरमिडियेट कालेज के समान थे। इन कालेजों में प्राइमरी और मिडिल स्कूल भी साथ ही थे। प्राईमरी की चार श्रेणियाँ थीं जिन का माध्यम उस समय फारसी था। मिडिल में भी चार श्रेणियाँ ही थीं। इन में इंगलिश, फ्रेंच या जर्मन में से एक का पढ़ाया जाना अनिवार्य था और वह भाषा उस से सम्बन्धित कालेज के माध्यम पर निर्भर थी। कालेज में भी चार श्रेणियाँ ही थीं जिन में किसी में जर्मन, किसी में फ्रेंच और किसी में अंग्रेजी की प्रधानता थी और उसी भाषा में अन्य विषय भी पढ़ाये जाते थे।

३—काबुल के शिक्षा-केन्द्र

२५ सितम्बर को प्रातः जब प्रो० अब्दुल हकीम मुझे अपने साथ ले जाने के लिए आये तो उन्होंने मुझ से पूछा कि भोजन के प्रबन्ध में कुछ सुधार हुआ है अथवा नहीं। मैंने उत्तर में उन्हें बताया कि सुधार तो अवश्य हुआ है किन्तु सन्तोषजनक नहीं। यह सुनकर उन्होंने आग्रह किया कि मैं दोपहर का भोजन उन के यहाँ किया करूँ और विश्वास दिलाया कि जब तक मैं वहाँ ठहरूँगा वे केवल सब्जियाँ ही बनवाया करेंगे और स्वयं भी निरामिषभोजी ही रहेंगे। उन्होंने यह भी बताया कि उनकी धर्मपत्नी भी मांस पसन्द नहीं करती। इस पर मैंने उन के यहाँ भोजन करना सहर्ष स्वीकार कर लिया। अब यहाँ यह बता देना भी अनुचित न होगा कि प्रो० अब्दुल हकीम पंजाबी मुसलमान थे और मालेरकोटला के निवासी थे। इस प्रकार उन से दिन प्रति दिन सम्बन्ध बढ़ता ही गया। हम दिन का अधिकांश समय एक साथ ही व्यतीत करने लगे। यह सम्बन्ध यहाँ तक बढ़ा कि काबुल से मालेरकोटला आते जाते समय उन का परिवार लाहौर में हमारे घर पर ही ठहरता रहा। मैं पुनः आज फ्रेंच महाविद्यालय में गया और वहाँ के प्रिंसिपल से मिला। कुछ देर उन के शिक्षणालय की विशेषताओं का परिचय प्राप्त किया और वहाँ से चल कर मकतबेगाज़ी लौट आया। वहाँ के प्रिंसिपल से मिलने के उपरान्त हबीबिया कालेज में गया और वहाँ के आचार्य से भी मिलकर बात चीत की। कुछ अन्य प्रोफैसरों से भी बात चीत करने का अवसर हुआ।

उस कालेज में कान्धार और मिज़ार शरीफ के अध्यापक भी आये हुए थे। उन से भी भेंट हुई और उन से यह जानने का अवसर मिला कि वहाँ की शिक्षा किस अवस्था में है। उन से पता चला कि ये दोनों

अफगानिस्तान के प्रसिद्ध स्थान हैं पर वहाँ अभी तक हाई स्कूल नहीं बने। वहाँ अंग्रजी शिक्षा प्रारम्भ हो चुकी है।

काबुल में एक प्रसिद्ध साहित्य परिषद् थी। उस के अध्यक्ष शाहज़ादा अली अहमद खाँ से भेंट हुई। ये भारत तथा अन्य देशों का भ्रमण कर चुके थे अतः वे वहाँ की स्थितियों को भलि प्रकार जानते थे। वे बड़े उदार और मिलनसार थे। मेरा उन से एक घंटा अंग्रेज़ी, उर्दू और फारसी साहित्यों के विषय में वार्तालाप हुआ।

शिक्षा-विभाग के मंत्री (Minister of Education) ने आज प्रातः काल ११ बजे का समय दिया हुआ था, मैं वहाँ नियत समय पर जा पहुँचा पर वे किसी कारण से अभी न पहुँचे थे अतः मैं सहायक मंत्री से ही मिलकर लौट आया। यहाँ यह मनोरंजन की दृष्टि से लिखना अनुचित न होगा कि सहायक मंत्री अंग्रेज़ी तो जानते थे पर इतनी नहीं कि मुझसे भलि-भाँति वार्तालाप कर सकें। मैं स्वयं भी फारसी तो जानता था किन्तु समझने योग्य ही, वार्तालाप करने का मुझे भी अभ्यास न था। इस लिए मैं तो अपने भाव अंग्रेजी में प्रकट करता और वे फारसी में। इस से एक दूसरे के भाव समझने में कोई कठिनाई न हुई। उन्हों ने कहा "मैं अंग्रेजी में अधिक अभ्यास कर रहा हूँ।" इस पर मैं ने उन्हें उत्तर दिया कि मैं भी यत्न करूँगा जब दूसरी बार यहाँ आऊँ तो फारसी में ही वार्तालाप कर सकूँ। इस भेंट में प्रो० अब्दुल हकीम मेरे साथ ही थे, उन्होंने भी हम दोनों की वार्तालाप के परस्पर समझने में सहायता की।

काबुल में २६ सितम्बर—इस दिन फिर मैं हबीबिया कालेज में जा कर प्रिंसिपल से मिला। उस महाविद्यालय की शिक्षा के सम्बन्ध में कुछ और वार्तालाप उन से हुआ। प्रो० मोहम्मद अली एम० ए० अभी अभी दीर्घावकाश के पश्चात् पंजाब से लौटे थे। उन से भी भेंट हुई। तत्पश्चात् हम शिक्षा विभाग के मंत्रालय में गये। वहाँ उस समय दूसरे सहायक मंत्री उपस्थित थे। प्रो० अब्दुल हकीम ने उन से मेरा

परिचय कराया। वे भारत में कई बार हो आये थे और वहाँ की शिक्षासम्बन्धी बहुत सी बातों को जानते थे इसलिए भारत तथा काबुल की शिक्षा-सम्बन्धी तुलना में उन्हों ने बड़ी रुचि दिखाई। इस विषय में पर्याप्त समय तक वार्तालाप करते रहे। इसी दिन मुझे 'मकतबे-निजात' अर्थात् जर्मन कालेज में जाने का अवसर मिला। प्रिंसिपल की अनुपस्थिति में मैं वहाँ के 'मुआवन मदीर' अर्थात् उपाचार्य से मिला। उन्हों ने मुझे अपने महाविद्यालय के सम्बन्ध में आवश्यक बातें बताईं। तब मैं अफगान सचिवालय में जाकर शिक्षा-विभाग के अधिकारी वर्ग से मिला।

२७ सितम्बर को मैं वहाँ के शिल्प महाविद्यालय को देखने गया। उसे वहाँ 'मकतबे सन्नात' कहते हैं। इस संस्था का प्रिंसिपल मदीर कहलाता था, मैं उस से मिला। मुझे बताया गया कि वहाँ निम्न कार्य सिखलाये जाते हैं:—

(१) तरखाना (बढ़ई का कार्य)
(२) चित्रकारी
(३) प्रस्तरकला
(४) मूर्तिकला
(५) वस्त्रों की रंगाई और छपाई
(६) भवनकला

वहाँ से मकतबे गाजी में गया। इस में भी अंग्रेजी ही प्रधान थी। वहाँ के मदीर श्री फिदा अहमद से मिला। उसमें अभी इण्टरमिडियेट श्रेणियों का आरम्भ न हुआ था केवल १० श्रेणियाँ थीं। तब मैं शिक्षा-विभाग के उप-कार्यालय में जिसे वज़ारते मुआरिफ कहते थे, गया। पूछने पर ज्ञात हुआ कि मंत्री महोदय आगये हैं परन्तु एक आवश्यक बैठक में सम्मिलित हो रहे हैं। मैं सहायक मंत्री (डिप्टी-मिनिष्टर) के पास बैठ गया और उन से वार्तालाप की। मुझे बताया गया कि सरदार मुहम्मद नाईम खाँ, शिक्षा मंत्री, अफगानिस्तान राजधानी काबुल

में "राजनैतिक शिक्षणालय" खोलने पर विचार कर रहे हैं। मैं बहुत देर तक ठहर न सकता था अतः वहाँ से चला आया।

इस के पश्चात् मैं अफगान मंत्रीमंडल से सम्बन्धित एक दो अन्य विभागों में भी गया। वहाँ उन के अधिकारियों से भेंट हुई। उनसे बड़ी प्रसन्नता पूर्वक वार्तालाप हुआ। जहाँ मेरे प्रश्नों के उत्तर उन्होंने बड़े स्पष्ट शब्दों में दिये वहाँ भारतीय शिक्षा से सम्बंधित स्थिति पर भी वार्तालाप होती रही जो मैं ने उन्हें संक्षिप्त रूप में अवगत कराई।

२८ सितम्बर को मैं कृषि महा विद्यालय में गया। वहाँ के अध्यक्ष चौधरी सुलतान अहमद खाँ से मिला। वे पंजाब जिला होशियारपुर के निवासी थे। उन से पंजाबी में वार्तालाप हुई। उन्हों ने बताया कि उनका विभाग बड़ी शीघ्रता से प्रगति कर रहा है।

वहाँ निकट ही सैनिक विद्यालय था। उसकी जानकारी करना मैं आवश्यक समझता था। मैं वहाँ गया, प्रिंसिपल महोदय तो थे नहीं। विज्ञान और गणित के अध्यापकों से मिला और उनसे उस संस्था के विषय में कुछ जानकारी प्राप्त की।

२९ सितम्बर—अब मैं एक दो दिन में काबुल से भारत लौटना चाहता था अतः आज भी कुछ शिक्षा संस्थायें देखीं। प्रो० अब्दुल हकीम मेरे साथ थे। सर्व प्रथम फ्रेंच एकेडमी में पुनः गया। वहाँ प्रिंसिपल तो थे नहीं अतः स्थानापन्न से मिला। इस संस्था की उच्च कक्षाओं में वार्तालाप का माध्यम फ्रेंच भाषा था। यहाँ के कार्यालय में भी फ्रेंच भाषा का प्रयोग होता था। वहाँ से जर्मन एकेडमी, हबीबिया कालेज और गाज़ी स्कूल के परिचित व्यक्तियों से पुनः जाकर मिला।

———

४—काबुल का रहन-सहन

३० सितम्बर—इस दिन शुक्रवार था। अफग़ानिस्तान में यह साप्ताहिक अवकाश का दिन है। भारत के समान यहाँ रविवार को अवकाश नहीं होता। इस लिए मैंने जिन-जिन शिक्षणालयों व कार्यालयों में मिलना था एक दिन पूर्व १६ सितम्बर को ही मिल लिया था। यह दिन मैंने भ्रमण करने, फल आदि खरीदने तथा जनता के कुछ व्यक्तियों को मिलने में लगाया। फलों के सम्बन्ध में इतना लिख देना पर्याप्त होगा कि अंगूर साधारणतया दो आने सेर मिल जाते थे, उत्तम श्रेणी के बादाम छः आने सेर थे। मैं अपने लिए बादाम ले कर किसी मित्र द्वारा पहले ही पेशावर भेज चुका था। घर के लिए इस समय अंगूर और सेब आदि ही लिये। मैंने पगमान के विषय में लिखा था कि वह स्थान आठ हजार फ़ीट से अधिक ऊँचाई पर है। यहाँ यह जानना भी अनावश्यक न होगा कि काबुल की ऊँचाई श्रीनगर से १००० फ़ीट अधिक अर्थात् ६००० फ़ीट है। काबुल के एक दो बाज़ार पक्के और चौड़े बने हुए थे। यहाँ पर टाँगे मोटर आदि चलते थे और आवागमन के लिए पुलिस का इसी प्रकार का प्रबन्ध था जिस प्रकार भारतवर्ष में है। विशेष स्थानों पर टाँगों और गाड़ियों के अड्डे भी बने हुए थे।

नगर के समीप ही काबुल नदी बहती थी। इसका मार्ग नगर के बीच में से हो कर जाता था। उन दिनों अफग़ान सरकार द्वारा नदी को मोड़ कर नगर के बाहर की ओर ले जाया जा रहा था। इस में दो लाभ थे। प्रथम तो नगर बाहर से सुरक्षित हो गया था और दूसरे नदी का मार्ग भी सीधा हो गया था। नदी के किनारे से ५०–६० गज़ की

दूरी पर सीधे पंक्ति-बद्ध भवन बन रहे थे जिनमें नीचे दुकानें थीं और ऊपर की मंजिल में निवास स्थान।

नदी के दोनों किनारों पर सुरक्षा की दृष्टि से चार चार फुट चौड़ी और ऊँची पत्थर की दीवारें बनाई गई थीं। इस से चलने-फिरने वालों के गिरने का भय नहीं रहता था। उस समय काबुल नदी सूखी हुई थी जब कि भारत की कई नदियों में बाढ़ आई हुई थी। इस का कारण यह है कि भारत की नदियाँ गर्मियों में वर्षा के जल से भर जाती हैं। अफगानिस्तान में अधिकतर वर्षा सर्दियों में होती है अतः नदियों में पानी भी उन्हीं दिनों आता है।

काबुल के हिन्दू—मैं एक बाज़ार में गया। उस बाज़ार के व्यापार सम्बन्धी कार्य देखे। एक हिन्दू दुकानदार से मैंने पूछा कि क्या वह आरम्भ से ही काबुल का निवासी है या भारत के किसी नगर से आया था। उसने उत्तर दिया कि वह तो काबुल में ही जन्मा था परन्तु उस के दादा मुलतान से आये थे और आ कर यहीं बस गये थे। कुछ वर्षों तक तो विवाहादि अवसरों पर अपने नगर में जाते रहते थे पर आवागमन की कठिनाइयों के कारण उन्होंने यह प्रथा बंद कर दी है।

मैंने यह भी पूछा कि हिन्दू यहाँ कितनी संख्या में रहते हैं? मुझे उत्तर में बतलाया गया कि यहाँ हिन्दुओं के ५०० के लगभग घर हैं और इन में अधिकांश अरोड़वंशी हैं। पंजाब से आए हुए खत्री भी अच्छी संख्या में निवास करते हैं। कुछ ब्राह्मण भी हैं पर बहुत थोड़ी संख्या में। धार्मिक स्थानों के विषय में पता चला कि यहाँ सिखों के गुरुद्वारे हैं और हिन्दुओं का एक मन्दिर भी। यह भी बताया गया कि सिख अपने गुरुद्वारों में निरन्तर जाते हैं परन्तु हिन्दू अपने मन्दिर में कभी कभी और बहुत थोड़ी संख्या में उपस्थित होते हैं।

काबुल के हिन्दुओं को सरकार की ओर से विशेष वेष धारण करने का आदेश था। पुरुषों को लाल पगड़ी बाँध कर ही बाहर घूमने फिरने की आज्ञा थी और उन की स्त्रियों को पीले रंग का बुर्का ओढ़ना आव-

श्यक था। यह कहना तो कठिन है कि कहाँ तक इस सरकारी आज्ञा का पालन होता था पर ऐसी प्रथा अवश्य पाई जाती थी परन्तु यात्रियों पर यह आज्ञा लागू न थी।

शिक्षा के विषय में मुझे बताया गया कि हिन्दुओं के बच्चे अफगान बच्चों के साथ पढ़ सकते थे। स्कूलों में शिक्षा निःशुल्क थी। भाषा के विषय में पता चला कि घरों में स्त्रियाँ और बच्चे पंजाबी में ही बात-चीत करते हैं पर काबुल निवासियों से फारसी में वार्तालाप करनी होती थी। फारसी वहाँ की राज्य भाषा और राष्ट्र भाषा थी। ग्रामीणों से पश्तो में बातें करनी पड़ती थीं क्योंकि उन्हें केवल यही भाषा आती थी अतः हिन्दू सिख वहाँ फारसी, पश्तो और पंजाबी तीन भाषाओं का प्रयोग करते थे।

इस प्रकार काबुल में हिन्दू सिखों के विषय में जानकारी प्राप्त करके मैंने पेशावर जाने की ओर ध्यान दिया। सरकारी मेलवान पेशावर कब जायेगी यह पूछताछ की। पर एक और गाड़ी अगले दिन पेशावर जाने वाली थी, उसमें मैंने अपने वापिस लौट जाने का प्रबंध कर लिया।

काबुल से प्रस्थान—एक अक्टूबर मध्याह्न के पश्चात् काबुल से मोटर लारी चल पड़ी। इस गाड़ी में यात्री के रूप में केवल मैं ही था। मेरे अतिरिक्त था केवल गाड़ी का ड्राइवर। हम बीस मील के लगभग गये थे कि गाड़ी बिगड़ गई। उसके सुधारने में २-३ घंटे व्यतीत होगये। उस समय सायंकाल भी हो चला था। कोई २ पठान उस समय उस मार्ग पर पूछने के लिए रुक जाते कि क्या कारण है? किन्तु जिस स्थान पर गाड़ी रुकी थी वह निर्जन और रेतीला मैदान था। यदि कोई आक्रमण करना चाहता तो उसे रोकने वाला कोई न था। जब अंधेरा होगया और गाड़ी कुछ सुधरी तो यह प्रश्न हुआ कि रात को यात्रा करनी चाहिये या नहीं। थोड़ा समझाने से ड्राईवर इस बात के लिए सहमत हो गया कि यहाँ रात्रि को ठहरना ठीक नहीं, रात्रि को यात्रा

करना ही ठीक रहेगा। इस प्रकार रात भर मार्ग पर चलते रहे। दूसरे दिन दोपहर को तूरखम पहुँचे।

अब पुनः इस लारी के बिगड़ने के चिह्न प्रकट होने लगे। मैंने अपना सामान तो उसी लारी में रहने दिया और ड्राइवर से कह दिया कि वह उस की देख-भाल करे। मैं स्वयं एक कार में बैठ कर पेशावर पहुँच गया। अपने सामान की प्रतीक्षा में उस रात को तथा अगले दिन भी वहाँ ही ठहरना पड़ा। गाड़ी तीन अक्तूबर की सायंकाल को पेशावर पहुँची। सामान मैंने लिया पर अपने साथ जो फलादि लाया था, वह ड्राईवर के कथनानुसार मार्ग में गिर गये या चोरी हो गये थे। उसी रात को रेलगाड़ी में बैठ कर अगले दिन प्रातः लाहौर जा पहुँचा।

५—बम्बई के कुछ दर्शनीय स्थान

ऐलीफैंटा टापू

काबुल यात्रा के पश्चात् मैं किसी विशेष उल्लेखनीय स्थान पर तो न गया पर १६३६ के आरम्भ में मैंने आर्य शिक्षा-समिति की ओर से आर्य-शिक्षा संस्थाओं के निरीक्षणार्थ कुछ स्थान अवश्य देखे। इनमें पेशावर, बन्नू, डेरा ईस्माइलखाँ और मियाँवाली की आर्य कन्या पाठ-शालाएं विशेष हैं। पश्चिमी पञ्जाब की ये पाठशालाएँ ऐसे स्थानों पर चल रही थीं जो उर्दू के गढ़ थे। थोड़े से उत्साही आर्य लोग इन्हें उन मुसलिम क्षेत्रों में चला रहे थे जहाँ अन्य प्रकार से हिन्दी भाषा तथा आर्य सिद्धांतों का ज्ञान प्राप्त करना सुगम न था। वहाँ की अधिकतर हिन्दू जनता प्राचीन अन्धविश्वासों में फंसी हुई थी और पौराणिक धर्म को मानती थी। इसी के फलस्वरूप वहाँ आर्य संस्थाओं के समकक्ष सनातन धर्म के नाम से कई संस्थाए भी थीं। आर्य-शिक्षा-समिति के निरीक्षक श्री जयदेव विद्यालंकार भी इस भ्रमण में मेरे साथ थे। हमने उपर्युक्त पाठशालाओं के अतिरिक्त और भी कई संस्थाओं का निरीक्षण किया और उनकी प्रगति को सन्तोष जनक पाया। इसी सम्बन्ध में कार्य करते हुए शीत ऋतु चली गई और ग्रीष्म ऋतु का आगमन हुआ।

श्री **फ्रांसिस**—मई के आरम्भ में मुझे बम्बई कार्यालय के अध्यक्ष श्री फ्रांसिस का पत्र मिला कि वे सपरिवार अपनी मातृभूमि इंगलैंड को जा रहे हैं और ऐसा प्रतीत होता था कि पुनः लौट कर न आयेंगे। श्री फ्रांसिस से मेरा गत २५ वर्षों से सम्बन्ध था। यह सम्बन्ध आरम्भ तो व्यापारिक क्षेत्र में प्रवेश के समय हुआ था, परन्तु वर्षों एक साथ कार्य करने से वह मैत्री रूप धारण कर चुका था। यह मित्रता केवल मेरे साथ न रही थी अपितु हमारे पारिवारिक सम्बन्ध भी घनिष्ठता

की सीमा तक पहुँच चुके थे। उनके परिवार से मेरा परिवार इससे पूर्व दो बार मिल चुका था। इसका पिछले पृष्ठों पर वर्णन हो चुका है। ऐसे अवसर पर मुझे वैसे भी जाना चाहिये था पर जब निमन्त्रण भी आ गया तो मेरा वहाँ पहुँचना अनिवार्य हो गया।

मैं इस मास के मध्य में बम्बई पहुँचा। श्री फ्रांसिस और वहाँ के अन्य कर्मचारियों से मिला। व्यापार सम्बन्धी वार्तालाप के अतिरिक्त उनसे अपने स्वदेश लौटने के विषय में भी विचार-विनिमय हुआ। उन्होंने बताया कि वे पुनः भारत लौटने के विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सकते। उनके सम्मान में एक सभा हुई जिसमें उनके साथ बम्बई में कार्य करने वालों ने उनका अभिनन्दन किया। उनके कार्य संचालन की उत्तमता तथा सद्व्यवहार की प्रशंसा की गयी। मैंने भी इस अवसर पर उनके प्रति अपनी सद्भावना प्रकट की और दो शब्द कहे। मेरे कहने का सार था कि श्री फ्रांसिस के स्वभाव में जहाँ माधुर्य है वहाँ उनमें नम्रता भी कूट-कूट कर भरी हुई है। उनके कार्य करने की शैली इतनी उदार है कि उनके साथ कार्य करने वाले तो प्रभावित थे ही अपितु अन्य भी उनकी ओर आकर्षित हुए बिना न रहते थे। मैंने यह भी कहा था कि यदि भारत में आये हुए अन्य अंग्रेज़ भी इसी प्रकार का स्वभाव रखते और भारत निवासियों से ऐसा ही व्यवहार करते जैसा कि श्री फ्रांसिस करते थे तो जो अशान्ति उस समय यहाँ दीख पड़ती थी उसके स्थान पर सुख-शान्ति का राज्य होता।

दूसरे दिन उन्होंने मुझे अपने घर पर रात्रि के भोजन के लिए निमंत्रित किया। उसमें बम्बई के एक प्रसिद्ध विद्यालय के अध्यक्ष रेवरेण्ड केनन जार्ज क्लार्क भी निमंत्रित थे। इनसे मेरा जब परिचय हुआ तो मैंने सर्वप्रथम पूछा "क्या आप पाश्चात्य शिक्षणालयों की विशेषताओं के विषय में मुझे कुछ परिचय करा सकते हैं?" इसी प्रकार अन्य कई बातें भी मैंने पूछीं। उन्होंने बड़ी उदारता से सभी बातों पर प्रकाश डाला। इससे पूर्व कि भारतीय विद्यालयों के विषय में वे कुछ पूछते

श्री फ्रांसिस ने भारत की राजनीति विषय की चर्चा चला कर हमारी वार्तालाप का रुख बदल दिया और मुझे प्रेरणा की कि उक्त रेवरेण्ड क्लार्क महोदय के साथ इस विषय में विचार विनिमय करूँ।

श्री क्लार्क ने पूछा कि भारत के वर्तमान राजनैतिक आन्दोलन में कितना सार है? क्या इस आन्दोलन की सफलता की आशा है? मैंने उत्तर में कहा कि भारतीय अपनी जन्म-भूमि पर वैसा ही अधिकार चाहते हैं जो अंग्रेजों को इंगलैंड में प्राप्त है। इसी उद्देश्य से सब नर-नारी अपने पर सब कष्ट झेल रहे हैं और भविष्य में अब से भी अधिक आपत्तियाँ झेलने को तैयार बैठे हैं। इसमें मुझे सफलता की पूर्ण आशा है क्योंकि जिन साधनों द्वारा वे स्वतंत्रता प्राप्त करना चाहते हैं वे घृणा और हिंसा पर आश्रित न होकर मैत्री, करुणा और प्रेम पर आधारित हैं। उन्होंने फिर पूछा कि यदि भारतीयों की इच्छानुसार उन्हें स्वराज्य दे भी दिया जाय तो क्या वे शासन कार्य भली भाँति चला सकेंगे, जब कि उन्हें इस कार्य का कोई अनुभव नहीं है? मैंने उन्हें कहा कि इस आन्दोलन के नेता देशभक्ति तथा लोकभावना के आदर्श से प्रेरित होकर कार्य कर रहे हैं। इसमें व्यक्तिगत स्वार्थ को लेशमात्र भी स्थान नहीं है अतः यह आशा रखना उचित ही है कि वे इस देश का शासन अति उत्तम रीति से चला सकेंगे। यह ठीक है कि उन्हें शासन सम्बन्धी वे अनुभव अभी प्राप्त नहीं हुए जो इस समय के संचालकों को प्राप्त हैं परन्तु निष्काम सेवा और लोक कल्याण की ऊँची भावनाओं से प्रेरित हुए वे सब कुछ ठीक ही करेंगे। यदि कुछ काल के लिए कुछ त्रुटियाँ भी रह जायेंगी तो उनका शीघ्र ही सुधार हो जायेगा।

इस के पश्चात् वह दिन भी आगया जिस दिन श्री फ्रांसिस ने भारत से प्रस्थान करना था। मैंने और अन्य मित्रों तथा परिचितों ने समुद्र तट पर जाकर भरे हृदय से उन्हें विदाई दी और उनका जहाज़ इंगलैंड के लिए चल पड़ा।

१—ऐलीफैंटा टापू—अगले दिन मैंने समुद्र के बीच में ऐलीफैंटा टापू

देखने के लिए जाने का निश्चय किया। उस दिन अवकाश था। मैं २॥ बजे अपोलोबन्दर से इस स्थान को देखने के लिए चला। इस टापू को मोटर लांच प्रतिदिन दो बार जाता है एक प्रातः १० बजे और पुनः २॥ बजे। इस लांच में गेटवे आफ़ इण्डिया (Gateway of India) के सामने की सीढ़ियों के नीचे जाकर बैठते हैं। हम लांच द्वारा कुछ ही देर में टापू पर पहुँच गये। यह स्थान बम्बई से ६ मील दूर है। इस टापू की परिधि भी तीन मील से कम न होगी।

इस में दो लम्बी पहाड़ियाँ हैं। एक तंग घाटी है जिसका मुख दक्षिण-पूर्व की ओर है। चलते चलते मार्ग का दृश्य बहुत सुन्दर प्रतीत होता है। जब हमारी नाव इसके समीप पहुँची तो ऐसा प्रतीत होता था मानो टापू समुद्र के नीले जल से निकल रहा है। श्वेत झाग की एक बारीक पंक्ति जिसके साथ हरी-भरी झाड़ियाँ थीं और ऊपर वृक्ष लगे थे मिल कर एक अत्यन्त रमणीय हृदय-ग्राहक दृश्य उपस्थित करते थे।

टापू में पहुँचने पर यह पता चला कि सोलहवीं शताब्दी में पुर्तगाल वालों ने इस टापू को यह नाम इस कारण दिया था कि उन्होंने यहाँ पत्थर की बनी हाथी की एक मूर्ति घाट पर खड़ी देखी थी। यह सवा सात फीट ऊँची और तेरह फीट लम्बी थी। डेढ़ सौ वर्ष हुए कि हाथी की सूँड टूट गई थी। उस समय उसे वहाँ से लाकर बम्बई के विक्टोरिया अद्भुतालय के बाहर रख दिया गया था।

वहाँ पहाड़ी की एक गुफा में एक विशाल मन्दिर बना हुआ है जो एलोरा की गुफाओं के मन्दिरों के समान है। वहाँ की एक विचित्र बात यह है कि अभी आप चमकती धूप में हैं और पल भर में आप एक अन्धकारमय छाया में आ जायेंगे। इस मन्दिर के अनेक स्तंभ हैं जो कि पहाड़ी को काट कर बनाये गये हैं। कहा जाता है कि यह मन्दिर बहुत प्राचीन हैं। यह गुफा १३० गज लम्बी है और इसकी चौड़ाई भी लग भग इतनी ही है। मन्दिर के अन्दर एक विशाल त्रिमूर्ति है। गुफा में प्रवेश करते ही इसके साक्षात दर्शन होते हैं। इस त्रिमूर्ति में ब्रह्मा

विष्णु और शिवजी दिखाए गये हैं। ब्रह्मा मध्य में है और विष्णु और शिव दोनों ओर हैं; शिव नान्दी पर सवार हैं, विष्णु अपने वाहन, गरुड़ पर आसीन हैं, ब्रह्मा के हाथ में एक अनार है।

त्रिमूर्ति के पूर्व की ओर शिव अर्द्धनारीश्वर के रूप में विद्यमान हैं, उनका शरीर आधे पुरुष और आधे स्त्री के रूप में चित्रित किया गया है। यह मूर्ति पौने सत्रह फीट ऊँची है। त्रिमूर्ति के पश्चिम में शिव और पार्वती खड़े हुए हैं। शिव जी की मूर्ति १६ फीट और पार्वती की ११ फीट ४ इंच है।

चट्टान के नीचे की ओर एक कुण्ड बना है जो तीन ओर से ढका हुआ और चौथी ओर से खुला हुआ है। यह स्थान बहुत सुन्दर है। नित्य प्रति स्वच्छन्द वायु चलती है, समुद्र का दृश्य भी बड़ा मनोहर है।

यहाँ हम अन्य कुछ न देख सके क्योंकि अब सायं काल हो चला था। फिर मोटर लांच का मिलना भी दुष्कर हो जाता। अतः शीघ्र ही लांच में बैठकर समुद्र के दूसरी ओर तट पर चले गए।

२–बम्बई फोर्ट—मैं अगले दिन बम्बई फोर्ट देखने गया। यह स्थान पहले एक किले के रूप में बना था। इसके चारों ओर एक खाई खुदी थी। फोर्ट में पहले तो केवल अंग्रेजों की कोठियाँ ही थीं, वे ही लोग वहाँ निवास कर सकते थे पर इस समय प्रत्येक नागरिक को रहने की आज्ञा हो गई है। अब यहाँ किले के कोई विशेष चिह्न तो रह नहीं गये हैं और जनसंख्या भी घनी हो गई है। यहाँ बैंक, डाकखाने, शिक्षणालय आदि सब प्रकार की सामाजिक संस्थाएँ कार्य करती हैं। मनुष्य के व्यवहार सम्बन्धी सभी चीजें यहाँ मिल जाती हैं।

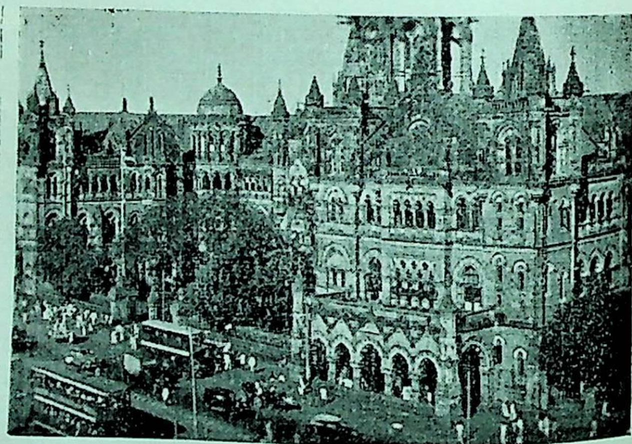
बम्बई में रहते हुए एक दिन मैं क्राफ़र्ड मार्केट देखने गया। यह विशाल मार्केट अपना विशेष अस्तित्व रखती है। यहाँ जीवनोपयोगी सभी प्रकार की वस्तुएं मिल जाती हैं। फल और सब्ज़ी की तो यह विशेष मार्केट है।

३–बम्बई अद्भुतालय—बम्बई का यह आश्चर्यालय भी एक दर्श-

नीय स्थान है। इसका निर्माण ब्रिटिश सम्राट् जार्ज पंचम के भारत आगमन पर हुआ था। इस अद्भुतालय के बाहरी भाग में उनकी मूर्ति अद्यावधि स्थापित है जो उस समय की स्मृति को जीवित किये हुए है। इसे मैं इससे पूर्व भी देख चुका था। इसका वर्णन पूर्व भाग में आ चुका है अतः अब इसका यहाँ पुनः वर्णन करना व्यर्थ होगा।

४–बड़ा डाकघर—बम्बई का बड़ा डाक घर वहाँ के दर्शनीय स्थानों में से एक है। इसका विशाल भवन एक विशेष पत्थर का बना है। इसकी बनावट भी विशेष ढंग की है। प्रान्तीय डाक अध्यक्ष (Postmaster General) का कार्यालय भी इसी भवन में बना हुआ है। यहाँ डाक की व्यवस्था बड़े उत्तम ढंग और अच्छे रूप में थी। इतनी अच्छी संख्या में कार्य करने वालों का उत्साह मन में कुतूहल उत्पन्न करता था।

५–विक्टोरिया टर्मिनस—बम्बई के दर्शनीय स्थानों में इस रेलवे स्टेशन का वर्णन करना भी आवश्यक है। गाड़ी से उतरते ही इसकी



विशालता मन में अपना विशेष स्थान बना लेती है। यह स्टेशन जी०

आई० पी० रेलवे की ओर से बना हुआ है। इसी में इस रेलवे के प्रबन्ध सम्बन्धी कार्यालय भी हैं। स्टेशन का यह नाम महारानी विक्टोरिया की ५० वर्षीय स्वर्ण जयन्ती पर रखा गया था।

६–विक्टोरिया अद्भुतालय—इस अद्भुतालय की नींव १८५८ में रखी गई जब कि महारानी विक्टोरिया के नाम के साथ भारत की महारानी की उपाधि लगाई गई थी। इसके बाहर पश्चिमी द्वार पर एक हाथी की बड़ी भारी मूर्ति रखी है। इसके सम्बन्ध में पहले ही लिखा जा चुका है कि यह ऐलीफैंटा टापू से लाई गई थी।

इस प्रकार बम्बई में कार्य करते हुए उपर्युक्त कई स्थान देखे और मई के अन्तिम सप्ताह में वहाँ से चलकर २५ को लाहौर जा पहुँचा।

———

६---कुछ ऐतिहासिक स्थान

मथुरा, वृन्दावन, आगरा

मथुरा—सितम्बर के अन्त में दसहरे का अवकाश होता है, इन दिनों मैं अपनी धर्मपत्नी सहित दिल्ली आया हुआ था। हमारा विचार हुआ कि मथुरा, बृन्दावन आदि स्थान देखें। हिन्दू इन्हें तीर्थ-स्थान समझते हैं। यहाँ वर्षा भी अच्छी होती है और इन दिनों यहाँ अच्छी रौनक होती है। वर्षा ऋतु में कृष्णाष्टमी आती है। श्री कृष्ण की यहाँ अधिक मान्यता है अतः अष्टमी के पश्चात् भी कार्तिक तक यहाँ समारोह होते हैं। २८ सितम्बर १९४१ को हम मथुरा पहुँचे और उस दिन यमुना पर ही स्नान किया। यमुना में जल की गहराई अधिक न थी। हम उसमें दूर तक चले गये। जलधारा में कछुए अवश्य कुछ अधिक थे, इस से पहले पहले कुछ भय रहा पर थोड़ी देर बाद आनन्द-पूर्वक स्नान किया।

सायंकाल हम मथुरा के बाज़ार देखने गये। हम तो केवल भ्रमण करने ही वहाँ गये थे। सुना हुआ था "मथुरा तीन लोक से न्यारी"। न्यारा पन तो कुछ दीख न पड़ा। लोग कृष्ण भूमि होने से श्रद्धा के कारण यह कह देते हों तो आश्चर्य नहीं। मथुरा में द्वारकाधीश का मंदिर देखा। मंदिर चार बार प्रातः तथा चार बार संध्या के समय १५-१५ मिनट के लिये खुलता है। प्रत्येक समय की झांकियाँ भिन्न २ प्रकार की होती हैं। जिस समय हम गये तो पता चला कि वहाँ शयन की झाँकी थी। इस समथ बड़ी भीड़ थी जिसका प्रबन्ध करना भी कठिन हो गया था। हम ने देखा कि मंदिर के पुजारी यात्रियों के साथ उचित व्यवहार नहीं कर रहे थे। इस मंदिर के सिवा यहाँ अन्य कोई दर्शनीय स्थान प्रतीत न हुआ। यमुना तट पर हम ने एक पुराने ढंग का किला देखा। हमें बताया गया कि इसे कंस ने बनवाया था।

बाढ़ के दिनों में यह दुर्ग ही यमुना के प्रकोप से नगर की रक्षा करता है।

वृन्दाबन—अगली प्रातः मथुरा से हम ताँगे द्वारा वृन्दावन गये। यह एक मंदिरों की बस्ती है। हम केवल मंदिरों का दर्शन ही कर रहे थे। उन में स्थित मूर्तियों पर हमें तनिक भी ध्यान न था तो भी इस कार्य में तीन चार घंटे व्यतीत हो गये। हमने यह सब कुछ देखकर अनुभव किया कि कृष्ण की इस जन्म-भूमि को लोगों ने केवल भक्ति भावमय ही बना रखा है। धर्म की दृष्टि से यहाँ हमें कोई विशेषता प्रतीत न हुई। मंदिरों के कृष्ण लोगों के जीवन के कृष्ण न रह गये थे। वे लोगों की श्रद्धा के पात्र तो थे पर जीवन के आदर्श नहीं। महाभारत के निष्काम कर्म द्वारा निराश अर्जुन को कर्त्तव्य-पथ पर लगाने वाले कृष्ण का उस भूमि और वहाँ के मंदिरों में सर्वथा अभाव था।

उत्तरप्रदेश के आर्य समाजों की एक मात्र संस्था गुरुकुल वृन्दावन प्रगतिशील संस्थाओं में से थी पर राजनैतिक वातावरण के कारण उस समय राजा महेन्द्र प्रताप द्वारा स्थापित प्रेम-महाविद्यालय लोगों के मस्तिष्क में घर कर रहा था। गुरुकुल बृन्दावन को तो मथुरा शताब्दी के समय मैं देख चुका था, इस समय भी अपनी धर्मपत्नी सहित उसे देखा।

स्वामी विरजानन्द जी दण्डी की पाठशाला जहाँ महर्षि दयानन्द ने विद्या प्राप्त की थी, आर्य-समाज के अधिकार में न थी। मथुरा शताब्दी में उसे प्राप्त करने पर विचार हुआ था और प्रयत्न भी आरम्भ हो गया था पर उस समय तक वह स्थान आर्य-समाज को प्राप्त नहीं हो सका था। (प्रसन्नता की बात है कि इन दिनों १९५३ में उत्तर-प्रदेश सरकार ने वह स्थान आर्य-समाज मथुरा को दिला दिया है।)

अगले दिन प्रातः हम फतहपुर सीकरी देखने गये। वहाँ हम ने एक पथ-प्रदर्शक साथ लिया। उससे हमें निम्न स्थानों को देखने और उन के विषय में कुछ जानकारी प्राप्त करने में सहायता मिली :—

हकीमों का कुआँ—पहले-पहल हम ने एक कुआँ देखा जो अकबर के राज्य में वैद्यों को जल पहुँचाने के लिये विशेष रूप से बनवाया गया

था। कुएँ से अरहट द्वारा पानी निकाला जाता था ! वह पानी कोई तीस फ़ीट की ऊँचाई पर तालाब में एकत्र हो जाता था । वहाँ से उतनी ही ऊँचाई पर फिर अरहट द्वारा ऊपर ले जाया जाता था, जहाँ एक अन्य तालाब में एकत्र होता था। वहाँ से नालियों द्वारा हकीमों के हमाम में पहुँचा दिया जाता था। इस कुएँ से पानी निकालने के लिये बैलों द्वारा अरहट न चलाया जाता था अपितु इस काम पर मनुष्य लगाये जाते थे।

औषधियों का फव्वारा—इस के समीप ही औषधियों का एक फव्वारा देखा। जड़ी-बूटियों तथा वनस्पतियों का जल इस फव्वारे द्वारा रोगियों तक पहुँचाया जाता था।

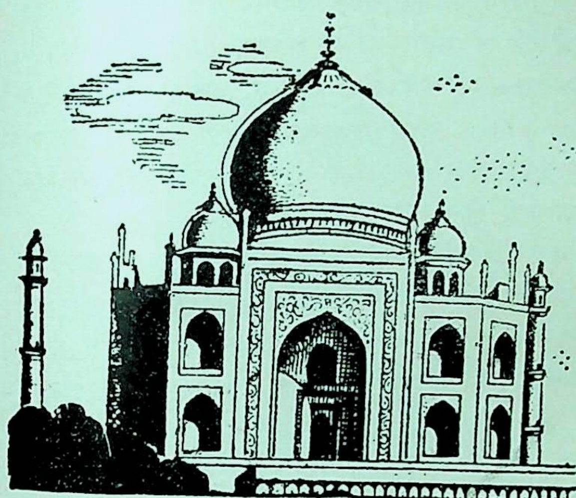
गर्म हमाम—जब रोगी अपने रोग से मुक्ति पाकर घर जाने को तत्पर होते थे तो उनको प्रथम बार यहाँ पर स्नान कराया जाता था।

बुलन्द दरवाज़ा—जिस समय अकबर ने खानदेश दक्षिण पर विजय प्राप्त की तब इस बस्ती का नाम फतहपुर सीकरी रखा गया। उस ने अपनी विजय स्मृति में इसका इतना ऊँचा द्वार बनवाया कि जिसे विश्व का सब से ऊँचा द्वार कहा जा सकता है । इसकी ऊँचाई १७८ फीट है।

इस द्वार से निकल कर अन्दर की ओर दिवाने-आम, दिवाने-खास, हिरण-मीनार, आँख-मिचौली, रानियों के स्नानागार, उनके वस्त्र आभूषण रखने के भवन, अकबर का पुस्तकालय, अकबर की भोजन-शाला तथा व्यायामशाला, शीशमहल, रानी जोधाबाई का मंदिर, हवा महल, लंगरखाना तथा बीरबल की पुत्री का मकान आदि स्थान देखे। वहाँ से हम आगरा आगये और उसके दर्शनीय स्थान देखने गये।

आगरे का ताजमहल—आगरा पहुँच कर हम विश्व-विख्यात ताजमहल देखने गये। इसको शाहजहाँ ने अपनी बेगम मुमताज़ महल की स्मृति में बनवाया था। यहाँ पर मुमताज़ महल और शाहजहाँ की समाधियाँ साथ साथ ही हैं। यह संसार के सात आश्चर्यों में से एक है। समस्त ताजमहल संग-मर-मर का बना है, इसकी बनावट में एक विशेष-

ता है कि पत्थर कहीं भी जुड़े हुए नहीं प्रतीत होते मानो कि एक ही पत्थर का बना हुआ है। ताजमहल के निर्माण में १८ वर्ष लगे थे और ६॥



करोड़ रुपया व्यय हुआ था। पूर्णिमा की रात को इस रोज़े की सुन्दरता विशेष बढ़ जाती है और अनेक यात्री इसे देखने जाते हैं।

दयालबाग—इसके पश्चात् हम दयाल बाग देखने गये। वहाँ प्रदर्शनी हो रही थी। उद्योग-धन्धे सम्बन्धी बड़ी-बड़ी मशीनें वहाँ विद्यमान थीं। जहाँ हमने प्रदर्शनी को पूर्णतः घूम फिर कर देखा, वहाँ गृह कार्य में प्रयोग होने वाली वस्तुएँ भी हम ने खरीदीं।

दयालबाग के पास ही स्वामी बाग है, उसे भी देखा। स्वामी-बाग में राधा स्वामी मत के प्रवर्त्तक की समाधि है। हमें वहाँ बताया गया कि वह समाधि कई वर्षों से बन रही है और इसमें संग-मरमर का ही प्रयोग हो रहा है। इसके निर्माण कार्य को देख कर कहा जा सकता है कि यह भवन भी संसार का महत्व पूर्ण और आकर्षक स्थान बन जायेगा। अभी इसकी तीसरी मंजिल तैयार हो रही थी। यह इसी

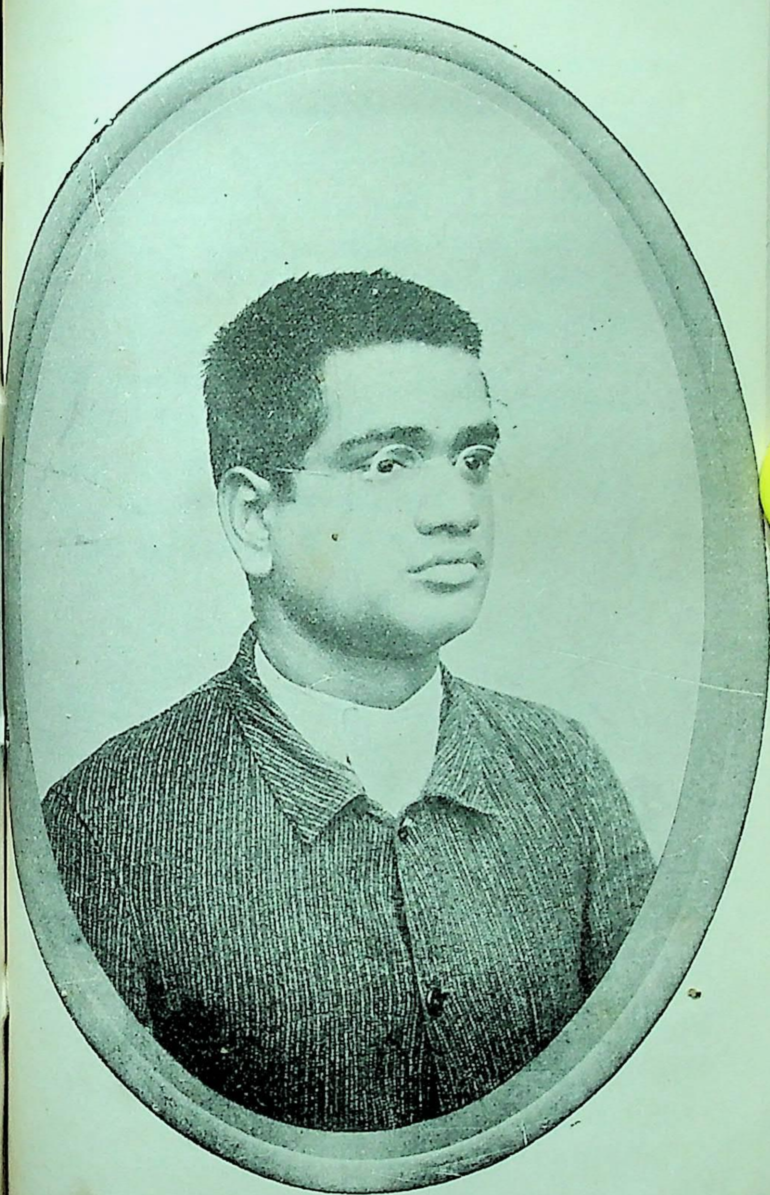
प्रकार सात मंजिल की बनाई जायेगी। चारों ओर यमुना से नहर लाई जायेगी। यहाँ पर एक निकटवर्ती स्थान पर ही इसका आदर्श (Model) भी रखा हुआ था, जिसके अनुसार इसे बनाया जा रहा है। इसके पूर्ण होने पर संसार का यह आठवाँ आश्चर्य होगा।

सिकन्दरा—यहाँ अकबर का रौज़ा है, हम इसे भी देखने के लिए गये। वहाँ से निवृत होकर आगरे का किला देखा। एतमादुद्दौला आदि स्थान देखकर २ अक्टूबर को दिल्ली आगये। यहाँ कुछ दिन ठहर कर अपना कार्य किया और लाहौर चले गये।

आचार्य रामदेव जी—गुरुकुल काँगड़ी के भूत पूर्व आचार्य तथा आर्य समाज के नेता आचार्य रामदेव जी ६ दिसम्बर १६३६ को चल बसे। कुछ वर्षों से उनका स्वास्थ्य गिरता जारहा था। उन्हें डाक्टरों ने पूर्ण विश्राम लेने का परामर्श दिया था। परन्तु वे आर्य-समाज के कार्यों में निरन्तर लगे रहे। इसका प्रभाव उनके स्वास्थ्य पर बड़ा भयंकर रूप से पड़ा। अन्त के कुछ वर्ष वे स्वास्थ्य सुधारने के लिये बाहर भी चले गये पर विशेष लाभ न हुआ।

उनके स्वास्थ्य बिगड़ने के कई कारण थे। प्रथम बात तो यह थी कि वे इन दिनों प्रति-निधि सभा पंजाब के प्रधान थे। अभी कुछ समय पूर्व दयानन्द-निर्वाण-अर्धशताब्दी पर तो उन्हों ने अत्यधिक कार्य किया ही था पर सभा की अर्ध-शताब्दी पर भी उन्हों ने अपनी शक्ति से बाहर कार्य किया। इससे उनके स्वास्थ्य को बड़ी क्षति हुई यहाँ तक कि भाषण भी न दे सकते थे। अपने कंधों पर प्रधान-पद का भार फिर भी सम्भाले रहे और स्वास्थ्य का ध्यान न रख सके। इससे उनकी अवस्था और भी बिगड़ गई। अन्त में वह दिन आगया जिस दिन कि वे हम से सदा के लिए पृथक् हो गये।

आचार्य जी से मेरा सर्व प्रथम परिचय १६०५ ई० में लाहौर आर्य-कुमार सभा में हुआ था। उस समय वे ट्रेनिंग कालेज में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। मैं उस समय डी. ए. वी. कालेज में था। अगले वर्ष जब



स्व० आचार्य राम देव जी गुरुकुल काङ्गड़ी

मैं ग्रीष्मावकाश में गुरुकुल गया तो उनके निमन्त्रण पर मैं वाग्वर्द्धिनी सभा में भाग लेता रहा। इसके पश्चात् कुछ वर्ष तक मुझे गुरुकुल के वार्षिकोत्सवों पर ही उनके दर्शन का अवसर मिलता रहा। १६११ के पश्चात् आर्य प्रति-निधि सभा के साधारण अधिवेशनों में और अन्तरंग सभाओं में उनसे विचार विनिमय करने के अवसर मिले।

१६३३ में अजमेर निर्वाण अर्धशताब्दी पर उनसे मिलने का अवसर हुआ। जब वहाँ आर्य सम्मेलन उनके सभापतित्व में हुआ तो उसमें मैंने भी भाग लिया था।

१६३५ में आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से आर्य विद्या सभा की स्थापना हुई। तब से मैं भी उसका सदस्य रहा। उसके अधिवेशनों में भी प्रायः एक-दूसरे से विचार-विनिमय के अवसर मिलते थे और साधारणतया हम में मत-भेद के बहुत ही कम अवसर होते थे।

७—कुछ पर्वतीय स्थान

१-काश्मीर भ्रमण १६३६ में—पूर्व वर्षों की भाँति मैं १६३६ की अगस्त में भी काश्मीर गया। इस बार मेरा परिवार भी मेरे साथ था। जब मैं काश्मीर के लिए चला तो जम्मू पहुँच कर विदित हुआ कि आगे का मार्ग पर्वत गिरने से रुका हुआ है अतः वहाँ हमें ठहरना पड़ा। हम वहाँ से चल कर श्रीनगर पहुँचे तो एक दिन हारवन के भ्रमण को निकले। यह स्थान श्रीनगर से ११ मील की दूरी पर है। मैं पहले भी इसे कुछ बार देख आया था, पर इस बार अपने परिवार को भी साथ ले गया। वहाँ से लौटते समय मार्ग में एक स्थान ऐसा आया जहाँ हमें ठहर कर चाय पीने का निमन्त्रण मिला हुआ था। वहाँ हम आधा घंटा ठहरे। उसके आस-पास के दृश्य भी देखे। वहाँ से शाला-मार-बाग में हम पहुँचे। यहाँ बड़ी रौनक थी। उस दिन रविवार था। फल बेचने वाले द्वार पर बैठे हुए थे। यहाँ बड़ी चहल-पहल थी और रँग-बिरँगे फूल और फलों से लदे वृक्षों को देख कर सब को प्रसन्नता होरही थी। इस प्रकार हमने भी वहाँ भ्रमण का आनन्द उठाया और अगले दिन श्रीनगर के आस-पास के अन्य स्थान देखे। रमणीय स्थानों का भ्रमण करके कुछ दिन पश्चात् लाहौर लौट गये।

२-अगले वर्ष १६४० की गर्मियों में मैं मरी पर्वत पर गया हुआ था कि वहाँ मेरा स्वास्थ्य बिगड़ गया। वहाँ का जल वायु मेरे अनुकूल न पड़ता था। अतिसार के कारण मुझे लौटना पड़ा। वहाँ से रावलपिंडी आकर एक ही दिन ठहरा था कि आराम आगया। दो दिन पश्चात् मैं ऐबटाबाद चला गया। वहाँ ऋतु सुहावनी थी, शीत अधिक न था और जल-वायु भी अनुकूल था। दो-चार दिन में ही मेरा स्वास्थ्य अच्छा हो गया।

काश्मीर शीत ऋतु में—२५ अक्टूबर को श्री कैलसन फोर्ड लाहौर पधारे। कुछ दिन हम कई स्थानों पर गये पर वे काश्मीर जाना चाहते थे। शीत-ऋतु आरही थी। इस ऋतु में काश्मीर जैसे स्थानों पर यात्री साधारणतया नहीं जाते थे और मैं भी इस ऋतु में काश्मीर प्रथम बार ही जा रहा था। हमने एक कार सीधे श्रीनगर तक के लिए करली। ७ नवम्बर को हम रावलपिंडी से बारामूला पहुँचे। रात्रि वहाँ के डाक-बंगले में काटी और अगली प्रातः श्रीनगर पहुँच गये। उसी मोटर-कार से हम १० नवम्बर को प्रातः वहाँ के दर्शनीय स्थानों को देखने निकले। सर्वप्रथम हारवन गये और वहाँ पानी की उस झील को देखा जिसका पानी नलों द्वारा श्रीनगर पहुँचता है। पर उस समय पानी सूख रहा था क्योंकि सर्दियाँ थीं। सारी शोभा ही बदली हुई प्रतीत हो रही थी। हार-वन का दृश्य देख कर शालामार-बाग और निशात-बाग भी गये। वहाँ वृक्षों की शोभा वैसी न थी जैसी ग्रीष्म ऋतु में होती है अपितु वृक्षों के पत्ते पीले पड़ गये थे। वे उड़-उड़ कर टहनियों से अलग हो रहे थे। बिना पत्तों के टहनियों ने विचित्र रूप धारण कर लिया था। बाग में उस समय फव्वारे भी नहीं चल रहे थे, न वहाँ पर उस प्रकार की चहल-पहल थी जो साधारणतया गर्मियों में होती है। सारा दृश्य ही नी-रस था। हाँ कुछ लाल फूल अवश्य खिल कर उद्यानों की लाज रख रहे थे। मानो वे काश्मीर को नीरसता के लाँछन से बचाना चाहते थे। हमने केवल एक घंटा बाग की सैर की और चश्मा-शाही के स्रोत को देखा और उसका हिमवत शीतल जल पीया। वहाँ से लौट कर १॥ बजे श्रीनगर आगये।

सायं-काल को हम श्रीनगर के अन्य स्थानों को देखने के बाद ही वहाँ के बाज़ार में गये। यहाँ पश्मीने की शालें और पेपर-मेशी से बनी कुछ वस्तुएँ देखीं। इनमें से कुछ वस्तुएँ फोर्ड महोदय ने अपने साथ विलायत ले जाने को खरीदीं।

रात्रि आई, चन्द्रमा भी पूर्ण यौवन के साथ अपनी चाँदनी छिट-

काने लगा। शीत भी अधिक तीव्र हो गया। ऐसे शांत-मय अवसर में हम लोग कार में बैठ पामपुर के केसर के देश को देखने के लिए चल दिये। रात्रि का यह अवसर बड़ा ही आनन्दप्रद था। केसर की क्यारियों से भीनी-भीनी मन्द समीर की तरंगें मन को विभोर कर रही थीं। पास के खेतों में जो केशर के पुष्प कुमुद की भाँति खिले थे, उन्होंने भी एक नया दृश्य प्रस्तुत कर दिया था। इस प्राकृतिक दृश्य को देख कर हमें यह ठीक ही जान पड़ा कि यहाँ की प्राकृतिक शोभा, सुषमा एवं शीतल-मंद-सुगंधित त्रिविध समीर के कारण ही इसे भारत-भूमि का स्वर्ग कहा जाता है। इस शांत वातावरण में हमें बड़ा आनन्द आया।

११ नवम्बर को हमने श्रीनगर से ऊधमपुर की यात्रा की। १६२ मील चलकर हम रात को वहाँ पहुँचे। मैं ने इतनी लम्बी यात्रा कभी मोटर में न की थी, अतः मुझे मार्ग में एक-दो बार वमन भी हुए। इससे बचने के लिए मैं अगली सीट पर बैठ गया, फोर्ड महोदय पिछली सीट पर चले गये, फिर मुझे कोई विशेष कष्ट न हुआ। श्रीनगर से पहला पड़ाव पड़ा काजी-गुंड का। वहाँ से हम ने सेब, नाशपाती और अखरोट लिए।

ऊधमपुर से जम्मू ४१ मील की दूरी पर है। हम जम्मू अगले दिन प्रातः १० बजे जा पहुँचे। कुछ घंटे हमने जम्मू में विश्राम किया। दो बजे के पश्चात् वहाँ से चल कर सायं-काल स्यालकोट पहुँचे। मैं वहाँ उतर गया और मेरे साथी फोर्ड उसी कार से रात को लाहौर चले गये। रात को मैं स्यालकोट रह कर प्रातः लाहौर जा पहुँचा।

१६४१ की ग्रीष्म-ऋतु में—मैंने काश्मीर यात्रा में पूरा अगस्त तथा आधा सितम्बर लगाया। अगस्त के प्रथम सप्ताह में तो मरी पर्वत का भ्रमण किया और वहाँ से ऐबटाबाद होते हुए २० अगस्त को श्रीनगर पहुँचा। इस यात्रा में सबसे अधिक उल्लेखनीय बात यह थी कि आरम्भ से अंत तक भयंकर वर्षा का सामना करना पड़ा। मुझे याद नहीं कि मेरे साथ कौन कौन थे पर परिवार के कुछ व्यक्ति थे अवश्य।

मरी में प्रथम दिन ही दोपहर तक इतनी भारी वर्षा हुई कि वहाँ के शिक्षणालय भी बन्द हो गये। मैं १० सितम्बर तक श्रीनगर रहा। वहाँ रहते हुए बारामूला आदि स्थानों पर भी गया।

श्रीनगर से जम्मू के मार्ग पर लौटते हुए ११ सितम्बर को ८२ मील की दूरी पर बानिहाल गया। वहाँ सरकारी विश्राम-शाला में ठहरा, वर्षा निरन्तर बड़े वेग से हो रही थी। सरकारी विश्राम-शाला में कई व्यक्ति ठहरे हुए थे। वहीं न्यू बैंक आफ़ इण्डिया के संचालक श्री मुल्क राज कोहली से प्रथम बार भेंट हुई। एक और सज्जन चौधरी फ़ैज़ उल्लाह से जो रियासत के डिपुटी कमिश्नर थे मिलने का अवसर हुआ। पूछने पर विदित हुआ कि वे मेरे ज़िले गुजरात के निवासी हैं। उन्होंने बड़े प्रेम भाव से खुलकर बातें कीं और रियासत के शासन सम्बन्धी कई रहस्य बताये।

दूसरे दिन भी वर्षा होती रही। हम दोपहर को वर्षा के रुकने पर वहाँ से चल पड़े और ४१ मील पर बटौत नामक स्थान पर जाकर ठहरे। यहाँ भी वर्षा बड़े वेग से हो रही थी, अंधेरा बढ़ रहा था। हमें सूचना मिली कि आगे सड़क टूट गई है। वहाँ हम जिस चौबारे पर ठहरे थे उस के नीचे एक हलवाई की दुकान थी। वहाँ से हम प्रकाश के लिए मोम-बत्ती आदि पूछ रहे थे कि एक सेवक ने हमारे लिये दीपक जलाना चाहा। उसपर एक बिच्छु बैठा था। दीपक जलाते समय बिच्छु ने उस की अंगुली पर काट खाया। वह सेवक तड़पता रहा। हमें भी उस समय भय हुआ कि पता नहीं रात को किस कष्ट का सामना करना पड़े। रात भर वर्षा होती रही। १३ को ऊधमपुर पहुँच कर जम्मू के लिये चल पड़े और वहाँ से रात्रि को गाड़ी पर बैठ कर १५ को लाहौर जा पहुँचे।

कुल्लू की ओर—काश्मीर की अन्तिम यात्रा पाकिस्तान बनने से पूर्व १६४६ में हुई पर उस से पूर्व दो बार १६४२ और १६४४ में भी मैं काश्मीर हो आया था। प्रथम १६४२ में काश्मीर की यात्रा सितम्बर

मास में की। इस से पूर्व जुलाई में मैं कुल्लू की ओर भ्रमण करने गया। लाहौर से पठानकोट पहुँचने पर मैं नगरोटा जाने वाली गाड़ी में बैठा। यह गाड़ी मेरे लिए नवीन न थी। इस ओर मैं कई बार पूर्व भी यात्रा कर चुका था। १९२३ व २८ में मैंने काँगड़ा, धर्मशाला आदि स्थानों तक भ्रमण किया था। उस समय यह नगरोटा जाने वाली गाड़ी योगेन्द्रनगर तक जाती थी। योगेन्द्रनगर उस समय मंडी रियासत में था जहाँ बिजली का बड़ा भारी कारखाना बना है। पंजाब में लाहौर, अमृतसर तक यहीं से बिजली पहुँचने का प्रबन्ध था। महायुद्ध के दिनों में यह रेलवे लाइन नगरोटे से आगे उखाड़ दी गई थी। १९०५ में काँगड़ा में बड़ा भयंकर भूकंप आया था। इसका कारण है यहाँ ज्वालामुखी पर्वत का होना। ज्वालामुखी नाम से यहाँ एक तीर्थ-स्थान भी है। वहाँ ज्वालामुखी का मंदिर है और मंदिर में कई स्थानों से आग की लपटें निकलती हैं। पुजारीगण उसे घी से तर कर देते हैं और वह बहुत समय तक प्रज्वलित रहती हैं। शायद इसी कारण यह पवित्र स्थानों में गिना जाता है। यहाँ दूर दूर से यात्री आते हैं।

इस बार मैं पठानकोट से नगरोटा के लिए गाड़ी में बैठा। यह गाड़ी भी कालका-शिमला लाइन के समान छोटी ही है। धीरे धीरे चलती है पर वहाँ का पर्वतीय सौन्दर्य कालका-शिमला के पर्वतीय सौन्दर्य को नहीं पहुँचता। इस लाइन में भी सुरँगें हैं पर बहुत थोड़ी। प्रायः अबतक अधिकांश व्यक्तियों ने ऐसे ही पुल देखे होंगे जो नदियों पर बने हुए हैं पर यहाँ २-४ स्थानों पर ऐसे पुल दीख पड़ते हैं जो पहाड़ों पर बने हैं और दो पहाड़ी मार्गों के बीच के स्थानों को मिलाते हैं। इनके नीचे के स्तंभ आरम्भ में छोटे और मध्य में बड़े लम्बे होते हैं। नदियों पर बने पुलों की अपेक्षा ये बड़े विचित्र प्रतीत होते हैं।

इस लाइन पर ज्वालामुखी-रोड, काँगड़ा आदि मुख्य स्टेशन पड़ते हैं। काँगड़ा स्टेशन से काँगड़ा नगर दो मील के लगभग पड़ता है। काँगड़ा जाने वाले व्यक्ति अधिकतर मोटर बस द्वारा यात्रा करते हैं।

बसें नगर के बीच में ठहरती हैं। यहाँ बस सर्विस बहुत प्रचलित है।

यहाँ के पास ही काँगड़ा जिले का प्रमुख स्थान धर्मशाला है। यह भी शीत स्थान है। ६ हज़ार फ़ीट से अधिक ऊँचाई पर स्थित है। यहाँ पूर्वी पंजाब में सबसे अधिक वर्षा होती है जो ११७ इंच तक पहुँच जाती है। नगरोटे से मैं धर्मशाला गया। वहाँ मेरे मित्र श्री सरदार चन्द्र रहते थे। इनका उल्लेख मैं पूर्व भी कर चुका हूँ। इनकी कोठी एक स्वच्छ स्थान पर बनी हुई थी और स्थान भी पर्याप्त था। यहाँ मुझे घर जैसी सुविधा मिल गई। यहाँ ही मेरे एक और मित्र श्री सत्यपाल रहते थे। उस समय उन्होंने एक विद्यालय खोल रखा था। आर्य-समाज के कार्यों में ये विशेष समय देते थे।

यहाँ से कुछ ही मील दूर यूल (Yule Camp) नाम से एक प्रसिद्ध स्थान है। इसे महायुद्ध में पराजित इटेलियन बंदियों के लिए अस्थायी रूप से बनाया गया था। उस समय वहाँ १८ हज़ार बन्दी रहते भी थे। युद्ध की समाप्ति पर जब वे चले गये तो उसके स्थान पर सरकार ने पुरुषार्थियों को बसने की आज्ञा दे दी। इन बंदियों के विषय में कहा जाता था कि यहाँ बंदियों को बड़ी स्वतंत्रता थी। वे आस पास के ग्रामों में चले जाते थे। अपनी कई वस्तुएँ घड़ी आदि बेच आते थे। उन्हें खान पान के लिए धन की आवश्यकता रहती थी। ग्राम वासियों ने उनसे जो वस्तुएँ खरीदीं उनमें से एक मैंने भी देखी। कभी २ ये बन्दी उचित सीमा का उल्लंघन भी करते हुए पाये जाते थे। वे भोली-भाली बेचारी पर्वतीय स्त्रियों को बहका कर उनमें भ्रष्टाचार एवं व्यभिचार भी फैलाते थे। इसके कारण कई स्थानों पर तो ये पिट भी जाते थे, जब कभी इन की भावनाओं का पता चल जाता था।

पालमपुर—यहाँ से १६ जुलाई को पालमपुर गया। यह स्थान इस ज़िले में चाय के खेतों के लिये प्रसिद्ध है। यहाँ नगर से बाहर चाय के बहुत से खेत हैं। चाय को बेचने के योग्य बनाने के लिये विशेष रूप से कारखाने भी बने हुए हैं। यह चाय भारत के कई स्थानों पर

भेजी जाती है। इस व्यवसाय का यह इस प्रान्त में सबसे बड़ा स्थान है। इस स्थान को ईसाइयों ने प्रचार का केन्द्र बनाया हुआ था। ये ईसाई ऐंग्लो अमेरिकन शाखा के प्रचारक थे। यहाँ इन्होंने एक अस्पताल भी खोला हुआ था। यह इनका सर्व श्रेष्ठ साधन था। देखने को तो यह स्थान प्रजा के हितार्थ था, इससे यहाँ ईसाइयों की धाक बैठ गई थी। कम से कम लोगों पर इनके संचालकों का अप्रत्यक्ष प्रभाव तो अवश्य पड़ता था, चाहे वे प्रत्यक्ष रूप से धर्म ग्रहण न भी करें।

बैजनाथ—पालमपुर से बस द्वारा मैं बैजनाथ गया। यह स्थान पहाड़ों की तराई में बसा हुआ है। इसके पास ही एक और बस्ती है। उसका नाम है पपरोला। ये पहाड़ी स्थान जड़ी-बूटियों के लिये प्रसिद्ध है। पहाड़ी लोग जो इनके जानकार हैं इन्हें लेकर यहाँ आते हैं। यहाँ के व्यापारी उन्हें लेकर आगे भेज देते हैं। यहाँ हल्दी के भी बहुत से खेत हैं। जब मैं बाहर सैर करने को गया तो हल्दी की गन्ध आने लगी। आज भी जब मैं बैजनाथ के विषय में लिख रहा हूँ या जब कभी भी इस विषय में सोचता हूँ अथवा वार्तालाप करता हूँ तो वह तीव्र गन्ध मुझे स्मरण आजाती है।

यहाँ से आगे मंडी जाने का विचार था। वहाँ से जाने वाली बस की प्रतीक्षा में एक-दो घण्टे तक बस स्थान पर ठहरा रहा। जब बस वहाँ पहुँची तो मैंने समझा कि यात्री यहाँ उतरेंगे तो बैठने को स्थान मिल जायेगा। परन्तु उतरने वालों की अपेक्षा वहाँ बैठने वाले अधिक थे। ऐसी दशा में मेरे लिये यात्रा करना कठिन था। मैंने निश्चय किया कि मेरे लिए आगे जाने की अपेक्षा पीछे लौट जाना ठीक रहेगा अतः मैं वहाँ से वापिस पठानकोट पहुँच कर रात की गाड़ी से अगली प्रातः लाहौर जा पहुँचा।

इसके पश्चात् मेरा विचार काश्मीर जाने का हुआ। सितम्बर में मैं श्रीनगर के लिये चल पड़ा। मेरी धर्म-पत्नी और पुत्र धर्मवीर और यशपाल मेरे साथ थे। इस यात्रा में उल्लेखनीय बात तो कुछ न थी

पर इस बार हम ने काश्मीर में ठहरने का प्रबन्ध पहले से न कर रखा था अतः श्रीनगर पहुँच कर हमें ठहरने में बड़ी कठिनाई हुई।

उन दिनों वहाँ गुरुकुल गुजराँवाला के विद्यार्थी आकर श्रीनगर ठहरे हुए थे। सरकार की ओर से उन्हें ठहरने के लिए एक विशाल भवन मिला हुआ था। वहाँ शिक्षण कार्य के लिए सब छात्र ग्रीष्म ऋतु में आया करते थे। गुरुकुल के प्रबन्धक थे श्री गोविन्द राम जी। उन का वहाँ अपना भी मकान था पर वे ठहरे हुए थे विद्यार्थियों के साथ ही। उन्होंने हम से कहा कि हम चाहें तो उनके मकान में ठहर सकते हैं। हमने वहाँ रहना स्वीकार कर लिया। पर दो दिन के पश्चात् जब वह स्थान हमें अनुकूल न पड़ा तो हम आर्य-समाज के विश्राम गृह में चले गये। हमने २८ सितम्बर तक वहाँ के दर्शनीय स्थानों का भ्रमण किया। इसके उपरांत जम्मू होते हुए लाहौर लौट गये।

———

८--काश्मीर की दो अन्तिम यात्राएँ

प्रथम यात्रा—२ अगस्त १६४४ को काश्मीर शिक्षा-विभाग की ओर से मुझे एक निमन्त्रण मिला जिसके द्वारा मुझे वहाँ बुलाया गया। श्रीनगर में एक शिक्षा सम्मेलन और बच्चों के लिये शिक्षा-सम्बन्धी प्रदर्शनी होने वाली थी। मैंने वहाँ के शिक्षा-संचालक और मंत्री को पत्र लिखकर विस्तृत जानकारी प्राप्त करनी चाही। ७ अगस्त को उत्तर प्राप्त हुआ और उसी दिन मैं जम्मू के लिये चल दिया। अगले दिन मैं जम्मू पहुँच कर शिक्षा-विभाग के कार्यालय में गया। शिक्षा-मंत्री थे शैख़ अब्दुल अज़ीज़। वे वहाँ न थे, उन्हें मिलने के लिये अध्यापकों के शिक्षण-केन्द्र में गया।

अगले दिन श्रीनगर जाने के लिए एक मोटर टैक्सी की पर उससे न जा सका। १० अगस्त की रात्रि को ओकाड़ा के श्री जीवनलाल पण्डित से भेंट हुई, वे भी काश्मीर जा रहे थे। वे मेरे साथ टैक्सी में श्रीनगर जाने को तैयार हुए। हमें विदित होगया था कि बटौत के पास मार्ग बन्द है। फिर भी हम ११ को बटौत के लिए चल पड़े। वहाँ पहुँच कर अपना सामान लेकर उस स्थान से दूसरी ओर पहुँचे, जहाँ से आगे मार्ग खुला था। वहाँ से आगे जाने के लिए मोटर का प्रबन्ध भी होगया। अभी उस में बैठ कर हम बीस ही मील गये थे कि पता चला कि समीप ही एक और स्थान से पहाड़ी गिरने से सड़क बन्द हो गयी है अतः मार्ग में ही ठहरना पड़ा। रात भी वहाँ बिताई, खाने पीने का कोई प्रबन्ध तो था नहीं, धन्यवाद उस प्रभु का कि वर्षा न हुई। अगले दिन मध्याह्न के पश्चात् जो पहाड़ी हिस्सा गिरा हुआ था लगभग पैदल चलने के योग्य होगया। हम उसके पार दूसरी ओर चले गये। वहाँ एक फ़ौजी अफ़सर कार लाये थे और जम्मू पहुँचना चाहते थे और हम श्रीनगर

जाने का साधन चाहते थे। उनके साथ हमने यह प्रबन्ध किया कि वे हमारी कार में जम्मू चले जाएँ। हम उनकी कार में उस रात को बानिहाल जा पहुँचे। १३ अगस्त की प्रातः श्रीनगर पहुँचे। वहाँ शिक्षा-सम्मेलन में सम्मिलित होने के साथ ही साथ प्रदर्शनी भी देखी। १६ अगस्त तक प्रदर्शनी रही। वहाँ कालेजों के आचार्य और प्रिंसिपल भी आये हुए थे। उनसे वहाँ की शिक्षा सम्बन्धी अवस्था पर वार्तालाप करने का अवसर हुआ।

अभी लाहौर लौटने के दिन न थे, अतः काश्मीर के जल-वायु का लाभ उठाना ही आवश्यक समझा। पास और दूर के कई स्थानों पर जाकर वहाँ के रमणीय दृश्य देखे। मटन, अनन्तनाग आदि सभी स्थानों पर गया।

५ सितम्बर को श्रीनगर मिशन स्कूल गया। यह स्कूल एक विशेष आदर्श पर चलाया जा रहा था। वहाँ पर विद्यार्थियों के लिए खेलों का विशेष प्रबन्ध था। प्रबन्ध कार्यों में क्रियात्मक ज्ञान प्राप्त करने के लिए विद्यार्थियों को भी यथोचित स्थान दिया जाता था। पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त विद्यार्थियों को अन्य पुस्तकें पढ़ने की ओर भी आकर्षित किया जाता था। इस प्रकार काश्मीर-भ्रमण के उपरान्त मैं ११ सितम्बर को लाहौर लौट आया।

काश्मीर की अन्तिम यात्रा—युद्ध की समाप्ति के पश्चात् देश की सबसे बड़ी माँग स्वराज्य थी और ब्रिटिश-नीति भी इसे स्थगित करना चाहती थी। पाकिस्तान की रूप रेखा की मि० जिन्ना द्वारा पुष्टि कराई जा रही थी। उसमें ब्रिटिश कूटनीति का पूर्णतः हाथ था। उसको सब प्रकार से बढ़ावा दिया जाता था। जिन्ना को प्रत्येक कार्य में सफलता ही दृष्टिगोचर होती थी। यद्यपि ब्रिटिश अधिकारी यह निश्चय कर चुके थे कि भारत को स्वशासनाधिकार दे दिया जायगा चाहे उस में मुसलिम लीग सम्मिलित हो अथवा नहीं। इसी लिए अन्तरिम सरकार में जो २ अगस्त १९४६को स्थापित हुई मुसलिम लीग का कोई सदस्य सम्मिलित

नहीं हुआ। पर कूटनीतिज्ञों को कहाँ चैन था ! १६ अगस्त को प्रत्यक्ष कार्यवाही के नाम से कलकत्ते में भयंकर मार काट हुई। उसका उत्तर कुछ समय बाद बिहार में दिया गया और बिहार का उत्तर सीमा प्रान्त में अल्प संख्यकों के निकालने, आग लगाने, मार काट और बलात्कार करने के रूप में हुआ। इतना होते हुए भी स्वराज्य का सूर्य उदय होने वाला था।

१६४७ में स्वराज्य प्राप्त होने की आशा थी। पाकिस्तान की खून की लाली भी सर्वत्र छिटकती हुई आती थी। सम्भवतः यह मेरी अन्तिम काश्मीर यात्रा थी। धर्मवीर और यशपाल मेरे साथ थे। बड़े पुत्र इन्द्र देव और ओम् प्रकाश सपरिवार पहले काश्मीर पहुँच चुके थे। मैं श्रीनगर १० अगस्त को पहुँचा।

मैंने अपना शिक्षा सम्बन्धी कार्य करते हुए देखा कि श्रीनगर में भी अंग्रेज़ी भाषा शिक्षा प्रणाली बल पकड़ रही है। वहाँ भी अंग्रेज़ी ढंग का एक और शिक्षणालय गत ३-४ वर्ष पूर्व खुल चुका था। वहाँ जाने का अवसर मिला। वहाँ के अध्यापकवर्ग की योग्यता व शिक्षा कार्य प्रशंसनीय थे।

इस शिक्षणालय में जो विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने आते थे उनमें यह बात विशेष रूप से देखी जाती थी कि विद्यार्थी की रुचि किस ओर है। प्रारम्भिक श्रेणियों में मांटैसरी शिक्षा-पद्धति के अनुसार शिक्षा दी जाती थी। इस में बालकों को खेल ही खेल में शिक्षा प्राप्त हो जाती थी। इस विद्यालय में सुशिक्षित माता-पिता ही अपने बालकों को भेजते थे। यहाँ पर सेना के लिए भी एक शिक्षण-केन्द्र खोला गया था। मेरे एक मित्र वहाँ के अध्यक्ष थे। वहाँ जाने पर सैनिक-शिक्षा के सम्बन्ध में उनसे मेरी बात-चीत हुई जिस से मुझे वहाँ का पर्याप्त परिचय मिला।

जब मैं अनन्तनाग गया तो वहाँ के शिक्षणालय देखे। वहाँ दो मुसलिम हाई स्कूल, एक मिशन हाई स्कूल और एक सरकारी मिडिल

स्कूल चल रहे थे। जिस दिन मैं इन स्कूलों में गया तो शिक्षा विभाग के इंसपैक्टर निरीक्षण कर रहे थे। उनसे मेरी भेंट हुई। बात-चीत करते हुए यह ज्ञात हुआ कि यद्यपि छोटे स्थानों पर भी स्कूल खोले जारहे हैं पर विद्यार्थियों की संख्या थोड़ी ही होती है। यह भी बताया गया कि शिक्षा अनिवार्य करने का विषय भी यहाँ विचाराधीन है पर इस में कठिनाई यह है कि अनिवार्य शिक्षा के लिये शिक्षा निःशुल्क हो पर इसके लिए धन की आवश्यकता है जो कि उस समय उपलब्ध न था।

श्रीनगर में प्रताप कालेज और डी. ए. वी. कालेज के प्रिंसीपल महोदयों से मिला। ये मेरे परिचित तो थे ही। उनसे इस विषय पर वार्तालाप हुआ कि वहाँ शिक्षा का स्तर बहुत नीचा है इसे उन्नत करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए और कि शिक्षा-सम्बन्धी कार्यों को अधिक नियमित करने की आवश्यकता है।

२५ अगस्त को हम चश्माशाही गये हुए थे। वहाँ बख्शी सूर्य-प्रकाश एवं न्यू बैंक के अध्यक्ष श्री मुल्क राज कोहली से भेंट हुई। हम यहाँ एक घंटे तक रहे और वहीं पर भोजन किया। भोजन हम साथ ही ले गये थे। हम वहाँ से चलने को तैयार ही थे कि अकस्मात् डा० रियाज़ अली शाह के दर्शन हुए। ये सज्जन लाहौर में फेफड़े सम्बन्धी रोगों के विशेषज्ञ थे। मेरे पुत्र धर्मवीर को एक वर्ष पूर्व जब प्लूरिसी का रोग हुआ था तो उन्होंने उसका उपचार किया था। उन्होंने जब धर्मवीर का स्वास्थ्य उन्नत अवस्था में देखा तो बड़े प्रसन्न हुए और उसे उन्नति करते रहने की प्रेरणा की।

अपने पुत्रों को हारवन लेजा कर वहाँ का दृश्य दिखाया, तब शालामार बाग जाकर शीतल-मंद-सुगन्धित वायु में भ्रमण करने तथा अति रोचक दृश्यों के देखने में कुछ समय लगाया।

— — —

६—श्री नारायणदास-विक्टर हाई स्कूल

श्री नारायणदास-विक्टर हाई स्कूल से मेरा सम्बन्ध १६०६ से है। इससे पहले मैंने मुलतान छावनी के स्कूल में कुछ मास मुख्याध्यापक रूप से कार्य किया था। दिसम्बर में मैं इस स्कूल में जालन्धर छावनी आ गया और १६१६ ई० तक मुख्याध्यापक पद पर रहा।

इस स्कूल की स्थापना १८८६ में हुई थी। तब इसका नाम विक्टर हाई स्कूई रखा गया था। उस समय बर्तानिया के राजकुमार ऐलबर्ट विक्टर के भारत आने के स्मारक स्वरूप वहाँ के कुछ सुशिक्षित व्यक्तियों ने मिलकर इसकी स्थापना की थी क्योंकि जालन्धर में एक ही शिक्षा-केन्द्र था और वह था मिशन स्कूल।

विक्टर हाई स्कूल के संस्थापकों में से मुख्य कार्यकर्त्ता थे ला० नारायणदास, बी० ए०, ऐल० ऐल० बी०, वकील। इनके साथ अन्यों के अतिरिक्त ला० रामजस, ला० देवी दयाल तथा ला० धुमीराम, बी० ए० थे। सब से अन्तिम महोदय कुछ वर्षों तक इस स्कूल के मुख्याध्यापक भी रहे। ला० नारायणदास स्थानीय आर्य समाज के प्रधान थे। इस प्रकार इनके साथ जहाँ हिन्दू-मुसलमान इस संस्था को सफल बनाने में सहायक थे वहाँ उन्हें आर्य समाज के सदस्यों का भी सहयोग प्राप्त था।

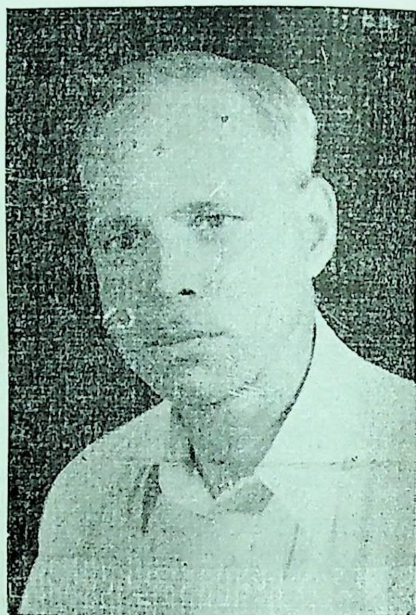
इस स्कूल की सेवा के लिए मुख्याध्यापक के रूप में कई सुयोग्य व्यक्ति समय-समय पर मिलते रहे। इनमें से आचार्य रामदेव तथा पं० ब्रजनाथ, बी० ए०, ऐल० ऐल० बी० के नाम उल्लेखनीय हैं। ये दोनों

व्यक्ति आर्य समाज के उस समय के बड़े कार्यकर्त्ताओं में से थे। इस प्रकार सुयोग्य शिक्षकों की देख-रेख में स्कूल उन्नति करता गया।

१९२१ में मास्टर काशीनाथ बी० ए०, ऐल० ऐल० बी० इसके मुख्याध्यापक रहे। वे कई वर्ष पूर्व द्वाबा हाई स्कूल के और गुरुकुल गुजरांवाला के प्रधानाध्यापक भी रह चुके थे। उनकी सादगी, सरलता, आर्य समाज तथा शिक्षा कार्य में लग्नशीलता सराहनीय थी। उनके पश्चात् पं० जयकृष्ण ने भी दो-तीन वर्ष तक बड़ी लग्न से इसी पद पर कार्य किया।

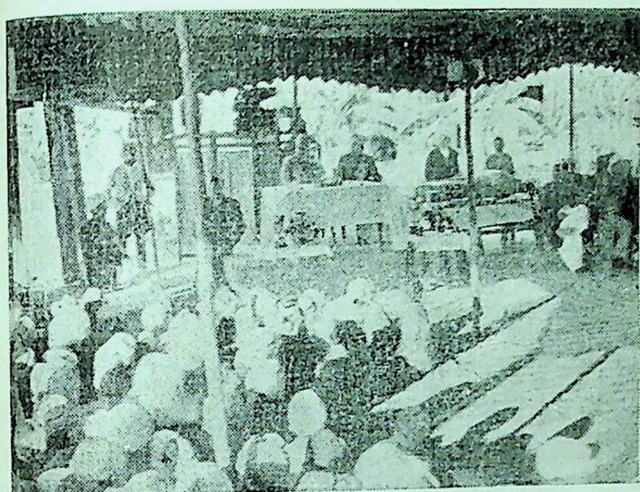
१९२२ में श्री नारायणदास जो उस समय इस संस्था के सर्वेसर्वा थे, परलोक सिधारे। उनके पश्चात् उनके पुत्र श्री विश्वम्भरदयाल को प्रबन्ध-कर्त्ता और मुझे मंत्री निर्वाचित किया गया। तीन-चार वर्ष उपरान्त पं० श्रीराम, बी० ए०, ऐल० ऐल० बी०, वकील प्रबन्धकर्त्ता बने और मैं पूर्ववत् मंत्री का कार्य करता रहा। १९२९ में पं० श्रीराम अफ्रीका चले गये। तब मंत्री के कार्य के अतिरिक्त प्रबन्ध का कार्य भी मुझे ही दिया गया। यह कार्य मैंने १९३७ तक निभाया। मंत्री के रूप में तो मैं अब तक इस संस्था की आर्थिक देख-भाल ही करता था किन्तु अब शिक्षा सम्बन्धी कार्यों की देख-रेख भी मुझे करनी पड़ी। पंजाब आर्य-शिक्षा समिति से इसका सम्बन्ध हो ही चुका था। इसके अनुसार यहाँ धर्म-शिक्षा का भी आंशिक रूप से प्रबन्ध हो गया।

प्रबन्धक के रूप में मुझे अब विशेष ध्यान इसकी ओर लगाना आवश्यक हो गया। विद्यालय में स्थान की कमी के कारण बड़ी कठिनाई आती थी। इस वर्ष इस कमी की पूर्ति के लिए कुछ और कमरों का निर्माण कराया गया। विद्यार्थियों में शिक्षा के साथ-साथ उनके मनोरंजन के साधन भी बढ़ाये गये। १९२६ से यहाँ श्री प्रेमचन्द प्रधानाध्यापक का कार्य कर रहे थे। उन्होंने अपने कार्य को बड़ी कुशलता और योग्यता से चलाना आरम्भ कर दिया। उनका मुझे पूर्ण सहयोग



प्राप्त था । इस प्रकार इस कार्य में बड़ी प्रगति हुई और शनैः शनैः विद्यार्थियों की संख्या भी बढ़ गई ।

१९३७ में जब इस स्कूल की प्रबन्धकारिणी सभा का अधिवेशन था तो इस बार इस संस्था का वार्षिक अधिवेशन तथा पारितोषिक वितरणोत्सव बड़े समारोहपूर्वक मनाये गये । इस उत्सव के सभापति जालन्धर छावनी के उससमय के एग्जेकेटिव आफिसर थे । जिन के द्वारा पारितोषिक वितरण हुआ । नगर के गण्यमान नागरिक भी इस उत्सव में सम्मिलित थे । इसी वर्ष श्री किशोरीलाल प्रबन्धक चुने गये । मैं केवल मन्त्री पद पर कार्य करता रहा ।



पारितोषिक वितरणोत्सव

१९४० ई० के आरम्भ में कुछ स्थानीय व्यक्तियों ने प्रबन्ध में परिवर्तन लाना चाहा। इस कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए उन्होंने अध्यापकों का सहयोग प्राप्त कर लिया। अपनी कार्य-सिद्धि के लिए एक योजना बना ली परन्तु मुझे इस का कोई ज्ञान न था। मैं लाहौर अपने घरेलू कार्यों में संलग्न था। मेरे पुत्र इन्द्रदेव के विवाह का प्रबंध हो रहा था। अन्त में गुजरांवाला निवासी श्री मेला-राम की पुत्री सावित्री से उसकी सगाई हो गई। १ मार्च को विवाह भी वैदिक रीति अनुसार सम्पन्न हुआ। इस के पश्चात् अपने मित्र काशीरामजी के पुत्र धर्मवीर के सम्बन्ध में मैं पत्तोकी चुनियाँ आदि स्थानों पर गया। जून में मैंने अवकाश ले लिया। जुलाई में विक्टर हाई स्कूल का तार मिला कि जालन्धर विक्टर स्कूल के अध्यापकों ने किसी कारणवश स्कूल आना बन्द कर दिया है, और सहानुभूति में विद्यार्थी भी अनुपस्थित हैं। मुझे शीघ्र ही जालन्धर जाना पड़ा। वहाँ पहुँचने पर मुझे ज्ञात हुआ कि कुछ व्यक्तियों ने स्कूल की एक कृत्रिम प्रबन्ध-

समिति बनाकर उसकी रजिष्ट्री करवा ली है। इस का उद्देश्य यह प्रतीत होता था कि इस प्रकार वे स्कूल पर अधिकार कर सकेंगे। स्कूल में गड़बड़ का कारण भी यही था। परन्तु वास्तविक प्रबन्ध-कारिणी के सदस्यों को समय पर सूचना मिल गई और उन्होंने रात को ही आ कर स्कूल पर अधिकार कर लिया और वहीं डेरा डाल दिया। इन में डा० रामनाथ चोपड़ा, श्री सोमदत्त बारी, श्री कृपाराम तथा श्री हरदयालु जी के नाम मुझे इस समय स्मरण आते हैं। जब मैं वहाँ पहुँचा तो हम सब ने यत्न किया कि हड़ताल शीघ्र ही समाप्त हो जाय। पर यह कार्य शनैः शनैः ही हो सका।

मैं १५ जुलाई को पालमपुर गया, क्योंकि उस समय जालन्धर डिविजन के इन्सपेक्टर खां साहब गुलाम रसूल शौक वहीं थे। वे डाक बंगले में ठहरे हुए थे। मैं वहीं उन से मिला और स्कूल की सारी अवस्था विस्तार पूर्वक उन से कह दी। उन से मेरा कई वर्ष पूर्व से परिचय था। उनसे बात-चीत करने में मुझे न कोई संकोच था और न भय। उन्होंने मुझे बताया कि वे धर्मशाला जा रहे हैं, इस अवस्था पर वहीं जाकर सोचेंगे कि क्या करना चाहिए। मैंने कहा कि मैं भी धर्मशाला चलता हूँ, इस समस्या का हल शीघ्र ढूँडना चाहिए। १८ को हम धर्मशाला पहुँचे। वहाँ पर हम ने एक घण्टे से अधिक विचार विनिमय किया। उन के विश्वास दिलाने पर कि वे इस समस्या को समझ गये हैं और इस का न्यायोचित निर्णय करेंगे, मैं वहाँ से लौट कर काँगड़ा आ गया। वहाँ से लाहौर होता हुआ जालंधर पहुँचा। वहीं कुछ दिन व्यतीत किये। कुछ ही दिनों में हड़ताल समाप्त हो गई। विद्यार्थी पर्याप्त संख्या में उपस्थित होने लगे। जुलाई के शेष दिन भी मैंने वहीं काटे।

१९४१ की जन-गणना—भारत में प्रति दशवें वर्ष जन-गणना होती है। आने वाली दशाब्दी के प्रथम वर्ष में २८ फरवरी अथवा प्रथम मार्च इसके लिए निश्चित होती है। १९४१ की जन-गणना भी पूर्व की भाँति

हुई। फिर भी इसमें रहस्य की कुछ ऐसी बातें थीं जिनके कारण मुझे यहाँ कुछ लिखना आवश्यक प्रतीत होता है। भारत में यह समय बड़ा भारी राजनैतिक दाँव-पेंच का था। वे दाँव-पेंच चलाये जा रहे थे मुसलमानों की ओर से। पंजाब में हिन्दू-मुसलमानों की टक्कर सदा से होती चली आई थी, पर हिन्दू भी इसमें पीछे नहीं रहते थे।

कुछ दिन पूर्व २४ फरवरी को शिवरात्रि का पर्व भी आया। लाहौर की आर्य समाजों की ओर से ऋषिबोध उत्सव बड़ी धूम-धाम से मनाया गया। बड़े-बड़े वक्ताओं ने उसमें विद्वतापूर्ण भाषण दिये। जन-गणना के विषय में भी कुछ प्रकाश डाला गया और बताया गया कि मुसलमानों की नीति को किस प्रकार ऋषि ने भाँप लिया था। इससे हमें यह जानने का अवसर मिल गया था कि किस कारण से हमारी संख्या घट रही है।

इस जन-गणना में कितना पक्षपात हुआ और सरकारी कार्यालयों में मुसलमानों की अधिकता होने के कारण हिन्दुओं को बड़ी हानि उठानी पड़ी। इस जन-गणना में मुसलमानों ने अपनी संख्या बहुत बढ़ा-चढ़ा कर बताने की ठान ली। ब्रिटिश कूटनीतिज्ञों ने मि० जिन्ना को शतरंज की गोटी बनाया और पाकिस्तान बनाने की ऊँच-नीच चालें उसके द्वारा चलाई गयीं। इस चाल की सफलता के लिए १९४१ की जन-गणना एक आवश्यक साधन थी। मुसलमान मात्र सरकारी अथवा गैर सरकारी सब पर पाकिस्तानी भूत सवार था। मुसलमान जो भी इस विभाग में थे हिन्दुओं की संख्या घटाने और मुसलमानों की संख्या बढ़ाने के कई साधन प्रयोग में लाने का दुःसाहस कर रहे थे।

जन-गणना के फार्म छपे हुए थे। उनकी कापियाँ की कापियाँ मुसलमानों ने हिन्दुओं के नाम से लेकर अपनी बस्तियों में पहुँचा दी थीं। हिन्दू बस्तियों में तो फार्मों की कापियाँ मिलने में बड़ी कठिनाई हुई। कई बस्तियों में तो कापियाँ पहुँची ही नहीं। मैं जिस बस्ती में था

उसमें तो अन्त तक जन-गणना के फार्म नहीं मिले थे।

मुसलमानों ने फार्मों में कितने ही कृत्रिम नाम भर लिये थे। उनके यहाँ कोई जाँच करने वाले भी नहीं पहुँच सकते थे। उनके घरों में पर्दे के कारण कोई पता नहीं लगा सकता था कि फार्म झूठे भरे गये हैं या सच्चे।

स्थानीय आर्य समाज व सनातन धर्म सभा के कार्यकर्त्ताओं ने अन्त तक फार्मों के लिए प्रयत्न किया पर जब न मिले तो सादे कागजों पर रात्रि भर जाग कर यह कार्य पूर्ण किया। सब ही स्थानों पर प्रयत्न तो किया गया कि हिंदुओं की जन-गणना ठीक रूप में आ जाय फिर भी असुविधावश जन-गणना पूर्णतया सन्तोषजनक न हो सकी हो तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। हाँ प्रतिक्रियावश कहीं-कहीं हिन्दुओं ने भी कुछ स्थानों पर अधिक बताने का यत्न किया हो तो कहा नहीं जा सकता।

———

१०--'भारत छोड़ो' आन्दोलन के दिनों में

१६४२ के आरम्भ में मैं अपने कार्य के सम्बन्ध में भ्रमण के लिए कुछ स्थानों पर गया। ३१ मार्च को मैं संगरूर पहुँचा। वहाँ मैं श्री चेतनानन्द प्रिंसीपल स्टेट कालेज से मिला। ये महानुभाव मेरे लाहौर से ही परिचित थे। लाहौर गवर्नमेएट कालेज में वर्षों पदार्थ विद्या के प्रोफेसर रहे थे। ये आर्यसमाज के प्रसिद्ध नेता राय ठाकुरदत्त धवन के पुत्र हैं। राय ठाकुरदत्त धवन उन व्यक्तियों में से हैं जिन्होंने आर्य समाज के प्रथम संघर्ष को देखा था और आर्य समाज के संगठित धर्म प्रचार का नेतृत्व किया था। उन्होंने उस समय वेद प्रचार सम्बन्धी एक पुस्तक की रचना की थी जिस से आर्यसमाज वर्षों प्रेरणा लेता रहा। श्री चेतना नन्द मुझ से बड़े प्रेम पूर्वक मिले और जहाँ संगरूर राज्य की शिक्षा सम्बन्धी गतिविधियों पर उन से विचार विनिमय हुआ, वहाँ आर्य समाज के प्राचीन इतिहास और आधुनिक अवस्था पर भी वार्तालाप हुई।

जाति-पाति-तोड़क मण्डल—अगले मास मैं लाहौर में था। मैंने पूर्व भाग में जाति-पाति तोड़क-मण्डल का वर्णन किया है। यद्यपि जाति-पाति तोड़क संस्था प्रयत्न कर रही थी कि जन्म की जाति का बन्धन शिथिल किया जाय ताकि सब लोग परस्पर बन्धु भाव से व्यवहार करें, अपना हृदय विशाल बनाकर प्रेम की वृद्धि करें, जिस से मनुष्य मनुष्य से कोई भेद भाव न रखे. एक दूसरे को भाई समझे।

आर्यसमाज सिद्धान्त रूप से इन विचारों का समर्थक था ही अतः मैं इस संस्था के अन्तरंग सदस्य व कभी कभी अधिकारी रूप से भी सेवा कार्य में भाग लेता था। इन दिनों इस संस्था ने अधिक बल के साथ इन विचारों का आन्दोलन किया। एक विशेष सम्मेलन बुलाया

गया, साधारण सभा की गई, अच्छी जनता एकत्र हुई जिस में उपर्युक्त विचार भाषणादि द्वारा जनता के समक्ष प्रकट किये गये। इस आन्दोलन का अच्छा प्रभाव रहा।

कुरुक्षेत्र में—गुरुकुल काँगड़ी के संरक्षण में कुरुक्षेत्र में भी गुरुकुल चल रहा था। आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से मैं निरीक्षण के लिए वहाँ गया। उस दिन ११ मई थी। वहाँ के अधिकारी वर्ग से वार्तालाप की। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को सन्मुख रखते हुए उन की वर्तमान अवस्था के अनुसार सुधारों पर कुछ सुझाव दिये। बालकों को क्रियात्मक रूपसे हस्त-कला, घरेलू कार्य सिखलाने तथा प्राकृतिक विज्ञान पर कुछ विचार दिये। इसके पश्चात् इस मास के अन्त में गुरुकुल काँगड़ी में जाकर वहाँ की प्रारम्भिक श्रेणियों का निरीक्षण किया।

भारत छोड़ो आन्दोलन—

इन दिनों भारत का राजनैतिक वातावरण बड़ी तीव्रता से परिवर्तित हो रहा था। १९३७–३८ में भारत के कई प्रांतों में राज्य शासन-सूत्र देश की लोकप्रिय संस्था कांग्रेस के हाथ में आ चुका था। इसके पश्चात् जब द्वितीय महायुद्ध आरम्भ हुआ तो कांग्रेस-मंत्री-मंडलों ने त्याग-पत्र देकर रचनात्मक कार्यों की ओर ध्यान लगाना आरम्भ कर दिया। मुस्लिम लीग व अन्य सरकार परस्तों की इन दिनों बन आई थी। महात्मा गाँधी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह भी आरम्भ कर दिया था पर वह विशेष प्रभावशाली रूप धारण न कर सका। भारत को भारतीयों की इच्छा के विरुद्ध युद्ध में सम्मिलित कर लिया गया था। कांग्रेस के कर्णधार शासकों की इस वृत्ति से ऊब चुके थे। बंगाल के अकाल ने देश के विचारकों के हृदय में शासकों के प्रति नितांत उपेक्षा व निराशा का वातावरण बना दिया था।

मैं इन दिनों दिल्ली आया हुआ था। दिल्ली विश्वविद्यालय के अधिकारीवर्ग से मिलना था। मैंने समाचार-पत्रों में पढ़ा कि बम्बई में कांग्रेस का अधिवेशन हो रहा है और ८ अगस्त को यह प्रस्ताव

पास हो गया है कि 'अंग्रेज भारत छोड़ दें।'

ब्रिटिश सरकार को यह समाचार पहले ही पता चल गया था। वह पूर्ण रूप से सावधान थी। उसने बम्बई में ही, कांग्रेस के अध्यक्ष मौलाना अब्बुलकलाम आज़ाद के साथ सभी नेताओं को बन्दी बना दिया। महात्मा गाँधी को भी आगाखाँ महल पूना में बन्द कर दिया गया! देश के प्रिय नेताओं को सरकार ने कहाँ-कहाँ भेजा उस समय पता न लग सका। जहाँ-जहाँ भी कांग्रेस के प्रमुख कार्यकर्त्ता थे उनकी सूची पूर्व ही तैयार हो चुकी थी। उन्हें सरकार ने ९ अगस्त को बन्दी बना लिया था। काँग्रेस महासमिति, प्रांतीय समिति, जिला समिति आदि सब पर प्रतिबंध लगा दिया गया। उसकी गति-विधियों को अवैधानिक घोषित कर दिया गया। कांग्रेस की नीति के समर्थकों को भी जेल में डाल दिया गया। इनमें कईआर्य समाज के कार्यकर्त्ता भी थे जिनमें महाशय कृष्ण और उनके दो पुत्र श्री वीरेन्द्र तथा श्री नरेन्द्र के नाम उल्लेखनीय हैं। इन्हें बंदी बना कर शाहपुर जेल में रखा गया। सम्भवतः इसका यह भी कारण था कि इन्होंने अपने दैनिक पत्र प्रताप में इस आन्दोलन का प्रबलता से समर्थन किया था। यह कार्य इतनी शीघ्रता व गुप्त रीति से हुआ कि किसी को पता भी न चला। जनता अपने नेताओं से अकस्मात् पृथक् हो जाने से धैर्य के बाँध तोड़ बैठी। जो कार्य अभी शांति से चल रहा था उसने एक विद्रोह का रूप धारण कर लिया। देश के कई भागों में अराजकता फैल गई। बम्बई, पूना, दिल्ली, पटना, कलकत्ता तथा कई छोटे नगरों में भी भयंकर हत्या काण्ड हुए, बिहार में जनता के सरकार विरोधी कार्य अवर्णनीय थे। सरकार उनके उत्साह को दबाने के लिए अमानुषिक अत्याचारों पर उतर आई। पूना, मध्यभारत आदि क्षेत्रों में तो जनता ने अपनी सत्ता भी स्थापित कर ली।

देश के भिन्न २ भागों में कुछ दिन तक मार्ग बन्द रहे। यातायात रुक गया। सरकार को अपनी सैन्य-शक्ति पर भरोसा था। सेना की

सहायता से इस भारतीय स्वतंत्रता की क्रांति को दबा दिया गया अवश्य पर उसे यह भान हो गया कि यदि उसे अधिक सैन्य-बल की आवश्यकता होती तो उसे असफल हो जाने का भय था। अगस्त के अन्त में कहीं देश में आना-जाना आरम्भ हुआ, मैं भी तभी दिल्ली से लाहौर जा सका।

लाहौर में गर्मी का राज्य था। मैंने शिमले जाने का विचार किया। मैं अम्बाले होते हुए कालका पहुँचा। वहाँ से शिमले के लिए चल पड़ा। मार्ग में रेल-मार्ग एक दो सुरंगों में पत्थर गिर जाने से बंद था। ठीक होने पर शिमला पहुँचा। वहाँ प्रातः सायं नियमपूर्वक भ्रमण करता रहा जिससे कुछ दिनों में स्वास्थ्य को बहुत कुछ लाभ हुआ।

शिमले के पश्चात् काश्मीर भी गया। वहाँ से लौटने पर लाहौर में मुझे कुछ शारीरिक कष्ट हो गया। पाचन शक्ति कम हो गई। भूख न लगती थी, मुँह में छाले पड़ गये थे। डाक्टर ने विटेमिन सी० की न्यूनता बताई। मैंने इसका प्रयोग करना आरम्भ किया, इस बीच में श्री कैल्सन फोर्ड लाहौर आये। वे दो सप्ताह ठहरे पर मैं अस्वस्थ होने के कारण उनको अधिक सहयोग न दे सका। कुछ दिन बाद जब कुछ आराम हुआ तो उनके साथ मैं दिल्ली आया। कैलसन फोर्ड दिल्ली की सैर करना चाहते थे। हम ने कुतुबमीनार, संसद-भवन तथा इण्डियागेट आदि स्थान देखे।

यहाँ से लाहौर लौटने पर मुझे और भी अधिक कष्ट होने लगा। दिसम्बर में तो ज्वर भी आने लगा।

जनवरी १९४३ आई। प्रथम जनवरी के प्रातः काल का दृश्य बड़ा सुन्दर था, आकाश में बादल का नाम भी न था। धूप निकली हुई थी। पर मध्यान्य के पश्चात् ही एक परिवर्तन दिखाई दिया। वर्षा बड़े वेग से होनी आरम्भ हो गई। ४ जनवरी तक सूर्य के दर्शन न हुए। अगले दिन जब सूर्य के दर्शन हुए तब लोगों को कुछ अश्वासन मिला। मैं भी तभी अपने कार्य के निमित्त कुछ स्थानों पर गया। ११

जनवरी को मैं जालन्धर होता हुआ होशियारपुर गया। वहाँ के डी० ए० वी० कालेज तथा गवर्नमेंट कालेज के प्रिंसिपल महोदयों से मिला। मैंने सुन रखा था कि वहाँ एक धनी मानी व्यक्ति द्वारा शीश महल नामक एक भवन बना हुआ था।

शीश महल—इसबार मैंने भी इस सुन्दर विशाल और ऐतिहासिक भव्य भवन को देखा। इस महल के अधिकांश भाग को शीशों से सजाया गया है। इस में भिन्न २ देशों के लोगों की मूर्तियाँ हैं। १९११ के दिल्ली दरबार का दृश्य इस में प्रदर्शित किया गया है। द्वार पर राजमहलों के समान ऊँची २ मूर्तियाँ खड़ी हैं। उन में उन के ऐश्वर्य और मद की झांकी है। यूरोपियन ढंग पर राज घरानों के राजभवन केदृश्य व उन के हावभाव, विलासमय रूप चित्रों व मूर्तियों से प्रकट किये गये हैं।

अंग्रेजों के ढंग के न्यायालय उन के क्लब एवं चित्रों के अतिरिक्त भारत के राजाओं और महाराजाओं के ऐश्वर्यमय जीवन के बाह्य चित्र व मूर्तियाँ वहाँ एक अलौकिक वातावरण पैदा करती हैं। भारत के अन्धकारमय व दास भाव भरे तथा अपने ही में मस्त रहने वाले यहाँ के ये दृश्य एक ऐतिहासिक वातावरण पैदाकर देते हैं। दिल्ली दरबार का रूप दर्शक को आकर्षित कर लेता है।

इस महल के निर्माण का एक कारण भी बताया जाता है। कहते हैं कि इसे एक जैनी सेठ ने बनवाया था। वह एक अंग्रेज उच्च अधिकारी को अपने यहाँ भोज देना चाहता था। इस भाव को अपने एक साथी के सामने प्रकट करने पर उसकी बड़ी हंसी हुई थी। उस के साथी ने व्यंग करते हुए कहा कि 'अरे तेरे पास ऐसा कौन सा शीश महल है जहाँ पर तू उन को भोजन करवायेगा!" यह बात उसे चुभ गई. उस के कोई सन्तान तो थी ही नहीं, धन पर्याप्त था। अपने साथी का व्यंग भी उसे चुभ गया था। इन सब भावनाओं के मिश्रण से यह शीश महल तैयार हुआ। उस ने अंग्रेज अधिकारी

को बुला कर अपने इच्छानुसार उस का स्वागत व आतिथ्य किया। अपने साथी के व्यंग का इस प्रकार प्रतिकार किया।

वैशाखी तक मैं बाहर भ्रमण करता रहा। वैशाखी का पर्व पूर्व वर्षों की भाँति रावी तट पर मनाया गया था। इसके पश्चात् मुझे जिगर में कुछ पीड़ा हो गई। मैंने अपने कार्य से अवकाश ले लिया। विचार था कि ग्रीष्म ऋतु में मैं पर्वतों पर भ्रमण करने जाऊँगा पर ऐसा न कर सका।

प्रो० शिवदयालु जी का निधन—प्रो० शिव दयालु जी, ऐम० ए० पिछले कुछ दिनों से रुग्ण थे। प्रथम अगस्त को इस संसार को छोड़ कर चल बसे। उन की मृत्यु से मुझे बड़ा दुःख हुआ। वे लाहौर वच्छोवाली आर्य समाज के वर्षों प्रधान रह चुके थे और मृत्यु से पूर्व आर्य-शिक्षा समिति के प्रधान थे। इस संस्था में हम दोनोंने एक साथ कई वर्ष कार्य किया था। उन की उदारता तथा उनका उत्साह दोनों ही अनुकरणीय थे। वे प्रायः सभी शुभ कार्यों विशेषतया सामाजिक कार्यों में आगे रहते थे। उनके अमूल्य परामर्श भी समय २ पर मुझे प्राप्त होते रहते थे। शिक्षा कार्य में मुझे उनका पूर्ण सहयोग प्राप्त था।

वे उन पुराने कार्यकर्त्ताओं में से थे जिन्होंने आर्य-समाज के उस युग को देखा था जिसे हम उसका स्वर्ण युग कह सकते हैं। वे वृद्धावस्था में भी नवयुवकों के समान कार्य करते थे। उनकी मृत्यु से आर्य समाज को गहरी क्षति हुई। उनकी मृत्यु के उपलक्ष में आर्य समाज वच्छोवाली की ओर से एक शोक सभा हुई। उसमें मैंने भी उनके प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की।

अपने पुराने साथी अब एक एक कर के जा रहे हैं इसका मन पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। जीवन मृत्यु की उलझन प्रत्येक को विचार शील बना देती है। मृत्यु का विचार जहाँ जीवन पर एक

गम्भीर प्रभाव डाल देता है, वहाँ मनुष्य को सावधान भी बनाता है।

श्री सावन मलजी मदान—डा० रामनाथ मदान के पिता तथा मेरे फूफा श्री सावनमल जी मदान स्यालकोट के निवासी थे। बाल्यपन से ही उनका स्नेहमय हाथ मेरे पर रहा था। वे सदा मुझसे प्यार करते आये थे। मेरे मन में भी उन के सौम्य स्वभाव का सदा आदर रहा है।

वे अपने शेष जीवन में लाहौर अपने पुत्र डा० रामनाथ मदान के साथ ही रहते रहे। लाहौर रामगली में मेरा घर भी उन के निकट ही था। वे इसी लिए हमारे यहाँ भी आते जाते रहते थे। अपने अन्तिम दिनों में उन्हें भूख का रोग सा लग गया था। इस भूख के विषय में वे प्रायः अपने सम्बन्धियों से कह देते थे। जब मुझे पता चला तो मैं भी इस ओर ध्यान देने लगा। मैं उन्हें समय समय पर अपने यहाँ बुला लेता था। किन्तु यह रोग बढ़ता ही गया, इस में कुछ सुधार न हुआ।

कुछ दिनों पीछे उन्हें अधिक खाने पीने के फल स्वरूप ऐसा रोग हुआ कि वे अपना मल-मूत्र भी चारपाई पर ही त्यागने लगे। कभी कभी उनको होश भी न रहता था। पाँच अगस्त को उनकी अवस्था शोचनीय हो गई। शौच के साथ रक्त भी आने लगा और अगले दिन उन्होंने अपना भौतिक शरीर छोड़ दिया।

———

११—दिल्ली सायंस कांग्रेस

दिल्ली सायंस-काँग्रेस का अधिवेशन तो १९४४ के आरम्भ में नियत था। उस से पूर्व कुछ समय और कार्यों में व्यतीत किया।

पुत्री का विवाह:—मेरी पुत्री सुशीला अब विवाह के योग्य हो गई थी। उसके लिए हम वर खोज रहे थे। रामसुखदास कालेज फीरोजपुर के प्रिंसिपल श्री फकीरचन्द्र अरोड़ा के भाई श्री हंसराज इस समय भारत बैंक की फीरोजपुर शाखा में कार्य कर रहे थे। सुशीला की सगाई उन से हुई।

१८ अक्तूबर १९४३ को विवाह-तिथि निश्चित हुई। इष्ट मित्र सम्बंधी आदि आने लगे। मैं अगस्त के अन्त में एक सप्ताह के लिए मरी गया। इस से अधिक मैं वहाँ न ठहरा क्योंकि विवाह के कार्यों की ओर ध्यान देना आवश्यक था।

विवाह की तैयारियाँ हो गईं। बारात फीरोजपुर से १७ अक्तूबर क प्रातः लाहौर आ गई। १८ को प्रातः श्री आत्मानन्द जी विद्यालंकार ने वैदिक रीत्यनुसार विवाह सम्पन्न कराया। इसी दिन सुशीला फीरोजपुर चली गई।

इस के पश्चात् दीपावली का पर्व आ रहा था। ऋषि निर्वाणोत्सव की तैयारियाँ हो रही थीं। लाहौर की समस्त आर्य-समाजों की ओर से २८ अक्तूबर को गुरुदत्त भवन में प्रातः काल यह उत्सव मनाया गया। उस के पश्चात् अगले मास ही लाहौर आर्य समाज का वार्षिकोत्सव हुआ। दिसम्बर में आर्य शिक्षा-समिति के लिए कुछ समय निकाला। श्री जयदेव विद्यालंकार मेरे साथ थे। हमने पश्चिमी पंजाब के कुछ जिलों में भ्रमण किया। मुजफ्फरगढ़, डेरा गाजीखाँ, डेरा इस्माइल खाँ आदि कई स्थानों की आर्य पुत्री पाठशालाओं व

स्कूलों का निरीक्षण किया। हम जहाँ जहाँ भी जाते वहाँ के आर्य भाइयों से मिलते। वहाँ की आर्य समाजों और अन्य संस्थाओं के विषय में पूछ ताछ करते। यहाँ के आर्य भाइयों की सरलता और श्रद्धालु स्वभाव को देख कर हमें बड़ी प्रसन्नता होती थी।

इस प्रकार आर्य समाज में कार्य करते हुए जहाँ बड़े श्रद्धालु और सरल व्यक्तियों से मेल होने से प्रसन्नता होती वहाँ कभी कभी बड़े विचित्र और कटु अनुभव उत्साह भग करते थे। यहाँ पर ऐसे ही एक अनुभव का वर्णन करना अनुचित न होगा।

मेरे एक मित्र आर्य शिक्षा समिति के संगठन कार्य की बड़ी प्रशंसा करते थे और उस के उद्देश्य की पूर्ति में सहयोग देने को उत्सुक प्रतीत होते थे। उन से जब समिति की कुछ आर्थिक सहायता के लिए कहा गया तो उन्होंने झट एक निश्चित राशि देनी स्वीकार कर ली। वर्ष में कई बार माँगने पर भी उन्होंने वह राशि न दी और मुझे कहा कि मैं अपने पास से दे दूँ और वे मुझे चेक भेज देंगे। अगले वर्ष भी जब इसी उद्देश्य से उन के पास गये तो उन्होंने कहा कि बड़े हर्ष से उतना ही दान उन के नाम से लिख दिया जाय जितना कि गत वर्ष लिखा था। वे चेक द्वारा शीघ्र ही दोनों वर्षों की राशि भेज देंगे। और आग्रह किया कि इस समय अपने पास से ही मैं जमा करादूँ। उन के अश्वासन पर दूसरे वर्ष की दान राशि भी मैंने जमा करा दी। पर फिर भी उन्होंने चेक न भेजा।

तीसरे वर्ष जब हम उन के पास पहुँचे तो उन्होंने पुनः इसी प्रकार कहा। उस पर मुझे उन से कहना पड़ा कि जब तक गत दो वर्षों की धन राशि प्राप्त नहीं होती तब तक आगे के लिए आप से वचन लेना व्यर्थ है। इस के पश्चात् यह बात आगे न बढ़ी।

सायंस-काँग्रेस का अधिवेशन—१ जनवरी १९४४ को दिल्ली में भारतीय सायंस काँग्रेस का एक बृहद अधिवेशन होने वाला था। इसलिए मैं दो तीन दिन पूर्व ही अपनी धर्मपत्नी तथा पुत्र ओंप्रकाश

के साथ दिल्ली आ गया। यहाँ आकर पता चला कि अधिवेशन की तैयारी पूरी नहीं हो सकी थी अतः इस का उद्घाटन ३ जनवरी को होगा।

इस अधिवेशन में विज्ञान प्रदर्शनी का भी प्रबन्ध किया गया था। मैं भी उद्घाटन के साथ साथ प्रदर्शनी में सम्मिलित हुआ। मैं इस समय तक सायँस काँग्रेस का सदस्य बन चुका था।

दिल्ली विश्वविद्यालय के समीप सेंट स्टीफन्ज कालेज में ३ जनवरी को उस समय के वायसराय लार्ड वेवल ने भारतीय सायंस काँग्रेस का उद्घाटन किया। उन्होंने अपने भाषण में कहा—"मैं तो विज्ञान के विषय में कुछ नहीं जानता परन्तु ऐसा हो सकता है कि निमंत्रण कर्ताओं को यह ज्ञान हो कि मेरे बाबा पदार्थ विज्ञान के पण्डित थे और उनका पोता होने के नाते मुझे इस योग्य समझा गया हो।"

देश के सभी प्रान्तों के अपने अपने विषयों के विशेषज्ञ यहाँ एकत्र हुए थे। उनके भाषण हुए तथा नियत सीमा के अन्दर वाद-विवाद भी होता रहा। तीन चार दिनतक यह सम्मेलन चला। विज्ञान की भिन्न भिन्न शाखाओं के सम्बन्ध में पृथक् पृथक् सम्मेलन होते रहे।

विज्ञान प्रदर्शनी—इस प्रदर्शनी में सब प्रकार के विज्ञान सम्बंधी ग्रन्थ प्रदर्शित किये गये थे। इस के अतिरिक्त संसार के प्रसिद्ध पुस्तक प्रकाशकों ने भी अपनी पुस्तकें शिक्षकों तथा अन्य दर्शकों के देखने के लिए वहाँ भेज रखी थीं। विज्ञान सम्बन्धी कई प्रकार के यंत्र आदि भी वहाँ प्रदर्शित किये गये थे। जिससे दर्शकोंने पर्याप्त लाभ उठाया। आठ जनवरी तक यह अधिवेशन रहा। इस के साथ ही प्रदर्शनी भी समाप्त हो गई और ६ को हम लाहौर लौट गये।

विवाह सम्बन्धी—मेरे पुत्र ओंप्रकाश की आयु अब इस योग्य थी कि उसके विवाह सम्बन्ध की ओर ध्यान दिया जाय। उसके सम्बन्ध के लिए इधर उधर बातचीत चलनी आरम्भ हो गई थी। पेशावर से भी इस विषय में एक सन्देश आया था। पुत्री सुशीला

भी इस अवसर पर इसी लिए आई थी। मेरी धर्मपत्नी और सुशीला इस सम्बन्ध में आवश्यक बातें जानना चाहती थीं। मैं जालन्धर गया हुआ था। ओंप्रकाश ने अपनी माता और बहन को पेशावर जाने वाली गाड़ी में बैठा दिया। मैं भी उसी गाड़ी से जालन्धर से आया था पर वे दूसरे डब्बे में बैठ चुकी थीं।। ओंप्रकाश ने मुझे बता दिया कि उसकी माता और बहन दूसरे डिब्बे में हैं। उस समय मैंने अपने डिब्बे से उतरना उचित न समझा और उसी में सोगया। प्रात: उठकर रावलपिंडी स्टेशन पर मैं उन्हें देखने गया। हम दोपहर से पूर्व पेशावर जा पहुँचे और वहाँ एक होटल में ठहरे।

श्री कर्मचन्द्र क्वात्रा जिनकी पुत्री से सम्बन्ध के विषय में वार्तालाप चल रही थी हमारे पास होटल में आये। हमें वे घर ले जाने के लिए आग्रह करने लगे। अगले दिन वे अपनी कार भी ले आये, हम उनके ग्रह पर चले गये और वहाँ दो दिन ठहरे। हमें यह सम्बन्ध उचित प्रतीत हुआ। जब उन्होंने इस सम्बन्ध को स्वीकार करने के लिए कहा तो हम उनसे सहमत हो गये।

आर्य कन्या पाठशाला बच्छोवाली—मैं लाहौर में आर्य कन्या हाई स्कूल बच्छोवाली का आरम्भसे अध्यक्ष का कार्य कर रहा था। इस समय प्रबन्ध सम्बन्धी कई प्रश्न यहाँ उपस्थित थे। तदर्थ मैं उक्त विद्यालय में गया। प्रथम तो शिक्षा विषयक प्रगति की जाँच करने के लिए मैंने निरीक्षण किया। प्रबन्ध सम्बन्धी कार्यों की उन्नति के लिए कुछ परामर्श दिये। मैं लाहौर की अन्य शिक्षण संस्थाओं में भी गया। सभी संस्थाओं में प्रबन्ध सम्बन्धी कई समस्याएँ उपस्थित थीं। विशेष रूप से कन्या पाठशालाओं के कार्यों में कई बाधा थीं और असुविधाएँ बढ़ती जा रही थीं। परस्पर विचार विनिमय के बाद यही निश्चय हुआ कि सभी कन्या पाठशालाएँ एक दूसरे को पूर्ण सहयोग दें ताकि जहाँ सामान्य कार्यों में परस्पर सहायता मिल सके वहाँ सरकारी शिक्षा विभाग से भी सफलता पूर्वक विवादास्पद विषयों

पर वार्तालाप की जा सके। यद्यपि यह क्रम वहाँ कुछ चली तो अवश्य परन्तु इस में पर्याप्त सफलता प्राप्त न हो सकी।

अब ऋतु सुहावनी आ गई थी। इस लिए मैं भी आवश्यक कार्यों के लिए रावलपिंडी, हरीपुर हजारा, ऐबटाबाद आदि स्थानों पर गया। रावलपिंडी में डी० ए० वी० कालेज तथा गार्डन कालेज के कई शिक्षकों से मिलने का अवसर हुआ। इन में प्रो० दौलतराम और प्रो० गूहा के नाम मुझे स्मरण हैं। उनसे भारतीय सायंस काँग्रेस और उसके कार्यक्रम तथा उपयोगिता पर बात चीत चली। बात यह थी कि वैज्ञानिक लोग विज्ञान सम्बन्धी कार्यों में निःसन्देह अधिक से अधिक समय लगा कर खोज करते हैं। पर साधारण लोग उन के खोज सम्बन्धी ज्ञान व पदार्थों के उपयोग लेने में असमर्थ रहते हैं। इस कारण जनता की विज्ञान की ओर रुचि न बढ़ती थी। विज्ञान केवल विशेषज्ञों के ही ज्ञान का विषय बना हुआ था अतः हमने समझा कि अच्छा हो कि जहाँ वैज्ञानिक विज्ञान सम्बन्धी खोजों में अधिक से अधिक समय लगावें वहाँ इसे सर्व साधारण के लिए उपयोगी बना कर उनकी इस विषय में रुचि आकर्षित करके उनका सहयोग प्राप्त करें।

पेशावर के शिक्षा विभाग के अधिकारियों के यह प्रश्न विचाराधीन था कि स्कूलों में पढ़ाने की पुस्तकें, पुस्तक-प्रकाशकों द्वारा छपती रहे या शिक्षा विभाग इनका स्वयं प्रकाशन करे। मैंने पेशावर जाकर डायरेक्टर खान साहब शाह आलम से मिलना चाहा, ये मेरे गत कई वर्षों से परिचित थे। उनके सहायक कार्यकर्ता मेरे एक मित्र श्री आनन्द प्रकाश जी ने शीघ्र ही उनसे मिलने की व्यवस्था कर दी। मैंने डायरेक्टर महोदय से मिल कर उन्हें सुझाव दिया कि यदि शिक्षा विभाग स्वयं प्रकाशन कार्य अपने हाथ में लेले तो इस प्रकार उत्तमकोटि की पुस्तकें न छप सकेंगी क्यों कि प्रथम तो इस कार्य के संचालन के लिए विशेष योग्यता और अनुभव की आवश्य-

कता है जिसे प्राप्त करने के लिए पर्याप्त समय चाहिए। दूसरे जब तक किसी व्यापार कार्य में निजू लाभ की आशा न हो वहाँ उससे इस परिश्रम और ध्यान से कार्य करने की आशा नहीं हो सकती जिसकी इसमें बड़ी आवश्यक्ता होती है। तीसरे स्कूलों के शिक्षक उन पुस्तकों पर निष्पक्ष समालोचना न कर सकेंगे। पुस्तकें कई प्रकार से दोषयुक्त रह जायेंगी। उन्होंने इन सुझाओं पर विचार करने का वचन दिया।

आर्य शिक्षणालय—कुछ समय से आर्य शिक्षणालयों में यह कठिनाई अनुभव हो रही थी कि जो स्कूल नये खुलते हैं उन्हें शीघ्र ही सरकारी स्वीकृति नहीं मिलती। एक कठिनाई यह भी आती थी कि उनके इस प्रकार स्वीकृत न होने से यूनिवर्सिटी की परीक्षाओं के लिए प्रवेश पत्रों की स्वीकृति में बाधा पड़ती थी। समिति के पास कुछ ऐसी संस्थाओं की ओर से इस वर्ष भेजे गये प्रवेश पत्रों के सम्बन्ध में समाचार मिले, मैं यूनिवर्सिटी के रेजिस्ट्रार महोदय से मिला। सारी स्थिति उनके सन्मुख रखी। उन्होंने इस पर मुझे आश्वासन दिया कि यह कार्य यथा समय हो जायेगा। इसी प्रकार शिक्षा-विभाग तथा यूनिवर्सिटी की ओर से कई प्रकार की असुविधाएँ आर्य स्कूलों को होती थीं। इन पर तथा शिक्षा सम्बन्धी अन्य समस्याओं पर विचार करने के लिए पंजाब आर्य-शिक्षा समिति की ओर से एक अधिवेशन आर्य प्रतिनिधि सभा के वार्षिक अधिवेशन पर गुरुदत्त-भवन लाहौर में बुलाया गया। मैंने भी समिति का मंत्री होते हुए इस में भाग लिया।

ग्रीष्म ऋतु में काश्मीर आदि स्थानों के भ्रमण के पश्चात् मैं मुलतान गया। मुलतान में गवर्नमेंट स्कूल के मुख्याध्यापक मोलवी जमालुद्दीन से मिला। मेरा इन से गत ३० वर्षों से परिचय था। १६३८ में जब मैं काबुल भ्रमण के लिए गया था तो ये अफगानिस्तान के शिक्षा अध्यक्ष थे। वहाँ से ये कार्य छोड़ कर अपने स्थान पर यहीं आ गये थे। इन से एक घण्टे तक काबुल तथा यहाँ की शिक्षा सम्बन्धी

कार्यों की तुलना करते हुए विचार-विनिमय किया। गवर्नमेंट इमर्सन कालेज में पदार्थ विज्ञान के प्रोफेसर थे श्री सदानन्द जी। ये मेरे पुराने सहपाठी थे, आर्य समाज के प्रसिद्ध नेता स्वर्गीय पं० गुरुदत्त जी के पुत्र थे। ४० वर्ष पूर्व डी० ए० वी० कालेज लाहौर में मेरे साथ ही शिक्षा पा चुके थे। उन से प्रेम पूर्वक कुछ समय तक वार्तालाप हुई।

लाहौर लौट कर इस बार एक दिन सनातन-धर्म हाई-स्कूल के प्रधानाध्यापक से मिला। बात चीत में प्राईवेट स्कूलों के प्रबन्ध में जो कठिनाइयाँ आती थीं उन पर विचार-विनिमय हुआ और हम दोनों इस बात पर सहमत थे कि आर्य समाज और सनातन धर्म के स्कूलों का प्रबन्ध विषयक कार्यों में और दूसरी समान समस्याओं का हल करने के लिए परस्पर सहयोग से लाभ हो सकेगा।

———

१२—महायुद्ध की समाप्ति पर

१९४५ संसार के इतिहास में एक विशेष महत्वपूर्ण वर्ष था। दूसरे युद्ध की घटनाएँ बड़ी शीघ्रता से बदल रही थीं। स्थान २ पर जर्मन और जापानियों को मुंह की खानी पड़ रही थी। कई स्थानों पर हिटलर की सेना के भागने की परिस्थिति बन चुकी थी। मैं तो साधरणतया अपने कार्य में संलग्न था। इन्हीं दिनों कार्यवश मुझे मुस्लिम हाई स्कूल लाहौर में जाने का अवसर हुआ। जनवरी का मास था। स्कूलों में पढ़ाई बड़ी लग्न से हो रही थी। यह स्कूल मिर्ज़ा गुलाम अहमद कादयानी की लाहौर की पार्टी के अधीन चल रहा था। इस संस्था में योग्य तथा उच्च कोटि के अध्यापक थे। उनका प्रयत्न था कि स्कूल शिक्षा की दौड़ में अन्य स्कूलों से पीछे न रहे, मैं वहाँ के प्रधान अध्यापक तथा कुछ शिक्षकों से मिला। उनसे वार्तालाप हुआ। वे मेरे इस विचार से पूर्णतया सहमत थे कि साधारण शिक्षा तभी उन्नत हो सकती है जबकि बच्चों की धार्मिक शिक्षा का भली-भाँति प्रबंध किया जाय। धार्मिक शिक्षा विद्यार्थियों के आचरण सुधारने में बड़ी सहायक सिद्ध होती है अतः यह अनिवार्य होनी चाहिए।

गुजराँवाले में भी श्री गोविन्द राम के प्रबंध में गुरुकुल हाई स्कूल चल रहा था। यहाँ धार्मिक शिक्षा को मुख्य स्थान प्राप्त था। इस संस्था का अच्छा विशाल भवन बन चुका था। संस्था चलाने के लिए उन्हें धन दान द्वारा एकत्र करना पड़ता था। वे इस प्रयत्न में थे कि आय का कोई अन्य प्रबन्ध कर दिया जाय जिससे दान माँगने की आवश्यकता न रहे और कार्य भी सुचारु रूपेण चलता रहे। बसन्त पञ्चमी से पूर्व जब मैं गुजराँवाला गया तो उनसे इस विषय पर बात-चीत हुई। मुझे इस संस्था के सम्बन्ध में यह त्रुटि खटकती थी कि शिक्षा पर

जितना धन व्यय होना चाहिए उतना नहीं हो रहा। इसे मैंने उनके सन्मुख प्रकट भी कर दिया।

इसके बाद मुझे अमृतसर, उकाड़ा, लायलपुर और होशियारपुर आदि स्थानों का भ्रमण करते हुए कई पुराने परिचित शिक्षकवर्ग से मिलने का अवसर हुआ। श्री बलवन्त सिंह आनन्द लायलपुर में खालसा कालेज के प्रिंसिपल थे। कुछ वर्ष पूर्व इन से मेरा परिचय सैंट्रल ट्रेनिंग कालेज लाहौर में हुआ था। आर्य कन्या-हाई स्कूल के प्रधान थे श्री रामनारायण वर्माणी। पंजाब आर्य-शिक्षा-समिति के मंत्री के नाते उन्होंने मुझे संस्था के निरीक्षणार्थ आमन्त्रित किया हुआ था। मैंने सभी श्रेणियों की शिक्षा-सम्बन्धी विषयों विशेष-कर धार्मिक शिक्षा का निरीक्षण किया।

होशियारपुर डी. ए. वी. कालेज के प्रिंसिपल श्री रामदेव से मेरा गत ३० वर्षों से परिचय था। मैं विक्टर हाई स्कूल में प्रधान अध्यापक था और वे होशियारपुर डी० ए० वी० हाई-स्कूल में काम करते थे। मैं कभी कभी उनके पास ठहरा भी करता था, इस बार भी उन्हीं के पास ठहरा। उनसे होशियारपुर ज़िला में आर्य-समाज की ओर से जो शिक्षा का कार्य हो रहा था उस पर विचार-विनिमय किया।

यहाँ गवर्नमैंट कालेज के उस समय के प्रिंसिपल थे श्री श्रीकृष्ण कपूर। इनसे मेरा परिचय श्री बिश्वम्भर दयाल द्वारा लगभग ३० वर्ष पूर्व हुआ था जब कि वे गवर्नमैंट कालेज में शिक्षा पाते थे। हमारी शिक्षा-प्रणाली के सम्बन्ध में बात-चीत होती रही। इस अवसर पर प्राचीन स्मृतियाँ भी जग पड़ीं।

मार्च के अन्त में लाहौर से २५० मील पर स्थित मीयाँवाली गया जो इस ज़िले का मुख्य नगर है। यहाँ ब्रह्म-समाज की ओर से राजा राममोहनराय हाई-स्कूल चल रहा था। राजा राममोहन-राय ब्रह्म-समाज के प्रवर्तक थे। देश के तत्कालीन महान् सुधारकों

में इनकी गणना होती है। पंजाब आदि प्रान्तों में जैसे आर्य समाज ने शिक्षा-सम्बन्धी कार्य किये हैं उसी प्रकार बंगाल में शिक्षा-सम्बन्धी सुधार का श्रेय ब्रह्मसमाज को है। आर्य-समाज तो देशव्यापी संस्था बन गई है पर ब्रह्म-समाज का प्रचार केवल कुछ शिक्षित वर्ग तक ही सीमित रहा। पंजाब आदि प्रान्तों में तो कहीं-कहीं इस की ओर से संस्थाएँ चल रही हैं। यह स्कूल भी उस प्रकार का चिह्नमात्र था।

ब्रह्मसमाज का प्रचार देशभर में क्यों न फैल सका? इसका उत्तर यही हो सकता है कि ब्रह्मसमाज के सिद्धान्त ही इसके प्रचार में बाधक बने। ब्रह्म-समाज में हिन्दू मुसलमान और ईसाई अपनी पृथक् पृथक् सत्ता के साथ सम्मिलित होते थे। किसी विशेष सिद्धान्त को मानने की कट्टरता उन में नहीं थी। इस समाज पर यथा राजा तथा प्रजा के अनुसार पश्चिमी सभ्यता का सब से अधिक प्रभाव पड़ा। ईसाई मत की ओर अधिक ध्यान देने के कारण भी सर्वसाधारण का ध्यान अपनी ओर न खींच सके।

उक्त स्कूल के प्रधानाध्यापक थे श्री ईश्वरदास खेड़ा। वे बड़े सहृदय और उदार व्यक्ति थे। उन से ब्रह्म-समाज के शिक्षा-सम्बन्धी कार्य पर बात चीत हुई। वहाँ एक गवर्नमैंट कन्या हाई स्कूल भी था। उस की मुख्याध्यापिका उस समय कुमारी जुबेदा थीं। मैंने जब उनके पास अपना परिचय-पत्र भेजा तो उन्होंने उत्तर में कहा कि वे पुरुषों से नहीं मिलतीं, क्योंकि वे पर्दा रखती हैं। मेरे पुनः कहला भेजने पर उन्होंने मुझे अपने कार्यालय में बुला लिया और न केवल यह कि उन्होंने मेरा यथोचित सत्कार किया अपितु उन्होंने पर्दा रखना उचित न समझा और मुझ से पुत्रीवत् शिक्षा सम्बन्धी वार्तालाप की।

कई स्थानों के भ्रमण करने के पश्चात् मैं मार्च में लाहौर लौट गया। यह ज्ञात होने पर कि लाहौर माडल स्कूल के साथ प्रारम्भिक शिक्षा के लिए एक नये ढंग का विद्यालय खुला है मैं उसे देखने

के लिए गया। मैं वहाँ की मुख्याध्यापिका से मिला और पाठविधि आदि का परिचय प्राप्त किया। मैं अपने शिक्षा सम्बन्धी अनुभव के आधार पर कह सकता हूँ कि उस समय लोगों में अंग्रेज़ी आरम्भ से सिखाने की इच्छा बड़े वेग से बढ़ रही थी और माता-पिता अपनी सफलता इसी में समझते थे कि उनके पुत्र पुत्रियों में अंग्रेज़ी शिक्षा के साथ पाश्चात्य सभ्यता का भी समावेश हो। यह विद्यालय भी सरकार ने उनकी इच्छा पूर्ति के लिए खोला था। यह कहने में भी मुझे संकोच नहीं कि इस प्रवृति का इतना घातक प्रभाव हुआ कि अब स्वराज्य के पश्चात् राष्ट्र भाषा हिन्दी स्वीकार होने पर भी हिन्दी का प्रयोग एक आश्चर्य सा लगता है। कई स्थानों में इसके शब्दों को समझाने के लिए अंग्रेज़ी का ज्ञान होना आवश्यक प्रतीत होता है।

गर्मी की ऋतु आ गई। ऋतु परिवर्तन से मैं कुछ दिन अस्वस्थ रहा। द्ध के कारण महँगाई बढ़ रही थी। युद्ध की भयंकरता भी परमाणु-बम आदि शस्त्रास्त्रों के प्रयोग के कारण बढ़ रही थी। फिर भी संसार के कार्य यथा पूर्व चल रहे थे। मेरे पुत्र ओंप्रकाश की विवाह तिथि निकट आ गई और २५ अप्रैल को बारात पेशावर चली। २६ को श्री कर्मचन्द्र क्वात्रा की सुपुत्री विजय कुमारी से उसका पाणि-ग्रहण संस्कार सुसम्पन्न हुआ। २७ को बारात रावलपिंडी रुकती हुई लाहौर लौट आयी।

महायुद्ध का अन्त—अभी मैं लाहौर में ही था कि वह सूचना मिली जिसकी सभी लोग प्रतीक्षा कर रहे थे। यह समाचार पत्रों में प्रकाशित हो गया कि संसारव्यापी महायुद्ध का अन्त हो गया है, संसार के महत्वाकाँक्षी व्यक्ति हिटलर का पतन हो गया है, इटली के अधिनायक मुसोलिनी को गोली का निशाना बना दिया गया। पर युद्ध-मंच से हिटलर इस प्रकार अन्तर्धान हुआ कि जिसके विषय में आज तक पता न चला, उस के विषय में केवल किंवदन्तियाँ ही सुनाई पड़ने लगीं।

मित्रराष्ट्रों की इस विजय के उपलक्ष में १० मई को विजय-दिवस मनाया गया। १३-१४ मई को देश व्यापी उत्सव हुए। राजकीय व निजी सभी कार्यालयों में अवकाश रहा। सरकार की ओर से मिठाइयाँ वितीर्ण की गईं। अभी इस युद्ध की पूर्ण रूप से समाप्ति न हुई थी। जापान ने घुटने न टेके थे, विशेष कर हम लोगों की आँखें बर्मा-युद्ध पर लगी थीं। इस युद्ध का सम्बन्ध स्वतन्त्र-भारतीय-सेना से था। मनिपुर के मोर्चे पर बड़ा घमासान युद्ध हो रहा था।

स्वतन्त्र भारतीय सेना—स्वतन्त्र भारतीय-सेना के इतिहास से प्राय: सभी परिचित नहीं हैं। इस सेना का जन्म जर्मनी में कई वर्ष पूर्व राश बिहारी बोस द्वारा हुआ था। पर यह सेना अभी पूर्ण रूप से संगठित न हुई थी। १९४१ में सैनानी सुभाष चन्द्र बोस भारत सरकार के पन्जे से छूट कर पेशावर-काबुल के मार्ग से जर्मनी पहुँचे और वहाँ सेना संघटन के कार्य को अपने हाथ में लिया। वहाँ उन्हें कुछ बन्धनों का अनुभव हुआ। वे जापान आये और वहाँ उन्हें स्वतन्त्र भारत सेना का संघटन व पुनर्निर्माण करने की पूर्ण सुविधा प्राप्त हुई। उन्हीं दिनों जापान ने अमरीका के अधीन उपनिवेशों तथा सिंहापुर पर आक्रमण कर दिया था। इस आक्रमण में उसे अपूर्व सफलता मिली थी और मित्रराष्ट्रों के सैनिक हजारों की संख्या में बन्दी बना लिये गये थे। उनमें से भारतीय सैनिकों को स्वतन्त्र कर दिया गया था। वीर सुभाष ने इस अवसर से पूर्णत: लाभ उठाया और सबको स्वतन्त्र भारतीय सेना के रूप में संघटित किया।

बर्मा सिंहापुर आदि स्थानों पर स्वतन्त्र भारतीय सेना की युद्ध सम्बन्धी तैयारियाँ होने लगीं। १९४४-४५ में उनकी गति-विधि भी प्रकाश में आने लगी। उनका सीधा आक्रमण भारत पर था। दिल्ली पर उनका निशाना था। सेना के संचालक सुभाष देवता के समान सभी सैनिकों के पूज्य थे। पूर्ण विश्वास था कि एक दिन सुभाष भारत का नेतृत्व करेगा।

जापान का युद्ध रूस और अमेरीका के साथ चल रहा था। अंग्रेजों से स्वतन्त्र भारत सेना उलझ रही थी। "दिल्ली चलो" का नारा आकाश व्यापी बन गया था। भारत में ब्रिटिश सरकार के कर्मचारी उसे जापान का आक्रमण बता कर अपनी सेना को उस पर आक्रमण करने को उकसा रहे थे। भारत पर जापानी आक्रमण के नाम से उसके विरुद्ध घृणा पैदा की जाती थी।

जापान का आत्म समर्पण:—जर्म ा हार का अभी कोई प्रभाव इस युद्ध पर न हुआ था पर मेरिका में परमाणु-बम का आविष्कार हो चुका था। इस का सफल प्रयोग पहले-पहल अमेरीका के एक स्थान पर ही हुआ था। तत्पश्चात् जापान के दो द्वीपों हिरोशीमा और नागासाकी पर क्रम से दो बम फैंके गये। अपार जन समूह के साथ दोनों द्वीप तहस-नहस हो गये। जापान ने आत्म-समर्पण कर दिया, युद्ध का नाटक पूर्णतः समाप्त हो गया।

जापान की पराजय के साथ-साथ स्वतन्त्र भारत सेना ने भी हार मान ली। साथ ही उनका उत्साह इस लिए भी भंग हो गया था कि कुछ दिन पूर्व सेनानी सुभाष जापान जाते समय जहाज के गिर जाने से चल बसे थे। यद्यपि इस समाचार पर किसी को विश्वास न हुआ पर उनके दर्शन न होने से सर्वत्र निराशा फैल गई।

यह विजय मित्रराष्ट्रों को प्राप्त तो अवश्य हुई पर भारतीय इस से प्रसन्न न थे, वे आश्चर्य में डूबे हुए थे। हिटलर संसार का महत्वपूर्ण व्यक्ति था इस बात से सभी पूर्ण रूप से सहमत थे। विजय का औपचारिक समारोह तो जनता ने अवश्य मनाया पर हिटलर का लुप्त होना और सुभाष चन्द्र का रहस्यमय अन्त उन्हें बेचैन कर रहा था।

———

१३—शिमला राजनैतिक सम्मेलन

युद्ध की समाप्ति १९४५ की गर्मियों में हुई थी। मैं अपने कार्य में यथा पूर्व लगा हुआ था। जून के अन्त में जालन्धर जाने का अवसर हुआ। यहाँ आर्य शिक्षा-मंडल के अधिवेशन में सम्मिलित हुआ। जालन्धर की प्रसिद्ध संस्था कन्या महाविद्यालय आर्यसमाज की एक प्रमुख भारतीय संस्था है। श्री ला० देवराज जी द्वारा इस का संचालन होता रहा था। इस संस्था की धूम अखिल भारत में फैल चुकी थी। भिन्न भिन्न समयों पर आचार्या लज्जावती और श्रीमती शन्नोदेवी इस संस्था के विकास के लिए भारत के बाहर अफ्रीका तक भी प्रचार कर आई थीं। दूसरी ओर छात्रों के लिए आर्य समाज ने द्वाबा कालेज की स्थापना कर रखी थी। उक्त दोनों महाविद्यालयों का प्रबन्ध इसी आर्य शिक्षा मंडल के अधीन चल रहा था। इन दिनों उसके अधिकारी वर्ग का चुनाव था। उस में मुझे भी प्रबन्धक सभा का सदस्य चुना गया। वहाँ से लाहौर लौट कर कुछ दिन पश्चात शिमला गया।

इन दिनों देश के राजनैतिक वातावरण में एक अभूतपूर्व परिवर्तन आया। कांग्रेस के बड़े २ नेता बिना शर्त जेल से छोड़ दिये गये। सरकार ने युद्ध आरम्भ करते समय यह आश्वासन दिया था कि भारत की स्वाधीनता के प्रश्न पर युद्ध के पश्चात् विचार किया जायेगा अतः युद्ध समाप्त होते ही यह माँग दुहराई जाने लगी।

चर्चिल की हार—उधर इंगलैंड में भी युद्ध के पश्चात् नये चुनाव हुए। अनुदार दल हार गया। सरकार मजदूर दल के हाथ में आ गई। चर्चिल के स्थान पर ब्रिटेन के प्रधान मंत्री बने मिस्टर ऐटली और भारत मंत्री का पद वयोवृद्ध मिस्टर पैथिकलारेंस ने संभाला।

उक्त नवीन सरकार को भारत के गत आन्दोलन पर विचार विनिमय द्वारा विश्वास हो गया था कि भारत पर अब बिना सैनिक सहायता के शासन करना कठिन होगा और इस पर भी पूर्णतया निर्भर करना सम्भव न था क्योंकि स्वतन्त्र-भारत-सेना के संगठन ने इसका आभास करा दिया था।

इस प्रकार स्वराज्य प्राप्ति की नींव पड़ चुकी थी। एक और आन्दोलन द्वारा काँग्रेस की शक्ति और भी दृढ़ हो गई। जापान की हार के पश्चात् स्वतन्त्र भारत सेना के सभी सैनिक बन्दी बना कर भारत भेजे गये। कुछ अनुदार राजनैतिक पुरुष तो इन्हें ब्रिटिश सरकार के प्रबल शत्रु कहते थे और इन्हें युद्ध बन्दियों के रूप में समाप्त करने के पक्ष में थे पर भारत ने इसका विरोध किया। ब्रिटेन के नये शासकों ने इस समय नीति से कार्य लिया। सब भारतीय सैनिक भारत भेज दिये गये। सभी सैनिकों, भारत सेना के मेजर शाहनवाज, कप्तान सहगल और ढिल्लन पर दिल्ली में सरकार की ओर से अभियोग चलाया गया। भारत का बच्चा २ चाहता था कि सेना का एक भी सैनिक किसी प्रकार का दण्ड न पावे क्योंकि उनकी देश-भक्ति में कोई सन्देह नहीं कर सकता था। उनका लक्ष्य भारत को स्वतन्त्र करना था। अब उन्होंने विवश होकर इस कार्य में जापान की शरण ली थी। अतः हमारे वर्तमान प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू, श्री भूलाभाई देसाई, डा० काटजू आदि देश के गण्यमान्य नेताओं ने इस अभियोग की पैरवी की। अन्य हिन्द सैनिकों पर भी इसी प्रकार अभियोग चलाये गये। जनता के आन्दोलन और नेताओं की दूरदर्शिता से वे सभी मुक्त हो गये। जनता अपने नेताओं का गुणगान करने लगी। इसी प्रकार १९४२ के 'आष्टी चीमूर' के बन्दी भी मुक्त हो गये।

शिमला सम्मेलन—भारत की स्वतंत्रता के विषय में परामर्श करने के लिए लार्ड वेवल ने नेताओं को शिमला में आमन्त्रित किया। महात्मा गाँधी तथा भूलाभाई देसाई आदि नेता शिमला पहुँचे।

शिमला की जनता ने अपने नेताओं का हृदय से स्वागत किया। महात्मा जी राजकुमारी अमृतकौर की कोठी में ठहरे। मुस्लिम नेता जिन्ना और लियाकत अली भी आमंत्रण पर वहाँ पहुँच गये। लार्ड वेवल की इच्छा थी कि सब मिल कर स्वतंत्र भारत के शासन की रूप-रेखा तैयार करें। मैं भी शिमले में उसके समीप ग्रासमेयर में ठहरा हुआ था। शिमला सम्मेलन हुआ अवश्य पर मुसलिम नेताओं के पाकिस्तानी स्वप्न ने किसी परिणाम पर न पहुँचने दिया। ब्रिटिश सरकार ने घोषणा की कि ब्रिटिश शिष्ट मण्डल और ब्रिटिश मंत्री-मण्डल का एक विशिष्ट दल आकर भारत के भविष्य का निर्णय करेगा।

जुलाई में मैं लाहौर लौटा पर मेरा पुत्र धर्मवीर गत दो मास से प्लूरिसी के कष्ट से पीड़ित था। डाक्टरों की सम्मति थी कि इसे किसी पर्वतीय स्थान पर ले जाया जाय। मैं परिवार सहित एक मास के लिए मरी पर्वत पर गया। इस बीच में मेरे मित्र श्री इन्द्रनाथ सूरी भी सपरिवार मरी आकर कुछ दिन ठहरे। उनकी धर्म पत्नी विन्द्रा देवी जी का मेरी पत्नी से बड़ा स्नेह था। वे स्वस्थ न होते हुए भी पिंडी पाइंट की ओर जहाँ हम ठहरे थे भ्रमणार्थ आती रहीं और अपना कुछ समय हँसी खेल में गुजारती रहीं। सब बच्चे घोड़ों की सवारी में आनन्द लेते थे। मेरा कुछ समय श्री इन्द्र नाथ जी के साथ वार्तालाप में व्यतीत होता रहा।

१६ अगस्त से २० तक जर्मन और जापान दोनों देशों पर विजय प्राप्ति के कारण उत्सव मनाया गया। मैं इस समय सपरिवार मरी में ही था। २३ अगस्त को वहाँ से लौटते हुए रावलपिंडी ठहरा।

यहाँ इन दिनों मेरे जामाता श्री हंसराज न्यूबैंक के मैनेजर थे, उनसे और पुत्री सुशीला से मिल कर लाहौर लौट गया।

———

१४—धर्मपत्नी का बिछोह

सितम्बर १६४६ के आरम्भ में मैं श्रीनगर से लौट आया। अब तक जब कभी भी बाहर से आता था तो मेरी पत्नी का यह नियम था कि वे मेरे कमरे में तुरन्त ही आ जातीं थी और कुशल क्षेम पूछने के पश्चात् वे मेरे सामान आदि की उचित व्यवस्था कर देतीं। उनके द्वारा यह सब कुछ स्वागत सत्कार के रूप में होता था। इस बार भी जब मैं अपने गृह पर पहुँचा तो अपने कमरे में चला गया। मुझ से मिलने मेरे पुत्र, पौत्र और सम्बन्धी वर्ग आये पर जब कुछ और अधिक समय बीत गया और मेरी पत्नी न आईं, तो मुझे आश्चर्य हुआ क्योंकि मेरे लिए यह एक नवीन बात थी। थोड़ी ही देर में मुझे इस का कारण विदित हो गया। पता चला कि वे बीमार हैं। मैंने उनके कमरे में जाकर देखा कि वे इस समय साधारण कष्ट से पीड़ित हैं। मैंने समझा कि उन्हें शिर की पीडा का साधारण रोग है। शीघ्र उपचार से ठीक हो जायेंगी। अतः मैंने पूर्व कार्य-क्रमानुसार शिमला जाने को अपना स्थान सुरक्षित करा लिया।

इस समय उनका इलाज मेरे निकटस्थ सम्बन्धी डा० रामनाथ मदान कर रहे थे। वह अभी तक कुछ न कुछ खा पी लेती थीं। ७ सितम्बर को उनका तापमान कछ अधिक हो गया पर मैं अपने कार्य में लगा हुआ था। एक सप्ताह व्यतीत हो गया। शिमला जाने का दिन आ गया पर उनकी इस अवस्था में कोई सुधार होते न देख कर मैंने वहाँ जाना स्थगित कर दिया।

अभी तक लक्ष्मी जी अपने गृह के ऊपर के भाग में विश्राम कर रही थीं। डाक्टर के परामर्श पर उन्हें नीचे के कमरे में लाना उचित समझा गया। उन्हें कष्ट तो बड़ा हुआ पर स्वास्थ्य की दृष्टि से ऐसा



स्व० श्रीमती लक्ष्मी देवी

किया जाना आवश्यक समझा गया। पर हुआ इसके विपरीत, दिन प्रति दिन निर्बलता बढ़ती गई और वे मूर्छित भी रहने लगीं।

अब तो अधीरता बढ़ने लगी। डाक्टर पर डाक्टर आने लगे। होमियोपेथी के प्रसिद्ध डाक्टर दीवान जयचन्द आये। उनके आँखों में दोष बताने पर डाक्टर कौल को दो बार दिखाया गया। उन्होंने इसका निराकरण कर दिया। कर्नल अमीरचन्द्र का अनुमान था कि मस्तिष्क के आपरेशन से लाभ होने की आशा है। लाहौर और भारत के ख्याप्ति प्राप्त डा० भड़ूचा ने देखा और रामकृष्ण मिशन के डाक्टर स्वामी प्रणवानंद जी ने भी उपचार किया। सबका प्रयत्न निष्फल गया, मूर्छा टूटने में न आई। निराशा और घबराहट बढ़ गई और इतने योग्य डाक्टर भी रोग का निदान न कर सके।

मेरी पुत्री सुशीला और पुत्र बलराज बम्बई थे। समाचार पाते ही वे भी लाहौर आ गये। सुशीला के आने पर उन्होंने कुछ बात-चीत की पर उसके पश्चात् कोई शब्द उनके मुँह से किसी ने न सुना।

डाक्टर की आज्ञानुसार उन्हें एनीमा दिया गया। उनका शिर ठंडे पानी से धोया गया पर असर उल्टा हुआ और शरीर शिथिल होता गया और इन्द्रियाँ जवाब देती गईं। सारा परिवार उनकी सेवा में लगा हुआ था। सब व्यक्ति चाहे उनके साथ उनकी कभी जान पहचान हुई हो अथवा नहीं उनके बचाने का प्रयास करते थे। १७-१८ दिनों से मृत्यु और जीवन का संघर्ष चल रहा था। २४ सितम्बर को उनकी अवस्था निराशा जनक दीख पड़ने लगी। अब औषधि लेने के योग्य भी न रहीं। उनकी निरन्तर बेहोशी सभी के लिए चिन्ता का कारण बनती जा रही थी।

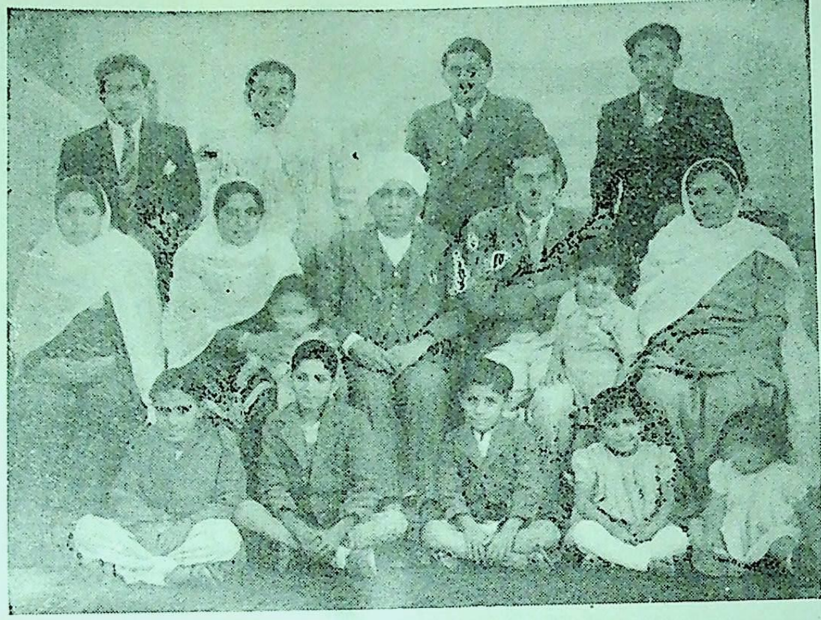
दो दिनों तक वह इसी अवस्था में पड़ी रहीं और कुछ न कह सकीं। २७ सितम्बर की प्रातः काल से ही गायत्री एवं वेद-मंत्रों का पाठ आरम्भ हो गया और रात के सवा दस बजे लक्ष्मी जी उस धाम को

चली गईं जहाँ से कोई लौटकर नहीं आता। जिस घर में अभी कुछ देर पूर्व चहल-पहल थी, उसी घर में अब दुख का समुद्र हिलोरे लेने लगा। लक्ष्मी जी के प्राणों के वियोग के समय परिवारिक जन तो एकत्र हो ही गये थे पर उन के साथ उनका सखी-समुदाय भी उपस्थित था।

अगले दिन प्रातः ही उस नश्वर शरीर के दाह-कर्म की तैयारी होने लगी। उन की शव-यात्रा के साथ रामगली के स्त्री-पुरुष और आर्य समाज के प्रसिद्ध गणयमान्य व्यक्ति उपस्थित थे। उनके पुष्ट शरीर को स्मरण कर के कभी भी किसी को यह शंका न हो सकती थी कि उनसे असमय में ही वियोग हो जायगा।

अपने जीवन में कभी २ स्वयं लक्ष्मी जी मुझे अधिक कार्य करते देख कर कह उठती थीं कि भविष्य की भी कुछ चिन्ता करनी चाहिए। उन का विचार था कि वृद्धावस्था में गृहस्थ के झंझटों से किनारा करके आत्म चिन्तन में लगा जाय। यद्यपि उन्होंने इस के लिए प्रयास भी किया था किन्तु मुझे निरुत्साहित देख कर वह अधीर हो उठीं और मैं अपने में इस अभाव को स्वीकार करता हूँ कि वह आत्म-चिन्तन के लिए उस लोक को चली गईं जहाँ पर कोई भी व्यक्ति उनकी शान्ति में बाधक न हो सके। सच मुच जीवन की दौड़ में उनकी जीत हुई!

स्मृति के क्षण—आज मैं जब कभी भी उनके किसी कार्य का अवलोकन करता हूँ तब यह कहना पड़ता है कि एक योग्य गृहस्थी के नाते उन्होंने सभी को सदा संतुष्ट करने का प्रयास किया। मैं उनके रहते हुए सदैव गृह चिन्ता से मुक्त रहता था। परिवार के पालन पोषण के साथ उन्होंने मेरे कार्यों में भी सहयोग दिया। मुझे जिस वातावरण में रहने का अवसर मिला था मैं उसके अनुसार अपनी जीवन-संगिनी के विषय में अधिक तो कुछ न कर सकता था, एक इच्छा अवश्य थी कि अपने पिताजी के समान इन की जीवन-कथा को भी प्रकाश में लाऊँ। मेरे पास अपनी दैनिकियाँ थीं ही। केवल उनमें मंथन



सपरिवार (अक्तूबर १९४६)

करने की आवश्यकता थी। इन्हीं दिनों हमारे यहाँ श्री सत्यपाल 'विकल' आये हुए थे। ये कुछ वर्षों से हमारे परिवार में एक अंग से बन गये हैं। वह सदा लक्ष्मी जी को माता के समान ही समझते रहे हैं। उन्होंने इस कार्य को अपने हाथ में लिया। दैनिक कार्य क्रम में यह भी आवश्यक हो गया कि लक्ष्मी जी के जीवन-क्रम को यथा-विधि संकलित किया जाय। यह कार्य १९४६ की समाप्ति तक सम्पूर्ण हो गया। केवल छपवाने का कार्य शेष रह गया था।

अगले वर्ष के आरम्भ में एक अच्छे प्रेस में यह छपने को दे दिया गया। पुस्तक के समस्त चित्र और प्रारम्भ के ८० पृष्ट छप भी चुके थे। आगे का कार्य चल रहा था कि इसी बीच में भारत-विभाजन से देश की विषमता बढ़ गई। स्थान २ पर विस्फोट होने लगे। मुझे आर्थिक और साहित्यिक क्षति के साथ साथ लक्ष्मी जी की जीवन-गाथा को भी खोकर लाहौर से दिल्ली आना पड़ा। यहाँ आकर पुनः इस कार्य को प्रारम्भ किया गया। केवल एक प्रति ८० पृष्ट तक छपी मेरे पास थी। इसके अतिरिक्त आगे पुनः खोज की गई। उसे संशोधन के पश्चात् छपवाया गया और २००४ की वैशाखी के पर्व पर उनकी जीवन-गाथा प्रकाशित हो सकी।

———

१५—कराची यात्रा–(क)

भारत के प्रसिद्ध समुद्री-स्थानों में से मैं अभी तक केवल बम्बई को ही देख पाया था और वहाँ पर कई बार जाने का अवसर भी मिलता रहता था किन्तु इसी के साथ कलकत्ता, कराची और मद्रास आदि भी देखने की मेरी बड़ी अभिलाषा थी। गत मास मेरी धर्म-पत्नी का देहान्त होने पर अक्तूबर मास का अवकाश भी मैंने ले लिया था। मेरा पुत्र इन्द्रदेव अपने व्यापार सम्बन्धी कार्य के लिए कराची जाना चाहता था। मेरे मन में भी विचार आया कि समय को घर में व्यतीत करने की अपेक्षा यही अच्छा है कि कहीं का भ्रमण करूँ। अतः मैं २७ अक्तूबर रविवार को लाहौर से कराची के लिए चल पड़ा। पुत्र इन्द्रदेव और मेरे बन्धु दुर्गादास इस यात्रा में मेरे साथ थे। मेरे पुत्र सत्यव्रत, ओंप्रकाश और धर्मवीर भी गाड़ी तक हमारे साथ आए। उन्होंने देख-भाल कर मेरे बैठने के लिये एक डब्बा ढूँड लिया। हम उसमें बड़े आराम से बैठ गये। यद्यपि देखने में तो वह कमरा भरा हुआ था और बहुत आराम की आशा न दीख पड़ती थी परन्तु ज्यों ही हम वहाँ बैठे तो एक साथी ने मेरे सोने के लिए नीचे का स्थान खाली कर दिया और वहाँ मैंने बिस्तर बिछवा लिया।

यथा समय गाड़ी छूट गई। ज्यों ज्यों गाड़ी की चाल बढ़ती जाती थी त्यों त्यों मार्ग की धूल भी उड़कर हमारे कपड़ों तथा चेहरों पर अधिकार करती जाती थी, दो-पहर एक बजे गाड़ी मिण्टगुमरी स्टेशन पर पहुँची। वहाँ हमने अपने वस्त्रों पर से धूल झाड़ी, हाथ-मुँह धोये और अपने साथ जो भोजन हम घर से लाए थे उसे भली-भाँति खाया। यद्यपि मार्ग में घर जैसी सुविधा न थी तो भी हमने वहाँ

की अपेक्षा अधिक भोजन किया, औरों पर तो न सही पर मुझ पर तो यह बात अवश्य घटती थी।

मिंटगुमरी से कस्सोवाली का स्टेशन ३५ मील की दूरी पर है। हम ने देखा कि इस बीच में घना जंगल छाया हुआ था पर कहीं कहीं पर रेतीली बंजर भूमि भी दीख पड़ती थी। रेत के ऊँचे टीले भी थे। जहाँ नहर का पानी लगता था वहाँ बहुत दूर तक कपास के खेत भी थे। यही कारण था कि इस प्रदेश में कई स्थानों पर कपास की मंडियाँ थीं और यहाँ के नगरों में कपास वेलने के कारखाने भी लगे हुए थे।

आगे चल कर मियाँचुन्नू और खानेवाल के अधिक भूभाग जंगलों से घिरे हुए थे। जंगलों के किनारे छोटी-छोटी काँटेदार झाड़ियाँ विद्यमान थीं मानो प्रकृति ने वृक्षों की रक्षा के लिए बाड़ लगा रखी हो। ३॥ बजे खानेवाल का स्टेशन आगया। मुलतान वहाँ से निकट ही पड़ता है। घंटे भर में हम मुलतान पहुँच गये। यहाँ चाय पी और उसके साथ एक विशेष प्रकार का पदार्थ खाया। चाय के प्याले असाधारण रूप से स्वच्छ थे और उनकी बनावट सुन्दर थी।

गाड़ी की तेज़ रफ़्तार के परिणाम स्वरूप धूल का तूफ़ान भी हमारे साथ-साथ निरंतर चलता रहा, वह भूमि भी रेतीली थी। हम ६ बजे लोधराँ पहुँच गये। रात्रि का अधिकार होने लगा, अंधेरा बढ़ने लगा, गाड़ी ने छोटे स्टेशनों पर रुकना छोड़ दिया। समासट्टा, नवाबशाह, रोहड़ी (सिंध) आदि बड़े २ स्टेशनों पर खड़ी होती थी। मुझे नींद आगई, आगे के स्टेशनों का ज्ञान न हो सका।

हम प्रातः हैदराबाद (सिंध) स्टेशन पर पहुँचे। इस स्टेशन पर यात्रियों की संख्या बहुत थी, इन में सिंधी अधिक थे। अब आगे कोटरी का स्टेशन आया, दिन अच्छा चढ़ गया था, यहीं चाय पी और मलीर के स्टेशन पर पहुँचने से पूर्व ही उतरने की तैयारी में लग गये क्योंकि अगला स्टेशन कराची था।

कराची में—स्टेशन की घड़ी उस समय ११। बजा रही थी। हम

सामान आदि के लिए कुली का प्रबन्ध कर रहे थे कि इतने में हमारे मित्र श्री दीनानाथ हमारी ओर ही आते दीख पड़े। हमने उनको अपने पहुँचने का समय पूर्व ही लिख दिया था। वे हमें स्टेशन पर लेने आये थे। हम स्टेशन के बाहर आये और उनकी गाड़ी में बैठकर उनके निवास-स्थान पर पहुँचे। श्री दीनानाथ अपने पिता श्री मुकुन्द-लाल के साथ कराची में व्यापार करते थे। उन्होंने हमारे लिए स्थान आदि का प्रबन्ध कर रखा था। प्रातः राश के पश्चात् उन्होंने अपनी दुकान और आस पास के स्थान दिखाये। हमें अपनी गाड़ी से बिलोच रेजिमेंट की कैण्टीन दिखाने ले गये। यहाँ अच्छे परिमाण में उनका व्यापार चल रहा था।

अपने निवास स्थान पर लौट कर जब भोजन से निवृत हुए तो ३॥ बज चुके थे। मेरी अब इच्छा थी कि कुछ विश्राम करूँ। ३-४ घण्टे के भ्रमण से तथा कराची की लम्बी रेल यात्रा से मैं कुछ थकावट अनुभव कर रहा था। हमारे मित्र समय गंवाना उचित न समझते थे अतः उसी गाड़ी में बैठकर हम दर्शनीय स्थान देखने चल पड़े।

विक्टोरिया अद्भुतालय—दर्शनीय स्थानों में उस दिन हमने सर्व प्रथम विक्टोरिया अद्भुतालय देखा। यह एक विचित्र मनो-रंजक स्थान है। वहाँ सम्राट् एडवर्ड सप्तम और महारानी विक्टोरिया की यौवन-कालीन मूर्तियाँ देखीं। तब भारत परतंत्र था, अतः साधा-रणतया इनके प्रति कुछ आकर्षण था। पास ही एक पारसी दानी द्वारा निर्मित फव्वारा भी था। बाहर के कमरों में हमने प्राचीन पत्थर की मूर्तियों को भी देखा। उन में तीन विशाल मूर्तियाँ गौतम बुद्ध, श्री ब्रह्मदेव तथा श्री सूर्यदेव की थीं। इस के साथ ही एक चिड़ियाघर भी था जहाँ पर नाना प्रकार के पशु-पक्षी थे। इनमें मुख्य रूप से हमने सिंह, बाघ, चीता, भेड़िया, रीछ, मगरमच्छ, शार्क मछली आदि देखीं।

क्लिफ्टन—एक घंटे के पश्चात् हम क्लिफटन गये, इसे 'हवा

बंदर' भी कहा जाता है। इस को यह नाम इस लिए दिया गया कि यहाँ समुद्र की शीतल हवा खूब आती है। यह स्थान दर्शकों के बैठने और विश्राम के लिए बनाया गया है। वहाँ एक उद्यान भी है, हम वहाँ पड़ी हुई बैंचों पर बैठ गये। स्त्री और पुरुषों के लिए बैठने को यहाँ पृथक्-पृथक् विभाग हैं। यहाँ एक कृत्रिम चट्टान भी है जहाँ हरी-भरी बनस्पतियाँ उगी हुई हैं। यहाँ से जल बिन्दुएं नीचे के एक सरोवर में इस प्रकार गिरती हैं मानो पर्वत से मोती गिर रहे हों।

दिवस का अवसान समीप था। हम समुद्र तट की ओर बढ़े। वहाँ थोड़ी देर पूर्व ही ज्वार आ चुका था और अब भाटा बन कर पीछे जा रहा था। हम जल से सिंचे रेतीले तट पर भ्रमण करते रहे पर अंधेरे के कारण अधिक देर तक न ठहरे।

मैं कुछ शिथिलता अनुभव कर रहा था पर हमारे साथी समीप के क्लिफ्टन-विश्रांति घर में चले गये, वहाँ मुझे भी बुला लिया। वहाँ कुछ खाया पीया। हमारा विचार था कि यहाँ से अब लौट कर सीधे निवास का मार्ग पकड़ेंगे। पर हमें बताया गया कि यहाँ समीप ही एक महादेव का मन्दिर भूमि के अन्दर की ओर बना हुआ है। हमारे मित्र जिनके पास हम ठहरे थे महादेव के भक्त थे। वे तो धर्म और श्रद्धा के भाव से जाना चाहते थे, हम केवल दर्शक के रूप में ही थे, यह जानना चाहते थे कि वहाँ क्या है और क्या होता है?

वहाँ एक पत्थर की बनी नाग-मर्ति है। इसने अपने फणों से महादेव जी की मूर्ति को छा रखा था। लोग तो अन्दर पूजा कर रहे थे, मूर्ति के सामने सिर झुकाये खड़े थे। हम तीनों बाहरी भाग में खड़े हुए चट्टान पर खचित मूर्ति कला को देख रहे थे।

अन्दर जाने वाले मार्ग पर भिक्षुकों की संख्या बहुत थी। उन्हें वहाँ बैठने की विशेष आज्ञा प्राप्त हुई प्रतीत होती थी जिससे वे दर्शकों से दान माँग सकें। वहाँ हमने बूढ़ी स्त्रियों को जब कुछ दिया तो भिक्षु

बड़ी टीका-टिप्पणी करने लगे। इस पर कुछ मनोरंजन सा हुआ।

इस समय रात के आठ बज चुके थे। चारों ओर अन्धकार का राज्य तीव्रता से बढ़ रहा था। किन्तु विद्युत दीपमालायें अन्धकार को दूर करने में होड़ लगा रही थीं और इस स्पर्धा में कहीं पर अन्धकार प्रबल था कहीं प्रकाश।

मैं अब और भी अधिक थकावट अनुभव करने लगा अतः शीघ्र ही हम वहाँ से चल दिये। रात्रि को मेरे नवयुवक बन्धुओं ने मेरा शरीर दबा कर मेरी थकावट दूर कर दी और मुझे मीठी नींद आ गई।

२६ अक्टूबर कराची में—इस दिन प्रातः नित्य-कर्म से हम शीघ्रही निवृत्त हो गये। इन्द्रदेव स्टेशनरी का सामान देखने का इच्छुक था। हम सभी सदर से बोलटन मंडी गये। यह एक अच्छी व्यापारिक मंडी है और स्टेशनरी के लिए विख्यात है। वहाँ हम सुशीला-भवन में गये। इसे सेठ जसवन्त राय ने अपनी धर्मपत्नी की स्मृति में बनवाया था। यहाँ एक आयुर्वेदिक औषधालय भी था। वहाँ के वैद्य महोदय से मिल कर अपने पुराने सहपाठी श्री रामचन्द्र के विषय में पूछा। सुशीला-भवन से उतरते ही सामने महता स्टेशनरी मार्ट के साइन बोर्ड पर हमारी दृष्टि पड़ी, यहाँ स्टेशनरी की वस्तुओं की पूछ-ताछ की। हम इधर-उधर अन्य दुकानों पर भी गये। एक बजे लौट कर अपने निवास स्थान पर आ गये।

सायं ५ बजे पुनः भ्रमण के लिए तैयार हो गये। श्री मुकुन्दलाल जी भी हमारे साथ थे। हम गाड़ी पर बैठे और ५ मिनट पश्चात् ही एक चारा बेचने वाले की दुकान पर खड़े हो गये, कोचवान ने उस से लूसर्न घास माँगा, वह लेकर गाड़ी न्यू-बन्दर की ओर चली। नगर के इस भाग में रौनक बढ़ रही थी। बम्बई के नमूने के बड़े २ भवन सड़क के दोनों ओर बन रहे थे। इस सड़क का नाम भी जिन्ना-रोड पड़ चुका था और यह सैंट्रल जेल तक जाती थी।

हमारे मित्र के आदेश पर जेल से पर्याप्त दूरी पर ही गाड़ी खड़ी कर दी गई। हम वहाँ उतर गये। सामने ही एक विशाल मैदान था। हम वहाँ एक बैंच पर विश्राम करने बैठे। हमें ऐसा प्रतीत होता था कि यह खुला स्थान नगर की वृद्धि के लिए सुरक्षित रखा गया है।

अन्धेरा होने लगा। मैं थोड़ी दूरी पर खुले स्थान पर भ्रमण करते हुए आगे चला गया, मेरे साथी वहीं बैठे रहे। कुछ समय पश्चात् मैं भी वहाँ आकर एक बैंच पर बैठ गया। थोड़ी देर तक तो वहाँ का वायु मण्डल स्तब्ध रहा पर शीघ्र ही भीनी-भीनी शीतल वायु चलने लगी। इस से सभी को आनन्द हुआ। हम अपने मित्र के बड़े आभारी थे कि उन्होंने हमें थोड़ी देर को भी पृथक् न होने दिया, कदाचित् उन्हें संदेह हो कि हम कराची के बाजारों में इधर-उधर भटक न जायें।

हम इस यात्रा में इन दिनों इस स्थान का पूरा आनन्द न प्राप्त कर सकते थे क्योंकि यह ऋतु सुहावनी व स्वास्थ्यप्रद न थी। यह मास यहाँ सबसे निकृष्ट समझा जाता है, नगर की रौनक भी घट जाती है, बम्बई और सिन्ध के कालेज इस मास में बन्द रहते हैं, अतः कराची यात्रा के लिए इस मास का चुनाव हमारी अनभिज्ञता थी।

कराची ३० अक्टूबर—आज प्रातः ही हम बोलटन मंडी होते हुए रेलवे स्टेशन पर पहुँचे और वहाँ पर चार नवम्बर को लाहौर के लिए बर्थ सुरक्षित करवाली। मैंने यहाँ यह अनुभव किया कि कार्य करने वाले रेलवे कर्मचारी अपनी सुविधानुसार ही काम करते थे। उन्हें यात्रियों की सुविधा, असुविधा का किञ्चिन्मात्र भी विचार न था। यह नहीं कहा जा सकता कि वे जान बूझ कर ऐसा करते थे अथवा स्वाभाविक रूप से, फिर भी यह कहना निराधार नहीं कि उन्हें अन्यों के कष्ट तथा समय की कोई चिन्ता न थी। हमारा यहाँ बहुत सा समय नष्ट हुआ।

स्टेशन से लौट कर इन्द्रदेव अपने मित्र आर० पी० डोगरा का स्थान खोजने मैक्लोड रोड पर गया हुआ था। मैं समय व्यतीत करने

के लिए इधर-उधर वहीं घूमता रहा तथा कुछ साइन बोर्डों को देखता रहा। अकस्मात् एक अपरिचित व्यक्ति ने मुझे सम्बोधन करके कहा, "यदि आपको किसी जानकारी के लिए सहायता की आवश्यकता हो तो मैं उसके लिए तैयार हूँ"। मैंने पहले तो संकोच किया परन्तु उनके पुनः पूछने पर मैंने नाम बता दिया। वह व्यक्ति कहने लगे कि महाशय डोगरा उनके मित्र हैं। इसी समय इन्द्रदेव और दुर्गादास भी आ गये और हम सब ही श्री डोगरा के घर पर गये। संयोग से वे अपने स्थान पर न थे।

जिस महाशय ने अपनी सहायता देने के लिए कहा और सहायता दी भी वे पुलिस विभाग के ईश्वर दास कपूर थे। पूछने पर ज्ञात हुआ कि वे गुप्तचर विभाग में कार्य करते थे। वे हमें राली ब्रादर्स के स्थान तक ले जाने में सहायक हुए। इस कम्पनी ने एक नये प्रकार के फौन-टेन पैन का विज्ञापन प्रकाशित कराया था। हम पहले उस व्यक्ति के पास गये जिसका नाम श्री कपूर ने हमें बताया था। उस सज्जन ने मुझे एक अंग्रेज व्यक्ति तक पहुँचा दिया जिसके अधीन यह सारा काम था। राली ब्रादर्स के उस अधिकारी ने हमें तीन प्रकार के फाउण्टेन पेन दिखाये। उनमें स्याही दो से चार वर्ष तक के पीछे डालनी पड़ती थी और उस पर केवल दो रुपये व्यय आता था। उनका मूल्य उस समय क्रमशः ३५) रु०, २२॥) और १८) रुपये था।

इन्द्रदेव के पास एक बैंक ड्राफ्ट था। वह इसके नकद रुपये लेना चाहता था। इसके लिए हम न्यू बैंक आफ इण्डिया में गये। वहाँ के मैनेजर श्री बालमुकुन्द से मिले। इस से पूर्व हमारा इनसे कोई परिचय न था पर हमने इनसे दस मिनिट ही बातचीत की होगी कि वे हमारे मित्र बन गये। उनकी सहायता से बैंक ड्राफ्ट नकद रुपये के रूप में परिवर्तित हो गया। उनके द्वारा जलादि से स्वागत-सत्कार के पश्चात् हम अपरिचित रूप में आये हुए मित्र रूप में विदा हुए। वहीं मुझे अपने पुराने मित्र प्रिंसिपल रामसहाय के पुत्र श्री रवीन्द्रनाथ भी मिले।

वे उसी बैंक में काम करते थे। डेढ़ बजे अपने निवास-स्थान को लौट आये।

सायं चार बजे हमारे मित्र मुकुन्दलाल जी के पुत्र मदनलाल जी ने अपना फोटो उतरवाया। यहाँ से रेलगाड़ी द्वारा केमाड़ी गये। वहाँ का भ्रमण बड़ा आनन्दप्रद रहा। केमाड़ी में एक स्टीम लाँच नौका पर बैठ गये। उस में बैठ कर मनोरा पहुँचे। यहाँ का किराया साधारण ही था। मार्ग में शान्त समुद्र तट के दर्शन हुए। इसका ऐसा रूप बनाने के लिए कई उपाय काम में लाये गये प्रतीत होते थे जिनसे वह समुद्री भाग ऐसा बन गया था कि मानो एक पालतू घोड़ा हो।

मनोरा में एक नौ सैनिक शिक्षा-केन्द्र था। मेरी इच्छा थी कि मैं इसे देखूँ पर यह न हो सका। हमारे पास सरकारी आज्ञापत्र न था। मुझे इस शिक्षणालय का भवन देख कर और उसके अहाते में केडेट्स को भिन्न-भिन्न प्रकार से अभ्यास करते हुए देख कर ही संतुष्ट होना पड़ा।

यहाँ से आगे तट के समीप ही एक कुछ ऊँचे मन्दिर में आये यहाँ हिन्दू और सिखों में एक विशेष प्रकार का समन्वय दीख पड़ा। यहाँ तक कि धार्मिक विषयों में भी यही भावना स्पष्ट थी। हिन्दू देवताओं के साथ एक निकट के कमरे में गुरुग्रन्थ साहब रखा था और हिन्दू देवी देवताओं के चित्रों के साथ-साथ सिख धर्म के प्रवर्तक गुरु नानक जी का भी चित्र विद्यमान था। यह मन्दिर वरुण देव के नाम से प्रसिद्ध था। मन्दिर के साथ ही समुद्र के भी दर्शन होने लगते थे। समुद्र का पानी कोई २० गज की दूरी पर लौट चुका था। वहाँ बड़े वेग से लहरें आती और चली जाती थीं। हम समुद्र तट के समीप ही घूमते रहे और पहाड़ी तक चले गये। वहाँ पर पत्थरों और टीलों के खण्डहर बिखरे पड़े थे, वे ऐसे लगते थे मानो यहाँ अभी २ बमबारी हो चुकी है।

समीप ही सीमेंट की सीढ़ियाँ बनी थीं, उन पर चढ़ कर हम ऊपर के शिखर पर पहुँचे। शिखर पर से हमें बड़े-बड़े सीमेंट के बने हुए ब्लाक स्पष्ट दीख पड़े। वे विशेष रूप से इस लिए बनाये गये प्रतीत होते थे कि लहरें आकर उनसे टकरायें और उस किले को कोई हानि न पहुँचे। वहाँ से किला स्पष्ट दीख पड़ता था। इसके अतिरिक्त और भी बड़े २ टीले विशेष अवस्थाओं के लिए बनाये गये प्रतीत होते थे ताकि शत्रु की ओर से आक्रमण हो तो उन पर तोपें लगाई जा सकें।

इसके निकट ही एक विख्यात प्रकाश-स्तंभ था। यह पाँच मंजिल ऊँचा दीख पड़ता था, १०० फीट से कुछ ही कम ऊँचा होगा। उस के बीच में एक मशीन दीखती थी जो घूम रही थी और प्रकाश उत्पन्न करती थी। वहाँ से हम समुद्र के एक और भाग पर गये, यह किनारा देखने में नीचा था। यहाँ पर नाविक छात्र (Naval Cadets) और उससे सम्बन्धित कर्मचारियों के निवास स्थान थे।

हम प्रकाश स्तंभ और समुद्र के निचले किनारों के बीचों-बीच सड़क पर घूमते रहे जब तक कि उस स्थान पर न पहुँच गये जहाँ कि यात्रियों के लिए वाष्प नौका (Steam Launch) प्रतीक्षा कर रही थी। इस से हम केमाड़ी के तट पर पहुँच गये। यहाँ भी एक आने जाने वाले यात्रियों के लिए छोटा सा प्रकाश-स्तम्भ है। इसे देख कर उतर आये। यह छोटे समुद्री जहाजों के लिए एक प्रकार का पत्तन है।

यहाँ से ५० गज चल कर ट्राम पकड़ी। उस से बोलटन मार्केट पहुँचे। उतर कर न्यूहनम बाजार में गये। हमने वहाँ व्यापार सम्बन्धी जानकारी प्राप्त की। इसके पश्चात् अपने निवास स्थान पर आ गये। आज का भ्रमण बहुत लम्बा था। मैं थक कर चूर-चूर हो रहा था। मेरे साथियों ने मेरे शरीर को दबाया भी पर शीघ्र नींद न आ सकी और

बारह बजे के पश्चात् आई भी तो गहरी न थी। अगले दिन अपने मित्र की गाड़ी से प्रातः हाई कोर्ट और सचिवालय (Secretariat) देखने गया। वहाँ पर अपने एक और मित्र परशुराम मथुरानी से जो कि पी० डब्ल्यू० डी० में काम करते थे, मिला। वहाँ से हम अपने साथियों सहित गाँधी रोड पर आये। यहाँ पर मेरी एक चित्रकार से भेंट हुई। उसके पास हाथ से बने राम और कृष्ण के चित्र थे जिन पर वह पाँच हजार रुपये व्यय कर चुका था। वह उन चित्रों को जर्मनी में छपवाना चाहता था। वह प्रतीक्षा कर रहा था कि उस देश की अवस्था कुछ अच्छी हो जाय, तब छपवाये जायें। उसे वहाँ के काम पर इतना भरोसा था कि वह उसके लिए कुछ वर्ष ठहरने को तैयार था।

गाँधी रोड पर अच्छी रौनक थी। बाजार में चहल-पहल दीख पड़ती थी। समुद्र की शीतल वायु भी सुलभ थी। मेरे साथियों ने वहीं होटल में एक कमरा लेकर रहने का निश्चय किया। शीघ्र ही ऐसा कर भी लिया गया। कमरा खुला हवादार और प्रकाश-युक्त था। वायु इसमें आर-पार आती जाती थी। सायं ६ बजे मथुरानी महोदय अपने छोटे पुत्र चन्द्र को लेकर होटल में आये। हम विक्टोरिया गाड़ी में बैठ कर विक्टोरिया अद्भुतालय पहुँच गये। वहाँ पर उसे विशेष रूप से देखा। एक बार पूर्व भी देख चुके थे। क्लिफ्टन की सैर भी की।

यहाँ से ऐलफिंस्टन रोड पर टहलते हुए एक बाजार में आये। यह बाजार कराची में अपना विशेष महत्व रखता था। यहाँ विशेष रूप से रंगरेजों की दुकानें उल्लेखनीय थीं। यहाँ प्रायः सुशिक्षित व्यक्ति ही जाते थे, इन में भी प्रायः स्त्रियाँ होती थीं।

वहाँ से बर्नज रोड जंकशन पर पहुँचे। यह सड़क आज़ाद हिन्द प्रेस तक जाती थी। सामने ही यहाँ धर्मपाल-भवन है जहाँ श्री मथुरानी रहते थे। यहाँ आइस क्रीम और सोडा-वाटर की दुकानें थीं, हमने

भी वहाँ थोड़ा खाया पिया। आज मुझे अपनी गर्दन पर कुछ पीड़ा अनुभव हो रही थी। थी तो यह कई दिन से, पर मैंने इस की ओर ध्यान न दिया था। बाहर जाते समय किसी के निमन्त्रण के कारण आज दिन में चाय न पी थी। अब अपने निवास-स्थान पर आकर मैंने चाय पी। विचार था कि इस से गर्दन के दर्द को कुछ आराम पहुँचेगा पर फिर भी रात को ३।। बजे तक नींद न आई।

———

१६—कराची यात्रा (ख)

प्रथम नवम्बर—प्रातः ही होटल में श्री डी०डी० सदारंगिनी, प्रतिनिधि मैकमिलन कम्पनी मेरे पास आये। ये सज्जन आजकल बम्बई में हैं। उनसे एक घण्टे वार्तालाप हुई। मुझे वे बात-चीत में बड़े चतुर और सूझबूझ के व्यक्ति प्रतीत हुए। उन्होंने बताया कि उनकी धर्म-पत्नी गुरुकुल देहरादून की स्नातिका है और एक कन्या-हाई-स्कूल में कार्य करती है। उनकी दो अन्य सम्बन्धी स्त्रियाँ भी वहाँ कार्य कर रही थीं। इनसे उन्हें पर्याप्त सहायता मिल रही थी। उन्होंने यह भी बताया कि वहाँ के शिक्षा-विभाग के संचालक श्री दादू पोटा बाहर दौरे पर हैं। उन्होंने वचन दिया कि कल प्रातः वे मुझे शिक्षा-संस्थाएं दिखाने ले चलेंगे।

चिड़ियाघर—मैं बाहर न जा सका। मेरे कंधे का दर्द वैसा ही था। दुर्गादास के साथ बाजार में जाकर सुशीला भवन के वैद्य से योगराज गुग्गल लिया, जिसका सेवन मैंने आरम्भ कर दिया। दिन में तो विश्राम करता रहा, सायं ६ बजे श्री मथुरानी अपने सुपुत्र सहित आये। उनके साथ मैं गाँधी गार्डन गया, वहाँ टहलते हुए एक कछुआ देखा जो एक सूखे स्थान पर अचल रूप से पड़ा था। हमने समझा कि वह मरा हुआ है पर बताया गया कि वह जीवित है यद्यपि वह हिल नहीं रहा था। तत्पश्चात् हमने सिंह-दम्पति देखा जिसके साथ एक बच्चा भी था। आगे बुलबुलें चहचहा रही थीं, एक श्वेत मयूर नाच रहा था, रंग-बिरंगे तोते, चकोर और कपोत इधर-उधर उड़ रहे थे। एक गहरे लाल रंग का तोता देखा जो विदेश से लाया गया प्रतीत होता था।

एक दो स्थानों पर बहुत से शशक देखे जहाँ उनका स्वराज्य प्रतीत

होता था। पास ही एक जेबरा था। उसके आगे एक शुतुर-मुर्ग देखा जो पक्षी होते हुए भी ऊँट के सदृश्य ऊँचा था, वह अफ्रीका के मरुस्थल से लाया गया था। चिड़ियाघर को आगे देखना उचित न समझ कर मैं मथुरानी महाशय के साथ ही उनके घर पर गया। उन्होंने मेरा मिठाई और दूध से सत्कार किया।

२ नवम्बर की प्रातः श्री सदारंगिनी महाशय होटल में आये। कार्यक्रम के अनुसार हम शिक्षा-विभाग के कार्यालय में गये। वहाँ डाइरेक्टर और इंसपेक्टर की अनुपस्थिति में कार्यालय के अध्यक्ष श्री आशानन्द से मिले। वे बड़े सहृदय व्यक्ति थे, मैंने कई प्रश्न शिक्षा-विषय में पूछे, उनके उत्तर बहुत युक्ति-युक्त थे। उन्होंने मुझे सिन्ध प्रांत के मिडिल और हाई स्कूलों की सूची भी दी, वर्तमान पाठ्य विधि की एक प्रति भी दी जिसे बने ३० वर्ष हो चुके थे।

अब वहाँ की शिक्षा संस्थाएं देखने का विचार किया। चाबलानी माडल स्कूल जाकर वहाँ के प्रिंसिपल श्री चाबलानी से मिले। वे बड़े देशभक्त, उच्च विचारशील थे और हिन्दुओं की उन्नति तथा रक्षा के लिए सब कुछ करने को तत्पर रहते थे।

वहाँ से गवर्नमेंट हाई स्कूल में गये, वहाँ सहशिक्षा थी। हाई स्कूल के भवन में तो उन दिनों हैदराबाद (सिंध) से कराची आया हुआ मैडिकल कालेज चल रहा था, उसका अपना भवन नया बन रहा था। इसके पश्चात् डोगरा पुस्तकालय तथा श्री सदारंगिनी का निजू पुस्तकालय देखा। वहाँ पर उनसे वर्तमान शिक्षा-पद्धति, शासन और व्यापार सम्बन्धी विचार-विनिमय हुआ। सदारंगिनी महोदय ने बताया कि वे कई वर्ष तक लाँगमैन कम्पनी में काम कर चुके थे, उससे उस कार्य के लिए उन्हें अलाउन्स मिलता था, साथ ही यह भी आज्ञा थी कि वे निजू कार्य भ ी करते रहें।

सायकाल श्री मथुरानी के साथ हम दूसरी बार मनोरा द्वीप देखने गये। उनके साथ उनके बड़े भाई भी थे जो मिलिटरी विभाग में एस०

डी० ओ० थे और हमें ज्योतिस्तंभ तथा ज्वार-भाटे के बाँध तक जाने में हमारी सहायता कर सकते थे। हम बोलटन मार्केट, केमाड़ी, सेतु-बंध होते हुए मनोरा टापू पहुँचे। मनोरा के समुद्र तट पर नौ सैनिक निवास गृहों से ऊपर-ऊपर चलते गये। मार्ग में हमने पत्थर और सीमेंट के बड़े-बड़े टुकड़े देखे जिनकी आकृति पानी की टक्कर से भिन्न-भिन्न रूप धारण कर चुकी थी। उनमें कुछ के अन्दर दराड़ें थीं और कुछ में छोटे बड़े छिद्र हो गये थे जिनमें कई प्रकार के जीव जन्तु रहते थे। हम ज्वार भाटे के बाँध की ओर बढ़ते जा रहे थे और उधर मथुरानी महाशय के बड़े भाई ने एक पत्र मनोरा एस० डी० ओ० से चौकीदार के नाम लिखवा लिया, जिससे वह काँटेदार फाटक के अन्दर हमें जाने दे। जब हम वहाँ पहुँचे तो चौकीदार वहाँ न था। समझा कि निराश लौटना होगा परन्तु ऐसा न हुआ। चौकीदार तुरन्त ही आ गया और हमें उस एहाते में प्रवेश करने की आज्ञा मिल गई जिस में से हम बाँध की ओर चले गये। हम जिस सड़क पर चल रहे थे उसके बाईं ओर बहुत मोटी और भारी दीवारें दीख पड़ती थीं। उन पर सीमेंट का पलस्तर लगा हुआ था। ऐसा प्रतीत होता था कि एक ओर भूमि के नीचे किला है जिसकी ये दीवारें हैं। इसका कोई अवश्य ही विशेष उद्देश्य होगा। हमें बाद में पता चला कि वह बारूद रखने का स्थान था और इसी लिए भूमि के नीचे बनाया गया था।

शीघ्र ही हम बाँध पर पहुँच गये। वह बाँध यहाँ इस लिये बनाया गया था कि समुद्र से बड़े वेग से आने वाले ज्वार-भाटे की लहरों को सीमा से न बढ़ने दिया जाय और वहाँ बन्दरगाह पर आने वाले जहाजों का मार्ग सुरक्षित रह सके। यहाँ पर हमने यह भी अनुमान किया कि केमाड़ी और मनोरा के बीच में जो समुद्र है उसका पानी इतना शान्त क्यों है। बाँध तक पहुँचने से पूर्व हमने पत्थर पर खुदा हुआ एक स्मृति लेख पढ़ा जिस का कुछ भाग इस प्रकार है:—

"ये स्मृति-पत्थर सात सौ छप्पन मन भारी है। इसी प्रकार के १८५० पत्थरों से बाँध बनाया गया है। यह स्मृति-पत्थर बड़े भारी क्रेन से उठाकर १६ जनवरी १८७० को रखा गया था। उस समय के बम्बई गवर्नर की उपस्थिति में तत्कालीन इंजीनियर कर्नल सर विलियम लोकियर मियरविदा, सी० बी० ने पहला ब्लोक १ नवम्बर १८७० को रखवाया था।"

इस बाँध की दीवार पर २० गज की दूरी तक चलते गये। पर हम इस भय से लौट पड़े कि कहीं ज्वार-भाटे की लहर ऊपर न उठ आये क्योंकि ज्वार भाटा प्रायः सायंकाल को आता है और उसकी लहरें दीवार के ऊपर तक आ जाती हैं जो वस्तु मार्ग में पड़े उसे भी साथ बहा ले जाती हैं।

हम साथ की ऊँची पहाड़ी पर चढ़ गये ताकि उस किले के चारों ओर पर्यटन करें। हमारे एक साथी का विचार था कि चारों ओर का चक्कर न काटा जाय और काँटेदार तार की जो बाड़ लगी थी उसे फाँद कर दूसरी ओर चले जायं क्योंकि उस ओर का मार्ग समीप प्रतीत होता था। मैं इससे सहमत न हुआ, हमारा चौथा नया साथी भी मुझ से सहमत था। हो सकता है वह इसलिए भी सहमत हो क्योंकि वह राज्य-कर्मचारी था। किले पर भ्रमण करके हम पुनः बाँध पर आ गये और कुछ ठहर कर फाटक की ओर चल दिये। यहाँ से हम ऐसे स्थान पर उतर कर पहुँचे जहाँ कि एक नौका केमाड़ी जाने वाले पथिकों की प्रतीक्षा में थी। हम केमाड़ी पहुँच तो गये पर इस में समय अधिक लग गया।

अगले दिन हमने मालीर जाना था। बस का प्रबन्ध ठीक समय पर न हो सका। वह स्थान दूर भी था। वहाँ जाना स्थगित कर दिया और गाँधी गार्डन पहुँचे। यहाँ भ्रमण करते हुए सर्व प्रथम भारतीय उद्बिलाव देखे जो पास के एक तालाब में थे। वहीं समीप हिरण घूम रहे थे। वहाँ गदम्बरी और सिरीं के वृक्ष थे। थोड़ी ही दूरी पर जेबरे,

शशक दीख पड़ते थे। साथ के पिंजरे में श्वेत मोरों का एक जोड़ा था। उसके साथ ही हरे रंग का एक कबूतर था। उसका पड़ौसी बड़ा नीला पीला दक्षिणी अमेरिकन मेगाव (Magaw) था। वहाँ नागफणी भी उग रही थी। साथ ही एक वट वृक्ष भी था जो जंगली भाई थोर से हाथ मिला रहा था। इन में कुछ चीन की मुर्गियाँ थीं जो हरे रंग की थीं और तीतर से कुछ ही बड़ी थीं। साथ के पिंजरे में एकविशेष प्रकार का मोर था। एक काली चोंच और काले सिर वाली बुलबुल थी। तब श्वेत मोरों का समूह देखा। निकट ही एक फूलों की क्यारी थी। इसके चारों ओर फराश की झाड़ियाँ बाड़ का काम दे रही थीं। आगे चलकर अफ्रीका के सिंह, बंगाल के बघेरे, धारीदार चर्ख, चीते, चीन की हरी सुफेद चिड़ियाँ और सुनहरी रंग के चीनी मुर्ग देखे जो तीतरों से मिलते-जुलते थे। उनमें कुछ आराम कर रहे थे, कुछ टहल रहे थे, कुछ कोनों में मुँह दिये आराम के स्थान ढूँढ रहे थे। हमने इस चिड़िया-घर के पशु पक्षियों तथा उसके समीप उगे वृक्षों को साधारण दृष्टि से देखा। भिन्न-भिन्न स्थानों पर ताड़ के वृक्ष लगे थे। हर एक के तनों पर गोल चक्कर से थे जिनसे उन की आयु का पता लग सकता था। यह हमें बताया गया था कि इन गाल चक्करों से यह पता चल जाता है कि इन ताड़ के वृक्षों को इतने वर्ष बीत चुके हैं। ये वृक्ष खजूर के वृक्षों से बहुत मिलते जुलते हैं। केवल इनके तने, अधिक सीधे, स्वच्छ, नर्म और अधिक श्वेत होते हैं। वहाँ नारियल के वृक्ष भी थे पर वे भी खजूर के वृक्षों के समान ही प्रतीत होते थे। ये ताड़ के वृक्षों की अपेक्षा कुछ कम सीधे, कम नर्म और कम श्वेत थे।

आज का भोजन मथरानी महोदय के यहाँ था। उससे हमें सिंधी भोजन का पता लगा। रोटी, चावल, आलू आदि के अतिरिक्त नीबू के रस में भीगे टमाटर और एक प्लेटमें घर की बनी मिठाइयाँ थीं। यहाँ की अच्छी सिकी हुई चपातियों को देखकर बम्बई के रायल होटल का

स्मरण हो आया जहाँ सिन्धी ढंग का भोजन मिलता था। भोजन के परोसने का ढंग और स्वच्छता प्रशंसनीय थे। इसके पश्चात् फलों की बारी आई जिनमें सेब अनार और मीठे विशेष थे।

वहाँ से तीन बजे निवृत हुये। विचार था कि मग्गापीर के गर्मजल के स्रोतों को देखने चलेंगे। ट्राम में बैठकर श्री मथरानी के साथ हम चक्की वाड़ा पहुँचे। अभी हम उतर कर दो गज भी न गये होंगे कि श्री मथरानी को वापस ट्राम पर चढ़ते और उतर कर आते देखा। पूछने पर पता चला कि उनका बटुआ ट्राममें निकाल लिया गया था। आध घंटे तक इसी उधेड़ बुन में रहे और निराश होकर मग्गापीर जाने का निश्चय बदल दिया।

अब हम विक्टोरिया गाड़ी द्वारा क्लिफ्टन देखने के लिए चल पड़े। ६ बजे पहुँचे, सायंकाल को वहाँ के दृश्य में बड़ी भिन्नता प्रतीत हुई। यहाँ शिक्षित और फैशनेबल लोगों को भ्रमण करने और आमोद-प्रमोद में लीन देखा। हम वहाँ से उस मंडप पर भी गये जो शिखर पर बना हुआ था। वहाँ की शीतल-मंद पवन का आनन्द ले कर चल दिये। पुल पर से समुद्र के एक सिरे पर पहुँचे और एक मंडप के नीचे बैठ गये। वहीं पत्थर पर एक लेख खुदा हुआ था कि "यह गोलार्द्ध और मण्डप नवम्बर १९२१ में तीन लाख की लागत से बने थे।"

इस बार हमने किलफ्टन के उद्यान के समीप ही दो साधारण झोंपड़ियाँ देखीं जहाँ बताया गया कि इस्माईलियों के गुरु श्री आगाखाँ का जन्म हुआ था। वहीं क्लिफ्टन होटल में चाय पीकर हम समुद्र के उस किनारे के समीप गये जहाँ कि ज्वार-भाटा आता है और मुड़ कर चला जाता है। जो मुझ से छोटे थे वे अपने जूते उतार कर समुद्र के पानी में कुछ दूर तक गये। वहाँ से लौटते हुए देखा कि कुछ दूरी पर कराची कारपोरेशन की ओर से आराम कुर्सियाँ पड़ीं थीं। कोई भी एक आना देकर कुर्सी पर बैठ सकता था। हम वहाँ से अब लौट कर

अपने निवास स्थान पर पहुँच गये ।

चार नवम्बर को हमें कराची से लौटना था। मैं और दुर्गादास बन्दर स्ट्रीट पर बच्चों के लिए कुछ लेने गये पर कोई उपयोगी वस्तु न दीख पड़ी अतः शीघ्र ही लौट आये। भोजन से निवृत्त होकर सामान ठीक किया और दोपहर के पश्चात् स्टेशन पर चले गये। कुछ देर बाद मैं गाड़ी में अपनी सुरक्षित सीट पर जा बैठा। ४॥ बजे गाड़ी स्टेशन से चली। जब मैं गाड़ी में बैठा तो वहाँ सेना के एक अधिकारी बैठे हुए थे। वे अभी कल ही वायुयान द्वारा इराक से कराची पहुँचे थे। उसने बताया कि उसकी पत्नी धर्मपुरा के अस्पताल में रुग्ण है, उसका आपरेशन होने वाला है। उसे रोका हुआ था कि जिससे मैं वहाँ उपस्थित हो सकूँ। पर वायुयान ३ घंटे निश्चित समय से पीछे पहुँचा। कारण यह था कि वायुयान में एक यात्री का दम घुटने लगा। वह इस कष्ट से छुटकारा पाने के लिये ऊपर की सीढ़ियों पर चढ़ गया और उसने वह खिड़की खोल दी जो आपत् काल में बरती जाती है। इससे दम घुटना तो बन्द हो गया परन्तु यह कार्य वायुयान की उड़ान में बाधक सिद्ध हुआ। वायु खिड़की द्वारा यान के अन्दर १२० मील प्रति मिनट की गति से आने लगी जिससे जहाज की चाल घट गई। खिड़की जब एक बार खुल गई तो उसे बन्द करना सम्भव न था। अब यह आवश्यक था कि वायुयान को नीचे उतार कर सुधारा जावे। जहाँ यान उतारा गया उसके निकट कोई कारखाना न था। इस लिए प्रबन्ध किया गया कि एक कारखाने को वायुयान द्वारा वहाँ लाया जाय। तदनुसार एक कारखाना वहाँ लाया गया। खिड़की बन्द करने के लिए उचित सुधार कर लिया गया। इस कार्य के कारण जहाज ३ घंटे लेट हो गया। इराक और कराची के बीच १८०० मील का मार्ग पड़ता है। यह यान बसरा से ५ बजे प्रातः चला था और कराची छावनी के ड्रग रोड के ऐरोड्रोम में ५ बजे सायं आकर पहुँचा।

इसी समय मैंने देखा कि उस सेनाधिकारी ने पोस्तीन के गर्म वस्त्र

पहने हुए थे। यद्यपि कराची में उस समय अच्छी गर्मी थी। उस ने बताया कि हवाई यात्रा में गर्म कपड़े पहनना आवश्यक होता है।

उस डब्बे में बैठे हुए साथियों में से वहाँ एक पार्सी सज्जन भी थे। उन्होंने बताया कि वह सिंध-शिक्षा विभाग में निरीक्षक रह चुके थे। उन्होंने अपना जीवन एक सहायक अध्यापक के रूप में आरम्भ किया था। सेवाकाल की समाप्ति पर वे भारतीय काम करने वालों में से सब से अधिक वेतन प्राप्त कर रहे थे।

अब वह हैदराबाद (सिंध) जा रहे थे ताकि उस भूमि का निरीक्षण कर सकें जो पार्सी जाति के आठ नवयुवकों के लिए खरीदी गई थी और जिस में उन नवयुवकों ने कृषि का कार्य करना था। उन्होंने आगे बताया कि उनकी जाति ने यह धन एक प्रकार के व्यापार में लगा दिया है क्योंकि यह शर्त थी कि धन जातीय संस्था को लौटा देना होगा। पर इसे लौटाने का कार्य ६ वर्ष पश्चात् आरम्भ होगा और लौटाने के लिए भी ६ वर्ष और मिलेंगे, यदि आवश्यक समझा गया तो लौटाने की अवधि और बढ़ाई जा सकती है। इस में जो उद्देश्य कार्य कर रहा था वह यह था कि पार्सी जाति में भूमिपति बनने का विचार स्थापित किया जाय और जाति के सुशिक्षित व्यक्तियों के अन्दर अपने हाथों कृषि-कर्म कर के उनका उत्साह बढ़ाया जाय।

कराची छावनी के स्टेशन से एक और सज्जन गाड़ी में आये। ये एक सिंधी हिन्दू थे। ये अच्छे वृद्ध थे, उनकी आयु ७० वर्ष से अधिक होगी। उनके साथ बड़ा भारी सामान था। जिस ढंग से उन्होंने अपना सामान रखना आरम्भ किया उससे ऐसा दीख पड़ता था कि वे यात्रा के नियमों से बहुत जानकारी न रखते थे। किन्तु शनैः शनैः जब उन्हों ने वार्तालाप की तो कुछ इस के विपरीत ही प्रतीत हुआ।

यह भाई पार्सी महोदय से वार्तालाप करते हुए जब यह बता रहा था कि पहले वह शराब का व्यापारी था और प्रथम महायुद्ध में (१९१४ से १९१८ तक) उसे बड़ी आर्थिक हानि उठानी पड़ी थी। इस बात को

सुनकर मुझे उस की अन्य बातें सुनने की ओर रुचि घट गई। एक तो शराब का व्यापारी और दूसरे वह हो गया था निर्धन, इससे और क्या आशा हो सकती थी? मुझे वह सुशिक्षित भी प्रतीत न होता था। पर पीछे जब वह किसी किसी समय उस पारसी महाशय से बातें करते तो मुझ पर इस बात का अवश्य प्रभाव पड़ रहा था कि वे सिंध और पंजाब के कई नगरों में भ्रमण कर चुके हैं और कई मान्य व्यक्तियों को जानते हैं। कभी वे श्री कर्मचन्द विद्यार्थी से पूर्व भारत बीमा कम्पनी के प्रबन्धक रह चुके थे। इसी कारण वे श्री हरकिशनलाल को भलि भांति जानते थे। उनके साथ काम भी कर चुके थे। डा० गोकुल चन्द नारंग से भी परिचित थे। उनका एक पुत्र डा० नारंग के एक कारखाने में अच्छे पद पर नियुक्त था, ऐसा भी बताया गया।

हैदराबाद का स्टेशन आ गया। हमारे पार्सी साथी तो वहीं उतर गये। वहाँ कुछ नवयुवकों ने उनका स्वागत किया। ये वे आठ नवयुवक थे जिन्हें पार्सी जाति की ओर से भूमि लेकर दी गई थी।

गाड़ी वहाँ से आगे चली। कोटरी स्टेशन से अन्धेरा प्रारम्भ हो चुका था। १० बजे के पश्चात् हम सो गए। प्रातः हमें पता चला कि रात को गाड़ी दो घण्टे मार्ग में रुकी रही थी। पूछने पर इसका कारण विदित हुआ कि रात को हुरों ने गाड़ी पर गोली चला कर उसे रोक लिया था और गार्ड को बन्दूक दिखा कर विवश कर दिया था कि वह गाड़ी रोके रखे। कदाचित् उनके मन में गाड़ी लूटने की हो, क्योंकि उन दिनों ऐसे कुछ कार्य समाचार-पत्रों में प्रकाशित हो चुके थे। पर गार्ड गाड़ी को किसी प्रकार सुरक्षित स्थान पर ले आया।

हुर—हुर मुसलमानों की एक ज़ाति है। यह विशेषतया सिंध के जंगलों में रह कर फल-फूल और मांस पर निर्वाह करती है। कुछ व्यक्ति कृषि द्वारा भी अन्न उत्पन्न करते हैं। ये लोग अपने एक धार्मिक नेता पीर पगाड़ू की महत्ता और पवित्रता पर विश्वास रखते हैं। उसके आदेश की पूर्ति के लिए प्राण निछावर करने में संकोच नहीं करते। ये साधार-

णतया सभ्य समाज से दूर रहते हैं। आवश्यकता पड़ने पर यात्रियों को लूट लेते हैं, हत्याएँ भी कर देते हैं। गत महायुद्ध के दिनों में उन्होंने अंग्रेजों के विरुद्ध भी सिर उठाया था। इस पर बहुतों को पकड़ कर जेल में डाल दिया गया, कुछ को जिन्होंने सामना किया गोली से मार दिया गया। इसके नेता पीर पगाड़ू को पकड़कर सी०पी० के स्योनी नामक स्थान पर जेल में रखा गया। कहते हैं कि कुछ समय पीछे इस पर अभियोग चला कर फाँसी की सजा दी गई। पीर पगाड़ू जब स्योनी जेल में था तो उन दिनों मेरे मित्र श्री काशीराम पी० डब्ल्यू० डी० विभाग में काम करते थे। वे जेल में अपने कार्य के सम्बन्ध में जाते रहते थे। उन्हें पीर पगाड़ू को देखने का अवसर भी हुआ था। उन्होंने मुझे भी उस के विषय में बताया कि वह एक अच्छे डील-डौल का हृष्ट पुष्ट व्यक्ति था और यद्यपि उसके आराम के लिए सब सुविधाएं प्रदान की गई थीं, वह सादा ढंग से ही रहना पसन्द करता था। बन्दी होते हुए भी बड़ा निर्भीक और मस्त था क्योंकि वह न केवल स्वतन्त्र वायु-मंडल में पला था अपितु वह एक प्रकार से नेता होते हुए अपनी प्रजा का शासक भी था।

यद्यपि गाड़ी में धूल मिट्टी बहुत उड़ रही थी पर जिस डिब्बे में मैं बैठा था उस में वायु आने जाने का विशेष प्रबन्ध था अतः कराची से लौटते हुए इस यात्रा में मुझे कोई विशेष कष्ट न हुआ।

गाड़ी डेढ़ घण्टा लेट पहुँची। लाहौर स्टेशन पर हम रात को आठ बजे पहुँचे। घर पर आया तो सब पुत्र-पौत्र आदि मुझसे मिले। ओंप्रकाश अपनी धर्मपत्नी की बीमारी का समाचार पाकर पेशावर गया हुआ था। मैं नित्य-कर्म से निवृत्त हो दस बजे अपने बिस्तर पर लेट गया।

मेरे संस्मरण

चतुर्थ खण्ड

चतुर्थ खंड

विषय		पृष्ठ



श्री हैरेल्ड मैकमिलन
(By Courtesy of Mr. Walter Stoneman)

१—एक ब्रिटिश राजनीतिज्ञ के साथ

अन्तरिम-शासन-काल

विज्ञान सम्मेलन—१९४७ के आरंभ में भारत में अन्तरिम शासन चल रहा था। इन्हीं दिनों जनवरी में विज्ञान कांग्रेस का अधिवेशन दिल्ली में हुआ। इस अधिवेशन के प्रधान थे पं० जवाहरलाल नेहरू। ३ जनवरी को दिल्ली विश्व-विद्यालय के मैदान में कार्यवाही आरंभ हुई। इस अवसर पर प्रसिद्ध बर्मी नेता श्री आँग साँग भी पं० जवाहरलाल नेहरू के साथ बैठे हुए थे। देश भर के १००० प्रतिनिधि अधिवेशन में सम्मिलित हुए। ब्रिटिश प्रतिनिधि श्री चार्ल्स डार्विन भी आये थे। ये विकासवाद के सिद्धांत के विश्व-विख्यात आविष्कारक श्री डार्विन के पौत्र थे। पंडित नेहरू के पास दिल्ली विश्व-विद्यालय के वाइस-चांसलर सर मारिस ग्वायर भी बैठे थे।

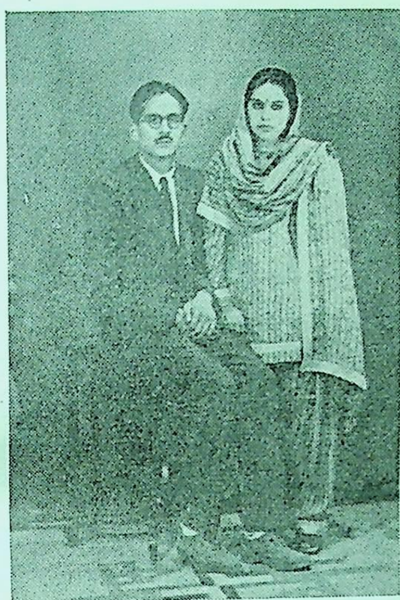
यह शीतकाल था और साथ ही वर्षा भी हो रही थी। अधिक शीत के कारण मेरी गर्दन के पीछे दर्द बढ़ गया था जो चलने फिरने से और भी असह्य होता जा रहा था। इसी अवस्था में मैं विश्व-विद्यालय के मैदान में पहुँचा था।

भारत में विज्ञान सम्बन्धी अनुसन्धानशालाओं की बड़ी कमी थी। भारत की अन्तरिम सरकार इस कमी को दूर करना चाहती थी। त्रिवेन्द्रम (दक्षिण) में शीघ्र ही रेल के इंजिन बनाने की तैयारी हो रही थी। स्वतन्त्र भारत वैज्ञानिक उन्नति में संसार से पीछे न रहेगा, यही सब का सम्मिलित स्वर था। भारतीय विज्ञानवेत्ता प्रयोगशालाओं की स्थापना का स्वप्न ले रहे थे। विज्ञान से ही भारत उन्नति कर सकेगा इसमें किसी को सन्देह न था। इस अवसर पर विभिन्न भाषण हुए और हमारी अन्तरिम सरकार ने उनका समर्थन किया।

श्री हैरेल्ड मैकमिलन—विज्ञान कांग्रेस के समाप्त होने पर मैं लाहौर चला गया। तीन सप्ताह उपरान्त मुझे सूचना मिली कि मैकमिलन कम्पनी के संचालक श्री हैरेल्ड मैकमिलन भारत में भ्रमणार्थ आ रहे हैं। मैं २७ जनवरी को पुनः दिल्ली के लिये चल पड़ा। श्री मैकमिलन एक ब्रिटिश राजनीतिज्ञ हैं। वे चर्चिल के मंत्री-मंडल के सप्लाई मंत्री रह चुके थे। वे उस समय भी महाराज जार्ज के प्रीवी-कौंसलर थे, उनका अन्तरिम सरकार के सदस्यों के साथ मिलने का प्रबन्ध करना था। वायसराय-भवन में उन्हें लाने और ठहराने की व्यवस्था करनी थी। इस कार्य में श्री बी० पी० स्याना भी सहयोग देने के लिये इलाहाबाद से आ रहे थे, एक बार तो वे दिल्ली आकर लखनऊ लौट भी गये थे। इन्होंने २६ की प्रातः फिर आना था। उनके आने पर मैं उनसे मिला और उनके साथ श्री मैकमिलन के स्वागत का कार्यक्रम बनाया।

एक फरवरी को ११॥ बजे दिल्ली के विलिङ्गडन एयरपोर्ट पर उनके उतरने का समय था। मैं सर मारिस ग्वायर वाइस-चांसलर दिल्ली विश्वविद्यालय से मिला और एक फरवरी को ही उनसे श्री मैकमिलन के मिलने का समय नियत कर लिया। फिर सेक्रेटेरियट आकर भिन्न-भिन्न विभागों के कार्य-सचिवों से भेंट की ताकि वे अपने-अपने विभागों के माननीय सदस्यों से श्री मैकमिलन के मिलने का समय पूछ सकें।

अगले दिन पुनः भारतीय सचिवालय में जाकर शिक्षा विभाग में शिक्षा कमिश्नर की सचिव कुमारी बोस से मिला। उनसे तथा शिक्षा कमिश्नर सर जान सार्जेंट से श्री मैकमिलन के मिलने का समय निश्चित कर लिया। इसी प्रकार अन्य विभागों के माननीय सदस्यों से मिलने के सम्बन्ध में उनके कार्यालय-सचिवों से मिला। तत्पश्चात् वायसराय के सैन्यसचिव से मिला और श्री मैकमिलन के लिये कार आदि भेजने तथा एयरपोर्ट से उनके सामान लाने की व्यवस्था कराई।



राज बहादुर अपनी पत्नी सहित

मेरे बन्धु राजबहादुर जो भारतीय सेना के रक्षा-विभाग में कार्य करते थे, उस समय सपरिवार नई दिल्ली में रहते थे। उनके निमन्त्रण पर मैंने उनके घर जाकर रहना स्वीकार कर लिया। अगले दिन वे स्वतः मेरा सामान लें गये। वहाँ से मैं श्री स्थाना के पास पहुँचा और उन्हें साथ लेकर वायसराय भवन में गया। वहाँ सैन्य-सचिव से अनुरोध किया कि वे तीन फरवरी को श्री मैकमिलन का सेण्ट्रल असेम्बली अर्थात् केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा का अधिवेशन वायसराय के बाक्स में बैठकर देखने के लिए प्रबंध कर देवें।

प्रथम फरवरी को ठीक ११॥ बजे श्री मैकमिलन दिल्ली के एयरपोर्ट पर पहुँचे। वहाँ मैं, श्री स्थाना और मेरा पुत्र सत्यव्रत कुछ समय पूर्व ही पहुँच चुके थे। श्री मैकमिलन के साथ उनके निजी मंत्री श्री जान वाइण्डहम भी थे। ज्यों ही वे जहाज़ से उतरे, वायसराय के ए० डी० सी० ने

हमें उनसे मिलने में सहायता की। हम तुरन्त ही कार में बैठकर वहाँ से वायसराय-भवन की ओर चल दिये। वहाँ पहुँच कर हमारी श्री मैकमिलन से वार्तालाप हुई। वे हम से बड़े प्रेमपूर्वक मिले। उस समय वे बड़े प्रसन्नचित्त प्रतीत होते थे। उन्होंने पाश्चात्य प्रथानुसार उस सुहावनी ऋतु की बड़ी प्रशंसा की। वास्तव में ऐसी ऋतु उनके यहाँ वसन्त ऋतु होती है, कदाचित् गर्मियों में आते तो बात दूसरी ही होती।

तत्पश्चात् मैंने देहली विश्व-विद्यालय के वाइस-चांसलर, सर ग्वायर से मिलकर श्री मैकमिलन के मिलने का समय नियत किया। उन्होंने विश्व विद्यालय में ही ५॥ बजे मिलने का समय दिया। हम नियत समय पर श्री मैकमिलन को लेकर सर ग्वायर से मिले। इस समय श्री स्थाना और सत्यव्रत भी साथ थे। कुछ देर वार्तालाप के अनन्तर हम तीनों बाहर चले गये और श्री मैकमिलन तथा सर ग्वायर एकान्त में विचार विनिमय करते रहे।

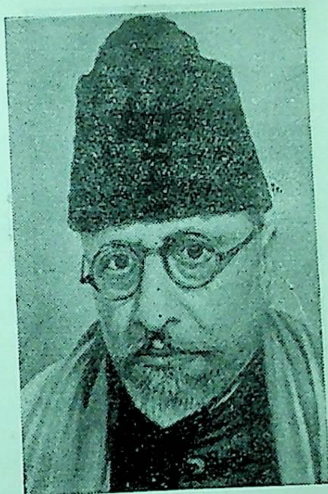
अगला दिन रविवार था। श्री मैकमिलन से हमारे मिलने का समय ५॥ बजे सायं नियत था, तदनुसार श्री स्थाना और मैं उनसे वायसराय भवन में मिले। वहाँ हमारी कुछ समय तक कार्य के सम्बन्ध में वार्तालाप हुई। उन्होंने हमारी बातों को बड़े ध्यान पूर्वक सुना और उस पर सहानुभूति प्रकट की।

सोमवार के दिन सेक्रेटेरियट में शिक्षा विभाग के उच्चाधिकारी श्री जान सार्जेंट से भेंट हुई। उसी दिन व्यवस्थापिका सभा का अधिवेशन भी देखना निश्चित था। वायसराय के बाक्स में श्री मैकमिलन के लिये स्थान सुरक्षित था ही। ११ बजे से एक बजे तक मेरे साथ सत्यव्रत ने भी उस कार्यवाही को देखा। ३॥ बजे से ५ बजे तक दूसरी बैठक में भी दर्शकों के स्थान में बैठकर कार्यवाही सुनी। इस बीच में जब समय मिला तो मैं विदेश विभाग के कार्यालय अध्यक्ष श्री त्रिलोकसिंह, शिक्षा-विभाग के श्री हिमायूँ कबीर और गृह-विभाग के श्री शंकर से मिला और इन विभागों

के माननीय सदस्यों से श्री मैकमिलन के साथ मिलने के समय का निश्चय किया। इसी बीच में मैं अर्थ-विभाग में गया और वहाँ के सचिव से मिलने के लिये परिचय-पत्र भेजा। जब मिला और अपना तात्पर्य प्रकट किया तो वे बड़े उपेक्षा भाव से कहने लगे कि श्री लियाकत अली बड़े आवश्यक कार्य में लगे हैं अतः उनका मिलनासम्भव नहीं है। जब मैंने उन्हें बताया कि श्री मैकमिलन अपने निजू कार्य के निमित्त मिलना नहीं चाहते अपितु भारतीय समस्याओं पर बातचीत करना चाहते हैं तब कहीं उन्होंने उनसे मिलने का समय नियत करना स्वीकार किया।

यहाँ से लौट कर मैं अपने निवास पर आ रहा था कि कनाट प्लेस में अकस्मात् मेरे पुराने सहपाठी और फार्वर्डब्लाक के नेता श्री सार्दूलसिंह कवीश्वर से भेंट हुई। उस समय की राजनैतिक अवस्था पर वार्तालाप चल पड़ी, वे उस समय की अवस्थाओं से असन्तुष्ट प्रतीत होते थे।

श्री मैकमिलन पं० जवाहरलाल नेहरू से मिलने के बड़े इच्छुक थे। जब पण्डित जी के सचिव द्वारा पूछा गया तो उन्होंने मैकमिलन महोदय को रात्रि के भोजन पर आमन्त्रित कर लिया जहाँ उन्हें वार्तालाप का अवसर मिल गया।

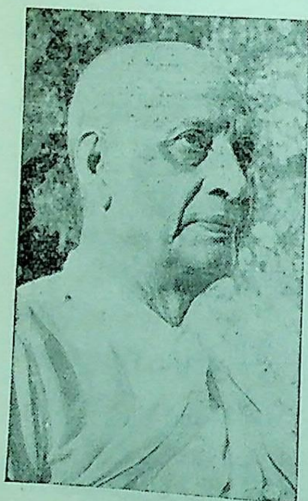


मौलाना आज़ाद

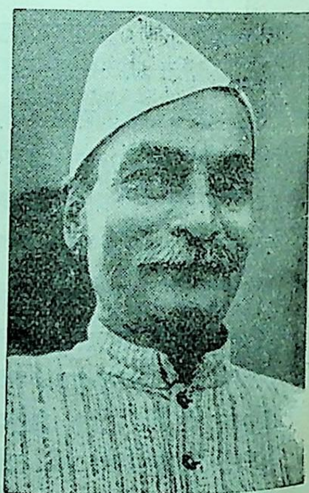
अगले दिन ईदे-मिलाद का सरकारी-विभागों में अवकाश था। अतः निश्चय हुआ कि मैकमिलन महोदय मंत्रि-मंडल के सदस्यों से उनके गृहों पर मिलेंगे। ठीक समय पर मैं और सत्यव्रत वायसराय भवन पहुँचे। ९ बजे

शिक्षा विभाग के सदस्य मौलाना अबुल कलाम आज़ाद से मिले। प्रो० हिमायूँ कबीर उनके निजी सचिव थे। जब हम वहाँ जाकर बैठे तो उन्होंने हमारा काफ़ी से सत्कार किया। मौलाना साहब तो उर्दू में ही बातें करते थे, उनकी ओर से प्रो० हिमायूँ कबीर अंग्रेज़ी में समझा देते थे, किसी किसी समय मैं भी इस कार्य में सहायता देता था।

६॥ बजे सरदार पटेल की कोठी पर गये। वहाँ पर प्रथम सरदार पटेल की पुत्री कुमारी मनी बहन से भेंट हुई। वे उस समय अपने पिता की निजी सचिव थीं। वे हमें सरदार पटेल के पास ले गईं जहाँ हमारी उनसे साधारण विषयों पर बातचीत हुई। जब वे राजनैतिक समस्याओं पर विचार-विनिमय करने लगे तो मैं कुमारी मनी बहन के पास बाहर आ बैठा। उस समय सरदार बलदेवसिंह भी वहाँ आ पहुँचे। तत्पश्चात् श्री मैकमिलन भी बाहर आ गये।



सरदार पटेल



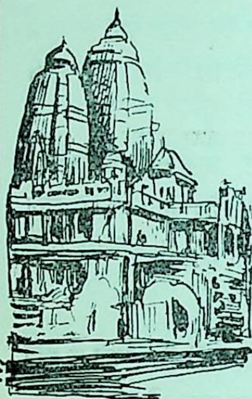
डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद

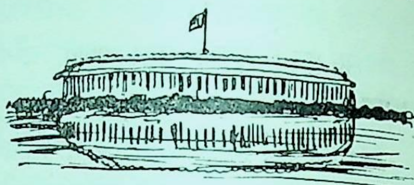
वहाँ से हम दोनों कृषि विभाग के सदस्य डा० राजेन्द्रप्रसाद की कोठी पर गये। वे बड़े प्रेमपूर्वक हम से मिले। उनकी नम्रता तथा शिष्टाचार से हम बड़े प्रभावित हुए। उनकी मधुर वाणी और कोमल स्वभाव में बड़ा आकर्षण था।

११। बजे अर्थ विभाग के सदस्य श्री लियाकत अली खां की कोठी पर गये। मैं उनसे मिला तो अवश्य पर बातचीत में कोई भाग न ले सका क्योंकि उनकी कुछ गुप्त विषयों पर मंत्रणा होनी थी। १२॥ बजे हम वाय-सराय भवन को लौट गये।

श्री मैकमिलन साधारण रूप से तो भारत में आये थे कम्पनी के कार्य को देखने के लिये और उसकी ओर उन्होंने पर्याप्त ध्यान भी दिया। परन्तु उनके कार्यक्रम से ऐसा प्रतीत होता था कि उनके आने का प्रयोजन राज-नैतिक भी था। उन्होंने यह इच्छा प्रकट की थी कि श्री जिन्ना को कराची तार दिया जाय ताकि वह दिल्ली आकर उनसे मिलें। पर श्री जिन्ना ने दिल्ली आना स्वीकार न किया। इस पर मैकमिलन महोदय ने कोई रोष प्रकट न किया और यह निश्चय किया कि वे लखनऊ और कलकत्ता होकर मद्रास जायेंगे और वहाँ से हवाई जहाज द्वारा कराची जाकर श्री जिन्ना से मिलेंगे। इस बीच में समय पाकर मैंने उन्हें परामर्श दिया कि वे मद्रास से सीधे लंदन को क्यों न चले जायें जिससे उनका समय बच सकता है। इस पर उनके मुख से अकस्मात् निकल गया कि लंदन पहुँच कर श्री चर्चिल को इस विषय में सूचना देनी है अतः उन्होंने ऐसा करना स्वीकार न किया।

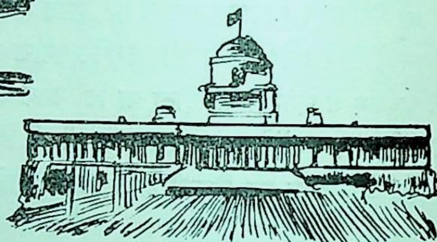
इसके सिवा वे जब भारत सरकार के सदस्यों से मिलते तब कुछ समय तो मेरे सामने ही वार्तालाप करते थे, परन्तु कुछ समय वे उनसे एकांत में भी मिलते थे। उस समय यह स्पष्ट झलकता था कि वे कुछ राजनैतिक गुप्त रहस्यों पर भी बात करते हैं।





केन्द्रीय सचिवालय

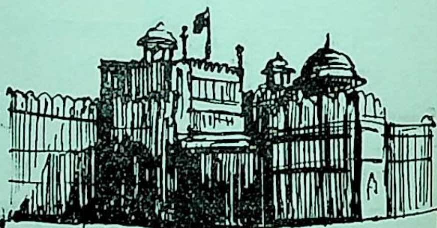
लक्ष्मीनारायण (बिड़ला) मंदिर



राष्ट्रपति भवन



कुतुब मीनार (महरौली)



लाल किला

वायसराय-भवन पहुँच कर श्री मैकमिलन को हम विलिंगडन ऐरोड्रोम पर छोड़ने गये। वहाँ से वे वायुयान द्वारा लखनऊ चले गये, इस दिन सत्यव्रत के अतिरिक्त राज बहादुर भी मेरे साथ था। हम वहाँ से कुतुब-मीनार गये जहाँ लोहे की लाट व आस पास के अन्य स्थान देखे। वहाँ से लाल किला होते हुए बिरला मन्दिर भी गये।

अगले दिन मैं कुछ निजी कार्यों में लग गया। प्रथम श्री सरदारचन्द्र की कोठी पर गया। उनकी माता उस समय एक असाध्य रोग से पीड़ित थीं। कई वर्ष पश्चात् मैंने उनके दर्शन किये थे। कभी वर्षों पूर्व हम उनके साथ जालन्धर में रह चुके थे। सरदारचन्द्र जी से भी वार्तालाप हुई। अतीत स्मृतियाँ जग पड़ीं। उस समय मैं आर्य शिक्षा-समिति के लिये धन एकत्र कर रहा था। उन्होंने इस निधि में पुष्कल मात्रा में धन दिया। पास ही श्री नारायणदत्त जी की कोठी पर महाशय कृष्ण ठहरे हुए थे, उनसे भी भेंट हुई।

लाहौर लौटने के आठ दस दिन पश्चात् गुरुदत्त-भवन में विद्या सभा की बैठक थी। गुरुकुल कांगड़ी के लिये सुधार कमेटी के विषय पर वार्तालाप चल रही थी। सदस्य होने के नाते मैं भी उसमें सम्मिलित हुआ। उक्त विषय पर बिना अन्तिम निर्णय पर पहुँचे ही बैठक समाप्त हो गई।

२—जन्म-भूमि में अन्तिम बार

पुस्तक के आरम्भ में मैंने अपनी जन्मभूमि का सविस्तर वर्णन कर दिया है। शिक्षा प्राप्त करने के बाद किस प्रकार कार्य बढ़ने के साथ २ मेरा उससे दूर रहना आरम्भ होगया यह भी यथास्थान आ चुका है। अब तो कुछ वर्षों से मुझे अपनी जन्मभूमि के दर्शन करने का सौभाग्य न प्राप्त हुआ था। अपने कार्यों में लगे रहने से मैं शनैः शनैः वहाँ से दूर हो रहा था। अब जब कि मैं कराची देख कर के लौट आया तो मुझे मातृ-भूमि के दर्शन करने की इच्छा हुई। अकस्मात् एक कारण भी ऐसा उपस्थित होगया कि मुझे उधर जाना पड़ा। हमारे एक भाई श्री दीवानचन्द के पुत्र कर्तारचन्द का जलालपुर जट्टाँ में विवाह होने वाला था। मेरे पुत्र बलराज और धर्म-वीर पहले ही बारात के साथ वहाँ पहुँच गये थे। मैं भी १७ फरवरी को लाहौर से गुजरात के लिये प्रातः ६-२५ की गाड़ी से चल पड़ा।

सारे भारतवर्ष के लिए १६४७ का वर्ष संक्रांति काल था। केन्द्र में अन्तरिम शासन था। इसमें अब मुसलिम लीगी भी सम्मिलित हो गये थे। इससे इस संस्था का महत्त्व बढ़ गया था। पंजाब में अभी सर खिज़रहयात का मंत्रिमण्डल कार्य कर रहा था। यहाँ लीगी मंत्रिमंडल बनाने के प्रयत्न सफल न हुए थे क्योंकि विदेशी सरकार उसकी पीठ पर थी। खिजर हयात मंत्रिमंडल को तोड़ना आवश्यक समझा जा रहा था अतः लीग की ओर से एक सरकार विरोधी आन्दोलन चल रहा था।

लीग की ओर से स्थान २ पर जलूस निकाले जा रहे थे। समूह का समूह एकत्र हो जाता था, गाड़ी रोक ली जाती थी, रेल कर्मचारियों और यात्रियों को तंग किया जा रहा था। इस कष्ट के भागी केवल हिन्दू ही होते थे क्योंकि प्रत्येक मुसलमान तो लीगी था और लीग के प्रत्येक कार्य का सहयोगी था चाहे वह सरकारी हो अथवा जनता का। मैं जिस ट्रेन

से चला वह फ्रण्टियर मेल थी। उसे लीगी जन-समूह ने मार्ग में कई स्थानों पर रोके रखा। परिणाम यह हुआ कि गाड़ी ४ घंटे लेट हो गई, ३॥ बजे सायं गुजरात पहुँची। यह भी देखने में आया कि पुलिस ने लीगियों की गड़बड़ हटाने की ओर कोई प्रयत्न नहीं किया। इससे उनका उत्साह इतना बढ़ गया कि वे जहाँ चाहते वहाँ गाड़ी खड़ी कर लेते थे। मैं अपने भाई के घर चार बजे सायं पहुँचा। बारात जलालपुरजट्टाँ चली जा चुकी थी। मैं भी ताँगे द्वारा वहाँ जा पहुँचा। वहाँ मुझे मेरे प्रिय बन्धु जगन्नाथ नरूला मिले जो कन्या पक्ष की ओर से बारात के स्वागतार्थ उपस्थित थे।

जलालपुर-जट्टाँ में भी मुस्लिम लीग का आन्दोलन जोर से चल रहा था। वहाँ मुसलमान स्त्री-पुरुष बड़ी संख्या में इस्लामिया स्कूल में एकत्र हो रहे थे, इस्लामी झंडे उनके हाथ में थे, एक बड़े भारी जलूस की तैयारी हो रही थी। नगर में एक अजीब चहल-पहल थी। फिर भी खिजर हयात-मिनिस्ट्री से उन्हें बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं। बंगाल और सीमान्त के समाचारों ने जहाँ उनमें चिन्ता पैदा कर दी थी वहाँ अन्तरिम सरकार की स्थापना से उनमें आशा और धैर्य बँध रहा था।

मैं अपने दोनों पुत्रों बलराज और धर्मवीर को अपने साथ उस स्कूल में ले गया जहाँ कि मैंने पहले पाँच वर्ष शिक्षा प्राप्त की थी। मैंने उन्हें ठीक वह स्थान भी दिखाया जहाँ कि अपनी शिक्षा के प्रारम्भ में मैं पहले ही दिन जाकर बैठा था और कुछ समय व्यतीत किया था।

जैसा कि मैं अपने ग्राम के वर्णन में बता चुका हूँ मेरा ग्राम जलालपुर जट्टाँ से बहुत ही निकट है। मैंने अपने पुत्रों को वहाँ से अपने साथ ले जाकर अपना वह घर दिखाया जिसमें मैंने जन्म लिया था और जहाँ जीवन के प्रथम १४ वर्ष व्यतीत किये थे। मकान उस समय गिर रहा था और अच्छी अवस्था में नहीं था। मैंने उन्हें ग्राम के बाज़ार में अपनी दो दुकानें भी दिखाईं। तत्पश्चात् श्री कर्मचन्द्र नरूला से मिला। वैसे तो ये मेरे चाचा

थे, पर थे मेरी समान आयु के और हम बचपन में एक साथही खेले थे, इसलिये उनसे मिलकर विशेष प्रसन्नता हुई। वहाँ से साथ के ग्राम कुलाचौर में गये। वहीं अपने कुलबंधु श्री जयराम, उनकी धर्म-पत्नी व बच्चों से मिले। हम सबको एक दूसरे से मिल कर बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने हमारा प्रेमपूर्वक स्वागत किया और दूध आदि से सत्कार भी किया।

इस्लामगढ़ लौट कर मैंने अपने ताऊ सरदार शेरसिंह जी के दर्शन किये। उस समय उनकी आयु ६३ वर्ष की थी। इनके ये अन्तिम दर्शन थे क्योंकि जब अगस्त मास में वहाँ से हिन्दुओं को निकलना पड़ा तो उन्होंने मार्ग में ही प्राण त्याग दिये। वह सचमुच ऐसा समय था कि उनके शव का दाह-कर्म भी न हो सका और उसे जल में ही प्रवाह करना पड़ा। मेरे साथ मेरे दो पुत्रों के अतिरिक्त भाई रामचन्द्र और अन्य बन्धु भी थे। उनके आग्रह पर हम सबने ग्राम का चक्कर लगाया।

ग्राम तथा अपने जन्म-गृह को देख कर मेरा मन गद्‌गद् हो रहा था। मेरे मन में भावनायें आ रही थीं। वे मुझे प्रेरित कर रही थीं कि वर्ष में से कुछ समय निकाल कर यहाँ के जलवायु से स्वास्थ्य लाभ उठाना चाहिये। मुझे ऐसा प्रतीत होता था कि मैं माता की गोद में हूँ और उसका स्नेह मुझे खींच रहा है और अप्रकट रूप से संकेत कर रहा है कि पुत्र अब मैं तुम्हें कैसे मिलूँगी ! सचमुच किसी का स्वप्न में भी यह विचार न था कि भारत विभाजन होने वाला है और ये इस भूमि के अन्तिम दर्शन हैं !!

हम अपने भावों में मग्न हुए हुए ६ बजे सायं जलालपुर-जट्टाँ लौटे और रात को ही गुजरात जाकर अपनी बुआ के घर पर रहे।

अगले दिन १६ फरवरी को शिवरात्रि थी और उस दिन अवकाश था। मैं अपने पुराने मित्र मा० देवीदास से मिला और उनके साथ जमींदारा कालेज के प्रिंसिपल से मिलने गया। कुछ समय शिक्षा सम्बन्धी विषयों

पर विचार विनिमय हुआ । और भी कई मित्रों के दर्शन हुए, डस्का के भक्त दीवानचन्द और तंगत्रेला के सन्त ठाकुरसिंह, और श्री फकीरचन्द जी छाबड़ा के नाम उल्लेखनीय हैं । २१ को वहाँ से वजीराबाद गया और अपने बन्धु सरदार बूड़सिंह के पास ठहरा ।

३—हमारा स्वाधीनता-संघर्ष

राजनैतिक आन्दोलन का सिंहावलोकन—१९४७ का वर्ष भारत के लिये बड़ा महत्त्वपूर्ण था। गत साठ वर्षों से स्वतंत्रता के लिये किये गये आन्दोलन का फल इसी वर्ष मिला। वैसे तो महाभारत युद्ध के परिणाम स्वरूप भारत का पतन आरंभ हो गया था पर लगभग गत हजार वर्ष से देश की राज्य-व्यवस्था भी विदेशियों के हाथ में जा चुकी थी। १८ वीं शताब्दी में शासन प्रबन्ध अंग्रेजों के हाथ में आ गया था। १८५७ में विदेशी जूए को उतारने के लिए महान् राज्य क्रान्ति हुई, पर वह असफल रही। हाँ इसके पीछे कुछ वर्षों बाद देश कुछ संभला और स्वतंत्रता के प्रति अनुराग के भाव बढ़ने लगे।

स्वतंत्रता का उपदेष्टा दयानन्द—इस युग में महर्षि दयानन्द ने जब भारत में वैदिक धर्म का प्रचार किया तो साधारणतया पहले-पहल तो अपने और पराये यही समझते थे कि यह प्रचार कार्य प्राचीन साम्प्रदायिक रूढ़ियों को उखाड़ने और उनके स्थान पर नये विचार स्थापित करने के एकमात्र उद्देश्य से किया जा रहा है। ज्यों ज्यों समय व्यतीत होता गया, विद्वानों के अतिरिक्त साधारण जनता भी यह जान गई कि यह दीर्घदर्शी ऋषि सत्य सनातन वैदिक धर्म को पुनर्जीवित करने की चेष्टा कर रहा है। इसके साथ ही ऋषि ने लोगों के सन्मुख स्वदेश प्रेम और स्वदेश भक्ति का आदर्श भी रखा। देश सुधार व राजनैतिक वातावरण को शुद्ध बनाने के निमित्त प्रयत्न आरम्भ हो गया। उन्होंने सत्यार्थ-प्रकाश के अष्टम समुल्लास में लिखा—"कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है अथवा मतमतान्तरों के आग्रह रहित अपने और पराये का पक्षपात शून्य प्रजा पर पिता-माता के समान कृपा,

न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।"

महर्षि का बलिदान व्यर्थ न गया। देश में धार्मिक विचारों की क्रान्ति के साथ स्वदेशी के प्रति भक्ति बढ़ती गई। महर्षि की तपस्या रंग लाने लगी। तत्कालीन नेता इस भाव को क्रियात्मक रूप देने का स्वप्न देखने लगे, पर थे वे पाश्चात्य शिक्षा तथा इतिहास से प्रभावित। वे स्वतंत्रता के प्रबल समर्थक होते हुए भी उसका ढाँचा पश्चिमीय ढंग का ही बना सके। महर्षि के बलिदान के दो वर्ष पश्चात् इण्डियन नैशनल कांग्रेस की नींव १८८५ में रखी गई और उसी समय उसका प्रथम अधिवेशन हुआ।

स्वतंत्रता के मार्ग पर—स्वतंत्रता के लिये मार्ग तैयार होने लगा। नेता एकत्र होकर देश की उन्नति पर विचार करने लगे। दादा भाई नौरोजी और सर फीरोज़शाह मेहता ने स्वतंत्रता के मार्ग को अपने ढंग पर विकसित करने का प्रयत्न किया। महादेव गोविन्द रानाडे, गोपाल कृष्ण गोखले तन मन और धन से इस कार्य में जुट गये। लोकमान्य तिलक ने कठोर तपस्या आरंभ की। श्री ला० लाजपतराय और स्वामी श्रद्धानन्द जी तथा महामना मदनमोहन मालवीय जी ने इसको भारतीय संस्कृति के शुद्ध और पवित्र स्रोत से मिला दिया। १९१९ में जलयाँवाला बाग़ का दारुण हत्या-काण्ड हुआ, दमनचक्र चला, जनता भयभीत होकर दब गई और उसका उत्साह भङ्ग हो गया पर स्वामी श्रद्धानन्द, पं० मोतीलाल नेहरू और मालवीय जी ने पुनः जनता को धैर्य बँधाया। अमृतसर की कांग्रेस में महात्मा गान्धी भी आगे आये। कांग्रेस की नीती बदल गई। हम अधिक कठोर तपस्या और त्याग के मार्ग की ओर बढ़े।

इसके पश्चात् १९४७ तक देश की नौका के एकमात्र कर्णाधार रहे महात्मा गाँधी। इस बीच में प्रजा ने बड़े कष्ट सहे। देश में दमन चक्र चला, कइयों के प्राण गये, धन सम्पत्ति छीनी गई, हज़ारों जेल में बंदी

बने। गाँधी जी और उनके सहयोगी जवाहर व पटेल आदि अधिकांश नेता और अन्य लोग सत्य और अहिंसा पर आरूढ़ रहे। अंग्रेजी सरकार को बाध्य होकर झुकना पड़ा। देश स्वतंत्रता के द्वार पर आ गया। २ सितम्बर १९४६ को अन्तरिम सरकार की स्थापना हुई। तब से पूर्ण स्वाधीनता की प्राप्ति तक देश का वायुमंडल बड़ा विक्षुब्ध रहा। १७ सितम्बर को कलकत्ते में मुसलिम लीग की ओर से 'प्रत्यत्न-दिवस' मनाया गया। वहाँ भयंकर मारकाट मची। वहीं से उपद्रव नवाखली तक पहुँचा। बिहार में इसका उत्तर दिया गया। बिहार का प्रत्युत्तर सीमाप्रान्त के मुसलमानों ने दिया। देश का यह कष्ट इस बात का द्योतक है कि जैसे माता को प्रसव से पूर्व पीड़ा होती है, ठीक इसी प्रकार भारत-माता को भी असह्य पीड़ा हुई। स्वतंत्रता के जन्म के साथ ही भारत-माता के कुछ अङ्ग बेकार हो गये। योग्य वैद्य के अभाव से उन्हें काटना पड़ा और स्वाधीनता भारत और पाकिस्तान के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित हुई।

इस विभाजन में उपद्रवों तथा स्वतंत्रता की क्रान्ति इन सब पर अतीत की छाप थी। भारत की क्रान्ति यद्यपि आरंभ से ही अहिंसात्मक थी पर अन्त में हिंसात्मक हो गई। फ्रांस में १८ वीं शताब्दी में जो राज्य क्रान्ति हुई वह संसार के इतिहास में अभूतपूर्व थी। वह धनी-वर्ग और शक्तिशालियों के साथ निर्धन और पद-दलित जनता की थी, जिसमें निर्धन और पद-दलित जनता ने धनिक शक्तिशाली लोगों से बदला लिया था।

अमेरिका के स्वातंत्र्य प्राप्त करने के पश्चात् वहाँ पर उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिका में दास प्रथा दूर करने के लिए गृहयुद्ध हुआ था। ऐब्राहम लिंकन नहीं चाहता था कि गृहयुद्ध छिड़े पर जब तक दक्षिणी अमेरिका से पूर्णतः न निपटा गया, यह मतभेद दूर न हुआ।

उस गृह युद्ध में न केवल बड़े-बूढ़ों स्त्रियों और बच्चों को ही मारा गया बल्कि वहाँ की सामाजिक व्यवस्था को भी बड़ी हानि पहुँची। लोगों में शिष्टाचार

तथा सामाजिक पवित्रता के जो नियम थे उन्हें भंग किया गया। मानो एक भयंकर झौंका आया और उस में पुरानी रूढ़ियाँ इस प्रकार उड़ गईं जैसे समूल वृक्ष नष्ट हो गया हो। यद्यपि उसके स्थान पर अस्थिर रूप से दुष्प्रथाएँ भी आईं पर दासता की प्रथा छिन्न-भिन्न हो गई। एक अमेरिकन विदुषी ने अपने उपन्यास में इसका बड़े विचित्र और रोचक ढंग से वर्णन किया है और उसका नाम रखा है "Gone With The Wind" अर्थात् आँधी के झौंके के साथ सब कुछ उड़ गया।

रूस में भी १९१७ में एक क्रान्ति हुई। उस समय में वह जनता और शासकों का संघर्ष था। सम्राट् ज़ार जनता पर जो अत्याचार करता था उस से प्रजा ज़ार २ रोती थी। इस क्रान्ति में जनता ने ज़ार तथा उसके सम्बन्धी इष्ट मित्रों से भरपूर बदला लिया और चुन-चुन कर ज़ार के वंशजों को समाप्त कर डाला, तब रूस एक नवीन मार्ग पर अग्रसर हुआ।

संसार की इस प्रगति का प्रभाव भारत पर पड़ा, भारत में जनता बेचैन हो गई, ब्रिटिश अत्याचारों से भारत जाग उठा और साठ वर्षों तक आन्दोलन करता रहा। अब केवल एक परिवर्तन की आवश्यकता थी।

स्वातंत्र्य विरोधी कार्य—गत साठ वर्षों के संक्रान्ति-काल में ब्रिटिश लोग चुप न बैठे थे। स्वाधीनता के आन्दोलन को व्यर्थ बनाने के लिए वे उल्टे सीधे उपायों का बड़ी चतुराई से प्रयोग कर रहे थे। उनका प्रबल साधन था भेद-नीति-विस्तार। उन्होंने आरंभ से ही प्रजातंत्र का आधारभूत सिद्धान्त 'चुनाव-पद्धति' में पृथक् चुनावों का क्रम आरंभ कर दिया था। १९१९ में हिन्दु और मुसलमानों का पृथक्-पृथक् चुनाव हुआ। भारत-विभाजन की नींव पड़नी आरंभ हो गई, दो राष्ट्रों का सिद्धान्त सिद्ध किया जाने लगा।

कूटनीतिज्ञ भारत को अपने हाथ में बनाये रखने के लिये इसे केवल दो राष्ट्रों का देश ही नहीं बनाना चाहते थे अपितु अछूत, सिख, ईसाई, जैन आदि को भी भिन्न २ जातियाँ बना कर हिन्दुओं की अखण्डता को नष्ट करके अपना उल्लू सिद्ध करना चाहते थे। यदि अङ्गरेज और अधिक

टिक जाते तो निःसन्देह भारत में जाटस्थान, सिखस्थान और अछूतस्थान भी शीघ्र ही बन जाते।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये अंग्रेज नीतिज्ञों ने मुसलमानों में सर्वप्रथम मुसलिम लीग संस्था को अपना साधन बनाया। पहले तो लीग का उद्देश्य कांग्रेस से सहयोग करना ही था पर टर्की में खिलाफत आन्दोलन के समाप्त होते ही इस की प्रगति भिन्न दिशा की ओर होने लगी। इस का उद्देश्य कांग्रेस के ठीक विपरीत दो राष्ट्रों के सिद्धान्त की पुष्टि करना हो गया। मुसलिम संस्कृति और भाषा को अंग्रेजों की सहायता से पनपाया जाने लगा। हिन्दू सभ्यता और उसकी शक्ति को कुचलने के लिये जिन्ना और उसके समर्थकों ने अपनी जाति में द्वेष भाव भरने में कसर न छोड़ी। यदि मुसलमानों का पिछला इतिहास देखा जाय तो मुसलिम सभ्यता के विकास की जड़ में निर्दयता और क्रूरता के कार्यों के अतिरिक्त अन्य कुछ न मिलेगा।

इस विष का प्रभाव अन्तरिम सरकार के दिनों में कलकत्ता, नोआखली और सीमाप्रान्त में प्रकट हो चुका था। अब १५ अगस्त स्वाधीनता के दिन के आस पास क्या-क्या हुआ उसका भी संक्षेप से यथा स्थान वर्णन किया जायेगा।

४—लाहौर में उपद्रवों का आरम्भ

(१९४७)

पंजाब की राजधानी लाहौर थी। यह एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगर है। कहा जाता है कि श्री राम के पुत्र लव ने इसे बसाया था। यहाँ पर कितनी ही राजनैतिक क्रान्तियाँ हुईं। हिन्दू इसे अपनी स्थायी सम्पदा समझते थे, इस नगर से उनका प्राणों के समान मोह था। लाहौर पंजाब का हृदय था, जब शरीर गया तो हृदय कहाँ रहता? मुसलमान समझते थे कि यदि लाहौर चला गया तो उनके पाकिस्तान में फिर क्या रह जायेगा! सीमा कमीशन बैठा, उसने अपनी ओर से जो रिपोर्ट तैयार की वह अभी प्रकाशित न हुई थी कि हिन्दू और मुसलमान अपने २ अनुमान लगाने लगे। हिन्दू चाहते थे कि पाकिस्तान की सीमा रावी पार रहे, पर मुसलमान रावी तो क्या व्यास और सतलज को भी अपनी सीमा के अन्दर लाना चाहते थे। इसमें सन्देह नहीं कि लाहौर के शानदार भवन क्या हिन्दू और क्या मुसलमान सब के लिए समान आकर्षण रखते थे।

१५ अगस्त से पूर्व मार्च मास से ही लाहौर में उपद्रवों का आरम्भ हो चुका था। मैं अपनी जन्म भूमि से लौट कर जब लाहौर आया तो ४ मार्च को आर्य कन्या पाठशाला बच्छोवाली में निरीक्षणार्थ गया हुआ था। इस संस्था का अधिष्ठाता होने के कारण प्रबन्ध और साधारण निरीक्षण करना मेरा काम था। इसी बीच में शाहाल्मी गेट और नगर के अन्य भागों में दंगे ने भयंकर रूप धारण कर लिया। कन्याओं के माता पिता घबराये हुए आये और अपनी अपनी पुत्रियों को अपने २ घर ले जाने लगे। छात्राओं के चले जाने के पश्चात् मैं भी दो बजे रामगली की अध्यापिकाओं और छात्राओं को अपने साथ ले आया। नगर में अब मार-पीट

साधारण सी बात हो गई थी। आग लगाना और छुरे घोंपना आरम्भ हो गया था।

रामगली की स्थिति और रक्षा के उपाय—पाँच और छः मार्च को होली का त्यौहार था। पर होली मनाने का ध्यान किसी को न था, दंगे की भयंकरता रंग पकड़ती जा रही थी, आतंक बढ़ता जा रहा था। सात मार्च को यह डर हुआ कि रात को राम गली पर आक्रमण हो जायगा। लोग चिन्ता से रात भर जागते रहे और एक दूसरे को बुलाते रहे, ऐसा न हो कि लोग सो जायें और लूट-मार मच जाय और मकानों को आग लगा दी जाय। परमात्मा की कृपा से रात तो निर्विघ्न बीती, कोई दुर्घटना न घटी। प्रातः रामगली के निवासियों ने एक शान्ति-सभा की स्थापना कर दी, मैं भी उसका सदस्य था। सारे नगर में भय छाया हुआ था, अपने बचाव के लिये भाँति २ के उपाय सोचे जा रहे थे। यद्यपि हिन्दुओं की ओर से किसी पर आक्रमण का कोई विचार न दीख पड़ता था, कम से कम जहाँ तक रामगली का सम्बन्ध है ऐसा कोई भाव प्रतीत न होता था। दो तीन दिन तक कोई झगड़ा न हुआ यद्यपि डर अवश्य रहा। काम-काज भी एक सीमा के अन्दर होते रहे। पर फिर भी रावलपिंडी, मुलतान और अमृतसर के समाचार चिन्ता पैदा कर रहे थे।

मैं भी किसी किसी समय बाजार में 'शान्ति स्थापित होने में हम किस प्रकार सहयोग दें' इस पर लोगों से विचार-विनिमय करता रहा। वहाँ के लोगों से मेरा परामर्श यह था कि गली और बाजारों में लोग टोलियाँ बना कर खड़े न हों, इस से दूसरों में जोश आने की संभावना थी।

बम्बई को—हो सकता है कि इस संक्रमण काल में मेरा बम्बई जाना किसी को उचित न जान पड़े पर काम पड़ने पर समय का विचार गौण बन जाता है। मार्च मास में मेरा बम्बई जाने का विचार हुआ। मैं सायं ७ बजे से पूर्व ही स्टेशन पर चला गया, बलराज और सत्यव्रत मुझे

स्टेशन पर छोड़ने आये। ८ बजे से कर्फ्यू लग जाता था अतः ओंप्रकाश और सुखदेव पहले ही लौट गये थे।

फ्रंटियर मेल ४० मिनट लेट तो थी ही, पर और भी लेट होती जा रही थी। स्टेशन पर सुनसान थी, पर हमला हो जाना भी असंभव न था। कहीं-कहीं दो एक व्यक्ति ही इधर उधर खड़े थे। वहाँ पर एक ओर तो गुलाब सिंह एण्ड संस के रेलवेबुक स्टाल का एक कर्मचारी था, और दूसरी ओर था एक मुसलमान नवयुवक जो टहल रहा था।

इसी बीच में गाड़ी आई और मैं बैठ गया। गाड़ी में भी लोगों के चेहरे सहमे हुए दीख पड़ते थे। भय बना हुआ था कि कोई आक्रमण न हो जाय। मेरा स्थान सुरक्षित था, मुझे विश्राम करने को स्थान मिल गया। गाड़ी चली, मार्ग निर्विघ्न कट गया और १५ मार्च को मैं बम्बई के दादर स्टेशन पर पहुँच गया। मेरी पुत्री स्टेशन पर आई हुई थी, मैं उस के साथ शीघ्र ही उस के निवास पर जा पहुँचा।

बम्बई में रहते हुए मैंने मैकमिलन कम्पनी के कार्यालय में जाकर दो तीन दिन में अपना कार्य समाप्त कर लिया। मैंने वहाँ के अध्यक्ष से अपने कार्य से स्थिर अवकाश के प्रश्न पर विचार किया। मेरी एक योजना भी थी जिसे मैंने उनके सम्मुख रखा। मैंने अध्यक्ष को बताया कि पिछले दिनों जब श्री हैरेल्ड मैकमिलन भारत में आये थे तो मैंने उनके सम्मुख भी यह विचार रखा था कि यदि मुझे अथवा मेरे सदृश और कार्यकर्ताओं में से किसी को समय समय पर शिक्षा सम्बन्धी प्रकाशन कार्य का अध्ययन करने के लिए यूरुप भेजा जाया करे तो इस से बड़े लाभ की आशा हो सकती है। अध्यक्ष महोदय ने मुझे इस योजना को लिखित रूप में देने के लिये कहा। मैंने ऐसा कर दिया।

२१ मार्च को पारसियों के वर्ष का प्रथम दिन जमशैदी नौरोज़ का अवकाश था। हम प्रातः समुद्र तट पर सैंटाक्रूज़ और जूहू गये। सैंटाक्रूज़ वायुयान स्टेशन है, वहाँ रेलवे स्टेशन भी है। वहाँ से जूहू तट पर जाकर

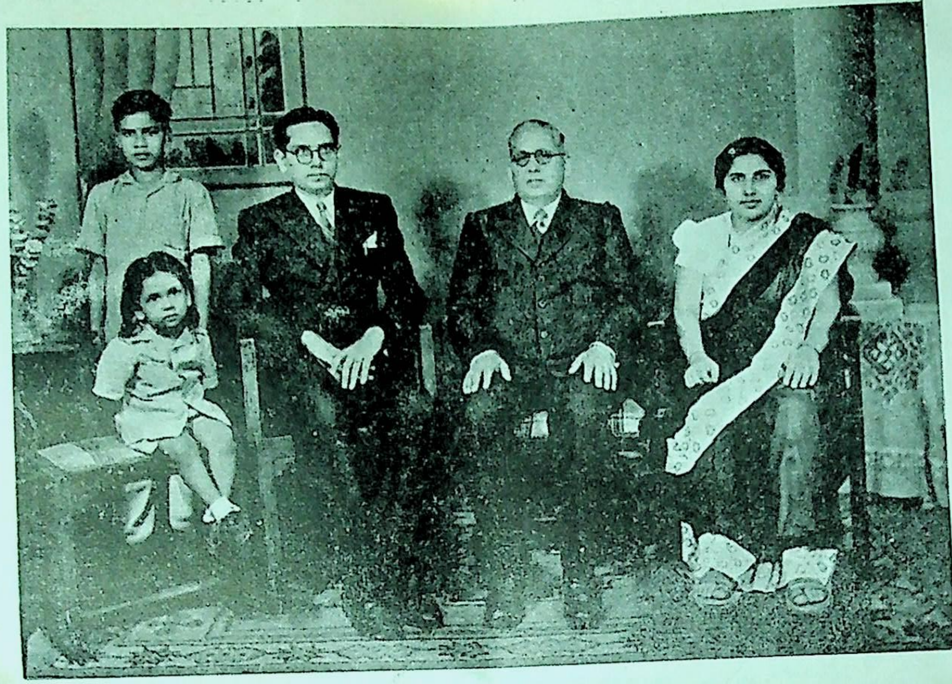


जुहू के समुद्र-तट पर

भ्रमण किया। जूहू के तट पर कोई पक्का मार्ग नहीं है। खुला रेतीला स्थान दूर तक चला गया है। वहाँ हमने स्नान भी किया और निकटवर्ती स्थानों का भ्रमण करके आनन्द उठाया। दोपहर के समय वहाँ से अपने स्थान को लौट आये।

सायंकाल मैरीन-ड्राइव पर सैर करने निकले। वहाँ समुद्र तट पर पक्की सड़कें बनी हैं, उस पर मोटरकारें चलती हैं, सड़क के दोनों ओर पक्के पैदल पथ बनें हैं। समुद्र की ओर तट पर पक्की मुंडेर बनी है, जहाँ पर यात्री बैठ कर सुन्दर समुद्री दृश्य देखते तथा शीतल वायु का सेवन करतें हैं। दूसरी ओर पैदल पथ पर साथ साथ सुन्दर ऊँचे भवन खड़े हैं।

२३ मार्च को मैं हैंगिंग गार्डन नामक उद्यान में गया। श्री हंसराज, सुशीला और नरेश मेरे साथ थे। वहाँ लिखा था "This is a Terraace Garden, Earth Cushioning on the Top Masonary 6'' to 2' 6''" (यह एक ऊँचा कृत्रिम उद्यान है। इसे



बम्बई में (१९४९) पुत्री सुशीला, श्री हंसराज तथा नरेश के साथ

६ इंच से २॥ फुट तक मिट्टी डाल कर समतल किया गया है।)

इस उद्यान में कई रंग के फूल खिले थे। क्यारियों में सुन्दर फूल उद्यान की शोभा बढ़ा रहे थे। हरी २ बाड़ों को बड़े अद्भुत ढंग से काटा गया था। हाथी, घोड़ा, हल चलाता किसान, चौकीदार, भेड़िया, ऊँट, हिरण और बारासिंगा आदि सब बाड़ों की हरी हरी झाड़ियों को काट कर बनाये गये थे। ये एक अद्भुत दृश्य उपस्थित करते थे। इसी प्रकार मछली, कुत्ता और नाना प्रकार के पशु पक्षी भी इन झाड़ियों को काट कर बनाये गये थे।

सायं को "मैरीन-ड्राइव" होते हुए अपने स्वर्गीय मित्र श्री शिवदास के पुत्र श्री रिपुदमन मलहोत्रा को साथ लेकर अपोलो बन्दर और 'गेटवे आव इण्डिया' पर गये।

अगले दिन वहाँ से लाहौर के लिये लौट पड़ा। २६ मार्च को दस बजे प्रातः लाहौर पहुँचा।

लाहौर पहुँचने पर अगले दिन ही रात को मुझे पता लगा कि मेरी स्वर्गीय धर्मपत्नी की धर्म बहिन श्रीमती बिन्द्रादेवी का अचानक ही स्वास्थ्य बिगड़ गया। वैसे तो वे हृदय रोग से बहुत समय से पीड़ित थीं, इस समय उन्हें उल्टी आई और वे बेहोश हो गईं। घण्टे भर में ही उन्होंने इहलोक यात्रा समाप्त कर दी। लक्ष्मी जी के ठीक ६ मास पश्चात् ही इस देवी का देहान्त हुआ। इन के पति श्री इन्द्रनाथ सूरी रामगली में हमारे निकट ही रहते थे। उन से मेरी तो मित्रता थी ही, हमारे परिवारों में भी बड़ी घनिष्ठता थी।

इस अवसर पर मुझे पुराने संस्मरण याद आ गये। मैं अपने मित्र इन्द्रनाथ जी का दुःख खूब अनुभव कर रहा था। जब मेरी पत्नी की मृत्यु पर यह देवी आई थीं तो जो मर्मभेदी विचार इसने प्रकट किये थे उन्हें इस समय याद कर के मुझे मर्मवेदना हो रही थी। मैं जानता

था कि लक्ष्मी जी से इस देवी का कितना प्रेम था। अगले दिन इस देवी का दाह कर्म संस्कार हुआ। इस दृश्य से मेरे मन में करुणा उमड़ पड़ी, उनके बच्चों का रोना देख कर मेरा मन भर आया।

३० मार्च को रविवार था। आर्य समाज बच्छोवाली में साप्ताहिक सत्संग के पश्चात् अन्तरंग सभा का अधिवेशन हुआ। अन्य विषयों के साथ उसमें एक यह भी विषय विचारार्थ आया कि पाठशाला में प्रति-वर्ष जो १० हजार रुपये का घाटा होता है, उसे कैसे पूरा किया जाय। यद्यपि उस समय समाज के वार्षिकोत्सव पर इसका पर्याप्त अंश दान द्वारा पूरा हो जाता था पर भविष्य में पूरा करना सम्भव न दीख पड़ता था। कारण यह था कि अन्य कार्यों के लिये भी धन की आवश्यकता हो रही थी। जब उनके लिये धन एकत्र होगा तो इस कार्य के लिये अतिरिक्त धन एकत्र होने की सम्भावना बहुत कम रह जाती थी। अन्त में निश्चय हुआ कि शिक्षा शुल्क बढ़ा कर इस घाटे को पूरा किया जावे।

इससे अगले रविवार को मैं रामगली आर्यसमाज में मंत्री जी के निमन्त्रण पर गया। उनकी विद्या सभा का अधिवेशन था, वहाँ भी इसी प्रकार के एक आवश्यक प्रश्न पर विचार होना था। वहाँ पाठशाला की प्रबन्ध-कर्त्री सभा के सामने मिडिल से हाई स्कूल बनाने का प्रश्न था। कुछ समय वार्तालाप के पश्चात् मैंने परामर्श दिया कि यदि हाई स्कूल बना दिया जाय तो इससे स्कूल की उपयोगिता बढ़ जायेगी।

५—स्वाधीनता का प्रभात

इन दिनों नगर की अवस्था साधारणतया तो ठीक थी पर कई प्रकार की अफवाहें फैल रही थीं। १२ अप्रैल शनिवार को सायंकाल चार बजे एकाएक कुछ आदमी भागे भागे आये और अपने अपने द्वार बन्द कर लिये। अधिक पूछताछ से पता चला कि कोई लड़ाई-झगड़ा न था अपितु एक घोड़ा भाग गया था और उसको पकड़ने के लिये गाड़ीवान पीछा कर रहा था।

अगले दिन समाज का साप्ताहिक सत्संग था। मैं वच्छोवाली समाज में गया। वहाँ श्री स्वामी वेदानन्द जी ने अपने उपदेश में बताया कि 'प्राचीन काल में आर्यावर्त के लोग दूर दूर तक फैले हुए थे। रूस के एक नगर बाकू में जहाँ तेल के कूएँ हैं, एक प्राचीन मन्दिर भी है। इसकी ताली एक रूसी देवी के पास है। वह दर्शकों को मन्दिर खोल कर दिखाती है। उन्होंने यह भी बताया कि इस प्रकार के मन्दिर क्वेटा, रासबेला और कलात में भी हैं और उनका प्रबन्ध भी मुसलमान देवियों के हाथ में है।' इन दिनों मुझे कुछ शारीरिक कष्ट हो रहा था। डाक्टर से निरीक्षण करवाने पर मुझे पता चला कि भोजन में सुधार की आवश्यता है। डाक्टर के परामर्श पर इंसोलीन का टीका लगवाना आरम्भ किया गया। उस दिन ११ मई थी। भोजन से पूर्व दोनों समय टीका लगवाने के लिये कहा गया। अब छः वर्ष से भी अधिक हो गये हैं कि यह क्रम चल रहा है।

अब लाहौर में उपद्रव बढ़ते ही जा रहे थे। कहीं बाहर जाना उचित न जान पड़ता था। अमृतसर से भी उपद्रवों के समाचार आ रहे थे। "१४ मई को शहर में प्रातः ही उपद्रव हुआ है" सुन कर लोगों ने दुकानें बंद करदीं। कई स्थानों से छुरे घोंपने के समाचार आये, आतंक छा गया, नगर युद्ध-भूमि बन गया, एक दूसरे पर बम फेंके जाने लगे।

हमारे नेताओं का विचार था कि १५ अगस्त तक ये गड़बड़ें होती रहेंगी। पश्चात् शासन परिवर्तन पर शान्त हो जायेंगी। यह परामर्श इसलिये दिया जाता था कि लोग घर छोड़ कर न जायें, अतः भगदड़ अभी अधिक न हुई थी। हाँ कुछ लोग फिर भी घर छोड़ कर जाने लग पड़े थे, स्कूल कालेज भी इन दिनों बंद हो गये थे।

गर्मियों में मैं प्रायः पर्वतों पर भ्रमण करने जाया करता था, इस बार भी पूर्ववत् शिमले जाने का निश्चय किया। मेरा पुत्र धर्मवीर १६ मई को बम्बई से आया था। नगर में कर्फ्यू था, अतः उसे स्टेशन पर ही ठहरना पड़ा। चार बजे सायं उसका भाई ओंप्रकाश वहाँ गया और उसे घर ले आया। दूसरे दिन मैं शिमले के लिए चल पड़ा, दोनों छोटे पुत्र धर्मवीर और यशपाल मेरे साथ थे। अगले दिन हम शिमला पहुँच गये। वहाँ हमने समरहिल में सनातन धर्म कालेज के प्रिंसिपल अरोड़ा के यहाँ ठहरना था और हम वहीं गये पर पता चला कि श्री अरोड़ा सपरिवार बाहर गये हुए हैं। उन की अनुपस्थिति में प्रो० शर्मा ने हमारे वहाँ ठहरने का उपयुक्त प्रबंध कर दिया।

मैं शिमले में अपने कार्य के सम्बन्ध में पर्याप्त समय लगाता रहा। पर धर्मवीर फिर दस दिन पश्चात् लाहौर लौट गया। मैं जून के तीसरे सप्ताह तक वहीं रहा और फिर लाहौर गया।

लाहौर की अवस्था दिन प्रतिदिन खराब होती जा रही थी। मुसलमान हिन्दू और सिखों को बाहर कर देने का निश्चय कर चुके थे। पर हिन्दू सिख भी अपने बाहुबल पर विश्वास रखते थे और वहीं रहने का विचार बना चुके थे। अतः दोनों ओर से अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग होने लग गया था। मुसलमानों की ओर से स्त्री-बच्चों का अपमान, हत्या, बलात्कार साधारण सी बात हो चुकी थी।

जुलाई के मध्य में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब तथा आर्य-शिक्षा-समिति के साधारण अधिवेशन इस बार जालन्धर में रखे गये थे। वहाँ

जाकर मैं सम्मिलित हुआ और वहाँ से लाहौर भी गया। २६ जुलाई को मैं पुनः लाहौर छोड़ कर शिमला चला गया। यह मैं न जानता था कि अब पुनः लाहौर न आ सकूँगा। शेष परिवार अभी लाहौर में ही था।

इन्हीं दिनों रामगली में, जहाँ मेरा घर था, जनता की ओर से यह निश्चय किया गया कि अपनी अपनी गलियों के सिरों पर लोहे के द्वार लगवाये जाने चाहिये। मुझे बताया गया कि मेरा पुत्र ओंप्रकाश भी रामगली नम्बर चार के प्रवेश स्थान पर लोहे का द्वार लगवा रहा था। उसे पुलिस ने पकड़ लिया और उस पर दोष लगाया कि वह षडयंत्र कर रहा था। उसे कुछ तंग करके छोड़ दिया गया। वहाँ की मुसलिम पुलिस का यह पहले से ही निश्चय था कि हिन्दुओं को सुरक्षा के लिये कुछ न करने दिया जाय ताकि अवसर पर सरलता से लूटा जा सके। इस प्रकार के व्यवहार से गली के लोग भयभीत हो गये और नगर छोड़ कर बाहर जाने का निश्चय करने लगे। ओंप्रकाश भी अपनी धर्मपत्नी सहित मेरे पास शिमला चला आया, इस विचार से कि कुछ स्थिति शान्त हो जाने पर १५ अगस्त के पश्चात् लौट आयेंगे। अब लाहौर में केवल मेरा पुत्र बलराज ही रह गया।

अगस्त के प्रथम दस दिनों में लाहौर में कई दंगे हुए। मकान और दुकानों को आग लगाई जाती रही, हत्या, लूटमार, छुरे घोंपने की घटनाएं बढ़ती गईं। अब पुलिस की सहायता से मुसलमान एकत्र होकर हिन्दू सिखों की दुकानों व मकानों को लूटने का काम निर्भीक होकर करने लगे, ताले तोड़ कर माल लूट ले जाते। अमृतसर में भी खींचातानी बढ़ती जाती थी। यह कहना तो कठिन है कि केवल मुसलमान ही हिन्दुओं पर आक्रमण करते थे, हिन्दुओं की ओर से भी उत्तर दिया जाता था। यद्यपि कई स्थान अभी तक शान्त थे और आशा दिलाई जाती थी कि हत्याकाण्ड समाप्त हो जायगा, पर यह विचार सत्य सिद्ध न हुआ।

लाहौर के एक प्रसिद्ध लेखक श्री के० ऐल० गावा ने उस समय

अंग्रेज़ी में एक पुस्तक "पाकिस्तान के भीतर" प्रकाशित की थी। इन घटनाओं का वर्णन उसमें इस प्रकार बड़ी अद्भुत रीति से किया गया है :—

'पाकिस्तान की स्वतंत्रता की उदयकालीन लाली आकाश की लाली को मात कर रही थी। ६ अगस्त को यह चर्चा थी कि लाहौर नगर में अगले दिन मुसलमानों की ओर से भयंकर नर-संहार आरंभ किया जायगा, हिन्दु-सिखों के घर जलाये जायेंगे। पर उस समय ऐसी अफवाहों का विश्वास इसलिये नहीं किया जाता था कि वे प्रायः असत्य सिद्ध होती थीं। दस अगस्त को सचमुच बड़े पैमाने पर हत्याकाण्ड आरंभ हो गया। चारदीवारी के अन्दर ही ६० स्त्री-पुरुषों को मौत के घाट उतार दिया गया। प्रतीत होता था कि यह योजना पूर्व से ही निश्चित की गई है। रात को चूना मंडी, बजाज हट्टा, सुआ बाजार, लुहारी गेट और मोहल्ला सत्थां में हिन्दू सिखों के घरों को आग की भेंट कर दिया गया। मुहल्ला सरीन के प्रायः सभी घरों में आग लगाई गई। इस अराजकता को रोकने के लिये पुलिस ने कुछ न किया। सत्य तो यह है कि पुलिस मुसलमानों का पक्षपात करती थी और आग लगवाने में प्रत्यक्ष सहायता देती थी। हिन्दू सिखों की शिकायत पर पुलिस अधिकारी, मैजिस्ट्रेट आदि तक कुछ भी ध्यान न देते थे।"

११ अगस्त को कई स्थानों पर माराकाट अधिक वेग से आरंभ हो गई। लाहौर रेलवे स्टेशन के एक प्लेटफार्म पर मुसलमानों ने आक्रमण किया। एक दूसरे प्लेटफार्म पर हिन्दू-सिखों की बहुत सी लाशें पाई गईं। अब तो जनता भयभीत हो गई, लाहौर छोड़ने के लिए भगदड़ मच गई। १२ को स्थिति और भी भयंकर हो गई। मेरा पुत्र सत्यव्रत रावलपिंडी जा रहा था, उसे लालामूसा से ही लौटना पड़ा। क्योंकि मारकाट आरंभ हो गई थी। वह लाहौर रेलवे स्टेशन पर आकर उस गाड़ी में बैठ गया जो पठानकोट जाने वाली थी, परन्तु मार्ग में उसे गुरुदासपुर से ही लौटना पड़ा क्योंकि वहाँ की अवस्था भी खराब हो रही थी। अब उसने निश्चय किया कि और कहीं जाने की अपेक्षा शिमला जाना अच्छा

रहेगा अतः वह शिमला जाने के लिये गाड़ी में बैठ गया। उसी रात बलराज भी पीड़ितों की सहायतार्थ स्टेशन पर ही था जहाँ वह सत्यव्रत से रात को मिला। उसने घर पर से अपने फूफा श्री दौलतराम को सोते हुए उठा कर स्टेशन पर भिजवा दिया ताकि अपनी सुरक्षा के लिये वे वहाँ से अन्यत्र चले जायें। बिना कुछ सामान लिये ही वे चल दिये। उनका शेष परिवार पहले ही बाहर जा चुका था। श्री गाबा अपनी पुस्तक 'पाकिस्तान के भीतर' में इस प्रकार वर्णन करते हैं :—

"अगले दिन नगर की अवस्था और भी गिर गई। जो समाचार सरकारी देख-रेख के पश्चात् छापे गये हैं उनके अनुसार कहा जा सकता है कि उस दिन एक सौ अड़तालीस व्यक्तियों का मुसलमान आततायियों के हाथों वध हुआ। भारत नगर, सिंहपुरा, डब्बी बाजार और लुहारी गेट के स्थानों पर सब से अधिक अत्याचार हुए। रात भर आग के अङ्गारे उठते रहे, नगर के ऊपर का आकाश विशेषतः प्रज्वलित रहा। १२ अगस्त को मुसलिम आततायियों ने अपना कार्य-क्षेत्र विस्तृत कर लिया। छुरे घोंपने और आग लगने के समाचारों से रंग महल, कूचा धम्माँ, सुआ बाजार, डब्बी बाजार, मच्छी हट्टा, कूचा श्यामी हूकाँ, भाटी गेट, शाही मोहल्ला, कूचा मूलो माता और मोती बाजार में हिन्दुओं और सिखों के धन जन की बड़ी हानि हुई।

नगर के व्यापार के बड़े केन्द्र अनारकली में भी आग लगाई गई। लगभग एक करोड़ रुपयों के माल का स्टाक भिन्न-भिन्न दुकानों में वहाँ भस्म हो गया। १३ अगस्त की प्रातःकाल होने से पहले ही गली काग-जियाँ, गली कट्टा आदि में आग लगाई गई। अब हिन्दू सिखों के बाहर निकलने के लिये केवल दो ही मार्ग रह गये थे, लुहारी गेट और शाहाल्मी गेट। मकानों से निकल कर भागते हुए लोगों पर गोलियाँ चलाई गईं। स्त्री-बच्चों के समूह मौत के घाट उतारे गये, जो सामना करने के लिए तत्पर हुए उन्हें पुलिस ने तितर-बितर कर दिया।"

"कर्फ्यू धोखे की टट्टी था। इसमें गुण्डे अपना कार्य सफलता से करते थे। यदि कर्फ्यू न लगता तो कदाचित् एक दूसरे की सहायता सरलता से मिल सकती और हानि भी इतनी न होती। आग बुझाई जा सकती थी यदि कर्फ्यू ने बाहर निकलने से न रोका होता। जो कुछ नगर शेष बचा भी तो वह डोगरा फौज की कृपा से। वे भी अगले दिन लौटा दिये गये। बात यह हुई कि कुछ मुसलमान मसजिद से बाहर यह निश्चय करके निकले थे कि हिन्दुओं को लूटा जाय। इसे रोकने के लिये डोगरा फौज ने गोलियाँ चलाईं। इस पर पाकिस्तान के अधिकारी रुष्ट हो गये और उन्हें वहाँ से जाना पड़ा।"

१३ अगस्त को कई प्रसिद्ध व्यक्तियों का वध हुआ। इनमें आर्य-समाज के उत्साही कार्यकर्ता श्री अर्जुनदेव जी बगाई एडवोकेट भी थे। अब वजीराबाद आदि स्थानों पर भी हत्याकाण्ड आरंभ हो गया। घर छोड़ के जाने वालों को मार्ग में ही समाप्त कर दिया गया। गाड़ियों को न केवल लूटा ही गया किन्तु यात्रियों को छुरों व तलवारों और गोलियों से मार डाला गया। बालकों और स्त्रियों पर भी दया न की गई। जो रूपवती युवतियाँ थीं, उन्हें गुण्डे साथ भगा कर ले गये। कई स्थानों पर स्त्रियों को नग्न किया गया और पवित्रता भंग कर के उनका घोर अपमान किया गया। बहुतों को मार डाला गया, आभूषण, धन आदि लूटे गये। यदि किसी ने आनाकानी की तो उस पर अमानुषिक अत्याचार किये गये। कई हिन्दू-सिखों को जबरदस्ती मुसलमान भी बनाया गया।

अब गुप्त रीति से यह घोषणा हो चुकी थी कि लाहौर पाकिस्तान में चला जायेगा। इससे मुसलमान आततायियों का साहस बढ़ गया। पुलिस और सेना खुल्लमखुल्ला उनका साथ देने लग पड़ी। उसी रात मोहनलाल रोड पर जहाँ हिन्दू-सिखों की बड़ी बड़ी दुकानें थीं आग लगा दी गई। हमारी दुकान पंजाब पुस्तक-भंडार भी वहीं थी, सारा माल असबाब उसमें जल कर भस्म हो गया।

१५ अगस्त का दिन आ गया। पाकिस्तान का जन्म इसी दिन हुआ। भारत के स्वतंत्रता-सुख के लिये राहु तुल्य पाकिस्तान का वर्णन उस पुस्तक में इस प्रकार किया गया है :—

"यद्यपि कुछ दिनों पूर्व ही यह दीख रहा था कि पाकिस्तान आ रहा है, १५ अगस्त के सूर्योदय के साथ ही पाकिस्तानी झंडा सरकारी भवनों पर लहराने लगा। परन्तु लाहौर नगर में हर्ष का नाम भी न दीख पड़ता था, मुसलिम लीग के सदस्य भी प्रसन्न न प्रतीत हो रहे थे, न कोई उत्सव ही हो रहा था। ऐसी दुःख भरी लहरों पर पाकिस्तान का जहाज तैरता हुआ आया। नगर में सर्वत्र आग लग रही थी, मृतक शरीरों की दुर्गन्ध सब ओर आक्रमण कर रही थी। उसे 'पाकिस्तान की गंध' कहा जाता था।"

"मुजंग में पाकिस्तान के स्वागत के लिये विशेष प्रकार का उत्सव हुआ। इस दिन के लिये एक सिखों का गुरुद्वारा सुरक्षित रखा गया था। सर्वप्रथम प्रातः ही उसे अग्नि की भेंट करके उत्सव का आरंभ किया गया। उसकी ज्वाला जब आकाश की ओर उठ रही थी, तो हजारों मुसलिमों ने पाकिस्तान की जय के मुक्त कण्ठ से नारे लगाये तथा हर्षध्वनि से वायु मण्डल को गुंजा दिया। इस गुरुद्वारा में जितने भी व्यक्ति आस पास बाहर से आकर अपनी सुरक्षा के लिये एकत्र हो गये थे सब जीवित ही जला दिये गये, कोई भी भाग कर न बच सका।" हिन्दुस्तान टाइम्स के संवाददाता के शब्दों में उनकी संख्या २००० थी। श्री चौधरी के शब्दों में लाहौर का आँखों देखा समाचार इस पत्र में इस प्रकार प्रकाशित हुआ :— "सरकूलर रोड की ओर सर्वत्र अराजकता पूर्णरूप से फैली हुई थी। रेलवे रोड से चल कर सरकूलर रोड के साथ यह काण्ड बड़े भयावने रूप से आरम्भ हुआ था। सारी रात ऊपर आकाश में अर्धवृत्त के समान धूएँ के बादल नगर से उठते दीख पड़ रहे थे। हिन्दू-सिखों के पवित्र स्थान जला कर भस्म कर दिये गये थे। जन हानि के सम्बन्ध में निश्चित संख्या देना तो कठिन है पर मुझे १३ अगस्त को न्यू हास्पिटल में जाने का

अवसर मिला। मुर्दाघर सम्भवतया भर चुका था, मैंने उस की ओर जाने वाली कई छोटी-छोटी गलियों में शव पड़े पाये। मेरे अनुमान में वे तीन सौ अथवा साढ़े तीन सौ से कम न होंगे। अगले दिन दैनिक पत्रों में जब मैंने पढ़ा कि ४० मरे और १०० घायल हुए तो मैंने वास्तविक हानि का माप बना लिया। इन दिनों कोई ऐसा दिन न बीतता था जब हम अपने घर के आगे मुर्दों की भरी हुई तीन चार लारियाँ जाते हुए न देखते थे।

नगर में अराजकता का राज्य था। लाहौर मुर्दों की नगरी बन चुकी थी, यह नरक का मुँह बोलता चित्र था। जो इस नरक के अधिकारी थे वे अपने कर्त्तव्य पालन में इतने सजग थे और अपने कार्यों के भिन्न-भिन्न विभागों को इतनी उत्तमता से सम्पन्न करते थे कि इसका दूसरा उदाहरण मिलना कठिन था।" सेना हत्यारों की सहायता कर रही थी, जलते हुए घरों से निकलते हुए लोग गोली का निशाना बना दिये जाते थे, उनके शरीरों को जलती हुई आग में झोंक दिया जाता था। अब हिन्दू और सिखों का रेलवे स्टेशन तक पहुँचना कठिन हो गया था। ट्रिब्यून समाचार-पत्र का एक कार्यकर्ता जो हमारे साथ रहता था इसी गति को प्राप्त हुआ। हमें प्राण बचा कर भागना कठिन हो गया। हम लाहौर छावनी के मार्ग से निकलना चाहते थे और बाहर जाने के लिये था भी केवल यही एक मार्ग।" पंजाब के अन्य नगरों से भी इसी प्रकार के समाचार मिल रहे थे।

"स्यालकोट में इस हत्याकाण्ड का आरम्भ भयंकर रूप से हुआ था। ११ अगस्त को मुसलिम लीगियों और स्थानीय कर्मचारियों ने प्रेरणा की कि अमृतसर का बदला लेना चाहिये। इस से प्रेरित होकर मुसलिम गुण्डे हाथों में पैट्रोल के घड़े उठाये हुए हिन्दू-सिखों के घरों को जलाते देखे गये। यदि स्यालकोट की ३५ प्रतिशत हिन्दू-सिख जनता ने सामना करने का साहस किया तो पुलिस और सेना ने उन्हें तितर बितर कर दिया। तेजासिंह के प्रसिद्ध शिवालय पर लीग का झंडा फहरा दिया गया और लूटमार, बध तथा आग लगाने का कार्य बेरोक-टोक होता रहा।"

सर्वत्र पंजाब में हिन्दू सिखों से शस्त्र छीन लिये गये। इससे आततायियों के हाथ और भी सबल हो गये। हिन्दू-सिख जब भी उच्चाधिकारियों के पास सहायतार्थ पहुँचे तो उन्हें हँसी ठट्ठे में टाल दिया गया। कई प्रसिद्ध व्यक्तियों को जीवित जला दिया गया।

१५ से २५ अगस्त के बीच जो गाड़ियाँ रवाना हुईं उनमें हिन्दू-सिख अधिक संख्या में थे। वे गाड़ियाँ पटरी से उतार दी गईं। १५ से १८ को जो गाड़ियाँ वज़ीराबाद से स्यालकोट पहुँचीं, उनमें हिन्दू-सिखों की लाशें पाई गईं। कहा जाता है कि कई लाशें मार्ग में अपर चिनाव नहर में भी फेंक दी गई थीं।

१५-१६ की रात्रियों को जब नगर के बहुत से भाग जल रहे थे तो लाहौर के अधिकारियों और मुसलिम लीग के सदस्यों ने किले में उत्सव मनाया। १६ अगस्त को लोगों ने लाहौर खाली करना आरंभ कर दिया। सायंकाल सिख सेना पहुँची, जिसने हिन्दुओं को वहाँ से निकालने का कार्य आरंभ किया, सिख सेना की सहायता से लाहौर छावनी में शरणार्थी कैम्प खोल दिया गया।

एक शरणार्थी कैम्प डी० ए० वी० कालेज लाहौर में भी खोला गया। लोग सेना की सहायता से वहाँ ले जाये गये। २३ अगस्त को मेरा पुत्र बलराज भी सेना के साथ डी० ए० वी० कालेज कैम्प में पहुँचा। वहाँ से मोटर लारी द्वारा अमृतसर जालन्धर आदि स्थानों पर होता हुआ २५ को शिमला पहुँचा। हम उस समय एक किराये की कोठी "ग्रेस विल्ला" में रहते थे। वहाँ जब बलराज पहुँचा तो सारे परिवार को उसे पुनः अपने में सुरक्षित देख कर बड़ा सन्तोष हुआ।

६–दिल्ली में निवास

गाँधी जी का निधन

सितम्बर मास आया, ग्रीष्म ऋतु का अन्त हो गया। शिमला में अच्छी ठंड अनुभव होने लगी। शरद् ऋतु के लिये निवास स्थान की आवश्यकता प्रतीत हुई। बलराज स्थान खोजने को जाने के लिये तत्पर हुआ और जालन्धर गया। उसे वहाँ एक मकान मिला पर वह हम सब के लिये पर्याप्त न था। ४ सितम्बर को मैं भी अपने बड़े पुत्र सत्यव्रत के साथ देहली के लिये चल पड़ा। अम्बाला आकर पता चला कि देहली केवल एक गाड़ी जाती है शेष गाड़ियाँ रोक ली गई हैं। मेरा स्थान था तो सुरक्षित पर डाक गाड़ी में बैठना संभव प्रतीत न हुआ। मेरी रेज़र्वेशन व्यर्थ गई। सुरक्षा की दृष्टि से मैंने भी दिल्ली के लिये प्रस्थान करना उचित न समझा और लौट कर शिमले चला गया।

मैंने मार्ग में कई स्थानों पर लूटमार और मारकाट होती देखी। मेरे लिये तो यह भय की बात न थी। यह सब था पाकिस्तान में होने वाले कार्यों की प्रतिक्रिया स्वरूप, पर तो भी उसके समान अमानुषिक न था।

२० अक्टूबर को मैं शिमला से पुनः दिल्ली के लिये चला। टिकट परमिट बिना न मिलता था। डा० प्रेमनाथ के प्रयत्न से एक परमिट मिला और हम २१ को दिल्ली पहुँच गये। मेरे पुत्र इन्द्रदेव और ओंप्रकाश मुझे स्टेशन पर लेने आये थे मैं उनके साथ करोलबाग आ गया। उस समय मेरे पुत्र सत्यव्रत और यशपाल फतेहपुरी के एक होटल में ठहरे हुए थे। ओंप्रकाश के पास स्थान पर्याप्त न था। मैंने एक कमरा डा० रामनाथ मदान से तिब्बिया कालेज में लिया। केवल एक सप्ताह ही मैं वहाँ ठहरा क्योंकि वहाँ अब हमारे और भी पीड़ित सम्बन्धी आ रहे थे।

ओंप्रकाश के कहने पर मैंने उसके साथ ही रहना स्वीकार कर लिया, वहाँ मुझे एक पृथक् कमरा भी रहने को मिल गया।

सत्यव्रत और इन्द्रदेव को भी कुछ दिनों पीछे दरियागंज में पृथक् २ स्थान मिल गये, अतः उनके परिवार वहाँ चले गये। अब करोलबाग वाले मकान में विशेष कठिनाई न रही।

दिसम्बर में मेरे पुत्र धर्मवीर का विचार कुछ व्यापार करने का हुआ। तदर्थ वह अपनी बहन के पास बम्बई चला गया, परन्तु वहाँ उसे सफ-



धर्मवीर बम्बई में (१९४७)

लता न हुई और वह जनवरी मास में लौट आया। मार्च के मध्य तक सब काम भली भाँति चलते रहे। शरद् ऋतु में सब का स्वास्थ्य ठीक रहा।

अभी स्थिति पूर्णतया शान्त न हुई थी। कभी कभी एक आध घटना होती रहती थी। मैं एक दिन ४ जनवरी की प्रातः आर्यसमाज दीवान हाल में साप्ताहिक सत्संग में भाग लेने जा रहा था कि ट्राम लाहौरी गेट के आगे रोक दी गई। बताया गया कि खारी बावली में कर्फ्यू लगा हुआ है। मैं

वहाँ से नया बाज़ार तथा स्टेशन होता हुआ दीवान हाल पहुँचा। खारी बावली के कर्फ्यू के विषय में पता चला कि यहाँ कुछ मुसलमानों के मकान खाली थे, एक एक मुसलमान एक एक मकान को घेरे हुए था। जब विस्थापितों को पता चला तो उन्होंने उन स्थानों पर अधिकार करने का यत्न किया। पर पुलिस ने ऐसा करने से रोक दिया और लोगों का उधर जाना बन्द कर दिया ताकि स्थिति न बिगड़ने पावे। सत्संग में अपने बचपन के मित्र जलालपुर जट्टाँ निवासी श्री अर्जुनदास तथा श्री काशीराम से भेंट हुई, वे भी सत्संग में पधारे थे।

विस्थापित परिवार अपने रहने के लिये कहीं न कहीं निवास प्राप्त करना आवश्यक समझते थे। ग्रीष्म तथा वर्षा तो वे बेचारे खुले आकाश के नीचे व्यतीत कर चुके थे, अब शीतकाल उन्हें अधिक कष्टदायक प्रतीत हो रहा था। उनमें से कुछ स्कूलों में चले गये और कुछ व्यक्ति सरकारी एवं सार्वजनिक संस्थाओं में जाकर वास करने लगे।

महात्मा गाँधी नित्य ही इस प्रकार की घटना देखकर दुःखी होते थे। उन्होंने बिड़ला हाउस की अपनी प्रार्थना सभा में इस बात की ओर संकेत भी किया कि किसी न किसी प्रकार पीड़ित व्यक्ति सरकारी व सार्वजनिक स्थानों को छोड़ दें और धैर्य के साथ संकटों का सामना करें। किन्तु इसका परिणाम अधिक लाभप्रद प्रमाणित न हुआ। इन सब घटनाओं से दुःखी होकर बापू ने आमरण अनशन कर दिया।

इस समय जनता में दो प्रकार की मनोवृत्तियाँ दिखाई दे रही थीं। कुछ व्यक्ति 'राष्ट्र पिता को बचाओ' के नारे लगाते थे और कुछ गाँधी जी के उपवास की उपेक्षा कर रहे थे। गाँधी जी के उपवास की सातवीं शर्त थी कि मुसलमानों और पाकिस्तान को सन्तुष्ट करने के लिये ५५ करोड़ रुपया दे दिया जाय, वह देदिया गया। इसके पश्चात् गाँधीजी के प्रति विरोध की भावनाएँ प्रबल रूपसे जागृत होने लगीं और उन पर संकेतात्मक २० जनवरी को एक बम हथगोला फेंका गया। इस दुर्घटना की हमारे शासक वर्ग ने उपेक्षा

कर दी। गाँधी जी की सुरक्षा के लिये सरदार पटेल ने एक बार संकेत भी किया था, किन्तु उन्होंने प्रार्थना सभा में किसी व्यक्ति के आगमन पर कोई नियन्त्रण न रखने का आग्रह किया। वे इस प्रकार की शंका भी न रखते थे। पर एक दिन हुआ वही जिसका भय था।

३० जनवरी १९४८ का सन्ध्याकाल बड़ा भयावना था। अकस्मात् ६ बजे के रेडियो को सुन कर सभी अवाक् से हो गये, जब कि उन्होंने सुना कि 'बापू नियमानुसार प्रार्थना सभा में मीरा बहन के साथ आ रहे थे। आज उनको सरदार पटेल से वार्तालाप करते देर हो गई थी। प्रार्थना सभा में एक युवक तेजी से आगे बढ़ा। उसने पिस्तोल से जो वह अपने साथ लाया था तीन गोलियाँ बापू के क्षीण शरीर पर चलादीं। "हे राम!" का उच्चारण करते हुए उन्होंने प्राण छोड़ दिये।

समस्त भारत में क्या अखिल विश्व में इस समाचार से हाहाकार मच गया। भारतवर्षीय नेतागण वायुयान एवं अन्य साधनों से बिड़ला हाउस में एकत्रित होने लगे। राष्ट्र पिता का शोक प्रकट करने के लिये समस्त देशों ने अपने अपने राष्ट्रीय ध्वज झुका दिये।

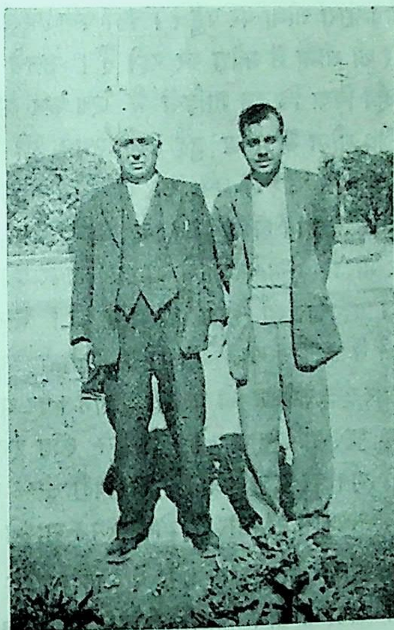
अगले दिन रविवार को बारह बजे गाँधी जी की अर्थी निकली। जनता बापू के अन्तिम दर्शन करने के लिये सरिता की भाँति उमड़ रही थी। मैं अपने पुत्र धर्मवीर को लेकर इण्डिया गेट की ओर गया, क्योंकि अन्य स्थानों पर भीड़ के कारण बापू के दर्शन करना कठिन था। वहाँ पहुँच कर अपनी आँखों से वह दृश्य देखा और उसे देख कर हम सब के सिर श्रद्धा से नत हो गए।

बापू की शवयात्रा के साथ साथ लाखों मनुष्यों का जन समुदाय था। उनका शव एक सैनिक गाड़ी पर रखा हुआ था जिस पर शुद्ध खादी का श्वेत वस्त्र लिपटा हुआ था। उसके बीच में काँग्रेस का ध्वज सुशोभित था। सिर के चारों ओर पुष्पराशि पड़ी थी। इस गाड़ी के ऊपर के भाग में पं० नेहरू एवं सरदार पटेल विराजमान थे। इसके साथ ही गाँधी जी की अन्य

दो शिष्याएँ मीरा बहन एवं डा० सुशीला नैयर बैठी थीं। गाड़ी के आगे सैनिकों का एक दस्ता था। पिछले भाग में मंत्रि-मण्डल के कुछ सदस्य, अधिकारी एवं विभिन्न प्रान्तों के गवर्नर, मुख्य-मंत्री एवं अन्य आदरणीय प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। शवयात्रा बिड़ला हाउस से पार्लमेंट स्ट्रीट, इण्डिया गेट, हार्डिंग ब्रिज, दरियागंज होती हुई लगभग ५ बजे श्मशान भूमि पर पहुँची। दाह संस्कार के समय राजघाट पर भारत के गवर्नर जनरल, लार्ड माउण्टबेटन भी अपनी धर्मपत्नी सहित उपस्थित थे। इस अवसर पर महात्मा गाँधी के सब से छोटे पुत्र देवदास भी वहाँ थे, अन्य पुत्र भारत में न होने के कारण सम्मिलित न हो सके।

७—पुत्र-वियोग

पाकिस्तान, विशेषतः पश्चिमी पाकिस्तान और उसमें गुजरात, गुजराँवाला, लाहौर, आदि स्थानों का मुझ से और मेरे परिवार से कितना सम्बन्ध रहा है इसके बताने की आवश्यकता नहीं। चाहे वहाँ के हम आज नागरिक नहीं रहे पर हमारी जन्मभूमि होने से इस जीवन में तो उसे भुलाया



इन्द्रदेव के साथ दिल्ली में १६४८

नहीं जा सकता। यद्यपि वहाँ इन दिनों उतना भयंकर रूप न था जो कि १६४७ में संसार के सामने आया था फिर भी लोग अभी वहाँ जाते हुए डरते

थे। मेरे पुत्र इन्द्रदेव ने वहाँ जाने का निश्चय किया। लाहौर के लिए एक आज्ञा-पत्र भी प्राप्त कर लिया और वहाँ जाने के लिये अमृतसर पहुँचा। उसके साथ उसका एक मित्र भी था। उसने बताया कि उसे परमिट मिलने में बड़ी कठिनाई हुई। जब परमिट किसी न किसी प्रकार प्राप्त हुआ तो उस समय एक मिलिटरी ट्रक लाहौर जा रहा था। वे उस में बैठ गये, पर एक अधिकारी ने उन्हें उतार दिया। इस से उन्हें निराशा तो हुई, पर एक बार फिर परमिट अधिकारी के पास गये। इस बार भी परमिट बनवाने में बड़ी कठिनाई का सामना हुआ, पर अन्त में परमिट मिल गया।

वे वहाँ से बस द्वारा सीमा पर पहुँचे। वहाँ क्या देखते हैं कि कुछ गाड़ियाँ एक दूसरे की सीमा में प्रवेश कर रही हैं। उसने उस समय की एक घटना का वर्णन किया कि उन गाड़ियों में एक कार भी आ रही थी। ज्यों ही वह भारतीय सीमा में प्रविष्ट हुई पाकिस्तान की सीमा लाइन में कोलाहल मच गया कि 'कार ले गये, कार ले गये! गाड़ियाँ आना जाना बन्द करो!' भीड़ एकत्र होने लगी, उत्तेजना बढ़ने लगी, आक्रमण का कुछ भय देख कर भारतीय सेनाधिकारी ने दो चार फायर हवा में किये।

पाकिस्तान के अधिकारीवर्ग ने कार की माँग की। भारत के अधिकारी वर्ग ने उसे लौटाने से इनकार कर दिया। खींचातानी बढ़ी, अमृतसर से अधिकारी आये और इस समस्या को सुलझाने लगे। पर भारत के स्थानीय सेनाधिकारी ने वह कार पाकिस्तान को सौंपने से स्पष्ट इनकार कर दिया। अन्त में वह इस निर्णय पर राजी हुआ कि कार यहीं उसके संरक्षण में रहेगी जब तक कि उच्च सेनाधिकारी की ओर से निर्णयात्मक आदेश न आ जाय।

इसके पश्चात् सीमा पंक्ति खुली और वे लाहौर पहुँचे। वहाँ भारतीय हाई-कमिश्नर की कोठी के साथ वाली लीएज़न (Liaison) एजेंसी में जाकर ठहरे। भारत के लोग प्रायः अपने सेफ़ डिपाज़िट वाल्ट (Safe Deposit Vault) में लाकर खोलने के लिये जाते थे। उनके ठहरने के लिये केवल वहीं सुरक्षित स्थान था। इस कार्य के लिये आने

वाले भारतीय पर्याप्त संख्या में यहाँ ठहरे हुए थे। लाइयेज़न अधिकारी थे राय साहब नत्थूराम।

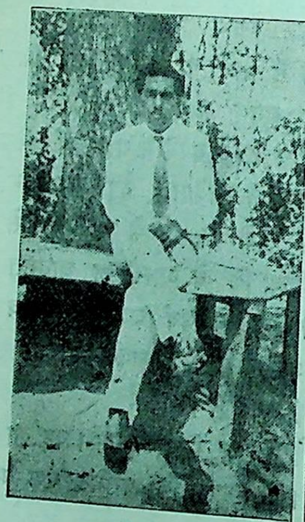
३० जनवरी को महात्मा गाँधी की हत्या का समाचार लाहौर पहुँचा। इन्द्रदेव ने बताया कि उस दिन सभी भारतीयों ने एकत्र हो कर शोक-सभा की। अगले दिन भी लाजपतराय हाल में भारतीयों और मुसलमानों की सभा हुई जिस में राष्ट्रीय विचारों के मुसलमानों ने शोक प्रस्ताव पर अपने विचार प्रकट किये। महात्मा जी के आदर्शों पर प्रकाश डाला गया। उस दिन कालेज बन्द कर दिये गये। एक शोक सभा इस्लामिया कालेज में भी हुई। वहाँ कुछ प्रोफेसरों ने महात्मा जी को अपनी अपनी श्रद्धांजलियाँ भेंट कीं। वहाँ कई व्यक्तियों की आँखों में आँसू भी थे। वे मालरोड और अनारकली में भी गये। वहाँ के वातावरण को देख कर उन पर यह प्रभाव पड़ा कि अपने आप को हिन्दू या सिख बताना सुरक्षा की दृष्टि से हितकर नहीं, अतः उन्होंने इसके उपरान्त इस अनुभव से लाभ उठाया। अनार कली में भीड़ भाड़ तो थी पर व्यापारिक दृष्टि से बाज़ार की रौनक विशेष न थी।

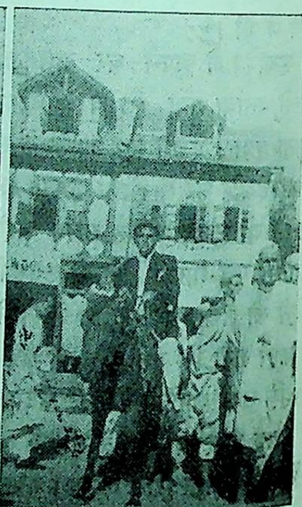
इन्द्रदेव ने अपने घर रामगली में जाने का भी विचार किया था पर उसे बताया गया कि वहाँ जाना सुगम नहीं था अतः यह विचार त्यागना पड़ा। इसने एक व्यक्ति के साथ १०० रुपये में यह ठेका किया था कि वह हमारे घर से चित्रों के सब ब्लाक ले आयेगा। वह जब हमारे घर गया तो जो मुसलिम उस समय वहाँ रहते थे, उनके परिवारों से इस विषय पर पूछ-ताछ की। उसे उत्तर मिला कि वे ब्लाकों का धातुगत भाग तो देने को उद्यत हैं पर उन में लगी लकड़ी वे स्वयं जलायेंगे। जब उन्हें यह कहा गया कि उस के बदले कई मन लकड़ी वे ले सकते हैं तो उन्होंने कहा कि उन्हें काफिरों की यह भेंट स्वीकार नहीं।

अब इन्द्रदेव का लाहौर से लौटने का विचार हुआ। वह लाइयेज़न अधिकारी श्री नत्थूराम के यहाँ गया। पता चला कि परमिट एक मास के उपरान्त मिल सकेगा, इससे उसे बड़ी चिन्ता हुई। इन्द्रदेव अब

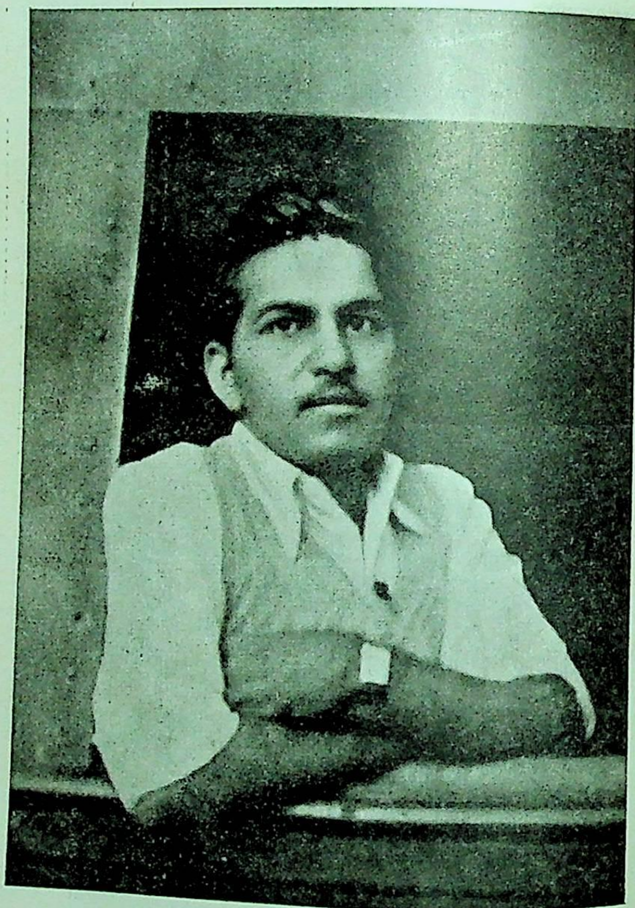
कस्टोडियन के पास गया पर वहाँ भी असफल रहा। एक दिन उसने श्री वीरसेन साहनी बैरिस्टर के पास जाने का साहस किया और बार रूम में जाकर उन्हें जब नमस्ते कही तो वे बड़े चकित हुए। बातचीत करते हुए उसने अपना अभिप्राय प्रकट कर दिया और बताया कि परमिट मिलने में बड़ी कठिनाई पड़ रही है। श्री साहनी की सहायता से उसे परमिट मिल गया और वह लौटकर अमृतसर पहुँचा।

पुत्र धर्मवीर—१९४५ में मेरा पुत्र धर्मवीर पँजाब की मैट्रिक परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ। उन्हीं दिनों उसे प्लूरिसी का रोग हो गया, यह बड़ा भयानक रोग है। इससे हमें चिन्ता हुई, उसे कालिज में भी प्रविष्ट न कराया गया। स्वास्थ्य-वृद्धि की दृष्टि से उसे कोहमरी ले गये। उसकी माता ने स्वयं उसके स्वास्थ्य का बड़ा ध्यान रखा और ईश्वर की कृपा से वह शीघ्र ही स्वस्थ हो गया। अगले वर्ष अगस्त में वह काश्मीर गया और एक मास पहलगाम में ठहरा।





धर्मवीर पहलगाम काश्मीर में (१९४६)



धर्मवीर (१६४८)

भारत विभाजन से पूर्व अप्रैल मास में वह बम्बई गया, वहाँ मेरे दौहित्र नरेश का मुण्डन संस्कार था। वहाँ से जब लौटा तो पंजाब में उपद्रव आरम्भ हो चुके थे। मई में वह मेरे साथ शिमला गया। कुछ समय बाद लौट कर अपने मित्र दुर्गादास के पास नूरमहल चला गया, और स्वास्थ्य की दृष्टि से पुनः मैंने उसे शिमला बुला लिया।

हमारा विचार था कि कार्य की एक शाखा शिमला में स्थापित कर दी जाय। इसमें यह भी एक भावना थी कि वहाँ अपना स्थान होने पर धर्म वीर गर्मियों में वहाँ रहेगा जिससे उसके स्वास्थ्य में अधिक उन्नति हो सकेगी।

आकस्मिक वियोग—बलराज ने दुकान के कार्य के लिए शिमला जाना था। जब वह चला गया तो दरियागंज वाली दुकान का भार धर्मवीर ने सम्भाल लिया। दूसरे दिन ही इसके मित्र श्री मेलाराम नागपाल के पुत्र दुर्गादास का जन्म-दिन था। इससे धर्मवीर बड़ा हर्षित था, रात को वह सोया भी वहीं।

१७ मार्च को प्रातःराश भी वहीं किया। दोपहर को भोजन कर के अपनी दरियागंज स्थित दुकान पर गया। कुछ देर पीछे उसे बेचैनी सी अनुभव हुई। वह दुकान बन्द करके ४ बजे अपने बड़े भाई इन्द्रदेव की दुकान पर कूचा दक्खिणीराव में आ गया। वहाँ बात करते हुए उसके मुँह से कुछ खून निकला जान पड़ा। इन्द्रदेव उसे अपने घर पर ले गया। मार्ग में भी उसे खून आया। डाक्टर बुलाया गया और टीका करवा दिया गया, रात को नींद भी आ गई।

मैं भी सूचना पाकर रोहतक रोड से दरियागंज गया, रात को वहीं रहा। प्रातः ऐसा कुछ प्रतीत सा हुआ कि स्वास्थ्य सुधर रहा है। डाक्टर ने भी आशा बंधवाई कि शीघ्र ही स्वस्थ हो जायगा। धर्मवीर ने सायं चार बजे थोड़ा सा दूध पिया। रात को डाक्टर पुनः आया क्योंकि धर्मवीर को कल से लघुशंका न हुई थी। डाक्टर पेशाब निकालने को उद्यत ही हुआ था कि धर्मवीर को फिर खून की उल्टी आई, वह सो गया। खून थोड़ी देर



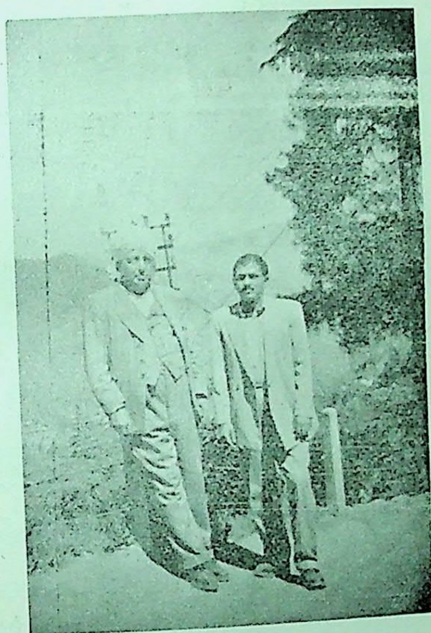
दुर्गादास के साथ (१६४८)

तो बन्द रहा, पर १० बजे तीसरी उल्टी हुई और अब की बार वह ऐसा सोया कि फिर कभी न उठा।

लाहौर में तो हम सारी सम्पत्ति गंवा ही आये थे अब इस आकस्मिक धक्के से साहस और भी शिथिल हो गया। ऐसी अवस्था में भी आवश्यक था कि आजीविका के लिये यत्न होता रहे, सो उसे जारी रखना पड़ा।

शिमला को—ग्रीष्म की प्रचण्डता से बचने के लिये मई मास के आरंभ में ही मैं शिमला चला गया। वहाँ की शीतल वायु में भ्रमण करने से मेरे स्वास्थ्य में वृद्धि हुई। एक दिन मुझे सनातन-धर्म कालेज के प्रिंसिपल

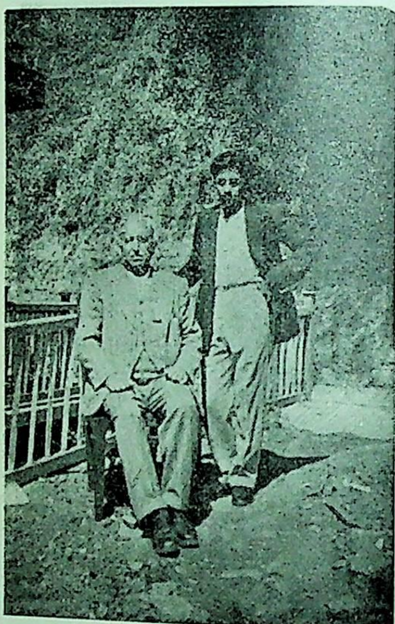
श्री अरोड़ा मिले। उनके कालेज का वार्षिक उत्सव मनाया जाने वाला था। इस अवसर पर केन्द्रीय सरकार के निर्माण मन्त्री श्री गाडगिल पधार रहे थे। उस अवसर पर मुझे भी उन्होंने निमंत्रित किया।



ओंप्रकाश के साथ शिमला में (१९४८)

उत्सव पर माननीय मन्त्री श्री गाडगिल के अतिरिक्त गोस्वामी गणेशदत्त भी आये थे। उनके भाषण बड़े प्रभावशाली थे। उत्सव की समाप्ति पर चाय-पान का आयोजन था। पंजाब प्रांत के मुख्य-मन्त्री डा० भार्गव भी पधारे थे। वे मेरे पुराने सहपाठी थे। चायपान के समय उनसे वार्तालाप का अवसर हुआ। मेरा पुत्र ओंप्रकाश भी मेरे साथ ही था।

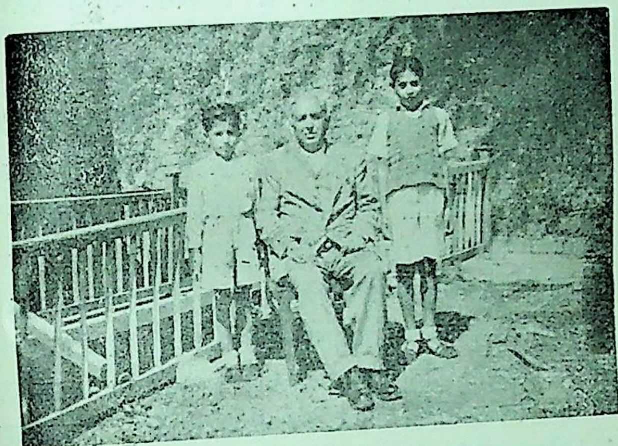
५ अगस्त को मेरे पुत्र ओंप्रकाश को पुत्र की प्राप्ति हुई। मैं इन दिनों शिमले से जालन्धर होता हुआ विद्यासभा तथा शिक्षा समिति के अधिवेशनों के लिये देहरादून गया था। वहाँ अनुकूलता न मिलने से मुझे अतिसार हो गया। मैं दिल्ली होते हुए कुछ दिन पश्चात् पुनः शिमला चला गया।



यशपाल के साथ शिमला में (१६४८)

शिमले की पर्वतीय शीतल मन्द सुगन्ध समीर ने मेरे स्वास्थ्य को लाभ पहुँचाया। ग्रीष्म ऋतु में अन्य ऋतुओं की अपेक्षा शिमला का प्राकृतिक सौन्दर्य अधिक कमनीय हो जाता है। यहाँ विश्राम के लिए केन्द्रीय सरकार के कर्मचारी व अन्य धनी-मानी प्रतिष्ठित सज्जन भी आकर कुछ दिन ठहरते है। मेरा पुत्र यशपाल भी इन दिनों मेरे साथ रहा।

संध्या के समय मालरोड पर एक मेला सा लग जाता है। युवक अपने साथियों के साथ हाथ में हाथ डाल कर शीतल वायु में स्वच्छन्द विहार करते हैं। नगरपालिका ने संध्या समय वहाँ संगीत की विशेष तानें छेड़ कर आनन्ददायक वातावरण उत्पन्न करने का प्रबन्ध किया हुआ है। सारा दृश्य अत्यन्त रोचक बन जाता है। इन दिनों मेरे दो पौत्र मेरे साथ थे।



वेद और वीरेन्द्र के साथ शिमला में (१९४८)

मैं १० सितम्बर को दिल्ली लौट आया। यहाँ ३१ अक्टूबर को प्रातः रामलीला मैदान में श्री राजगोपालाचार्य तत्कालीन गवर्नर-जनरल के सभापतित्व में ऋषि निर्वाणोत्सव मनाने का आयोजन किया गया था। उस उत्सव में महाशय कृष्ण, महात्मा खुशहाल चन्द एवं राजा जी ने अपने भाषणों में ऋषि जीवन की महत्ता को दर्शाया।

८—जयपुर काँग्रेस

अखिल भारतीय काँग्रेस का ५५ वाँ अधिवेशन दिसम्बर १६४८ में जयपुर में होने वाला था, स्वाधीन-भारत में कांग्रेस का यह प्रथम अधिवेशन था। जयपुर अपनी सुन्दरता और प्राकृतिक छटा के लिए तो एक महत्वपूर्ण स्थान है ही पर इस समय काँग्रेस अधिवेशन के यहाँ होने से इसकी महत्ता और भी बढ़ गई थी अतः मैंने जयपुर अधिवेशन देखने का विचार किया।

अधिवेशन की तिथियाँ निकट आ गईं। १४ दिसम्बर से दिल्ली तथा अन्य स्थानों से जयपुर के लिये स्पेशल गाड़ियों की व्यवस्था हो गई थी पर इस बात का पता मुझे १६ से पूर्व न चल सका था। अभी तक स्वागत समिति के टिकट अथवा दर्शक टिकट भी न प्राप्त हुए थे। १६ को ही कांग्रेस के मनोनीत अध्यक्ष डा० पट्टाभि सीतारामैया का विराट् जलूस निकलने वाला था जिसे मैं न देख सकता था पर अधिवेशन देखने का विचार पक्का रहा।

१६ दिसम्बर की प्रातःकाल मैं श्री सत्यपाल "विकल" के साथ दिल्ली जंकशन पर पहुँचा। यहाँ से जयपुर के लिये ६॥ बजे प्रातःस्पेशल छूटने वाली थी। मेरा अनुमान था कि शायद वह पूर्ण रूप से भरी हो और मुझे सुविधानुसार स्थान भी न मिल सके। किन्तु स्टेशन पहुँचने पर जिस डब्बे में मैं बैठा उसमें केवल हमारे अतिरिक्त ५-६ व्यक्ति ही थे। मार्ग में स्पेशल ५-६ स्थानों पर ही ठहरी। रेवाड़ी में भोजन की थालियाँ लिये हुए स्वयंसेवक पूछ रहे थे, भोजन मूल्य पर मिलता था। हम तो साथ ही भोजन ले गये थे, अतः हमने दोपहर में रेवाड़ी से आगे भोजन किया। ५॥ बजे के लगभग गाड़ी गाँधीनगर पहुँची। इस स्टेशन से जयपुर का स्टेशन २ मील रह जाता था, अधिवेशन का स्थान वहाँ से और दो मील दूर था। वहाँ बसों पर सामान रख कर हम भी अधिवेशन स्थल पर पहुँच गये।

कांग्रेस पण्डाल के निकट ठहरने का समुचित प्रबन्ध न हो सकने के कारण हम नगर में चले गये। जयपुर नगर वहाँ से लगभग दो मील पर था। ६ बजे रात को हम जयपुर के किशनपोल बाजार में आये। मेरे साथी श्री सत्यपाल 'विकल' के सम्बन्धी वहाँ रहते थे। वे भी उस समय वहाँ न मिले। वे सब उस समय अधिवेशन देखने गये हुए थे। बड़ी कठिनाई से एक कमरा खुलवाया। वहाँ भूमि पर ही बिस्तरा बिछा कर हमने रात को आराम किया।

हम प्रातः काल नित्य-कर्म से निवृत्त हुए। सत्यपाल जी के बड़े भाई श्री कन्हैयालाल के सम्बन्धी श्री जूथाराम जी ने वहाँ अपने सम्बन्धियों को ठहराने के लिये एक अन्य हवेली में प्रबन्ध किया हुआ था। हम भी वहीं चले गये, वहाँ एक पृथक् कमरा मुझे मिल गया।

भोजन आदि से निवृत्त होकर हम अधिवेशन देखने के लिये गाँधीनगर चल पड़े। प्रथम हमने वहाँ सर्वोदय प्रदर्शिनी देखी जिसमें ग्राम उद्योग, हरिजन संघ एवं वर्धा आश्रम में तैयार की गई भिन्न भिन्न वस्तुओं का प्रदर्शन किया हुआ था। प्रदर्शिनी देखकर हम विषय निर्वाचिनी समिति का अधिवेशन देखने गये। जब हम द्वार पर पहुँचे तो मेरे चिरपरिचित मित्र मास्टर शिवचरण दास मिल गये। मास्टर जी की सहायता से मुझे पर्याप्त सुविधाएं मिल गईं। मुझे विषय निर्वाचिनी समिति में इच्छानुसार स्थान भी मिल गया।

इस समय 'देशी राज्यों में प्रजातन्त्र पद्धति लागू करके जनता के लिए क्या किया गया' इस विषय पर सरदार पटेल अपने विचार प्रकट कर रहे थे। यद्यपि अन्य दलों की ओर से कई प्रस्ताव आये किन्तु सरदार पटेल ने उनका युक्तियुक्त उत्तर देकर उन्हें सन्तुष्ट कर दिया। गाँधी स्मारक कोष पर आचार्य जे० बी० कृपलानी एवं श्री गोविन्द वल्लभ पन्त ने अपने २ विचार प्रकट किये। इसके पश्चात् हम गाँधीनगर का भ्रमण करते हुए सायं अपने निवास स्थान को वापिस आ गये।

अगले दिन प्रातःकाल हमें स्नान में बड़ी देरी हो गई। उस हवेली के नलके की चाबी जिस व्यक्ति के पास थी वह बड़ा तंग विचार का था। सब को स्नान करते हुए पानी का व्यय अधिक होना स्वाभाविक था। उसने पानी बन्द कर दिया। कुछ समय पश्चात् प्रयत्न करने से पानी प्राप्त हुआ। स्नान भोजन आदि से निवृत्त होकर ११ बजे ही गाँधीनगर पहुँच गये। आज खुला अधिवेशन था, उसमें अभी तीन घण्टे शेष थे। हमने यह समय ग्राम-उद्योग बाजार में व्यतीत किया। यहाँ जोधपुर की पीतल की सुराहियाँ तथा मैसूर के चन्दन के बने हुए होलडर बड़े ही सुन्दर प्रतीत होते थे। देर तक घूमने के कारण हमें कुछ शिथिलता प्रतीत हुई। एक विश्राम-गृह में बैठ कर चाय-पान किया। उसके पश्चात् पण्डाल की ओर चल दिये।

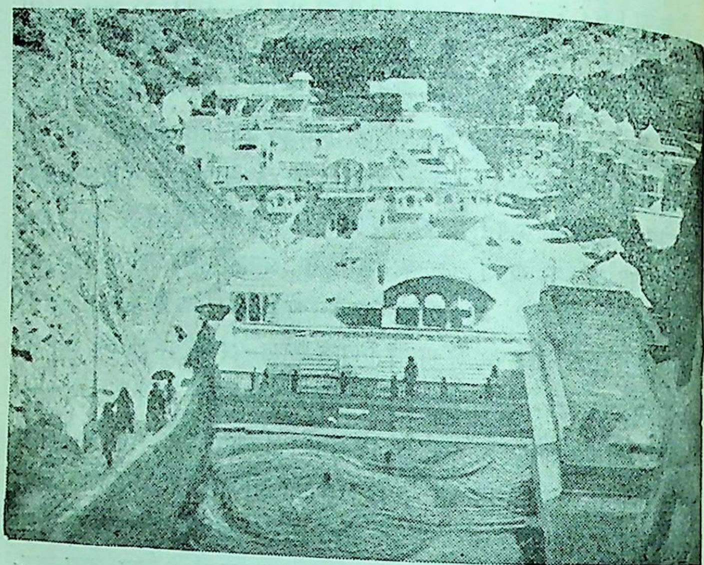
पण्डाल के प्रवेश द्वार पर पहुँचे ही थे कि हम को वन्दे मातरम् के राष्ट्रीय गीत की मधुर तान सुनाई दी। हमने अन्दर प्रवेश किया। पण्डाल की व्यवस्था असन्तोष जनक थी। दिसम्बर का मास ठंडा होता है, कदाचित् इसी कारण वहाँ शामयानों का प्रबन्ध नहीं किया गया था। दोपहर की चमकती धूप, उस पर रेतीला मैदान और शामयानों का न होना सभी बातों ने दर्शकों को दुःखी सा बना रखा था। जब माइक्रोफ़ोन भी विगड़ा हुआ प्रतीत हुआ तो सभा में गड़बड़ मचने लगी, दूर पीछे बैठे लोग दौड़ते हुए आगे बढ़े। पण्डाल में दो लाख व्यक्तियों का प्रबन्ध था, पर वहाँ इतनी उपस्थिति थी नहीं। अध्यक्ष श्री पट्टाभि सीतारमैया का भाषण आरंभ हुआ। उन्होंने प्रथम हिन्दी में बोलने का प्रयत्न किया पर असफल रहे और अपना पहले लिखा अंग्रेजी का भाषण पढ़ना आरंभ किया। पर लोगों का उस ओर ध्यान न जम सका। जनता अंग्रेजी से अनभिज्ञ थी और लाउड स्पीकर काम न कर रहे थे। मैं दो ढाई घंटे के पश्चात् पण्डाल से बाहर आगया। बाहर आने पर मुझे आज एक और पुराने मित्र मिले। ये थे श्री नोतनदास गंभीर जो वर्षों से आर्य-प्रतिनिधि सभा पंजाब के कोषाध्यक्ष थे। वर्षों तक हमने लाहौर में एक साथ सभा में कार्य

किया था। मैंने देखा कि वे बहुत दुर्बल हो गये हैं। पूछने पर पता चला कि उनकी पाचन शक्ति बिगड़ जाने के कारण ऐसा हुआ है। थोड़ी देर वार्तालाप करने के पश्चात् मैं अपने निवास स्थान पर लौट आया।

१६ दिसम्बर के दिन ११ बजे के लगभग ही हम गाँधीनगर पहुँचे। वहाँ पर अभी कोई कार्यक्रम न था अतः आज भी सर्वोदय प्रदर्शनी एवं ग्राम उद्योग की प्रदर्शनी देखने में समय व्यतीत किया। दो बजे काँग्रेस का खुला अधिवेशन था। आज के कार्यक्रम में श्रीमती जे० बी० कृपलानी तथा सरदार पटेल के भाषण उल्लेखनीय थे। सम्मेलन ६ बजे सायं तक चला। वहाँ से लौट कर मैं अपने निवास स्थान पर पहुँचा।

२० दिसम्बर को हमने दिन में जयपुर के दर्शनीय स्थान देखे। प्रातः हम सब से पूर्व जयपुर का अद्भुतालय तथा चिड़ियाघर देखने गये। मेरे साथ सत्यपाल जी, उनके मित्र श्री भैरवदत्त धूलिया और श्री रामदयाल थे। धूलिया जी गढ़वाल लैन्सडौन से निकलने वाली साप्ताहिक पत्रिका 'कर्मभूमि' का सम्पादन करते थे। अद्भुतालय में राजा महाराजाओं के चित्र तथा साधु-सन्तों की प्रतिमायें थीं। अजंता और अलोरा के समान इसमें चित्रकारी का भी दिग्दर्शन था। चिड़ियाघर में सुअर, सांभर, हिरण, सारस, काला बघेरा आदि पशु पक्षी देखे।

गलता—इसके पश्चात् हम गलता जी देखने जा रहे थे कि हमें सामने श्री बाशीराम जी की सुपुत्री श्रीमती उषादेवी और सुमति देवी आती दिखाई दीं। उनके पास कार थी, मुझे उन्होंने अपने साथ कार में बिठा लिया। गलता जयपुर का प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है। यह नगर के पूर्व की ओर पहाड़ी पर बसा है। पहाड़ की इस घाटी में कलात्मक तथा सौन्दर्य से परिपूर्ण मंदिर और कुण्ड बने हैं। यहाँ भक्तों व यात्रियों के ठहरने के लिये विशेष स्थान हैं। यहाँ सूर्यदेव का एक प्रसिद्ध मंदिर है। उसी के पास दो कुण्ड काडंबा तथा योगकुण्ड बने हैं। इतने ऊँचे स्थान से नगर की शोभा अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होती है।



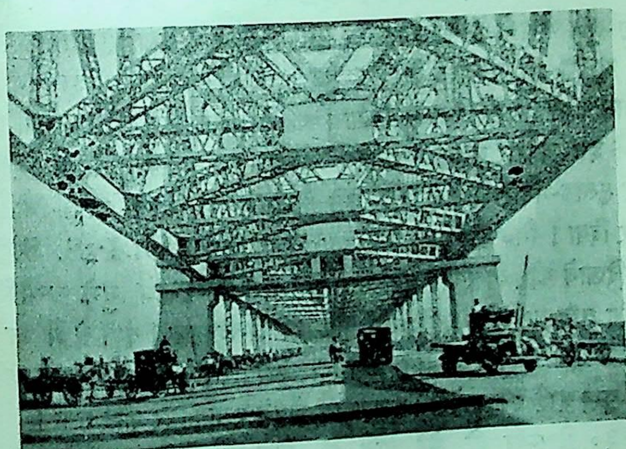
गलता जयपुर

२१ दिसम्बर को हम प्रातः १० बजे जयपुर से चल दिये। स्टेशन पर श्री देवराज परिवार सहित पहुँचाने आये। गाड़ी में बैठे ही थे कि पूर्वी पंजाब पटियाला काँग्रेस कमेटी के उस समय के मंत्री श्री वृषभान से भेंट हुई। बातचीत करते हुए परिचय हुआ और उनसे जयपुर काँग्रेस और राष्ट्रीय कार्यों पर मार्ग में बातचीत होती रही। गाड़ी रात को ८॥ बजे दिल्ली स्टेशन पर पहुँची और उसके पश्चात् मैं अपने निवास स्थान करोलबाग आगया।

६—कलकत्ता आर्य महासम्मेलन

कॉंग्रेस के जयपुर अधिवेशन से लौटने के पश्चात् ही मुझे कलकत्ते जाना पड़ा। भारत के दो प्रमुख नगर बम्बई और कराची देखने के पश्चात् अब मुझे एक और प्रमुख नगर कलकत्ता भी देखने की इच्छा हो रही थी। ३१ दिसम्बर को कलकत्ते में प्रथम अखिल भारतीय आर्य-महासम्मेलन होने वाला था। इस अवसर पर दिल्ली से भी मेरे अन्य कई साथी सम्मेलन में भाग लेने जा रहे थे। अतः मैंने भी इस संयोग को गंवाना उचित न समझा और पिछली लम्बी यात्रा की थकावट की परवाह न कर कलकत्ते जाने की तैयारी आरम्भ कर दी।

मैंने २६ दिसम्बर की हावड़ा-कालका मेल में अपना स्थान सुरक्षित करवा लिया। नियत समय से पूर्व ही मैं दिल्ली स्टेशन पर जा पहुँचा। आठ बजे प्रातः गाड़ी चल पड़ी। यद्यपि मेरा स्थान सुरक्षित था पर दिन में यात्री अधिक होने से मुझे विश्राम न मिल सका। हाँ, रात्रि के आराम में कोई



हावड़ा का पुल

बाधा न हुई और सोने के लिये आवश्यकतानुसार स्थान मिल गया। २७को प्रातः गाड़ी हावड़ा स्टेशन पर पहुँची। प्लेटफार्म पर मेरे बंधु सुखदेव व नरेन्द्र मेरी प्रतीक्षा में खड़े थे।

हम स्टेशन के बाहर आये। टैक्सी ली और उनके निवास स्थान को चले। मार्ग में हावड़ा का पुल पड़ा जो बहुत विशाल है।

उनके निवास स्थान पर पहुँच कर कुछ विश्राम किया। इसके उपरांत श्री नरेन्द्र के साथ न्यू मार्केट को घूम फिर कर देखा और तत्पश्चात् बड़े डाक घर जाकर अपने पत्र लिये।

अगले दिन जब हम भ्रमणार्थ निकले तब जी० पी० ओ० के समीप क्लाइव स्ट्रीट पर एक पत्थर लगा हुआ देखा, जिस पर यह लेख खुदा हुआ था, "यहाँ पर जो दीवार बनी है उसके पीछे पुराने फोर्ट विलियम की दिवार थी जहाँ पर एक गहरी खाई थी। इसमें उन मृतक शरीरों को फेंक दिया गया था जो ब्लैक होल में मृत्यु को प्राप्त हुए थे।"

इस स्थान से मैं बऊ-बाजार स्ट्रीट में पहुँचा और उस पर स्थित मैकमिलन कम्पनी के कार्यालय एवं पुस्तक भंडार में गया। इस कार्यालय के अध्यक्ष श्री पारखर्स्ट से भेंट हुई। उन्होंने प्रेमपूर्वक हाथ जोड़कर प्रणाम कहते हुये मेरा स्वागत किया। यह मेरे लिए आज नई बात थी। मैं उनके इस व्यवहार से बड़ा प्रभावित हुआ, आपने अपने यहाँ का शोरूम तथा पुस्तक-भंडार दिखाया और मेरी जानकारी के लिये प्रत्येक बात का उत्तर दिया। मि० पारखर्स्ट ने अपना प्रेस जिसका नाम I. S. S. D. था दिखाने की व्यवस्था भी कर दी। प्रेस-प्रबन्धक ने मुझे कम्पोजिंग, प्रिंटिंग तथा बाईंडिंग आदि सभी विभागों को दिखाया। वहाँ से मैं कालेज स्ट्रीट में गया। यहाँ पर मैंने कलकत्ता विश्वविद्यालय, प्रेसीडैन्सी कालेज तथा कुछ हाई स्कूल देखे। तत्पश्चात् अपने स्थान पर लौट गया।

३० दिसम्बर को मेरे पास पं० लेखराम उपदेशक तथा कलकत्ता अरोड़ा समाज के प्रधान श्री मोतीलाल खत्री पधारे। मैं उनके निमन्त्रण पर

उनके निवास स्थान पर गया। वहाँ पर समाज उन्नति सम्बन्धी कई विषयों पर वार्तालाप हुआ। शीघ्र ही हमने यहाँ के कुछ दर्शनीय स्थान देखने का निश्चय किया। तदनुसार श्री मोतीलाल जी हम को अपनी कार में बैठाकर क्लाइव स्ट्रीट, पोस्ट आफिस, खिदुरपुर, विक्टोरिया मेमोरियल हाल तथा चौरंगी मैदान आदि कई स्थानों पर ले गये। इन स्थानों पर भ्रमण करने के पश्चात् हम अपने निवासस्थान चितरंजन एविन्यू में आ गये। मैं उपर्युक्त स्थानों को अभी तक पूर्णरूपेण न देख सका था अतः हमने निश्चय किया कि किसी अन्य दिन शेष स्थानों को घूम फिर कर देखेंगे।

कलकत्ता-अरोड़ा-समाज की ओर से मुझे ३१ दिसम्बर के लिये निमन्त्रण मिला हुआ था। उनका विचार था कि आर्य-महासम्मेलन के उद्घाटन के पूर्व ही प्रातः मेरे सम्मान में अरोड़ा-समाज की ओर से एक समारोह हो और उसमें प्रीतिभोज का भी आयोजन किया जाय। अतः मैं प्रातः शीघ्र ही दैनिक कार्यों से निवृत्त हो गया। नियत समय पर समाज के मंत्री श्री जयनारायण पधारे। मैं उनके साथ समारोह तथा प्रीतिभोज में सम्मिलित हुआ।

अब मैं आर्य-सम्मेलन की कार्यवाही में भाग लेने के लिये १ बजे बीडनपुरा गया। उद्घाटन के लिये श्री डा० कैलाशनाथ काटजू तत्कालीन राज्यपाल बंगाल पधारे थे। प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति ने श्री काटजू की सेवाओं का जनता को परिचय कराया। डाक्टर काटजू ने भाषण देते हुए कहा था कि "आज देश में हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का प्रयत्न बड़े वेग से हो रहा है किन्तु मेरा विचार है कि यदि संस्कृत को राष्ट्रभाषा बनाया जाये तो वह देश के लिये अधिक लाभदायक प्रमाणित होगी।" इसके उपरांत स्वागताध्यक्ष श्री मेहरचन्द धीमान् ने अपने भाषण में संसार की तत्कालीन परिस्थितियों पर प्रकाश डाला और आये हुए व्यक्तियों का स्वागत किया। इस सम्मेलन के अध्यक्ष थे आर्य जगत् के चिरपरिचित नेता एवं मध्यप्रान्त धारा सभा के अध्यक्ष श्री घनश्यामसिंह गुप्त। आपने अपने भाषण में "आर्य

समाज को किस प्रकार वर्तमान परिस्थितियों में कार्य करना चाहिये" पर प्रकाश डाला। आज प्रातःकाल से ही मेरे साथी श्री सुखदेव एवं नरेन्द्र मेरे साथ थे जिस से मुझे कहीं आने जाने में कठिनाई न हुई।

दो दिन पूर्व जब मैं मैकमिलन कार्यालय में गया था तो वहाँ पर श्री ललितमोहन घोष से मेरी भेंट हुई थी। १९५० की प्रथम जनवरी को प्रातः वे मेरे स्थान पर पधारे, उन्होंने मुझे सुझाव दिया कि यदि मैं अपने रोग की परीक्षा कल्पतरु औषधालय में कराऊँ तो उचित होगा। मैंने उनके सुझाव का आदर करते हुए अगला दिन इस कार्य के लिये नियत किया।

भोजनोपरान्त मैं मदन स्ट्रीट पर स्थित मेजैस्टिक होटल में गया। वहाँ पर महाशय कृष्ण अपनी पुत्री के पास ठहरे हुए थे। उनसे वार्तालाप हो रहा था कि श्री घनश्यामसिंह गुप्त तथा लाला देशबन्धु गुप्त साथ-साथ पधारे। थोड़ी देर वार्तालाप के पश्चात् हम लोग सभी एक साथ सम्मेलन स्थल पर गये।

सम्मेलन के पण्डाल में मुझ को श्री आनन्दस्वामी, पं० भगवत् दत्त, श्री स्वामी व्रतानन्द आदि महानुभावों से मिलने का अवसर हुआ। सम्मेलन में मैंने दो तीन घंटे तक आर्य नेताओं के भाषण सुने। आज मुझे कुछ शिथिलता सी अनुभव होती थी अतः ५।। बजे के लगभग जब कि सम्मेलन अभी चल ही रहा था मैं अपने स्थान पर लौट गया।

३ जनवरी की प्रातः पूर्व निश्चयानुसार श्री ललितमोहन घोष के साथ मैं नियत समय पर कल्पतरु औषधालय में पहुँचा। वहाँ पर वैद्य जी ने रोगपरीक्षा के उपरान्त मुझे इसके लिये औषधि भी दी, तत्पश्चात् हमने अपने स्थान पर लौट कर भोजनोपरान्त वहाँ से कुछ रमणीय स्थानों को देखने का कार्यक्रम बनाया। सर्वप्रथम वनस्पति-उद्यान (Botanical Garden) में गये। हमारे निवास से यह स्थान तीन-चार मील की दूरी पर था।

समस्त उद्यान में हमने दो तीन घंटे व्यतीत किये और वहाँ की भिन्न-भिन्न प्रकार की वनस्पतियाँ देखीं।

यहाँ पर एक वृक्ष जिसने हमें विशेष रूप से आकर्षित किया वह विशाल वट वृक्ष (The Great Banyan Tree) था। वहाँ इसके विषय में हमें निर्देशकों ने बताया कि इस वृक्ष की आयु १७२ वर्ष है। भूमि से ५॥ फुट ऊपर जाकर इसके तने की परिधि ५१ फुट हो जाती है। ऊपरी शाखाओं का फैलाव तो बहुत ही बड़ा है जो ११७५ फीट बताया गया। इस वट वृक्ष की जटाएँ जो ऊपर से पृथ्वी की ओर आ रही थीं बड़ी मोटी और सुदृढ़ थीं।

इसी उद्यान में दो स्मारक भी हैं। ये १८२२ में बने थे, पर इनके बनाने वालों का पूर्णरूप से पता नहीं। सम्भवतया इन्हें फ्रांस अथवा इंगलैंड वालों ने बनवाया हो। यहाँ पर एक Palm Glass House भी था जिसकी छतें हरी भरी बेलों से ढकी हुई थीं। इस स्थान के पास एक स्वच्छ जलाशय था जिसमें श्वेत तथा गुलाबी रंग के कमल खिल रहे थे। यद्यपि सरोवर में पुष्पों की मात्रा अल्प ही थी किन्तु फिर भी सौन्दर्य में न्यूनता प्रतीत न होती थी। इस जलाशय का हमने एक नौका द्वारा भ्रमण किया और तत्पश्चात् एक विश्रान्तिगृह में जाकर ठहरे।

इस उद्यान में वनस्पति विद्या के विद्यार्थियों के लिये स्थान स्थान पर क्यारियाँ बनी हैं। वहाँ वे इस विद्या का अध्ययन करते हैं। उद्यान में छोटे-छोटे स्थान स्त्री-पुरुषों के लिये बने हैं। इन स्थानों के हरी-हरी घास के लान अत्यन्त रमणीय प्रतीत हो रहे थे। इन प्राकृतिक सुन्दर स्थलों का दर्शन-लाभ उठाकर हम अपने निवासस्थान पर लौट गये।

२ जनवरी को वहाँ के मंत्रिमंडल के एक सदस्य की हत्या कर दी गई थी, समस्त नगर के सरकारी कार्यालय बन्द थे, अतः हमने कुछ स्थानों को बाहर से घूम फिर कर देखा और उसके पश्चात् हम विक्टोरिया मेमोरियल हाल देखने को गये। यह हाल एक बड़े उद्यान के बीच में स्थित है।

मध्य में बैठने के लिए सुन्दर लान बने हैं जिनमें छोटी २ घास उगी है। वहाँ कई सुन्दर जलाशय भी हैं।

उद्यान के द्वार के सम्मुख महारानी विक्टोरिया की मूर्ति खड़ी है। उसी के साथ दूसरी ओर महारानी के पुत्र एडवर्ड सप्तम की प्रतिमा है। वे इस में घोड़े पर चढ़े हुए दिखाये गये हैं। इस स्मारक के निर्माण कराने वाले उस समय के वायसराय लार्ड कर्जन थे।

वहीं स्मारक के बाहर अष्टधातु से निर्मित लार्ड कर्जन की प्रतिमा भी है। हमें यही देखते-देखते बारह बज गये, दोपहर हो गई। वहाँ शीतल मंद सुगन्धित वायु चल रही थी, अतः थोड़ी देर विश्राम करके थकावट दूर की।

सायंकाल श्री मोतीलाल अपनी कार लेकर आगये। इन्होंने मुझे कुछ दर्शनीय स्थान दिखाने का वचन दिया था। आपने वहाँ का सारस्वत क्षत्रिय हाई स्कूल दिखाया और बताया कि इसकी भूमि डा० एस० के० वर्मन ने दान दी थी और इस पर डाक्टर मदनमोहन ने स्कूल का भवन बनवा दिया था।

४ जनवरी को प्रातःकाल मैं अपने दैनिक कार्यों से शीघ्र ही निवृत्त हो गया। आज मैं सायं-काल की गाड़ी से लौट जाना चाहता था। अभी कुछ दर्शनीय स्थान देखने शेष थे अतः मैं भी श्री सुखदेव को साथ लेकर अजायब घर तथा चिड़िया घर पहुँचा।

चिड़ियाघर में हिंसक पशु, जल जन्तु, पक्षी एवं विभिन्न प्रकार के जन्तु देखे, उनमें कछुआ, दरयाई घोड़ा एवं ऊद्‌बिलाव समीप ही थे। पक्षियों में चकवा-चकवी आपस में क्रीड़ा कर रहे थे, एक पिंजरे में कुछ श्वेत तोते बंद थे। तालाब में बगुला-बतखें नृत्य कर रहे थे। हिंसकों में शेर बबर, चीता, बाघ और भेड़िया दीख पड़े। वहाँ हमने भौंकने वाले हिरण भी देखे। एक स्थान पर भाँति-भाँति के सर्प एकत्र थे। उन में उड़ने वाले, जल में रहने वाले, विषैले, सादे, एक मुँह वाले एवं अजगर सभी

जातियों के साँप दृष्टिगोचर हो रहे थे। वहाँ से मैं विवेकानन्द बाज़ार गया और घर के लिये कुछ आवश्यक वस्तुएँ खरीद लाया।

सायंकाल मेरी गाड़ी ७ बजकर बीस मिनट पर चलने वाली थी। अपना कार्य समाप्त करके मैं टैक्सी द्वारा ६॥ बजे स्टेशन पर पहूँच गया। मेरे नवयुवक साथी मुझे विदा करने आये थे। उन्होंने मार्ग के लिये मेरे साथ कुछ भोजन भी रख दिया।

१०—बनारस, लखनऊ, कानपुर

कलकत्ते से मेरी गाड़ी नियत समय पर चली और रात के ६ बजे बर्दवान पहुँची, वहाँ पर मैं भोजन से निवृत्त हो गया। गाड़ी में अधिक भीड़ न होने से सोने के लिये स्थान बनाने में कठिनाई न हुई। अगले दिन ५ जनवरी को प्रातः गाड़ी काशी स्टेशन पर पहुँची। यह स्टेशन साधारण ढंग का है और भीड़भाड़ भी वहाँ अधिक नहीं होती। अधिक यात्री भी वहाँ नहीं उतरते, इसलिये चहल-पहल भी नहीं होती। अगला स्टेशन है बनारस। वहाँ यात्रियों को आने-जाने के साधन सुविधा-पूर्वक मिल जाते हैं अतः अधिक यात्री वहीं उतरते हैं। वहाँ पर गाड़ी १०॥ बजे पहुँच गई।

यहाँ आने-जाने के लिये रिक्शा-साइकलों का अधिक रिवाज है। मैंने भी एक रिक्शा ली और भारत के इस प्राचीन साँस्कृतिक-नगर में प्रवेश किया और दशाश्वमेध-घाट के समीप ही एक होटल में ठहरा। वहाँ भोजनादि से निवृत्त होकर काशी विश्व-विद्यालय देखने का विचार किया।

काशी के समान ही बनारस भी प्राचीन नाम है पर यह है अपभ्रंश। इसका शुद्ध रूप है वाराणसी। ये दोनों स्थान एक साथ ही बसे हुए हैं। यह जहाँ संस्कृत-विद्या का केन्द्र है वहाँ भारतीयता का धार्मिक रूढ़िग्रस्त रूप भी यहाँ दिखाई देता है।

हिन्दू-विश्वविद्यालय—मैं एक रिक्शा पर काशी विश्वविद्यालय देखने चल दिया। वहाँ पहुँचते ही सर्वप्रथम द्वार पर मुझे महामना पं० मदनमोहन मालवीय की विशाल प्रतिमा के दर्शन हुए! विश्वविद्यालय एक विशाल-क्षेत्र में स्थित है जिसका घेरा तीन मील से कम न होगा। यहाँ कालेज की वर्कशाप और खेल के विशाल मैदान हैं। इतना बड़ा विश्वविद्यालय मैंने इससे पूर्व कभी न देखा था। इसमें विज्ञान सम्बन्धी शिक्षा का तो विशेष रूप से प्रबन्ध है ही किन्तु साथ ही अन्य विषयों की शिक्षा के लिये भी समुचित

प्रबन्ध किया गया है। यहाँ पृथक्-पृथक् विषयों के कालेज बने हुए हैं जिनके साथ छात्रावास भी हैं। यहाँ पर एक संस्कृत कालेज भी है जिसका भवन श्री जुगल किशोर बिरला द्वारा बनवाया गया है। दिल्ली के बिरला मन्दिर का निर्माण इसी भवन के ढंग पर किया गया है। विश्व-विद्यालय को देखकर मैं अपने स्थान पर आया और कुछ समय विश्राम किया।

यद्यपि मैं इस अवसर पर बौद्धों के प्रसिद्ध-धार्मिक स्थान सारनाथ को देखना चाहता था किन्तु समयाभाव के कारण न देख सका। मेरा स्थान गंगातट के समीप ही था। मैंने वहाँ नौका-विहार की योजना बनाई। एक नाविक से बातचीत की। वह मुझे नौका भ्रमण कराता हुआ दशाश्वमेध घाट, केदारनाथ घाट और हरिश्चन्द्र घाट आदि कई स्थानों पर ले गया। हरिश्चन्द्र घाट पर प्राचीन काल से शव जलाये जाते हैं और वहाँ कर देना पड़ता है। यहाँ यह किंवदन्ती है कि यहाँ का घाट वाला प्राचीन डोमवंश से ही चला आता है जिसके यहाँ राजा हरिश्चन्द्र को अपने विपत्ति के दिन बिताने पड़े थे। सायंकाल को जब मैं नौका विहार कर रहा था तो मैंने देखा कि घाटपर जहाँ कुछ पण्डित उपासना में लगे थे वहाँ कुछ भंग आदि में भी लीन थे। मेरा नाविक नौका को मस्ती से खे रहा था। इस बार के नौका-विहार में मुझे विशेष आनन्द प्राप्त हुआ। अब अन्धेरा होने लगा, दीपक जलने लगे और मन्दिरों में आरतियाँ प्रारंभ हो गईं। मैं अब नाव से उतरा और श्री विश्वनाथ का मंदिर देखने गया। बनारस का यह मन्दिर बड़ा विख्यात है किन्तु मुझे इसमें कुछ विशेष महत्त्व न दीख पड़ा। इस मंदिर पर स्वर्ण का कलश लगा था। मंदिर के एक भाग में एक मस्जिद बनी हुई है। कहते हैं औरंगजेब ने मंदिर गिरवा कर इसे बनवाया था। मैंने मंदिर के विषय में अधिक पूछताछ की, किन्तु मुझे पर्याप्त जानकारी प्राप्त न हो सकी।

मैंने कई भाषणों में यह किंवदन्ती भी सुनी थी, जो इस मस्जिद के विषय में कही जाती है कि बंगाल के नवाब की एक कन्या एक ब्राह्मण कुमार पर आसक्त हो गई थी। नवाब ने उस ब्राह्मण को बुलाकर अपनी

इकलौती कन्या से विवाह का प्रस्ताव किया और राज्य का प्रलोभन दिया। यहाँ तक अवसर दिया कि वह कन्या को हिन्दू बनाले। ब्राह्मण कुमार ने इस विषय में प्रयत्न किया। बनारस के पण्डितों से व्यवस्था माँगी पर उन्होंने उस मुसलिम कन्या को हिन्दू बनाने की आज्ञा न दी। ब्राह्मण कुमार को स्वयं मुसलमान बनना पड़ा। कहते हैं कि वही औरंगजेब के आदेश से बनारस पर आक्रमण करने आया और यह मसजिद यहाँ बनवाई। जिन्होंने उसका अपमान किया था उनसे उसने भरपूर बदला लिया और उन्हें मुसलमान बनने पर विवश कर दिया। लोगों ने उसके अत्याचारों की भयंकरता से इसको कालाचाँद नाम दिया। मुझे उस मस्जिद को देख कर ये स्मृतियाँ याद आगईं। इसे देखने के पश्चात् वहाँ के बाज़ार देखे।

६ जनवरी १९४९ को मैंने प्रातः कुछ देर घाट की सैर करके अल्पाहार किया। ११ बजे पंजाब मेल से मैंने जाने का निश्चय किया हुआ था। ठीक समय पर स्टेशन पर जाकर मैं गाड़ी में बैठ गया।

लखनऊ में—लगभग ४॥ बजे गाड़ी लखनऊ पहुँची। स्टेशन पर मुझे मेरे सम्बन्धी श्री देशराज सर्दाना एवं श्री इन्द्रचन्द्र लेने के लिये उपस्थित थे। मैं उनके साथ पानदरीबा में उनके निवास पर गया। कुछ देर बातचीत व विश्रामादि करके हम इमामबाड़ा आदि देखने के लिए गये।

इमामबाड़ा—कहते हैं कि यह इमाम बाड़ा अवध के नवाब द्वारा निर्धनों व भिखारियों के लिए बनवाया गया था। इसमें जो विशाल कमरे बने हुए हैं उतने बड़े कमरे विश्व भर के इस प्रकार के किसी भवन में नहीं हैं। इसका प्रवेश-द्वार लगभग ३०० फीट ऊँचा है। यहाँ हजारों निर्धनों का निर्वाह होता था।

केसरबाग—यहाँ से हम केसरबाग देखने गये। यह बाग प्राकृतिक ढंग पर बना हुआ है। नाना प्रकार के सुगंधिदायक पेड़ पौधे इस बाग में लगाये गये हैं। लखनऊ को इस प्रकार प्राकृतिक ढंग से सजाने का श्रेय सर हरकोर्ट बटलर को है। कदाचित् इसी से प्रेरित होकर

अवध प्रांत के तालुकेदारों ने सर हरकोर्ट बटलर की प्रतिमा वहाँ लगवाई थी। वह प्रतिमा अष्टधातु से निर्मित है और एक ऊँचे चबूतरे पर अश्वारोही के रूप में बड़ी सुन्दर प्रतीत होती है। केसरबाग, आराम बाग तथा अन्य प्राकृतिक स्थलों के कारण लखनऊ को 'भारत का उद्यान' तथा 'मुगल राज्य की प्राकृतिक राजधानी' कहा जाता था।

गोमती के तट पर—लखनऊ का प्राकृतिक विभाग देख कर मैं देशराज जी के साथ गोमती नदी देखने गया। इस नदी के किनारे पर ही लखनऊ विश्व-विद्यालय तथा अन्य कॉलेज स्थित हैं। उसके पार्श्व में एक 'छत्तर मंजिल भवन' है जो बड़े ही कलात्मक ढंग से बनाया गया है। आज इस भवन में 'केन्द्रीय औषधि रसायनशाला' स्थापित है।

इस रमणीय स्थान को देखने के पश्चात् हम हजरतगंज बाजार आ गये। यहाँ से जनरल पोस्ट-आफिस एवं रेज़ीडेंसी देखने गये। कभी यह बड़ा विशाल एवं रम्य भवन था किन्तु इस समय तो यह खण्डहर ही रह गया है। १८५७ के स्वतंत्रता-युद्ध की भयानक स्मृति के चिन्ह ही शेष रह गये हैं। प्रवेश-द्वार के एक पत्थर पर यहाँ का समस्त हाल लिखा है। इस से आगे लाल बाग था। वहाँ पर मेरे बन्धु श्री मुंशीराम नरूला की दुकान थी। उनसे मिल कर हम अपने निवास पर लौट गये।

अगले दिन प्रातः नित्य-कर्म से निवृत्त हो कर मैं काठ-गोदाम गया। यहाँ पर मुझे अपने सम्बन्धी श्री हवेलीराम वर्मा से मिलना था। घर जाकर पता चला कि वे मुझ से मिलने मेरे स्थान पर गये हैं। उनके परिवार के अन्य व्यक्तियों से मिल कर श्री हवेलीराम जी से मिलने अपने निवास की ओर चल दिया।

अपने स्थान पर पहुँच कर मैं उनसे मिला और उनसे कहा कि मैंने कानपुर जाना है अतः मार्ग में बातचीत करते हुए स्टेशन पहुँच जायेंगे क्योंकि गाड़ी में थोड़ा ही समय शेष रह गया था। प्लेटफार्म पर गाड़ी कानपुर जाने को तैयार खड़ी थी। मैं लाला जी से विदा होकर गाड़ी में बैठ गया। ३ वजे गाड़ी कानपुर पहुँची। यहाँ से मैं तांगे से हेलट नगर पहुँचा।



बहिन कृपादेवी

यह स्थान रेलवे स्टेशन से ३-४ मील की दूरी पर है। यहाँ पर पाकिस्तान से आने के पश्चात् मेरी बहन कृपादेवी परिवार सहित रहती हैं। अब इस स्थान को गोविन्द नगर कहते हैं।

मेरे बहन-बहनोई घर न थे, मुझे लेने के लिये स्टेशन पर गये हुए थे। घर पहुँचकर मैं बच्चों से मिला और उस बस्ती को देखने निकला। यहाँ अधिकांश पुरुषार्थी परिवार ही रहते हैं। उनका छोटा सा बाजार भी है, जहाँ खाने पीने व दैनिक कार्यों के सभी उपयोगी पदार्थ मिल जाते हैं।

मैं अपने बहन-बहनोई को स्टेशन पर न मिला तो उन्हें बड़ी निराशा हुई किन्तु जब घर पर लौट कर उन्होंने मुझे देखा तो प्रसन्नता के मारे फूले न समाये।

८ जनवरी को अपने भाँजे प्यारेकृष्ण को साथ लेकर कानपुर नगर गया। लाटूश रोड से मूलगंज बाजार जा कर देखा। यहाँ पर अधिकतर लोहे की दुकानें हैं। यहाँ से आगे हम मालरोड पर पहुँचे और मैं कानपुर के अन्य स्थल देखने के पश्चात् १॥ बजे स्टेशन पर आ गया।

गाड़ी आज लेट थी। २॥ घण्टे तो पहले ही लेट हो चुकी थी और उसका समय-क्रम बिगड़ जाने से आगे भी लेट होती गई, अतः १२ बजे रात्रि को मैं देहली स्टेशन पर पहुँचा। मुझे आशा तो न थी कि इस समय मुझे स्टेशन पर लेने कोई आयेगा पर जब ओंप्रकाश को स्टेशन पर देखा तो मुझे बड़ा सन्तोष हुआ। मैंने उसे बुला लिया और हम वहाँ से अपने निवास स्थान पर आ गये।

११—गुरुकुल काँगड़ी

तथा कुछ अन्य शिक्षण-संस्थाएं

श्रद्धेय स्वामी श्रद्धानन्द जी ने सन् १६०२ में गुरुकुल काँगड़ी की स्थापना की थी। उस समय इसका उद्देश्य तत्कालीन पश्चिमीय शिक्षा पद्धति के विरुद्ध बालकों को प्राचीन पद्धति के अनुसार वैदिक शिक्षा देना था। विदेशी सरकार से इसका समर्थन भला कैसे मिल सकता था अतः सरकारी स्वीकृति लेने का प्रश्न ही न उठा। पर १६४७ में भारत स्वतंत्र हुआ और जनतन्त्र के आदर्शों पर चलने की घोषणा हुई तो गुरुकुल के कर्णधारों को यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि भारत सरकार से सहयोग प्राप्त किया जाय। इस प्रश्न के उठते ही १६४८ की जनवरी के अन्त में विद्यासभा का अधिवेशन रखा गया। इस अधिवेशन की सूचना मुझे भी मिली।

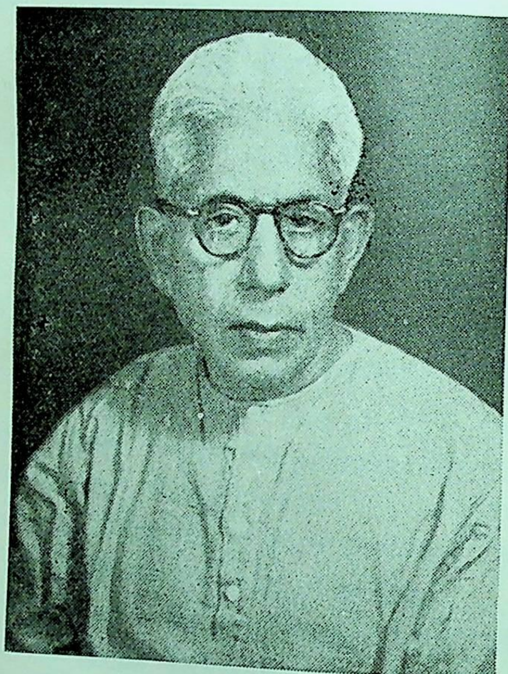
आज देश की राष्ट्रीय संस्थाओं में गुरुकुल काँगड़ी का प्रमुख स्थान है। इस संस्था के विषय में यह बता देना भी उचित होगा कि इस को हरिद्वार के समीप गंगा के दूसरे पार काँगड़ी ग्राम की भूमि में आरम्भ किया गया था। वहीं इस के भवन थे। १६२४ में अति वृष्टि के कारण देश भर में उत्कट बाढ़ें आईं, जिनका गुरुकुल पर भी प्रभाव पड़ा। उसके भवन जलमग्न होकर नष्ट होगये। तब गुरुकुल की संचालिका सभा अर्थात् आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने इस पर विचार करके निश्चय किया कि गुरुकुल को किसी अन्य अधिक सुरक्षित स्थान पर परिवर्तित किया जाय। स्थान का चुनाव करने के लिये एक उप-समिति नियुक्त की गई, जिसमें पं० ठाकुरदत्त शर्मा तथा श्री नोतनदास 'गम्भीर' के अतिरिक्त मैं भी था। उक्त समिति ने कई स्थानों को देखकर वर्तमान स्थान को उपयुक्त समझा और सभा की स्वीकृति

के पश्चात् गुरुकुल इस स्थान पर आगया और वहाँ नये भवनों का निर्माण हुआ। यह भूमि हरिद्वार से लगभग तीन मील दूर गंगा की नहर के किनारे हरे भरे सुन्दर प्रदेश में होने के कारण विश्वविद्यालय के लिए सर्वथा योग्य है। वहाँ से समीप ही हिमालय के उत्तंग शिखर दीख पड़ते हैं। कुछ वर्ष बाद १९३५ में गुरुकुल के प्रवन्ध के लिए विद्या--सभा का निर्माण हुआ। मैं भी इसका आरम्भ से सदस्य हूँ।

२७ जनवरी को मैं गुरुकुल काँगड़ी के लिये चला। मुझे इस बार दूसरी श्रेणी का टिकट न मिलने के कारण प्रथम श्रेणी के डिब्बे में यात्रा करनी पड़ी । वहाँ एक नवयुवक अंग्रेज़ भी आ बैठा। पूछने पर पता चला कि वह एक इंगलिश साईकल कम्पनी का कार्यकर्ता है। बातचीत से यह भी स्पष्ट हो गया कि वह अभी अविवाहित ही है और आगे भी लगभग दस वर्ष तक विवाह न करेगा। उसने यह विचार बना रखा था कि जब तक उसकी आय पर्याप्त न होगी वह अविवाहित ही रहेगा। उसके ऐसे विचार व दृढ़ता से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

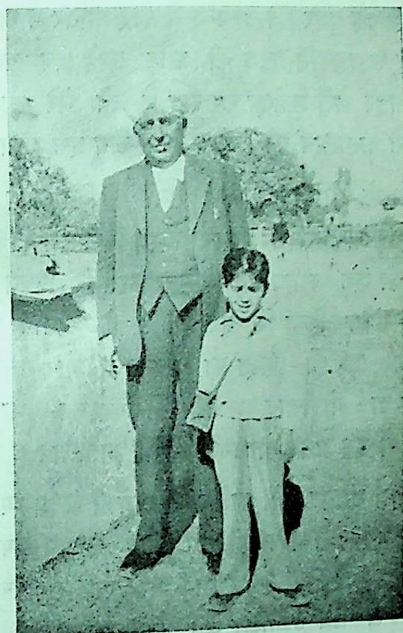
प्रातः गाड़ी हरिद्वार पहुँची और मैं उतर कर टाँगे से गुरुकुल भूमि में पहुँच गया। विद्यासभा के सदस्य वहाँ आर्यसमाज मंदिर में ठहरे थे। भोजनोपरान्त एक बजे से अधिवेशन प्रारंभ होना था। मेरे लिये वहाँ एक और भी कार्य करने को था, वह था गुरुकुल का निरीक्षण। अधिवेशन से अतिरिक्त समय में मैंने उस कार्य को भी पूर्ण कर लिया।

अधिवेशन का कार्य नियत समय पर आरम्भ हो गया। यह प्रस्ताव प्रस्तुत हुआ कि गुरुकुल विश्व-विद्यालय को स्वीकृत विश्व-विद्यालय (Chartered University) बनाया जाय। पर अभी इसके लिए विशेष जानकारी की आवश्यकता थी। भिन्न-भिन्न विचार सदस्यों की ओर से प्रकट किये गये। शीघ्र निर्णय होना कठिन था अतः इसी विषय पर तीन बैठकों में विचार हुआ और तत्पश्चात् यह निर्णय हुआ कि उत्तर-प्रदेश की विधानसभा में इस विषय को उपस्थित करने के लिए बिल का



प्रो० दीवान चन्द शर्मा संसद् सदस्य

पूर्व-रूप तैयार किया जाय। इस अधिवेशन में महाशय कृष्ण, पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति, पं० विश्वंभरनाथ, प्रिंसिपल मानकचन्द्र, श्री नोतनदास, पं० यशपाल, श्री भीमसेन विद्यालंकार आदि अन्य कई सदस्य उपस्थित थे।



विजय के साथ दिल्ली में (१९४९)

३० जनवरी को मैं दिल्ली को चल दिया। ३ फरवरी को मेरे घर पर मेरे पौत्र प्रवीण का नामकरण संस्कार था। इस समय मेरी दोनों पौत्रियों सविता और इन्दु के नाम भी रखे गये। इस अवसर पर मित्रों व सम्बन्धियों के अतिरिक्त महाशय कृष्ण, ला० नारायणदत्त, राय साहब नेमतराय आदि कई महानुभाव उपस्थित थे।

इन्हीं दिनों विस्थापितों को सरकार द्वारा ऋण मिल रहा था। इस विषय में कुछ जानकारी के लिये मैं सेक्रेटेरियट में गया। वहाँ मिलिटरी अर्थ विभाग के परामर्शदाता श्री शम्भुदयाल सिन्हा से भेंट हुई। ये कभी मेरे शिष्य थे। जालन्धर में इन्होंने मुझ से शिक्षा पाई थी। ये ऐसे प्रेमपूर्वक मुझ से मिले, मानो उनके और मेरे सम्बन्ध में कोई अन्तर न आया था। इन्होंने मेरे काम से पूर्ण सहानुभूति प्रकट की और इन्हें जब पता चला कि मेरा पुत्र ओंप्रकाश बाहर मेरी प्रतीक्षा कर रहा है तो मेरे साथ बाहर आकर उससे बड़े प्रेम से वार्तालाप की। शोक कि वे अब इस संसार में नहीं रहे!

इन्हीं दिनों मुझे प्रो० दिवानचन्द शर्मा से मिलने का अवसर हुआ। वे उस समय कुछ प्रोफेसरों से पंजाब विश्व-विद्यालय की बी० ए० के बाद की उच्च शिक्षा को एक स्थान पर केन्द्रित करने के विषय में वार्तालाप कर रहे थे। उन्होंने संकेत किया कि इस नीति के अधीन होशियारपुर और लुधियाने में एम०, ए० की शिक्षा का प्रबन्ध किया गया है। उस समय शिक्षा मंत्री थे डा० गोपीचन्द भार्गव और शिक्षा-विभाग के डायरेक्टर श्री चैटर्जी थे। मैं उस समय तो उनसे विशेष वार्तालाप न कर सका।

प्रोफेसर शर्मा डी. ए. वी. कालेज में अंग्रेजी के प्राध्यापक थे। स्वर्गवासी प्रो० देवी दयाल तथा बख्शी राम रतन का पंजाब विश्वविद्यालय में बड़ा प्रभाव था। ये दोनों महानुभाव नवयुवक दीवानचन्द की योग्यता और कार्य-क्षमता से बड़े प्रभावित थे। उनके सहयोग से श्री दीवानचन्द ने भी विश्वविद्यालय के कार्यों में पदार्पण किया और शीघ्र ही अपने लिए एक उच्च स्थान बना लिया। उन्हों ने विद्यार्थियों के हितार्थ बहुत सी पुस्तकें लिखीं।

आर्य समाज के कार्यों में भी प्रो० शर्मा बराबर भाग लेते रहे हैं। अपने भाषणों व लेखों द्वारा उन्होंने आर्य समाज की सेवा की है। 'आर्य समाज के निर्माता' नामक पुस्तकमाला भी उन्होंने इसी दृष्टि से लिखी। इस सम्बन्ध में मुझे उनसे मिलने और विचार-विनिमय के कई अवसर होते रहे।



डा० सत्यपाल अध्यक्ष, पंजाब धारा सभा

२५ फ़रवरी को उनसे मैं पुनः मिला। उनको मैंने बताया कि गुरुकुल काँगड़ी के अधिकारी अपनी स्नातक उपाधि की मान्यता पंजाब विश्व-विद्यालय में उसी प्रकार चाहते हैं जैसी कि आगरा-विश्वविद्यालय में उसे प्राप्त है। उन्होंने इस पर मुझे बताया कि इसकी सफलता के मार्ग में कुछ अड़चनें हैं। ऐसा प्रतीत होता था कि इसके लिए कुछ समय और प्रतीक्षा करनी होगी क्योंकि जब तक परिस्थितियाँ अनुकूल न हों, यह प्रश्न विचारार्थ प्रस्तुत करने से लाभ की आशा नहीं।

अब जालन्धर में विक्टर हाई-स्कूल और आर्य शिक्षा-समिति के अधिवेशनों की तिथियाँ निकट आ रही थीं। मैं वहाँ गया। २० फरवरी को स्कूल की प्रबन्धकर्त्री सभा का अधिवेशन था। इससे पूर्व वहाँ के मुख्याध्यापक श्री नन्दलाल ने हमें स्कूल के लिये नये बनवाये हुए कमरे दिखाये। अगले दिन पंजाब आर्य-शिक्षा-समिति का अधिवेशन आर्यसमाज मंदिर जालन्धर में ५ बजे सायं हुआ। इस समिति के मंत्री थे श्री कृपाराम और मैं था इसका प्रधान। समिति के कार्य व संगठन के विषय में कुछ निर्णय हुए।

यहाँ से अमृतसर के लिये २२ फरवरी को चला। वहाँ सर्वप्रथम रामाश्रम हाई स्कूल के मुख्य अध्यापक से मिला। आर्यसमाज के प्रसिद्ध कार्यकर्ता स्वर्गीय मास्टर सुन्दरसिंह जी ने इस संस्था को चलाया था। इनके पुत्र ही इस स्कूल के मुख्य कार्यकर्ता हैं। इस शिक्षणालय में विद्यार्थियों के सदाचार और जीवन पर अधिक ध्यान दिया जाता है। यहाँ मैं अगले दिन हाल बाजार में डाक्टर सत्यपाल से मिलने गया। लाहौर के विषय में वार्तालाप चली। इस सम्बन्ध में डाक्टर जी ने बताया कि उनके एक परिचित व्यक्ति लाहौर आते जाते रहते हैं, सम्भवतः वह व्यक्ति मेरे लाहौर वाले मकान से कुछ वस्तुएं ला सकें। अभी हमारी वार्तालाप चल ही रही थी कि वे सज्जन भी आ गये। उनसे कुछ जानकारी तो प्राप्त हुई पर कोई अन्तिम निश्चय न हो पाया।

अगले दिन आर्य पुत्री-पाठशाला पशम बाज़ार का निरीक्षण किया।

श्री जयदेव विद्यालंकार मेरे साथ थे। सायंकाल हिन्दू कालेज के प्रिंसिपल श्री संतराम ग्रोवर के निमन्त्रण पर उनके घर गया और वहाँ उनके साथ चाय पान किया। वहाँ शिक्षा सम्बन्धी विषयों के अतिरिक्त स्वतंत्र भारत में अपनी और देश की अवस्था पर बात-चीत हुई।

अमृतसर से जालन्धर होता हुआ मैं लुधियाने पहुँचा। वहाँ स्वर्गीय श्री रामलाल जी कई वर्ष पूर्व आर्य हाई-स्कूल के प्रिंसिपल रह चुके थे। इस संस्था को उन्नत बनाने में उन्हें सब प्रकार से सफलता भी मिली थी। वे मेरे घनिष्ठ मित्र और सहयोगी थे। उनके पश्चात् श्री दिलीपचन्द उनके स्थान पर कार्य कर रहे थे। पर वे भी उस समय वहाँ न थे, बताया गया कि वे जालन्धर गये हैं।

लुधियाने में अपने बन्धु चौधरी दीवानचन्द से भी मिलने का अवसर हुआ। वे वहाँ कांग्रेस के एक अच्छे कार्यकर्ता थे। उनके साथ मैं उनके घर पर गया और उनकी माता से मिला। ये उस समय वृद्धा थीं और बहुत निर्बल हो गई थीं। मैं इनको चिरकाल से जानता था, ये मेरी पत्नी की प्रिय सहेलियों में से थीं।

लुधियाने से अम्बाले जाने के लिये जिस गाड़ी में बैठा उसमें डाक्टर योगध्यान आहूजा भी बैठे थे। मार्ग में तत्कालीन स्थिति और अन्य विषयों पर बातचीत होती रही। अम्बाले पहुँच कर अपने निवास के समीप ही रविवर्मा स्टील वर्क्स के मालिक श्री अर्जुनदेव से मिला। उनसे मिलकर बाहर आया ही था कि मार्ग में आर्यकन्या पाठशाला बच्छोवाली लाहौर के भूतपूर्व सहायक प्रबन्धक श्री मेहरचन्द्र से भेंट हुई। वे उत्तर प्रदेश की गवर्नर महोदया श्रीमती सरोजिनी नायडू के निधन पर होने वाली एक सार्वजनिक सभा में भाग लेने जा रहे थे। वहाँ से मैं डी० ए० वी० कालेज में जाकर वहाँ के प्रिं० श्री बहादुरचन्द से मिला। वे और मैं कई वर्षों तक एक साथ जाति-पाति-तोड़क-मंडल में कार्य करते रहे थे।

आर्य प्रतिनिधि सभा के उपप्रधान रायसाहिब अमृतराय यहीं रहते थे। उनके निमन्त्रण पर मैं सायं उनके यहाँ भोजन के लिये गया। उनके यहाँ

भोजन डाक्टरों के निर्देशानुसार विशेष विधि से बनाया जाता था। उन्होंने एक भोजन सम्बन्धी तालिका दिखाई जिसके अनुकूल भोजन सेवन करने से स्वास्थ्य को विशेष लाभ पहुँच सकता है।

सरदार पटेल का भाषण—पंजाब विश्व-विद्यालय का दीक्षान्त समारोह इस वर्ष ५ मार्च को अम्बाले होना था। यह समारोह किसी विशेष भवन में न होकर एक खुले स्थान पर होने वाला था। इसके लिये भारत के लोह-पुरुष सरदार पटेल आ रहे थे। उनका दीक्षान्त भाषण लोगों के लिये विशेष महत्त्वपूर्ण समझा जाता था। स्वाभावतः ही सरदार पटेल के भाषणों में जनता का बड़ा आकर्षण था अतः लोगों में बड़ा हर्ष प्रकट किया जा रहा था।

मैं चार मार्च को प्रातः पटियाला चला गया। वहाँ पर मेरे बहुत से सम्बन्धी आकर बस गये थे। पंजाब विभाजन से पूर्व ही मैं उनसे मिला था। अब वे घर बार त्याग कर यहाँ आये थे। उनसे मिलने का यह पहला ही अवसर था। इनसे मिलकर मैं पटियाला महेन्द्र कालेज गया और अपने परिचित कुछ प्राध्यापकों से मिला। वहाँ से मैं गवर्नमेंट सिटी हाई स्कूल में गया। वहाँ के मुख्याध्यापक पश्चिमी पंजाब में खालसा हाई स्कूल मण्डी बहाउद्दीन में प्रधानाध्यापक थे। वे वासु के रहने वाले थे। मैंने उनसे अपने सहपाठी सरदार अमरसिंह के विषय में पूछा, तो वे बोले कि वे उनके बड़े भाई थे किन्तु दुःख है कि वे अब इस संसार में नहीं रहे। यह जानकर मुझे भी बड़ा दुःख हुआ।

अगले दिन प्रातः पंजाब विश्व-विद्यालय का दीक्षान्त समारोह हुआ। मुझे पहले ही प्रवेश-पत्र प्राप्त हो गया था। मैं नियत समय पर वहाँ पहुँचा। सरदार पटेल का भाषण आरम्भ हुआ। भाषण बड़ा मार्मिक था। उन्होंने कार्यक्षेत्र में आने वाले नवयुवकों को प्रेरित किया कि वे स्वतंत्र भारत में अपनी शिक्षा सफल करें। उन्होंने अपील की कि इस समय देश विशेष परिस्थितियों में से गुजर रहा है अतः प्रत्येक व्यक्ति इस समय

अपनी सरकार को सहयोग दे। उनके शब्द सचमुच हृदयवेधी थे। भाषण के पश्चात् उन्होंने अपने हाथों से नवीन स्नातकों को उपाधियाँ वितीर्ण कीं। समारोह के पश्चात् मोगा दयानन्द कालेज के प्रिंसिपल श्री राजेन्द्र कृष्णकुमार तथा डी० ए० वी० कालेज लाहौर के भूतपूर्व प्रोफेसर धर्मपाल से भेंट हुई। प्रो० धर्मपाल उस समय भारत सरकार के इतिहास सम्बन्धी अनुसंधान विभाग में कार्य कर रहे थे।

अगला दिन था रविवार। समाज मंदिर में गुरुकुल काँगड़ी के आचार्य पं० प्रियव्रत वेदवाचस्पति का 'धर्म का जीवन से सम्बन्ध' पर बड़ा मनोहर व्याख्यान हुआ। सायंकाल को आर्य कन्या पाठशाला में आर्य प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग सभा का अधिवेशन था। उसके पश्चात् उपस्थित सज्जनों का एक चित्र लिया गया।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब अन्तरंग अधिवेशन अम्बाला (मार्च १९४९)



आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब अन्तरंग अधिवेशन अम्बाला (मार्च १९४९)

१२—कुछ सहयोगियों के विषय में

बापू-प्रदर्शनी—३१ जनवरी १९४९ को बापू निधन की दूसरी बर्षी पड़ी। इस अवसर पर कांग्रेस-कमेटी ने राजघाट पर एक प्रदर्शनी का आयोजन किया। यह वैसे तो एक मास के लिए ही थी पर जनता की माँग पर वह दो मास के लिए और बढ़ा दी गई। नवयुवक कला-प्रेमियों ने इस प्रदर्शनी को बड़ी सरलता एवं योग्यता के साथ बनाया था। राजघाट पर बीच में एक पण्डाल बना था एवं बापू की शिष्याएं व आश्रम की देवियाँ बापू की प्रार्थना और उनके प्यारे भजनों को संगीत के साथ मधुर स्वर से गाती थीं। इस में दर्शक भी भाग लेते थे।

मैं अपनी यात्रा से मार्च के आरंभ में ही लौट आया था पर शिक्षा-सम्बन्धी कुछ कार्य अभी शेष थे। इसी निमित्त एक दिन डी० ए० वी० हायर सेकण्ड्री स्कूल के प्रिन्सिपल हरिश्चद्र के पास बैठा हुआ था। उसी समय एक सज्जन वहाँ पधारे। उन्होंने मुझे पहचान लिया। वे श्री लाल चन्द्र चोपड़ा थे। हम १९१२ में लाहौर ट्रेनिंग कालेज में एक साथ पढ़े थे। उसके पश्चात् वे शिक्षा-विभाग में कार्य करते रहे। एक लम्बी सेवा के पश्चात् अब वे स्थिर रूप से अपने कार्य से अवकाश पा चुके थे। मैंने उनको सदा हृष्ट-पुष्ट और स्वस्थ पाया, अब भी उनका स्वास्थ्य प्रशंसनीय था। मैंने उनसे पूछा कि वे अब अपना समय किस प्रकार व्यतीत करेंगे। उन्होंने इस पर बताया कि वे अब भी अध्यापन कार्य करना वांछनीय समझते हैं और कुछ समय और इस कार्य में लगाने की इच्छा रखते हैं।

श्री नोतनदास गंभीर—कई मास के पश्चात् श्री नोतनदास गंभीर से मेरी भेंट जयपुर कांग्रेस अधिवेशन पर हुई थी। यद्यपि वे उस समय दुर्बल दीख पड़ते थे पर यह पता न था कि वह उनसे मेरी अन्तिम भेंट थी। उनकी

पाचन शक्ति क्षीण हो चुकी थी और इसी रोग में उनका स्वर्गवास हो गया। यह दुःखद समाचार मुझे दिल्ली में तीन दिन पीछे मिला। वर्षों साथ कार्य करने से उनके प्रति मेरे हृदय में बड़े आदर और सम्मान के भाव थे। उनके निधन से मुझे बड़ा दुःख हुआ। अन्तिम शोक दिवस पर जब मुझे सूचना मिली तो मैं उन के घर पर गया और उनके परिवार से सहानुभूति प्रकट की। पं० ठाकुरदत्त शर्मा ने जिनका उनसे सम्बन्ध मुझ से भी अधिक दीर्घकालीन था, उनके जीवन पर बड़े मार्मिक शब्दों में प्रकाश डाला।

एक दिन मैं वायु सेवनार्थ प्रातः अजमल पार्क में जा रहा था कि मुझे सरगोधा निवासी सरदार सुजानसिंह एडवोकेट से मिलने का अवसर हुआ। ये कभी लाहौर गवर्नमेंट कालेज में स्वर्गीय ला० हरदयाल के सहपाठी थे। इन्होंने उनके विषय में कई बातें सुनाईं। उस समय उनके अध्ययन व स्मरण शक्ति के विषय में बताया कि लोग उनसे बड़े प्रभावित थे। १६०६ में जब कि मैं भी लाहौर में ही पढ़ता था और उनके विषय में सुना करता था परन्तु अभी उनसे मिलने का अवसर न हुआ था, सरदार सुजान सिंह ने बताया कि एफ० सी कालेज में डा० यूइंग की अध्यक्षता में एक समारोह हुआ, जिसमें श्री हरदयाल ने अपनी अद्भुत स्मरण शक्ति का परिचय दिया। उस पर डा० यूइंग ने उन्हें मान-पत्र देते हुए उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी।

इन्हीं दिनों एक दिन अकस्मात् ही डा० परमथनाथ बैनर्जी से मेरी भेंट हुई। कई दिन से मैं उनसे मिलना चाहता था पर मुझे उनका पता न लगता था। एक दिन नई दिल्ली हंसराज कालेज में श्री भगवानदास एवं प्रो० थडानी से भी मिला था कि उनसे श्री बैनर्जी का पता लगे। पर दूसरे दिन अचानक ही उनको देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ। श्री बैनर्जी किसी समय प्रेसीडेंसी कालेज कलकत्ता में अर्थ-शास्त्र के प्रोफेसर थे। अब वे भारतीय संसद के सदस्य श्री लक्ष्मीकांत मैत्रेय के साथ उनके निवास स्थान १५ फ़िरोज़शाह रोड पर रहते थे। उनसे एक घण्टे



स्व० पं० विश्वम्भर नाथ, भूतपूर्व मुख्याधिष्टाता,
गुरुकुल काङ्गड़ी

क वार्तालाप हुआ। उनके निमंत्रण पर पुनः अगले दिन उनके निवास स्थान र गया। वार्तालाप में उन्होंने बताया कि स्वराज्य प्राप्त होने से कई वर्ष पूर्व केन्द्रीय ऐसेम्बली में राष्ट्रीय दल के वे प्रधान थे। श्री लक्ष्मीकान्त मैत्रेय जिनके पास उस समय वे ठहरे हुए थे उन दिनों उनके दल के मंत्री थे और साथ ही कार्य करते थे। उनकी इच्छानुसार उन्हें कुछ पुस्तक विक्रेताओं के यहाँ ले गया और अर्थशास्त्र पर आधुनिक पुस्तकें चुनने में उन्हें सहायता दी।

इसके कुछ दिन पश्चात् २७ मार्च को बापू प्रदर्शनी देखने गया। मैंने राजघाट पर जाकर देखा कि गैलरी के दोनों ओर महात्मा जी के चित्रों को यथास्थान लगाया गया है। इसी के साथ ताम्बे, पीतल, काँसी, मोम तथा पत्थर की मूर्तियाँ थीं जिनमें उन्हें उनकी भिन्न २ अवस्थाओं में चित्रित किया गया है। गाँधीजी के पत्रों को प्राप्त करके संयोजकों ने अनुपम साहित्य का निर्माण किया है। उनकी पत्र-लेखन शैली में आत्मीयता के भाव और दरिद्र-नारायण कि स्पष्ट झाँकी दीख पड़ती है।

बापू की कुटिया का भी वहाँ निर्माण किया गया था। जिन्होंने सेवाग्राम की कुटिया नहीं देखी थी वह उसको देखकर प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते थे। यह आश्चर्य की बात थी कि जिस कुटिया में बड़े २ धनी मानी, राजा और रंक सभी पधारते थे उस कुटिया में अब बापू की ही कमी थी। उनकी सभी वस्तुएँ वहीं रखी थीं। गाँधी स्मारक के लिए कुछ नये नमूने के चित्र भी सुझाव रूप में प्रस्तुत थे।

पं० विश्वंभर नाथ—इन्हीं दिनों दो अप्रैल को मुझे पता चला कि आर्यसमाज के प्रसिद्ध कार्यकर्त्ता पं० विश्वंभरनाथ जी का दिल्ली में देहान्त हो गया है। वे इस समय अपने पुत्र श्री योगेन्द्र के पास दिल्ली आकर ठहरे हुए थे। केवल एक ही दिन बीमार रह कर वे चल बसे। इस समाचार से मुझे बड़ा शोक हुआ। मुझे उनके साथ आर्यसमाज की भिन्न-भिन्न संस्थाओं में कार्य करने का अवसर मिला था। जहाँ आर्य-प्रतिनिधि सभा में उनके साथ कई वर्षों तक काम किया वहाँ आर्यसमाज बच्छोवाली

लाहौर और पंजाब आर्य शिक्षा-समिति में भी वर्षों एक साथ रहे थे। गुरुकुल में जब वे मुख्याधिष्ठाता थे तब भी मैं गुरुकुल में निरीक्षणार्थ जाता रहता था और उनसे मिल कर गुरुकुल के उन्नति विषयक प्रश्नों पर विचार विनिमय किया करता था।

पण्डित जी आर्य-शिक्षा समिति के संस्थापकों में से थे। बहुत समय तक तो वे उपप्रधान रहे और अब तीन चार वर्षों से प्रधान थे और मैं उनके साथ मंत्री का कार्य करता था। मैं अपने लम्बे अनुभव के आधार पर कह सकता हूँ कि वे उदार, सरल-स्वभाव और दीर्घदर्शी थे। कई विषयों में अपने स्वतंत्र विचार रखते थे और उन्हें निर्भीकता से प्रकट करने की उनमें अद्भुत क्षमता थी।

मैं उनके अन्तिम शोक दिवस पर उनके पुत्र के घर पर गया। मैंने वहाँ देखा कि उस समय केवल उनके बन्धु, सम्बन्धी व आर्य जगत् के सहयोगी व परिचित डा० कुलभूषण, ला० देशबन्धु गुप्त, प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति एवं सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश श्री मेहरचन्द महाजन व पं० प्रियव्रत वेद वाचस्पति आदि ही उपस्थित न थे अपितु अन्य भी बहुत से गण्यमान्य, धनीमानी, महानुभाव वहाँ पधारे थे। उस समय यह स्पष्ट प्रतीत होता था कि पण्डित जी का परिचय क्षेत्र कितना विशाल है। सचमुच पण्डित जी के निधन से समाज को ऐसी हानि पहुँची कि जिसकी पूर्ति होना कठिन है।

पण्डित जी का जन्म कलानौर जिला गुरुदासपुर में ११ अक्टूबर १८७६ को हुआ था। उन्होंने ऐफ० सी० कालेज लाहौर से बी० ए० उत्तीर्ण की और तत्पश्चात् ऐल-ऐल० बी० करके बटाला और गुरुदासपुर में वकालत करते रहे। महात्मा मुंशीरामजी की प्रेरणा से आर्यसमाज की सेवा का भार लिया और १९२१ में गुरुकुल-काँगड़ी के अवैतनिक मुख्याधिष्ठाता बनकर वहाँ गये। गुरुकुल को वर्तमान भूमि में लाने का श्रेय भी इन्हीं को है। गुरुकुल की रजतजयन्ती भी इन्हीं के समय में हुई थी।

गुरुकुल की सेवा के पश्चात् आप आर्य प्रतिनिधि सभा के उपप्रधान बने और कई वर्षों तक इसके संचालन-कार्य में संलग्न रहे।

कन्या गुरुकुल देहरादून का दीक्षान्त-समारोह तथा वार्षिकोत्सव १३-१४-१५ अप्रैल को था। उन दिनों वहाँ विद्या-सभा का अधिवेशन भी होना नियत था। मैं भी १३ अप्रैल को सायंकाल वहाँ पहुँचा। जिस कोठी में विद्या सभा के सदस्यों के ठहरने की व्यवस्था थी वह स्थान स्वच्छ वायुयुक्त था। इसमें सब सुविधायें विद्यमान थीं। मैं राय साहिब अमृतराय एवं श्री नारायणदास कपूर के समीप ठहरा।

प्रातःकाल उत्सव प्रारम्भ हुआ। इसके पश्चात् भोजनोपरान्त विद्या सभा का अधिवेशन ५ बजे तक चला। सायंकाल पं० ठाकुरदत्त की ओर से माननीय शिक्षा मन्त्री सम्पूर्णानन्द को एक उद्यान-भोज दिया जाने वाला था। मैं भी पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति के साथ समारोह में भाग लेने गया। अगले दिन था दीक्षांत समारोह, उसमें नव स्नातिकाओं को उपाधियाँ वितरित की गईं। माननीय सम्पूर्णानन्द का भाषण हुआ जो सारगर्भित तथा विद्वत्तापूर्ण था।

आज ही मुझे दिल्ली आना था अतः शीघ्र ही सामान बाँध कर स्टेशन पर आ गया और अगली प्रातः दिल्ली आ पहुँचा।

बम्बई व आगरा—मई मास आ गया। दिल्ली में गर्मी बढ़ने लगी। मैंने शिमले जाने का निश्चय किया और मैं २० मई को वहाँ पहुँच गया। इन दिनों शिमले की रौनक बहुत बढ़ गई थी। भारत विभाजन के फलस्वरूप पंजाब सरकार के लाहौर स्थित कई कार्यालय यहीं आ गये थे, यद्यपि राजधानी के लिये अन्यत्र प्रबन्ध हो रहा था। हिमाचल प्रदेश के कार्यालय भी यहीं थे। इन सब कारणों से शिमला की गिनती प्रमुख नगरों में होने लगी और पर्वतीय स्थानों में इसका महत्त्व बढ़ गया। इस कारण यहाँ ग्रीष्म ऋतु में निकट तथा दूर दूर के शिक्षा विशेषज्ञ एवं गण्य-मान्य प्रतिष्ठित नागरिक आते रहते थे, उनसे भेंट करना सुलभ था। पंजाब

शिक्षा-विभाग की गतिविधियों से भी जानकारी होती रहती थी। मैंने एक मास यहाँ बिताया और शिक्षकों तथा शिक्षा-विशेषज्ञों से मिलता रहा।

२ जुलाई को मैं जालन्धर आगया। वहाँ आर्य शिक्षा-समिति और आर्य शिक्षा-मंडल की बैठकें हो रही थीं। इन बैठकों में दीवान बद्रीदास, कन्या-महा विद्यालय की आचार्या कुमारी लज्जावती आदि तो सम्मिलित हुए ही थे, पर श्री भीमसेन विद्यालंकार, मंत्री, पंजाब आर्यप्रतिनिधि सभा भी पधारे थे। विचार णीय विषय था तो महत्वपूर्ण कि शिक्षा-मंडल और शिक्षा समिति किस प्रकार सहयोग से चलाये जा सकते हैं, इस पर विचार तो अवश्य हुआ पर किसी निर्णय पर न पहुँच सके।

अब तक मैं विक्टर-हाई-स्कूल जालन्धर का मन्त्री चला आ रहा था। दीवान बद्रीदास जी के स्थान पर स्कूल-समिति की बैठक हुई। चुनाव हुआ और बजट स्वीकार किया गया। मैं इस वर्ष उक्त स्कूल के मन्त्री पद के लिये पुनः खड़ा न हुआ।

पंजाब आर्य-प्रतिनिधि सभा तथा आर्य शिक्षा-समिति के वार्षिक अधि- वेशन भी १५ जुलाई से हरिद्वार में होने वाले थे। मैं जालन्धर से दिल्ली लौटकर गुरुकुल काँगडी (हरिद्वार) गया। सभा के अधिवेशन में अन्य कार्यों के अतिरिक्त अधिकारियों का निर्वाचन हुआ जिस में महाशय कृष्ण प्रधान और श्री मानकचन्द खोसला मन्त्री चुने गये। आर्य शिक्षा-समिति का साधारण अधिवेशन भी गुरुकुल में हुआ, उसमें मैं प्रधान और श्री कृपाराम मन्त्री निर्वाचित हुए।

मुझे अपने कार्य के सम्बन्ध में बम्बई जाना था। मेरा पुत्र यशपाल पहले से ही वहाँ गया हुआ था। मैंने अपने पहुँचने की सूचना उसे दे दी थी। १७ सितम्बर को मैं जब वहाँ पहुँचा तो उसे स्टेशन पर न पाकर बाहर जा रहा था कि सामने से वह आता हुआ दिखाई दिया। उसके साथ मैं माटुंगा पहुँचा और अगले दिन मैकमिलन कम्पनी के उपाध्यक्ष श्री डेविड ग्रीन से मिला।

मेरी पुत्री सुशीला अस्पताल में थी, उसके यहाँ एक कन्या का जन्म हुआ था। १८ को वह घर आ गई। कुछ दिन पीछे कन्या का नामकरण हुआ और नीना नाम रखा गया। इस अवसर पर मेरा परिचय श्री परमानंद प्राकृतिक चिकित्सक से हुआ, उन्होंने मुझे कुछ उपचार बताये जिनमें समय-समय के अनुसार कई प्रकार के स्नान थे।

एक दिन मैकमिलन कम्पनी के परामर्शदाता श्री ईरानी ने मुझे मध्याह्न के भोजन के लिये निमंत्रित किया। ये एक पारसी सज्जन हैं, उनके साथ मैं एक विश्रान्ति-गृह में गया, इस अवसर पर एक और मित्र श्री सिरूर भी हमारे साथ थे।

उसी दिन सायंकाल से पूर्व मेरे पुत्र यशपाल ने मुझ से वहाँ के अद्-भुतालय देखने की इच्छा प्रकट की। उसे मैं अपने साथ ले गया। मैं तो उसे दो तीन बार पहले भी देख चुका था, वहाँ की बहुत सी वस्तुओं से मुझे परिचय था, उनमें से महत्त्वपूर्ण वस्तुओं की ओर मैंने उसका ध्यान खींचा। इस अवसर पर मैंने यह अनुभव किया कि एक बालक की जानकारी बढ़ाने के लिये यह एक अच्छा साधन है। बच्चे का मस्तिष्क इससे विकसित होता है और साथ ही उसमें अध्ययन शक्ति तथा जिज्ञासा की प्रवृत्ति बढ़ती है।

एक दिन मैं और यशपाल श्री हंसराज के साथ प्रिंसेस डाक (Princess Dock) पर गये। वहाँ श्री ऊधोराम सिंधी हमें समुद्र तट पर स्थित कस्टम-कार्यालय में ले गये और वहाँ हमारा एक अधिकारी से परिचय कराया। वह भी हमारे साथ हो लिये। वे हमें एक जहाज पर ले गये, उसके सब भाग और कमरे दिखाये, जहाज़ सम्बन्धी सारी व्यवस्था पर प्रकाश डाला। यहाँ से हम मैरीन-ड्राईव पर गये, वहाँ समुद्र तट पर भ्रमण किया। यहीं समीप ही हमारे परिचित हाफ़िज़ाबाद निवासी श्री टी० सी० वर्मा रहते थे, उनके यहाँ जाकर कुछ समय बैठे और वार्तालाप की।

अक्टूबर पहिली को मैं दिल्ली के लिये लौटने वाला था। श्री हंसराज और यशपाल जुहू तट पर भ्रमण के लिये गये थे। उनके लौटने पर मैं विक्टोरिया टर्मिनस पर आ गया। मध्याह्न को गाड़ी वहाँ से चली और अगले दिन आगरा पहुँची। यशपाल मेरे साथ था। आगरा स्टेशन पर मेरे बंधु दुर्गादास आये थे, उनके साथ हम राजा की मंडी स्टेशन पर जाकर उतरे।

वहाँ आगरे का विख्यात स्थान ताजमहल देखने का कार्यक्रम बनाया। अगले दिन हम वहाँ गये। वहाँ जाकर हमने शाहजहाँ और मुमताज़ बेगम की समाधियाँ निचली मंजिल में देखीं। ऊपर की मंजिल में तो केवल वह चिन्ह स्वरूप स्मारक ही था। वहाँ से यमुना नहर, फव्वारों का दृश्य और प्राकृतिक छटा का आनन्द लेते रहे। आगरे का किला देखना चाहते थे पर जब हम वहाँ पहुँचे तो उसके देखने का समय समाप्त हो चुका था। वहाँ से लौटकर मैं दिल्ली की तैयारी कर रहा था कि किसी वस्तु के उठाने से मेरी पीठ में अकस्मात् भयंकर पीड़ा होने लगी। बाद में सेंकने और मलने से कुछ आराम आया। घण्टे भर तक कष्ट रहा। मैंने शीघ्र दिल्ली जाना ही उचित समझा। समस्त मार्ग में कष्ट का अनुभव करता हुआ मैं दिल्ली आ गया।

अबोहर सम्मेलन—मैं गत पृष्ठों पर यथास्थान यह लिख चुका हूँ कि लाहौर में अरोड़वंश मुखसभा अपनी बिरादरी में समाजसुधार सम्बन्धी कार्य कर रही थी। इस सभा का मुख्य उद्देश्य था कि इस बिरादरी के लोगों को सामाजिक और नैतिक दृष्टि से उन्नत किया जाये ताकि अन्य जातियों के समान इस समाज के व्यक्ति भी उच्च मनोवृत्तियों से युक्त तथा सुशिक्षित हो सकें और अन्य वर्ग के लोगों के साथ समान रूप से देश सेवा के योग्य बन सकें।

देश विभाजन के पश्चात् उस सभा के कई अन्तरंग सदस्य दिल्ली में आ बसे थे, उनमें से मैं भी एक था। इस सभा के कोष में उस समय



अरोड़वंश मुख सभा के साधारण अधिवेशन के पश्चात (दिल्ली १९५०)

६० हजार से ऊपर रुपया बैंकों में था। उसे सुरक्षित रखने तथा लोक सेवा के कार्यों में उसका उचित उपयोग करने के लिये सभा को पुनःसंगठित करना आवश्यक समझा गया। सब सदस्यों ने एकत्र होकर इस कार्य को नियम पूर्वक चलाना आरम्भ किया। अगले चुनाव में मैं उसका प्रधान निर्वाचित हुआ और इसके पश्चात् और दो वर्ष भी इस पद पर चुना जाता रहा।

१९५० में अबोहर के कुछ भाइयों ने अपने यहाँ एक सम्मेलन बुलाना चाहा। श्री चाननलाल आहूजा जब दिल्ली पधारे तो उनका मुझसे इस विषय में विचार विनिमय हुआ। मैंने उन्हें परामर्श दिया कि सब पीड़ित पुरुषार्थियों को उठाने का कोई कार्यक्रम बनाना चाहिये। इस पर उन्होंने अबोहर जाकर एक स्वागत समिति का आयोजन किया और वे इसके स्वागताध्यक्ष चुने गये। तत्पश्चात् १५ अक्टूबर को वे दिल्ली आये।

उनका विचार था कि यदि डा० गोकुल चन्द नारंग इस सम्मेलन के अध्यक्ष होना स्वीकार कर लें तो बहुत अच्छा रहेगा। उनकी इच्छानुसार मैं उनके साथ डा० नारंग के निवास स्थान पर गया। इस अवसर पर श्री ईश्वरदास खेड़ा भी हमारे साथ थे। जब हम श्री नारंग के पास पहुँचे तब उनके यहाँ उस समय श्री कर्मचन्द थापर भी बैठे थे। डा० नारंग ने हमारा उनसे परिचय कराया। जिस कार्य के लिये हम उनके पास गये थे, उस विषय में डा० नारंग ने बताया कि वे इस कार्य के लिये क्षमा चाहते हैं क्योंकि उनका स्वास्थ्य ऐसा करने की आज्ञा नहीं देता। उन्होंने इसके लिये बैरिस्टर लाभसिंह का नाम सुझाया। श्री चाननलाल ने कहा कि अबोहर जाकर वे स्वागत समिति के सम्मुख इस विषय को उपस्थित करेंगे और निश्चय की सूचना हमें दे देंगे।

नवम्बर के अन्तिम सप्ताह में अबोहर से सूचना मिली कि वहाँ का सम्मेलन २ दिसम्बर को होना निश्चित हुआ है और श्री लाभसिंह बैरिस्टर उसके अध्यक्ष मनोनीत हुए हैं।

२९ नवम्बर को मैं अपने पुत्र ओं प्रकाश सहित भटिण्डा गया। प्रथम दिसम्बर को मनोनीत अध्यक्ष ४ बजे प्रातःकाल अपने साथियों सहित

१३—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन हैदराबाद

गत वर्षों के हिन्दी-साहित्य सम्मेलन द्वारा चलाये हुए आन्दोलन से तथा श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन की सतत साधना से विधान परिषद् द्वारा हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार कर लिया गया था। अतः अब हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा शेष यह रह गया था कि ऐसे साधन उपस्थित किये जायें जिनसे कि शीघ्र से शीघ्र हिन्दी वास्तविक रूप में राष्ट्र-भाषा बन जाय। हैदराबाद हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सम्मुख अब यह प्रश्न था कि इसकी एक रूपरेखा तैयार की जाय।

इस दृष्टि से तो इस सम्मेलन की विशेषता थी ही पर इसके साथ ही दूसरी महत्व की बात यह थी कि हैदराबाद राज्य कुछ मास पूर्व आतंकवादियों का अड्डा बना हुआ था। उसे राज्याधिकारी भारत विधान के अधीन करने के लिये तैयार न थे, वहाँ की जनता इसके विरोध में भारत में मिलने की इच्छुक थी। रजाकारों द्वारा इस भावना को नष्ट करने के लिये भयंकर अत्याचार किये गये थे और जनता हाहाकार कर उठी थी। सरदार पटेल की पुलिस कार्यवाही ने जनता की इस अत्याचार से रक्षा की, रजाकारों के अत्याचारों से प्रजा को छुटकारा दिलाया, निज़ाम के सिर से अभिमान का भूत उतार दिया और वह सरदार पटेल के सामने नतमस्तक हो गया। जो कासिम रिजवी दिल्ली के लाल किले पर आसफ-शाही झंडा फहराने का स्वप्न देख रहा था वह बन्दी बना लिया गया। ये सब परिस्थितियाँ मन में हैदराबाद जाने की प्रेरणा कर रही थीं पर कई एक कारण और भी इसमें सहायक थे और वह थे हैदराबाद के विशेष स्थल। अलोरा, अजन्ता, गोलकुण्डा आदि स्थान केवल भारत में ही नहीं अपितु संसार के विशेष दर्शनीय स्थानों में से हैं।

आज से १० वर्ष पूर्व भी हैदराबाद में एक आन्दोलन आर्य जनता की ओर से चलाया गया था। सारे भारतवर्ष में उस आन्दोलन का प्रभाव था। उस समय भी निजाम को मुँह की खानी पड़ी थी। अतः इन सब कारणों ने मुझे हैदराबाद में होने वाले सम्मेलन में सम्मिलित होने की प्रेरणा की। मैंने दिसम्बर मास के अन्तिम सप्ताह में २२ दिसम्बर को सायंकाल ६ बजे हैदराबाद के लिये प्रस्थान किया। मेरे साथ मेरा पुत्र ओंप्रकाश और श्री सत्यपाल थे। निश्चित समय पर हमारी गाड़ी स्टेशन से चल दी। दिल्ली से ही उसी डब्बे में एक अंग्रेज़ यात्री भी आगरा तक के लिये बैठे थे। उनका नाम था मि० डिक। वे उस समय जालन्धर के साथ सूरानसी के यूनाइटेड मिशन हाई स्कूल में कृषि-अध्यापन का कार्य करते थे। उन्हें इस सम्बन्ध में जो अनुभव प्राप्त हुए थे उनमें से कुछ एक उन्होंने बातचीत में बताये। उनका मत था कि कृषि से ही भारत की आर्थिक समस्या हल होगी। ११ बजे के लगभग आगरा स्टेशन आ गया और वे वहाँ उतर गये।

२३ दिसम्बर की प्रातः भेलसा स्टेशन पर गाड़ी रुकी। यहाँ का जलवायु उत्तर भारत के जलवायु से सर्वथा भिन्न था। ठंड का तो नामो निशान भी प्रतीत न होता था। यहाँ से आगे नर्मदा नदी को बहते हुए देखा। आगे भोपाल पहुँचे। वहाँ अमरूद बहुत अच्छे थे और बहुतायत से मिलते थे। वहाँ से आगे होशंगाबाद का स्टेशन पड़ा। गाड़ी में बैठा कोई व्यक्ति मधुर स्वर से गा रहा था। उसकी वाणी में आकर्षण था :—

"ताल तो भूपाल ताल और ताल तलैया।
रानी तो पद्मावती और रानी रनैया।
गढ़ तो चित्तौड़ गढ़ और गढ़ गढ़ैया।"

११ बजे गाड़ी इटारसी रुकी और ५ बजे सायं नागपुर आ गई। वहाँ मुझे डिब्बा बदलना पड़ा। जिस डिब्बे में मैं बैठा वह भरा हुआ था। बड़ी कठिनाई से बैठने को स्थान मिला। मैं गत तीस वर्षों से ऐसी भीड़ में कभी न बैठा था। इस स्टेशन पर मेरे मित्र बाशीराम जी पधारे। उनके साथ

उनकी धर्मपत्नी और दोनों पुत्र सत्यकेतु तथा सत्यव्रत भी थे। वे हमारे लिये भोजन बनवाकर लाये थे। मैंने गाड़ी में ही संध्या की और आया हुआ भोजन किया।

अगले दिन प्रातः हम सिकन्दराबाद पहुँचे। यहाँ सम्मेलन के सभापति श्री चन्द्रबली पाण्डेय का आर्यवीर दल के बैंड के साथ स्वागत किया गया। हिन्दी नगर में जाने के लिये प्रतिनिधियों को यहीं पर उतरना था। स्टेशन पर ही मुझे श्री बेलीराम ढींगरा स्यालकोट निवासी के अकस्मात् दर्शन हुए। वहाँ से बसों की व्यवस्था थी, हम बस द्वारा हिन्दीनगर पहुँच गये।

अपने स्थान की व्यवस्था करके हमने अल्पाहार किया। प्रतिनिधियों के भोजन की व्यवस्था भी वहीं थी। भोजन में विशेषता होना स्वाभाविक ही था। दालें कई प्रकार की बनी थीं, कुछ खट्टी थीं कुछ मीठी और कुछ नमकीन। यहाँ छाछ या मट्ठे को 'ताक' कहते थे, सम्भवतः यह तक्र शब्द का अपभ्रंश हो। भोजनोपरान्त हम विश्राम के लिये चले गये।

५॥ बजे सायं खुला अधिवेशन होना था। मैं और मेरे साथी प्रतिनिधियों के बैठने के स्थान पर पहुँचे। वहाँ स्वागताध्यक्ष और सभापति के भाषण सुने। मेरा स्वास्थ्य अच्छा न था अतः मैं समाप्ति से पूर्व ही विश्राम के लिये अपने निवास स्थान पर चला गया। रात्रि को विषय निर्वाचिनी-समिति का अधिवेशन अन्य स्थान पर था उसमें भी मैं जाकर सम्मिलित हुआ।

२५ दिसम्बर को प्रातः सिकन्दराबाद जाने का कार्यक्रम बनाया। श्री बेलीराम ढींगरा साथ ही थे। उन्होंने हमें हुसैन सागर दिखाया। यह एक विशाल मीठे पानी की झील है, इसका दृश्य बड़ा ही रम्य है। इसके उपरान्त मैं मैकमिलन कम्पनी के वहाँ के प्रतिनिधि श्री राजू से मिलने गया। वहाँ से बाजार आये। पुस्तकों की कुछ दुकानों पर गये और शिक्षा सम्बन्धी पुस्तकें देखीं। समीप ही कुछ कपड़ों की दुकानें थीं जहाँ साथ ही तुरन्त सीकर देने वाले दरजी भी बैठे हुए थे। यह दृश्य भी कुछ मनोरंजक प्रतीत हुआ।

भोजनोपरान्त हम उस्मानिया विश्व-विद्यालय देखने गये। इसे दिखाने के लिये सम्मेलन की ओर से व्यवस्था की गई थी। विश्व-विद्यालय के अधिकारियों ने प्रतिनिधियों का स्वागत किया और विभिन्न विभागों को घूम फिर कर दिखाया। यह विशाल विश्व-विद्यालय निज़ाम सरकार की ओर से चल रहा था। इसका उद्देश्य था उर्दू भाषा और अरबी लिपि को उन्नत करना। इसीलिये वहाँ स्कूल और कालेज की पाठ्य पुस्तकों का उर्दू में निर्माण किया गया था। यहाँ की उर्दू अपना शब्द भण्डार फारसी से न ले कर अरबी शब्दों से भरती थी। वही हैदराबाद की भाषा भी बनाई जा रही थी। यह एक ऐसा प्रयास था जिससे अरबी से प्रभावित उर्दू की जड़ें भारत में दृढ़ हो रही थीं। सारे भारत में इसके समकक्ष हिन्दी के लिये कोई विश्व-विद्यालय न था जिसको किसी राज्य की सम्पुष्टि प्राप्त हो। हिन्दी की ऐसी उपेक्षा हिन्दी प्रेमियों को असह्य थी। अतः सम्मेलन का यह अधिवेशन यहाँ बुलाने का यह भी एक कारण प्रतीत होता था।

विश्व-विद्यालय में हमने वहाँ का पुस्तकालय देखा जिसमें कई प्राचीन हस्त लिखित ग्रन्थ सुरक्षित थे। तत्पश्चात् बायालोजी के एक प्रोफेसर अपने विभाग को दिखाने ले गये। इस विभाग का कार्य अधिक प्रभावशाली दीख पड़ा। इसमें मुख्य आश्चर्यजनक कार्य इस प्रकार थे :—

१—एक पाँच छः मास के गर्भस्थ बच्चे का शरीर।

२—एक तीन मास के गर्भस्थ बछेरे का शरीर।

३—चमगादड़, मछली, शुतुर्मुर्ग, कांगरू, जबरा आदि के शरीर।

ये सभी शरीर औषधियों द्वारा सुरक्षित थे। इनके अन्दर की रगें, हड्डियाँ आदि बहुत स्पष्ट दीख पड़ती थीं। यहाँ से हम रसायनशाला में गये और वहाँ विज्ञान सम्बन्धी जानकारी प्राप्त की।

इसके पश्चात् बसों द्वारा विश्व-विद्यालय के चारों ओर चक्कर लगाया और वहाँ के भवन और छात्रावास आदि देखे।

विश्व विद्यालय के भ्रमण करने के पश्चात् एक उद्यान में उपकुलपति द्वारा प्रतिनिधियों का स्वागत किया गया। वहाँ चायपान की भी व्यवस्था थी। उसी बीच में उपकुलपति ने स्वागतार्थ संक्षिप्त भाषण दिया और प्रतिनिधियों की ओर से उनका धन्यवाद किया गया। ७॥ बजे हम सब हिन्दी-नगर लौट आये।

आज रात्रि को विषय निर्धारिणी सभा की बैठक ११ बजे तक चली। इसमें विचारणीय विषय था 'रेडियो में हिन्दी भाषा का स्थान'। कई प्रस्ताव इस सम्बन्ध में उपस्थित हुए और एक प्रस्ताव खुले अधिवेशन के लिये स्वीकार हुआ।

अगले दिन प्रातः हम बाजार आदि देखकर लौटे ही थे कि नगर में हमें आर्यसमाज के नेता श्री विनायकराव विद्यालंकार अकस्मात् ही मिल गये। उन्होंने हमें वहाँ के आर्यसमाज में आने को निमन्त्रित किया।

सम्मेलन की ओर से एक बृहद प्रदर्शनी का आयोजन किया गया था। इसके उद्घाटन करने वाले भारत के तत्कालीन गवर्नर जनरल श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य थे। मैं भी अपने साथियों सहित इसे देखने के लिए गया। सांझ का समय था। वहाँ कुछ पुस्तक विक्रेताओं की दुकानों से पुस्तकें खरीदीं। प्रदर्शनी देखते हुए हमने एक दुकान पर एक क्लाक देखा जो बिजली से चल रहा था, वहाँ अन्य भी कई प्रकार की घड़ियाँ थीं। एक दुकान पर रेफ्रिजरेटर के समान एक ऐसा बक्स सा देखा जिसमें बिजली अथवा बैटरी द्वारा ठंडा और गर्म पानी बारी २ से प्राप्त हो सकता था। मैसूर की एक दुकान पर चन्दन की बनी वस्तुएँ विशेष आकर्षण रखती थीं, जिनमें से एक दो उपयोगी वस्तुएँ मैंने भी लीं। इसके उपरान्त हम निज़ाम रेलवे देखने गये। वहाँ की रेलवे की व्यवस्था पर्याप्त उन्नत प्रतीत होती थी। वहीं एक क्रीड़ा क्षेत्र बना था, नाना प्रकार के खेल हो रहे थे, बिजली की जगमगाहट उसकी शोभा बढ़ा रही थी, बल्बों से राष्ट्रीय ध्वज बनाया गया था, यह मनोरंजक वातावरण अपना पृथक्

महत्त्व रखता था। अचानक ही बिजली फेल हो गई। चारों ओर अंधकार छा गया। चहल-पहल के स्थान पर गड़बड़ी सी प्रतीत होने लगी, पर व्यवस्था ठीक होते ही पुनः प्रकाश हो गया और रौनक पूर्ववत् दीखने लगी।

इससे कुछ आगे स्वास्थ्य-विभाग के कार्य का प्रदर्शन था। एक स्थान पर लिखा था—"जो अभी तक खोया जा चुका है और जिसे हम खो चुके हैं उस पर बुद्धिमान् रोते पीटते नहीं। बुद्धिमान् तथा मूर्ख में यही एक भेद है"। इसके पश्चात् कुछ और वस्तुएँ देखकर हम अपने स्थान पर लौट आये।

आज रात को 'उद्धार' नाटक का अभिनय होना था। इस में प्रवेश टिकटों द्वारा रखा गया था। मैं भी देखने गया पर वहाँ गड़बड़ी होने के कारण बीच में ही लौट आया।

२७ दिसम्बर को रविवार था। श्री विनायकराव के निमन्त्रण पर मैं अपने साथियों के साथ आर्यसमाज मंदिर में गया। हैदराबाद जैसे बड़े नगर के लिए समाज का यह भवन पर्याप्त नहीं कहा जा सकता। श्री नरेन्द्र वहाँ की आर्य प्रतिनिधि सभा के मंत्री तथा स्थानीय आर्यसमाज के मुख्य कार्यकर्त्ता थे। उन्होंने हमारा और अन्य राज्यों से आये हुए आर्य-सभासदों का स्थानीय कार्यकर्त्ताओं से परिचय कराया।

उन्होंने संक्षेप से हैदराबाद राज्य में आर्यसमाज के प्रचार तथा शिक्षा सम्बन्धी कार्यों का वर्णन किया। इस पर मैंने भी दो शब्दों में ऐसी विरोधी अवस्थाओं में उनके कार्य की प्रशंसा की और जहाँ उन्हें शिक्षा सम्बन्धी परामर्श दिये वहाँ यह भी बताया कि पंजाब दिल्ली आदि में आर्य शिक्षा-समिति द्वारा किस प्रकार धर्म-शिक्षा का कार्य हो रहा है। वहाँ नागपुर के सायंस कालेज के प्राध्यापक और मध्यप्रदेश आर्य प्रतिनिधि-सभा के मंत्री श्री इन्द्रदेवसिंह भी उपस्थित थे। उन्होंने भी मध्यप्रदेश में आर्य-समाज की प्रगति का दिग्दर्शन कराया। हमें यहाँ एक ऐसे व्यक्ति से भी

परिचय हुआ जिसने अशान्ति काल में रज़ाकारों का डट कर सामना किया था और आपत्तिकाल में हिन्दुओं की रक्षा की थी। इसके पश्चात् उन्होंने हमें आर्य हाई स्कूल दिखाया जहाँ हमने विद्यार्थियों से साधारण शिक्षा तथा धर्म विषयक कुछ प्रश्न भी पूछे। यह भी उल्लेखनीय बात है कि हैदराबाद में रविवार को साप्ताहिक अवकाश नहीं होता। हम शिक्षा-विभाग के कार्यालय में गये, वहाँ के उच्चाधिकारियों से मिले और एक बजे हिन्दी नगर लौट आये।

वहाँ दो बजे से समाजशास्त्र-परिषद् की बैठक हुई जिसमें पं० रविशंकर शुक्ल मुख्य-मंत्री मध्यप्रदेश ने भाषण दिया। आचार्य नरेन्द्रदेव इसी बीच में वायुयान द्वारा लखनऊ से पधारे। उनके तथा महापंडित राहुल सांकृतायन, भद्र आनन्द कौशल्यायन और श्री जयचन्द्र विद्यालंकार के भाषण हुए।

रात्रि को सम्मेलन का खुला अधिवेशन हुआ जिसमें हिन्दी-विश्व-विद्यालय सम्बन्धी प्रस्ताव पर बड़ा विवाद हुआ। प्रस्ताव था कि हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के अन्तर्गत जो हिन्दी विश्व-विद्यालय की प्रथमा, मध्यमा व उत्तमा आदि परीक्षाएँ हैं, उनके संचालन के लिए एक स्वतंत्र अखिल भारतीय समिति का निर्माण किया जाय। इसे कार्य रूप में लाने के विषय में कोई निर्णय न हो सका। कार्य रात के १२ बजे तक चला और सम्मेलन की कार्यवाही समाप्त हो गई।

हिन्दी साहित्य-सम्मेलन हैदराबाद का अधिवेशन गत रात्रि को समाप्त हो गया और हमने दक्षिण के ऐतिहासिक स्थानों को देखने का कार्यक्रम बनाया। १२॥ बजे प्रतिनिधियों को ले जाने के लिये बसें आईं और हम उनमें बैठकर सर्वप्रथम गोलकुण्डा पहुँचे।

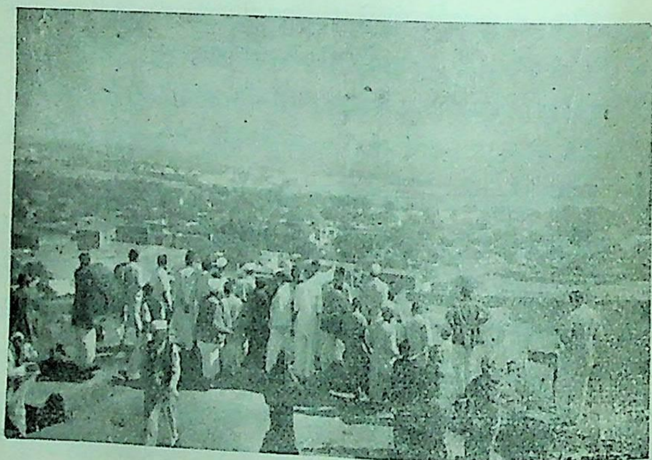
गोलकुण्डा—गोलकुण्डा यहाँ पर एक प्राचीन गढ़ है। यह दृढ़ चट्टान पर बना हुआ है। उसमें जाकर हमने देखा कि यद्यपि उसकी चार दिवारी क्षीण हो गई है तथापि उसमें स्थापत्यकला स्पष्ट प्रकट हो रही

है। हम एक ऐसे स्थान पर आये जहाँ एक कोठरी की छत में कई



गोल-कुण्डा का बाह्य दृश्य (१६४६)

छेद थे। हमें बताया गया कि यहाँ श्री समर्थ गुरु रामदास जी को बन्दी रखा



गोल-कुण्डा के दुर्ग में (१६४६)

गया था और इन छेदों से उन्हें खाद्य पदार्थ दिये जाते थे। इसके पश्चात् हमने वहाँ का नक्कार-खाना देखा जिससे विशेष अवस्थाओं में बन्दीखाने का काम लिया जाता रहा है। यहाँ चट्टान पर बना हुआ एक सुन्दर मंदिर देखा जिसमें उस समय कोई मूर्ति न थी परन्तु पूजा के चिह्न स्पष्ट रूप से विद्यमान थे।



गोलकुण्डा के शिखर पर (१६४६)

किले के एक भाग में हम एक गुफ़ा में गये। यह एक पूजा घर सा प्रतीत होता था किन्तु अन्दर जाने पर यह एक ऊँचा एवं विशाल भवन दिल्ली के दीवाने आम के समान प्रतीत हुआ। वहाँ पर एक सिंहासन भी था जहाँ पर पहले समयों के सम्राट् बैठते थे। इस प्रकार गढ़ देखते-देखते हम शिखर पर चले गये। जब उतरने लगे तो वह मार्ग बड़ा भयंकर दीख पड़ा; यदि तनिक भी पैर फिसल जाय तो सीधे खाई में गिरने का भय था। मार्ग में बेगमों के महल देखे। यहाँ हवा की ऐसी विशेषता थी कि एक ताली बजने पर सारे महल में ताली गूँज उठती थी। समीप ही बादशाहों के मकबरे थे। सबसे प्रथम हम हयात् बख्शी बेगम के मकबरे



गोलकुण्डा (१९४९)

में गये, यह दुमंजिला भवन था। नीचे के भाग के समीप ही चौथे बादशाह मुहम्मद अली कुतुबशाह का मकबरा बना था और यह भी दुमंजिला ही था।

उस्मान सागर—किले के अन्य स्थान देख कर हम उस्मान सागर पर आये। यह सागर ८ मील लम्बा और चार मील चौड़ा है। यह सागर वास्तव में एक मीठे पानी की झील है। इसमें से खेतों को सींचने के लिये नहरें निकाली गई हैं। उसी के समीप एक और भी झील देखी जिसे हिमायत सागर कहते हैं। यहाँ पर एक अच्छा लम्बा-चौड़ा पुल बना हुआ है और साथ ही किनारे पर एक सुन्दर वाटिका शोभा देती है। इसमें भाँति २ के फूल खिले थे। यहाँ से आगे चलकर हैदराबाद के बाजारों काभ्रमण किया। नगर की प्रसिद्ध मसजिद चार-मिनार का दृश्य अपनी महत्ता रखता है। हैदराबाद के इस बाजार का निर्माण १६ वीं शताब्दी में हुआ था और उस समय इसका नाम था विजयतुरंग द्वार।

१४—दक्षिण के ऐतिहासिक स्थान (क)

देवगिरि और अलोरा

अगले दिन हमारा हैदराबाद के ऐतिहासिक स्थान देखने का कार्यक्रम बना। हैदराबाद स्टेशन से हमने औरंगाबाद जाना था। गाड़ी में प्रतिनिधियों के लिए दो स्पेशल डिब्बे लगे थे अतः स्थान मिलने में हमें कुछ भी असुविधा न हुई।

औरंगाबाद पहुँचने से पूर्व नाँदेड स्टेशन आया। यह भी इस राज्य का एक दर्शनीय स्थान है। यहाँ गुरु गोविन्दसिंह जी का देहावसान हुआ था। उनकी स्मृति में यहाँ एक गुरुद्वारा बना हुआ है। यह सिखों के लिये एक तीर्थ स्थान है। इसके भवन बहुत कुछ अमृतसर के दर्बार-साहब जैसे दीख पड़ते हैं।

नाँदेड़ स्टेशन पर जब हम पहुँचे तो ३ बजे थे। हम नगर में गये और वह गुरुद्वारा देखा। उसके सुन्दर और विशाल भवन बड़े आकर्षक हैं। उपरी भाग में सुनहरी छतरी है। यहीं नीचे गुरु जी की समाधि है जिसका रूप साधारण से चबूतरे का सा है। उस पर प्राचीन काल से तलवारों की छाया की जाती है। यह स्थान देख कर वहाँ से हम बाजार देखने गये।

नाँदेड के निकट ही गोदावरी नदी बहती है। इस नदी के तट पर एक झौंपड़ा बना हुआ है। कहा जाता है कि यहाँ पर बंदा वैरागी रहते थे। वहाँ एक चारपाई भी पड़ी थी। बताया जाता है कि बन्दा वैरागी इस पर सोते थे।

यहाँ से हम रात्रि को औरंगाबाद के लिए गाड़ी द्वारा चल पड़े और अगली प्रातः वहाँ जा पहुँचे। स्टेशन के समीप ही एक नदी बहती थी जिसमें पत्थर तथा शिलायें बहुत पड़ी थीं। वहीं हमने स्नान किया और

नित्य-कर्म से निवृत्त हुए। नदी का जल गहरा तो न था परन्तु बड़ा निर्मल और शीतल था।

औरंगाबाद में हमारे निवास का प्रबन्ध सरकारी अतिथि-गृह में था। हम बसों द्वारा वहाँ पहुँचे। हमारे साथ सम्मेलन के बहुत से प्रतिनिधि थे। तीन बसें मंगाई गईं, भोजन आदि से निवृत्त होकर हम बसों में बैठे। १८ मील का मार्ग तै किया और २॥ बजे हमने अलोरा की गुफाओं में प्रवेश किया।

निज़ाम राज्य की ओर से पुरातत्व-विभाग के अधिकारी श्री अब्दुल रहीम खाँ फैंसी भी हमें उन स्थानों का परिचय कराने औरंगाबाद से हमारे साथ ही आये थे। हमने एक से १२ तक की गुफाएं पहले देखीं। ये गुफाएं दूसरी शताब्दी में बनाई गई थीं। इनके निर्माणकर्त्ताओं ने इन गुफाओं को धार्मिक आधार पर बनवाया था।

जब ३-४ शताब्दियों के पश्चात् ब्राह्मण राजाओं के हाथ में भारत का शासन आया तब उन्होंने देश में अन्य कार्यों के साथ-साथ अलोरा की गुफाओं में वृद्धि की। संख्या १३ से ३० तक की गुफाएं जो ८ वीं शताब्दी में बनाई गई थीं हमने सबसे पीछे देखीं। इस प्रकार यहाँ कुल ३४ गुफाएं हैं।

जब हम सर्वप्रथम गुफा में गये तो बाहर द्वार पर ही हमें स्वच्छ और निर्मल जल का एक कुण्ड मिला। हमने इसका जल-पान भी किया, जल का स्वाद बड़ा मधुर था। इस गुफा में हमने सम्राट् अशोक, उनके वंशजों तथा महात्मा बुद्ध की मूर्तियाँ दीवारों पर बनी हुई देखीं और गुफाओं में भी इसी प्रकार की मूर्तियाँ विद्यमान थीं। इनमें प्राचीन भारत की स्थापत्य कला एवं निर्माण शैली का जीता जागता चित्र मिलता है। सभी मूर्तियाँ चट्टानें काट कर बनी हैं। इतिहास बताता है कि इन मूर्तियों के निर्माता भारतीय कलाकार थे। कहीं-कहीं इनमें चित्रकारी भी दृष्टिगत होती थी। सैंकड़ों वर्ष बीत जाने पर भी वे मूर्तियाँ ऐसी प्रतीत होती

हैं मानो आज ही बनी हैं। चित्रों में महात्मा बुद्ध, उनकी माता माया एवं



अलोरा (१६४६)

दूसरी माता गौतमी, जिसने इनका लालन-पालन किया था, के चित्र भी थे। उन चित्रों को देख कर ही सारी कथा का पता लग जाता है।

१३ वीं गुफा में जैन तीर्थङ्करों के २४ रूप दिखाये गये हैं। वहाँ के दिखाने वालों ने तो उन्हें महात्मा बुद्ध का अवतार बताया पर महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, जो हमारे साथ ही थे, से पूछने पर पता चला कि वे जैन तीर्थङ्करों के २४ अवतार हैं। ध्यान से देखने पर यह बात ठीक ही प्रतीत हुई।

इसके पश्चात् कैलाश-शिखर के नाम की प्रसिद्ध गुफा देखी। यह सब गुफाओं के मध्य में स्थित है। इसमें बड़ी २ मूर्तियाँ एक ही चट्टान काट कर बनाई गई हैं। यहाँ के चित्रों पर गोबर और मिट्टी का प्लास्टर किया

गया है, इससे इसमें सौन्दर्य बढ़ गया है। सर्वप्रथम शिव और पार्वती की मूर्ति है। उसके आगे लक्ष्मी जी के दोनों ओर हाथी हैं जिन पर कुछ लिखा हुआ है, किन्तु उसको समझना सरल न था। स्तंभों पर भी कुछ लेख खुदे हुए मिलते हैं। उनकी लिपि देवनागरी नहीं है, सम्भवतः वे पाली भाषा में लिखे हों। एक स्थान पर लिखा था—

'भू—रस्य

सि—बालाकिरत्न

द्वा सवन,

गुफा के दक्षिणी कोनों पर दो विशालकाय हाथियों की प्रतिमायें हैं। आगे चलकर बैठने के लिए बहुत बड़ा सहन है। यहीं पर एक शैव और एक वैष्णव मन्दिर भी है। इसके आगे शिव वाहन नन्दी की प्रतिमा बनी है।

आगे कुछ गुफाओं को देखते हुए हमने उल्लेखनीय २४ वीं गुफा में प्रवेश किया जो रामेश्वर गुफा के नाम से विख्यात है। यह गुफा मुझे अन्य गुफाओं से कितने ही अंशों में विशेष सुन्दर प्रतीत हुई। इसके दोनों द्वारों पर दो सिंह खड़े हैं जिन्होंने अपने पंजों से छोटे-छोटे हाथियों को दबाया हुआ है। गुफा का मध्य भाग एक बड़े हाल के समान विशाल है। यहाँ शिवजी और विष्णु आदि देवताओं की प्रतिमाएं सुशोभित हैं। एक त्रिमूर्ति भी है, शिवजी अपने गणों को लेकर नंदी पर मध्य में समासीन हैं। उनके दोनों ओर विष्णु और ब्रह्मा की प्रतिमाएं स्थित हैं।

पूर्व सिरे पर देवी, देवताओं के विवाह-संस्कार के समय के चित्र हैं। इसके दक्षिण में ही शिव-मूर्ति योगिराज के रूप में चित्रित की गई है। शिवजी पद्मासन लगाये ध्यान कर रहे हैं, एक हाथ में डमरू और दूसरे में त्रिशूल है। उसी चित्र के सामने शिवताण्डव हो रहा है। पौराणिक मतानुसार जब कभी वे इस नृत्य को करते हैं तो उस समय प्रलय की सम्भावना हो जाती है। इन चित्रों के साथ जो पाषाण स्तंभ है उस पर हाथ से

प्रहार करने पर तबले जैसी ध्वनि प्रकट होती है। यह द्रविड़ काल की शिल्प कला बताई जाती है। द्वारपालों के चित्रों की लम्बाई भी १४ फुट से अधिक ही है। कहते हैं कि यहाँ पर कोई एक अस्थि पिंजर प्राप्त हुआ था जिसकी लम्बाई १४ फुट से अधिक थी।

जैनियों की गुफाओं में उनके तीर्थङ्करों की मूर्तियाँ हैं। पार्श्वनाथ की नग्न मूर्ति अत्यन्त सुन्दर है। उस पर एक नागराज अपने फण से छाया कर रहा है। महावीर स्वामी की एक मूर्ति श्वेत वस्त्र युक्त है।

आगे चलकर बराण्डे के बायें सिरे पर जो स्तूप है उसमें दो नग्न मूर्तियाँ हैं, कहा जाता है कि इन मूर्तियों में १६ वें तीर्थङ्कर श्री शान्तिनाथ को चित्रित किया गया है। एक स्तंभ पर लिखा है:—

श्री सो हिता ब्रह्मचारिणीः
शान्ति भृतर्थ प्रतिभेयाँ ॥

आगे चलकर एक और नग्न मूर्ति है। इस विशालकाय मूर्ति को श्री नागवर्मा ने बनवाया था। २३ वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ तथा अन्य तीर्थंकरों की प्रतिमायें भी बनी हैं। इससे आगे इन्द्र-सभा नाम की गुफा थी। उसके पीछे जगन्नाथ जी का मन्दिर बना है। वहाँ जगन्नाथ-सभा लगी है।

ये सब गुफाएं देखकर साथ के अलोरा नामक ग्राम में गये। यह महारानी अहिल्या बाई का बनवाया हुआ है। यहाँ भी विशाल मूर्तियों से युक्त एक विशाल मन्दिर है। ग्राम को देखकर हम लौट पड़े। बस में बैठकर औरंगाबाद की ओर चले। मार्ग में औरंगजेब की कब्र पर ठहरे, इसी स्थान पर औरंगजेब की मृत्यु हुई थी। उसे वृद्धावस्था में दक्षिण लड़ने आना पड़ा था और विजय प्राप्त करना तो दूर रहा स्वयं भी जीवित न जा सका। उसकी कब्र बड़ी सादी है, उसकी यह इच्छा भी थी कि उसकी कब्र सादी हो। पर बाद में निज़ाम हैदराबाद ने उसे संगमरमर का बनवा दिया था। औरंगजेब के पुत्र, उसके गुरु और गुरुपुत्र की कब्रें भी यहीं बनी हैं। यहीं पर

औरंगजेब के वस्त्र भी रखे हैं। इन्हें वर्ष में केवल एक बार ही नियत तिथि पर दिखाया जाता है।

हमने यह सब कुछ देखा और बसों द्वारा आगे चल पड़े। कुछ मील आगे दौलताबाद का किला आया। यह भी देखने योग्य स्थान है। इस का गत इतिहास हमने पढ़ा है। दिल्ली की गद्दी पर एक बार एक 'पागल' बादशाह बैठा, उस का नाम मुहम्मद तुगलक था। उसे दिल्ली से सारे भारत का शासन करने में कठिनाई प्रतीत होती थी। उसने दौलताबाद को नवीन राजधानी बनाने की ठानी और घोषणा करदी कि राजधानी दौलताबाद होगी। दिल्ली अब तक राजधानी थी ही। यहाँ के लोगों को आज्ञा दी कि दौलताबाद चलकर बसें। मार्ग में यात्रा सम्बन्धी सब सुविधायें दी गई थीं फिर भी कितने ही लोग मर गये और जो जीवित पहुँचे उन्हें भी वहाँ कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। बादशाह को भी बड़ी कठिनाई आई। उसने पुनः दिल्ली को ही राजधानी रखने का निर्णय कर दिया और आये हुए लोगों को लौट जाने की आज्ञा दी। उसका स्वप्न पूर्ण न हुआ। यह वही दौलताबाद या देवगिरि का किला है। इसे यादवराजा रामदेव ने बनवाया था, उस समय इसका नाम देवगिरि था। जब इसे अल्लाउद्दीन खिलजी ने जीता तो इसका नाम दौलताबाद रख दिया था।

इस किले के बाहर एक बड़ा चौक बना है। इसके समीप ही एक मस्जिद है जो तुगलक बादशाहों के समय की बनी हुई कही जाती है। इसके चार ऊँचे मीनार हैं। इसमें से प्रत्येक की ऊँचाई २१६ फीट है। किले के अन्दर जाकर एक मन्दिर देखा जिसे रजाकारों ने मसजिद के रूप में परिवर्तित कर दिया था, परन्तु जब १६४६ में हैदराबाद की राज्य-व्यवस्था नियमित रूप में चलने लगी तो उसके पूर्व अधिकारियों को मंदिर लौटा दिया गया। उसमें किसी देवता की प्रतिमा तो नहीं अपितु भारतमाता का चित्र है इसीलिये इसे अब 'भारतमाता का मन्दिर' कहते हैं।

हाथी हौज—किले के अन्दर हाथियों को पानी पिलाने की एक

विशेष व्यवस्था थी। एक विशाल ताल बनवाया गया था। कहते हैं कि इसका निर्माण राजा रामदेव ने करवाया था। यहाँ भी एक मंदिर था जो कुछ दिनों पूर्व से अब भारतमाता के मंदिर के नाम से विख्यात है।

इसके बाद हम चीनी महल में गये जहाँ पर चीनी चित्रकारी के दर्शन हुए। इतिहासकारों का कथन है कि इस महल के अन्दर ही औरंगजेब ने बहमनी राजा को बन्दी बनाया था। इस भवन में प्राचीन शस्त्रागार अथवा गोला-बारूद का भण्डार भी था। यहाँ रानियों के निवास बड़े ही सुरक्षित स्थान पर बनवाये गये थे। संकट के समय वे अपनी रक्षा स्वयं कर सकती थीं। किले के चारों ओर गहरी खाई थी, इसका सीधा संबंध किले की सुरंग से किया गया था। खाइयों में सदैव पानी भरा रहता था इसलिये इनको पार करना सरल न था।

शत्रु को विफल करने के लिए किले के कई मार्ग अन्धकारमय थे जो शत्रु के आगमन पर खोल दिये जाते थे। यह मार्ग सीधे सुरंग द्वारा खाई में पहुँच जाते थे।

अभी हमने किले के शिखर पर पहुँचना था पर मैं दिन भर चलने के कारण थक गया था, अतः मैं तो वहाँ न जा सका पर मेरे दोनों साथी उस स्थान पर गये। जब वे नीचे आये तो उन्होंने मुझे निम्न बातें बताईः—

"किले के शिखर पर हम जब पहुँचे तो वहाँ पर एक मंदिर देखा। यह मंदिर अंधकारमय स्थान पर बना था। उस पर कुछ लोगों ने पैसे भी चढ़ाये। इसके अतिरिक्त गणेश जी का एक मंदिर भी था। समीप ही एक हवाई तोप भी रखी थी जो अष्टधातु की थी। शिखर पर राष्ट्रीय ध्वज फहरा रहा था। वहाँ हमने 'जन-गणमन' का राष्ट्रीय गीत गाया।"

जब वे शिखर से नीचे उतर कर आये तो वहाँ से हम किले की गुफायें देखने गये। किले के मध्य का एक विशेष भाग देखा जहाँ अन्धकार से आगे

मार्ग न दीख पड़ता था। लखनऊ के एक युवक श्री वाजपेयी ने अपने टार्च से गुफ़ाओं में प्रकाश किया जिसकी सहायता से हम सफलतापूर्वक उस अन्धकारमय स्थान को देखकर वापिस आ गये। बाहर आकर विश्रान्ति गृह पर मैंने दुग्धपान किया। यद्यपि मैं गत २-३ वर्षों से दूध का सेवन न करता था किन्तु आज की थकान ने ऐसा करने के लिए बाध्य किया। इस स्थान को देखते-देखते संध्याकाल के ६ बज चुके थे, अतः हम लोग साथ लाई बसों द्वारा निज़ाम के अतिथि-गृह औरंगाबाद में आ गये।

१५—दक्षिण के ऐतिहासिक स्थान (ख)

अजन्ता की गुफाएँ

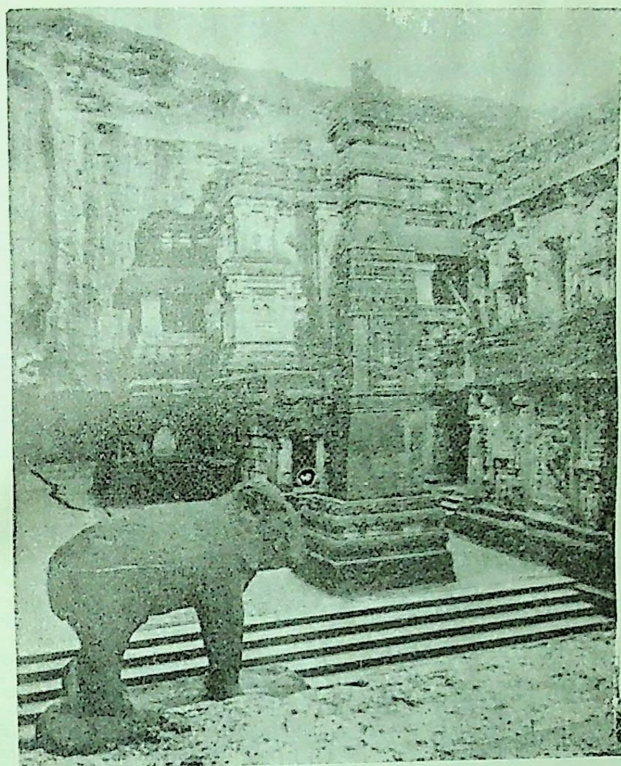
आज १६४६ का अन्तिम दिन अर्थात् ३१ दिसम्बर था। हम प्रातःकाल उठे, बसों की प्रतीक्षा में ही थे कि वे आ पहुँचीं, और हम उनमें बैठ कर अजन्ता की गुफाएँ देखने को चल दिये। अभी दो तीन मील भी न गये थे कि मार्ग में एक दर्शनीय स्थान आया। वहाँ हम सब यात्री उतर गये। यहाँ एक जल की धारा थी जो सात मील की दूरी पर एक पहाड़ से आती थी और एक ऊँचे स्थान से नीचे गिरती दीखती थी। इस धारा के द्वारा समीप ही एक पनचक्की चलती थी। इसके निकट ही बाबा मुसाफिर का मकबरा है। यह भी दर्शनीय स्थान बताया जाता था। यह देखकर हम एक और स्थान देखने गये। यह दिलरासोबेगम का रौज़ा है। इसका विशाल भवन संगमर्मर का बना है। इसके चारों ओर नहर थी, फ़व्वारे चल रहे थे और यह आगरा के ताजमहल के सदृश्य प्रतीत होता था। इसमें प्रवेश करते ही पहले एक कुण्ड आया। वहाँ रंग बिरंगी मछलियाँ देखने वालों को आकर्षित कर रही थीं। पश्चिम की ओर एक बारादरी थी जिस पर उस समय एक मसजिद बनी हुई दिखाई दी। हमने अन्दर जाकर बेगम की कबर देखी। उस पर प्रकाश ऊपर के झरोखों से पड़ रहा था जो कि एक विशेष कलात्मक ढंग से बनाये गये थे।

औरंगाबाद के ये सभी स्थान हमने दस बजे तक देख लिये। अब हम बसों द्वारा नगर के बाजारों में पहुँचे। एक घंटा वहाँ बसें रुकी रहीं। वहाँ से आगे चले। लगभग ५–६ मील की दूरी पर एक प्राचीन काल की सराय आई। वहाँ हम ठहरे नहीं किन्तु बसों में बैठे-बैठे ही दृष्टिपात मात्र किया। मेरे साथी श्री सत्यपाल ने जो हैदराबाद सत्याग्रह में गये थे

और औरंगाबाद में ही रहे थे, बताया कि यह सराय हैदराबाद के आर्य सत्याग्रह के दिनों में सत्याग्रहियों के लिए कैम्प जेल का काम दे रही थी। महाशय कृष्ण ६०० के लगभग सत्याग्रहियों के साथ वहाँ से गुजरते हुए हैदराबाद जा रहे थे कि वहाँ उन्हें रोक कर इसी सराय में रखा गया था।

ताप्ती नदी के स्रोत पर—अपनी बस में बैठे २ हमें अनेकों नई २ बातें सुननें को मिल रही थी। मार्ग में हम कहीं न उतरे, चलते गये और दो घंटे से पूर्व हम निर्जन जंगलों, पहाड़ों के चक्करदार मार्गों को पार करते हुए ६० मील चल कर ताप्ती नदी के स्रोत के समीप पहुँच गये। बसें रुक गईं। अजन्ता की गुफाएँ अब निकट ही थीं, अब पैदल मार्ग शेष था। हम सभी ने वहाँ ताप्ती नदी के तट पर चट्टानों पर बैठकर साथ लाया भोजन किया और उसका स्वच्छ, निर्मल और शीतल जल पीकर तृप्त हो गये। गुफाओं की ओर चले। थोड़ी दूर ही दर्शकों का दल गुफाओं की ओर बढ़ा था कि दूर से गुफाओं की पंक्तियाँ दीख पड़ीं। जहाँ गुफाएँ समाप्त होती थीं वहाँ से कुछ दूर ताप्ती नदी का स्रोत है वहाँ पर एक प्रपात पर्वत पर से नीचे गिरता है और वहीं आगे नदी का रूप धारण कर लेता है। यह दृश्य बड़ा मनोरम था।

अजन्ता की गुफाओं में—अब हम अजन्ता की गुफाओं में पहुँच गये। इन गुफाओं में यह विशेषता है कि इन्हें स्पष्ट दिखाने के लिए बिजली के प्रकाश का भी प्रबन्ध है। अलोरा की गुफाओं में ऐसा न था। बिजली भी पास के ही जलप्रपात द्वारा उत्पन्न की जाती है। यहाँ कुल २६ गुफाएँ हैं। अन्तिम गुफा का मार्ग अभी तक स्पष्ट नहीं हो पाया। शेष २८ गुफाओं को हमने भलीभाँति देखा। यहाँ से चारों ओर अन्य पहाड़ियों में भी गुफाओं के से कई निशान खुदे हुए दीख पड़ रहे थे। हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि महात्मा बुद्ध और जैनियों का समय गुफा बनाने और चित्रकारी करने का एक विशेष युग था। इन गुफाओं के चित्र अनुमानतः प्रथम शताब्दी के कहे जा सकते हैं।



अजन्ता (१९४६)

हम पहली गुफा में गये। इसमें महात्मा बुद्ध को एक भिक्षुक के रूप में चित्रित किया गया है। वे द्वार पर भिक्षा माँग रहे हैं। दूसरी में राज-महल में बुद्ध को भिक्षा दी जा रही है। इन चित्रों में चित्रित की गई मुद्राओं के हावभाव बड़े ही स्पष्ट रूप में दिखाये गये हैं। चित्रों में रंग भी उत्तम रीति से भरे गये हैं। यहाँ का एक चित्र जिसमें जातक अपनी रानी को संसार त्याग का उपदेश देते हैं बड़ी कल्पना से चित्रित किया गया है। रानी के हाथ से हार गिर जाता है और वह उनमनी सी अपनी

दासियों के साथ राजा की ओर देखती रहती है। चित्रकार का यह भाव-चित्र बड़ा सुन्दर और आकर्षक है।

एक चित्र में राजकुमार सिद्धार्थ को संसार में होने वाले नाना प्रकार के दुःखों से पूर्ण भयभीत रूप में दर्शाया गया है। राजकुमार की सवारी में उस समय अन्य व्यक्ति जो उसके साथ होते हैं, वे यद्यपि राजकुमार की दृष्टि को पीड़ित व्यक्तियों पर नहीं पड़ने देते किन्तु फिर भी वे पीड़ित राजकुमार से ओझल न रखे जा सके।

एक अन्य चित्र में राजकुमार सिद्धार्थ को किशोरावस्था में चित्रित किया गया है। शरीर स्वस्थ है, सदाचार के चिह्न उसके मुख पर विद्यमान हैं, धैर्य एवं शान्ति की आभा से उसका मस्तक ज्योतिर्मान् है। उसकी वेष-भूषा एवं मुख-मुद्रा आर्यत्व की द्योतक है, इस प्रकार चित्र विभिन्न रंगों एवं रेखाओं द्वारा अत्यन्त आकर्षक बन गया है।

यशोधरा के मुख पर भी भारतीय सौंदर्य-आभा की छाप है। उसका अंग-प्रत्यङ्ग मादक और उन्मत्त तो दिखाई देता ही है पर वह है वासना-रहित। इसके आगे जब बुद्ध अपने अन्तःपुर में जाते हैं तो यशोधरा अपने पुत्र राहुल को बुद्ध के पास लाती है तथा अतिथि को उसे समर्पित करते हुए यशोधरा की मुखच्छवि त्यागमय ओज से परिपूर्ण प्रतीत होती है।

अजन्ता के चित्रकारों ने स्त्री एवं पुरुषों की मुद्राओं को भिन्न-भिन्न रूप में चित्रित किया है। कहीं पर वे खड़े हैं, कहीं पर अपने प्रिय की प्रतीक्षा कर रहे हैं, कहीं वे विरहाकुल हैं। यहाँ नारी के अङ्ग-प्रत्यङ्गों के चित्रण मर्यादामय और सम्मान पूर्वक दर्शाये गये हैं। यही भारतीय और योरुपीय कला में उल्लेखनीय भेद है। इसके पश्चात् हम अजन्ता का सर्वोत्तम चित्र देखने को चले। इस चित्र में एक स्त्री को चित्रित किया गया है। यद्यपि स्त्री का रंग काला है किन्तु इतना होने पर भी वह रूपसी है। उसमें यौवन तो है हीं पर मस्ती का भाव भी चित्रित है। देखने पर ऐसा प्रतीत होता है मानो वह अभी २ मुँह से कुछ कहने वाली है। अङ्गों की तड़पन ने उस पत्थर की मूर्ति में मानो जीवन डाल दिया है।

हम अब आगे बढ़े। इन गुफाओं में कई विशेषताएँ प्रतीत हुईं। पुरुषों के अनेक चित्र इस गुफा की शोभा बढ़ा रहे थे। विविध प्रकार के पुरुष भिन्न २ प्रकार से चित्रित थे। कहीं जीव जन्तु दीख पड़ते थे और कहीं पुष्पों से शृंगार करती हुई स्त्रियाँ। इन चित्रों में जो रंग किये गये हैं उनमें शिल्प एवं चित्रकला दोनों का सम्मिश्रण है। कुछ चित्रों पर प्राचीन काल के युद्ध की झाँकी दीख पड़ती है। राजाओं की हाथी अथवा घोड़े पर बैठ कर युद्ध करने की रीति को भलीभाँति दिखाया गया है।

हमने यहाँ एक दो गुफाएँ ऐसी भी देखीं जिनकी चित्रकारी अधिक समय व्यतीत हो जाने से गतप्रभ हो गई है जिनके कारण वे गुफाएँ भी अपना वैभव खो बैठी हैं। चित्रकारी को कुछ अराजकता के कारण गडरियों आदि ने भी नष्ट कर दिया प्रतीत होता है क्योंकि वे इस चित्रकारी का मूल्य नहीं जानते थे। हमने वहाँ कई मूर्तियाँ टूटी हुई भी देखीं। बताया गया कि आक्रमणकारियों ने अपने विश्वास के मोहवश उन्हें तोड़ डाला था पर सौभाग्यवश ये प्रहार सीमित ही रहे।

हम ने वहाँ एक गुफ़ा में महात्मा बुद्ध के निर्वाण समय की मूर्ति देखी। वे उस समय बड़े शान्त भाव से करवट लेकर लेटे हुए प्रदर्शित किये गये हैं। उनका मुख-मंडल तेजस्वी है और वह मूर्ति बहुत लम्बी है। उसके साथ साथ छोटी २ मूर्तियों को उसी मुद्रा में चित्रित किया गया है। अब हम वहाँ की अन्तिम गुफा में गये तो देखा कि वह अपूर्ण है, उसे बीच में ही छोड़ दिया गया है। प्रतीत होता है कि यहाँ पहुँचते-पहुँचते किसी कारण से कार्य समाप्त करना पड़ा होगा।

अजन्ता की चित्रकारी की २६ गुफाएँ देख कर मन बड़ा प्रसन्न था। सचमुच ये गुफाएँ भारत के लिये गौरव की वस्तु हैं, आज भी विदेशी इतिहासकार एवं ललितकला प्रेमी यहाँ आकर भारत से कुछ सीखने की जिज्ञासा करते हैं।

हमने सब गुफाएँ ४॥ बजे तक देखलीं। अधिक समय न था, औरंगाबाद लौटना था अतः ५ बजे हमारी बसें चल पड़ीं। ८॥ बजे हम औरंगाबाद स्टेशन पर पहुँचे। वहाँ से मनमाड आये। वहाँ पर प्लेट-फार्म से गुजरते हुए मुझे ठोकर लग गई, मैं गिर पड़ा। श्री सत्यपाल साथ ही थे उन्होंने मुझे संभाला, ओंप्रकाश भी आ गया। मैं स्टेशन से बाहर गया और कुछ खा पीकर विश्राम किया। पहले मेरा विचार था कि मैं नागपुर बाशीराम जी के पास जाकर ठहरूँगा पर अब मैंने दिल्ली लौटना ही उचित समझा। समय पर गाड़ी आई और भूसावल, खण्डवा, भूपाल आदि स्टेशनों पर ठहरती हुई भेलसा पहुँची। यह मध्यभारत का जंकशन है। यहाँ भी उदयगिरि की गुफाएँ व साँची के स्तूप आदि दर्शनीय स्थान हैं। साँची के लिए यहाँ से गाड़ी जाती है। मैं यहाँ न ठहरा और सीधे दिल्ली प्रातः ७ बजे आगया।

मेरे संस्मरण

प्रथम खण्ड

विषय-सूची

१—प्रथम गणराज्योत्सव १६५०

भारतीय संविधान—स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् सर्वप्रथम विधान परिषद् ने संविधान बनाने का प्रयत्न किया। भारतीय विधान परिषद् के अध्यक्ष डा० राजेन्द्र प्रसाद थे। संविधान बन चुकने पर नियमानुसार धारासभा और विधान परिषद् के सदस्यों के अतिरिक्त बाहर से कुछ और व्यक्तियों को मिलाकर भारतीय संसद् अर्थात् पार्लीमेण्ट का निर्माण किया गया। इस संसद् ने अपना राष्ट्रपति सर्व प्रथम डा० राजेन्द्र प्रसाद को चुना।

२६ जनवरी का पुनीत दिवस—१६३० की प्रथम जनवरी को अखिल भारतीय काँग्रेस के रावी तटीय लाहौर अधिवेशन में घोषणा की गई थी कि भारतवासी पूर्ण स्वाधीनता लेकर ही दम लेगें। तत्पश्चात् २६ जनवरी को स्वाधीनता दिवस समारोह से मनाते हुए पूर्ण स्वाधीनता का व्रत लिया गया था। तब से लेकर १५ अगस्त १६४७ तक यह व्रत प्रति वर्ष दुहराया जाता रहा। इस बीच में अनेक कष्ट और यातनाएँ सहते हुए संघर्ष चलता रहा। इस प्रकार २६ जनवरी भारत के लिए एक ऐतिहासिक दिवस बन गया।

संविधान बन चुकने पर आवश्यक था कि उस विधान को प्रचलित किया जाय। जब तक किसी देश का शासन अपने विधान के अनुसार न हो तब तक उसकी स्वतन्त्रता अपूर्ण है। इस दृष्टि से अंग्रेजों द्वारा चलाये गये विधान का अन्त करना आवश्यक था अतः अपने विधान का आरम्भ करने के लिए अपना राष्ट्रीय व ऐतिहासिक दिवस २६ जनवरी ही निश्चित किया गया। यह घोषणा की गई कि २६ जनवरी गणराज्य का प्रथम दिन विशेष उत्सव के रूप में मनाया जाये।

सारा देश गणराज्य महोत्सव को धूम धाम से मनाने की तैयारी करने लगा। मैं इस बीच में १३ जनवरी को अम्बाले गया। वहाँ सरकारी अधिकारियों व जनता में बड़ा उत्साह दिखाई दिया। सब ही अपने-अपने स्थानों को सुसज्जित करने की तैयारी में संलग्न थे। अपने कुछ शिक्षा-सम्बन्धी कार्य करके मैं लुधियाने गया, वहाँ पर भी इस दिवस को उत्साह से मनाने की चर्चा थी। वहाँ मेरी श्री दिवानचन्द्र नरूला से भेंट हुई। इनसे पश्चिमीय पंजाब से आये हुए पुरुषार्थियों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त हुई। मैंने उन्हें पीड़ितों की आजीविका के सम्बन्ध में कुछ परामर्श दिये।

यहाँ नेशनल हाई स्कूल के मुख्याध्यापक सरदार बलवन्तसिंह से भी मिला। उनसे यह कोई ४० वर्ष बाद मिलना हुआ था। १६०६-१० में उन्होंने जालन्धर में मुझ से शिक्षा पाई थी। उन्होंने यह भी बताया कि उनके छोटे भाई सरदार गुरुबख्शसिंह भी जो किसी समय मुझसे पढ़ते थे उन दिनों वहीं वकालात कर रहे थे।

वहाँ से मैं अमृतसर गया। वहाँ तीन चार दिन तक ठहरा। इस बीच में वहाँ अपनी जन्म-भूमि इस्लामगढ़ जि० गुजरात से आये हुए श्री कर्म-चन्द्र नरूला से भेंट हुई। बातचीत में पता लगा कि पाकिस्तान बन जाने के पश्चात् भी वे सब अपने ग्राम कुलाचौर में ठहरे रहे थे। पर कुछ दिन पीछे उनका वहाँ रहना कठिन हो गया और वे वहाँ से जलालपुर जहाँ शरणार्थी कैंप में आ गये। यथोचित प्रबन्ध होने पर वे अमृतसर पहुँचे। उन्होंने बताया कि तब उन्हें आजीविका सम्बन्धी कठिनाई थी पर कुछ समय के पश्चात् उनके पुत्रों ने साधारण सी व्यवस्था करली, तब से अच्छा निर्वाह हो रहा है।

दिल्ली में गणराज्य समारोह—२२ जनवरी को मैं दिल्ली लौट आया। यहाँ गणराज्य महोत्सव की तैयारियाँ हो रही थीं। आर्य प्रति-निधि सभा पंजाब की अन्तरंग तथा विद्या सभा के अधिवेशन भी २६ तथा २७ जनवरी को दिल्ली में होने वाले थे। यथासमय प्रान्त के भिन्न-भिन्न

स्थानों से सभा के प्रतिनिधि आ रहे थे। २६ जनवरी को विद्या-सभा की बैठक १२ बजे तक चलती रही। तदुपरान्त श्री नारायणदत्त जी के यहाँ बारहखंभा रोड पर भोजन की व्यवस्था थी। इस के पश्चात् दूसरी बैठक की कार्यवाही आरम्भ हो गई।

राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद की सवारी २ बजे के लगभग वहाँ से निकली। भिन्न २ मार्गों से होती हुई इर्विन स्टेडियम को जा रही थी। उसने बारह खंबा रोड से भी गुजरना था। जब सवारी उधर से आने वाली थी तो थोड़ी देर के लिये अधिवेशन स्थगित हो गया और सभी सदस्य उसे देखने बाहर निकल आये।

राष्ट्रपति की सवारी—राष्ट्रपति की सवारी बड़ी ही सरल रूप से प्रदर्शित की गई थी। सर्वप्रथम एक अश्वारोही नगाड़ा बजाते हुए निकला। इससे पता चल गया कि सवारी आने वाली है। सभी स्त्री-पुरुष अपने-अपने स्थान पर सावधान हो गये, भीड़ बड़ी थी। उस दिन बाहर के लोग भी सवारी देखने आये थे। सड़क के दोनों ओर नरमुण्ड ही नरमुण्ड दृष्टिगोचर होते थे। सवारी में प्राचीन प्रथा का अनुकरण किया गया था। लगभग १० मिनट के पश्चात् एक अश्वारोही सवारों का दस्ता आया। इससे पीछे एक खुली गाड़ी में राष्ट्रपति अपने अंग रक्षकों के साथ बैठे थे। गाड़ी के दोनों कोनों पर काले रंग पर अशोक मुद्रा अंकित थी। राष्ट्रपति के अंगरक्षक नीले वस्त्रों में सशस्त्र सामने कोचवान की गद्दी के पास वाले स्थान पर स्थित थे।

राष्ट्रपति चूड़ीदार पाजामा और काली अचकन पहने युवक से प्रतीत हो रहे थे। मंद २ मुस्कान युक्त चेहरा फूल के सदृश्य प्रफुल्लित था। वे जनता को करबद्ध होकर अभिवादन का उत्तर दे रहे थे। जनता उनके चिरायु होने की कामना करती हुई जय-जयकार का नाद कर रही थी। सवारी आई और चली गई। उनके पीछे गोरखा, सिख, जयपुरी सैनिकों के दस्ते अपने-अपने वाद्यों के साथ प्रदर्शन हेतु आये। जल स्थल एवं आकाश मार्ग से देश की रक्षा करने वाले युवक भी अपने गणवेश एवं वेशभूषा में चल रहे थे, मानो वे अपनी तरुणाई का प्रदर्शन कर रहे हों। इस प्रदर्शन की

लम्बाई भी एक मील से कम न होगी। लगभग २५ सैनिक दस्ते सुसज्जित रूप में चल रहे थे।

राष्ट्रपति की गाड़ी के दोनों ओर पुलिस के दो मोटर साईकिल सवार जा रहे थे। पार्लीमेंट स्ट्रीट से इर्विन स्टेडियम तक २६ द्वार बनाये गये थे जिन में भारतीय इतिहास निर्माताओं एवं सुधारकों को स्तंभों पर चित्रित किया गया था। चित्रनिर्माण विभाग ने इनमें सभी सम्प्रदायों एवं मत-प्रवर्तकों को दिखाया था। जहाँ उन चित्रों में विक्रमादित्य का न्याय-चित्र था वहाँ उसके साथ अकबर का दरबार और आगे चलकर गुरु गोविन्दसिंह की वीरता को भी दर्शाया गया था।

सवारी को देखने के लिए जनता उमड़ी पड़ती थी। सब के चेहरों पर उत्साह और हर्ष के चिन्ह दीख पड़ते थे। इस उत्साह पूर्ण दृश्य का वर्णन मेरी लेखनी से होना सम्भव नहीं। हम पुनः विद्या-सभा की बैठक में संलग्न हो गये। बैठक में कई प्रबन्ध विषयक तथा शिक्षा-सम्बन्धी समस्याओं पर विचार हुआ। सायंकाल बैठक समाप्त हो गई। अगले दिन आर्य प्रतिनिधि सभा का अन्तरंग अधिवेशन हुआ।



श्री दौलतराम

पूर्वी अफ्रीका के नैरोबी नगर से २ फरवरी को श्री हीरालाल गाँधी निजी कार्य के लिये आये, इनसे मेरी पुरानी मित्रता थी। इनसे वहाँ के सम्बन्ध में वार्तालाप चल रही थी कि मेरे बन्धु श्री दौलतराम कानपुर से आगये। उनके पुत्र दिलबाग राय भी नैरोबी में ही काम करते थे, उन्हें उसके विषय में भी पर्याप्त जानकारी हुई।

होडल में—इसके लगभग दो सप्ताह पश्चात् मैं होडल गया। यह

स्थान दिल्ली से ५५ मील दूर गुड़गाँव जिले में है यहाँ पर अपने बंधु डा० हकूमत राय के पास ठहरा। इस नगर के रमणीय प्राकृतिक दृश्यों को घूम फिर कर देखा। डा० हकूमत राय के द्वारा उनके कई मित्रों से मेरा परिचय हुआ। उनमें से एक ऐसे सज्जन से परिचय हुआ जिन्हें ईश्वर की सत्ता में आस्था न थी। वे यह जानने को उत्सुक थे कि उन को आस्तिक बनने के लिए क्या करना चाहिये। मैंने उनके सामने कुछ अपने विचार रखे तथा ऐसी पुस्तकों के नाम भी बता दिये जिनके अध्ययन से उनके सन्देह की निवृत्ति हो सके। एक दो पुस्तकें इसी विषय की मैंने उन्हें अपने पास से दीं ताकि इनसे वे अपना स्वाध्याय प्रारम्भ कर सकें।

सात मई को मुझे अपने भाँजे ओंप्रकाश के विवाह पर कालका जाना था, बरात कानपुर से दिल्ली होती हुई कालका पहुँची। मैं भी दिल्ली से उसमें सम्मिलित हो गया। वहाँ से विवाह की समाप्ति पर सोलन भी गया। वहाँ पंजाब विश्वविद्यालय के कुछ अधिकारियों से मिलना था। वहाँ से कालका होता हुआ दिल्ली लौट आया। फिर कुछ समय बाद गर्मी के कुछ दिन शिमले जाकर व्यतीत किये। मेरे पुत्र ओंप्रकाश तथा बलराज भी वहीं पर थे।



ओंप्रकाश और बलराज के साथ (१९५०)

२—नागपुर तथा कुछ अन्य स्थान

बम्बई को—मैं तो बम्बई कई बार हो आया था पर मेरे पुत्र सत्यव्रत और ओं प्रकाश अभी वहाँ न गये थे। शिमला से लौट आने पर २ जुलाई को उनके साथ बम्बई के लिए चला। अगले दिन हम विक्टोरिया टर्मिनस स्टेशन पर पहुँचे। वहाँ से माटुंगा पुत्री सुशीला के यहाँ चले गये।

सायंकाल के समय सैर को निकले। हंसराज जी व सुशीला अपने बच्चों सहित हमारे साथ थे। भारत द्वार के समीप समुद्र तट पर गये, देखा कि जहाज लंगर डाले खड़े हैं, दृश्य बड़ा सुहावना था। कुछ देर विश्राम करके मैरीन-ड्राइव गये, वहाँ का दृश्य भी बड़ा आकर्षक था। दूर समुद्र में विहार करती हुई नौकाओं का दृश्य बड़ा ही अद्भुत प्रतीत होता था। समुद्र-तट पर बम्बई कारपोरेशन की ओर से दर्शकों के लिए बैठने की सुविधा है। हमने कुछ काल यहीं बिताया और इस आनन्दमय दृश्य से अपने को तृप्त किया। फिर निकट ही अपने मित्र श्री वर्मा के निवास पर चले गये, वहाँ हम रात्रि को भोजनार्थ निमन्त्रित थे। वे अपने भवन की ऊपरी मंजिल में रहते थे, वहाँ से समुद्र में लहरें किलोल करती हुई बड़ी सुन्दर प्रतीत होती थीं। इस मकान का एक भाग समुद्र की ओर खुला था जहाँ से समुद्र की शीतल वायु बड़े वेग से आती थी, उससे हमें बड़ा आनन्द रहा। हम वहाँ से रात के दस बजे लौटे।

४ जुलाई को मैं और मेरे पुत्र मैकमिलन कम्पनी के कार्यालय में गये। गत कई वर्षों से मेरा सम्बन्ध इस कार्यालय से चला आ रहा था। एक जून से मैंने चार मास का अवकाश लिया हुआ था। मैंने वहाँ के अध्यक्ष से अपने पुत्रों का परिचय कराया। कुछ व्यापार सम्बन्धी वार्तालाप के पश्चात् हम अपने निवास को लौट आये। कार्य की समाप्ति पर सत्यव्रत और ओं प्रकाश दिल्ली लौट जाना चाहते थे और मैं जाना चाहता



स्व० श्री बाशी राम जी के साथ (फरवरी १६४८)

था नागपुर। वहाँ मेरे मित्र श्री वाशीराम रहते थे, अतः मैं अपने पुत्रों के साथ दिल्ली न गया।

६ जुलाई को मैं कलकत्ता मेल से नागपुर पहुँच गया। इसी समय प्लेटफार्म से दूसरी ओर अंजली से भी गाड़ी आई, उसमें श्री बाशीराम आते हुए दीखे। हम मिलकर बड़े प्रसन्न हुए। उसी समय एक गाड़ी अंजली जा रही थी, सामान उसमें रखा और बैठ गये। बाशीराम जी का निवास अंजली के निकट ही था जो नागपुर से दो मील पर है। हम अंजली आ गये और कुछ ही देर में उनके घर पर जा पहुँचे।

सायंकाल को नागपुर के दर्शनीय स्थानों को देखने के लिये हम अंजली स्टेशन से जंक्शन पर गये। वहाँ से सीतावर्दी जा कर वहाँ का प्राचीन गढ़ देखा, इसे चट्टान काट कर बनाया गया था। इसी के नाम पर वहाँ के एक बड़े बाजार का नाम पड़ता है। इसी के एक ओर पाकिस्तान से आये पुरुषार्थियों ने कुछ दुकानें बनाई हुई हैं, इसे सदर बाजार कहते हैं। इसमें दैनिक उपयोग की सभी वस्तुएँ साधारण रूप से मिल जाती हैं।

यह बताना उचित ही होगा कि श्री बाशीराम मध्यप्रदेश में पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंट में एस० डी० ओ० के पद पर कार्य करते थे पर विभाजन के कुछ वर्ष पूर्व वे अवकाश पा चुके थे। तब से अपना मकान बनवा कर लाहौर रहते थे। विभाजन के पश्चात् पहले तो उनका विचार दिल्ली में ही रहने का था किन्तु कुछ अधिक सुविधा की दृष्टि से पुनः नागपुर चले गये। उसी विभाग में उन्हें कार्य मिल गया और निवास के लिये भी अच्छा प्रबन्ध हो गया।

अगले दिन हम पुनः नागपुर गये। वहाँ सर्वप्रथम हंसापुरी आर्यसमाज देखा। यह स्थान अच्छी अवस्था में न था, स्थान स्थान पर टूटा हुआ था। न इसकी मंदिर जैसी शकल ही थी। एक साधारण घर के समान ही इसकी अवस्था थी। नागपुर में यह दृश्य देख कर मुझे बड़ा दुःख हुआ। ठीक है आर्यसमाज का जो रूप पंजाब में है वह भारत में अन्यत्र कम ही

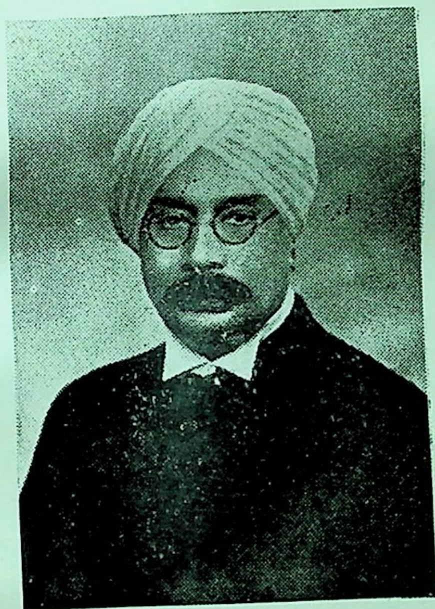
मिलता है। आगे हम महल बाजार में पहुँचे, यहाँ एक विशेषता यह देखी कि वहाँ के निवासी अधिकतर हैं तो नाटे पर हैं हृष्ट-पुष्ट। चेहरे पर लाली चाहे न हो पर उनमें चुस्ती और कार्य-क्षमता विशेषतः विद्यमान थी।

११ जुलाई को मैं दिल्ली जाने के लिये स्टेशन पर गया। गाड़ी कुछ विलम्ब से आई, उसमें भीड़ तो अवश्य थी परन्तु मुझे बैठने को स्थान मिल गया। अगली प्रातः मैं दिल्ली जा पहुँचा।

नागपुर से लौट आने पर मुझे अम्बाला जाने का अवसर हुआ। वहाँ मेरे पड़ौसी स० अमरीकसिंह को सरगोधा में छोड़ी हुई भूमि के बदले इस जिले में कुछ भूमि मिली थी, पर अभी कुछ विवाद चल रहा था। इसके लिये मैंने वहाँ पर पं० भक्तराम शुक्ल से परामर्श लिया। उनके द्वारा इस कार्य में सहायता का आश्वासन पाकर मैं जालन्धर चला गया। वहाँ भी एक ऐसा ही कार्य था। एक सज्जन जो स्यालकोट निवासी थे निज जीवन-निर्वाह सम्बन्धी कष्ट में थे। कुछ पुरुषों के सहयोग से उनके कार्य की भी व्यवस्था हो गई।

वहाँ से मैं लौट कर दिल्ली आ गया, अब मुझे देहरादून जाना था। वहाँ कन्या गुरुकुल के प्रबन्ध सम्बन्धी एक कार्य के लिये विद्या सभा की ओर से एक उपसमिति बनी थी। उसमें मेरे अतिरिक्त श्री मानकचन्द भी पधारे थे। हमने आचार्या जी से विचार-विनिमय किया। साथ ही गुरुकुल के विद्यालय तथा महाविद्यालय की भिन्न-भिन्न श्रेणियों के शिक्षा कार्य का निरीक्षण किया तथा वहाँ की व्यवस्था देखी। इसके पश्चात् गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता पं० ठाकुरदत्त जी शर्मा के द्वारा सारी स्थिति पर विचार किया।

वहाँ से दिल्ली लौट आया। १९४८ में मेरी छोटी बहन अमरदेवी भी दिल्ली आगई और हमारे साथ ही रहने लगी। अभी दिल्ली के तापमान में कमी नहीं आई थी, मैं पुनः शिमला के लिये चल पड़ा। जब मैं कालका से शिमला जा रहा था तो उसी डिब्बे में समीप ही दो देवियाँ बैठी थीं। उनकी वार्तालाप से ऐसा प्रतीत हुआ



पं० ठाकुर दत्त शर्मा





बहिन अमरदेवी प्रवीण सहित

कि उनमें से एक देवी मेरी परिचित हैं। पूछने पर पता चला कि वे श्रीमती विद्यावती थीं जिन्हें अब से चालीस वर्ष पूर्व मुझे शिक्षा देने का अवसर प्राप्त हुआ था।

आज का दिन वास्तव में कुछ परिचितों से मेल-जोल का प्रतीत होता था। मैं अभी बड़ोग स्टेशन पर पहुँचा था कि मुझे एक वृद्ध महाशय ने आवाज़ दी। पहले तो मुझे आश्चर्य सा लगा पर जब उनसे मिला तो बड़ी प्रसन्नता हुई। ये मेरे हाई स्कूल के सहपाठी श्री कन्हैयालाल थे। १८६६ में हम दोनों ने एक साथ गुजरात में शिक्षा पाई थी। यहाँ से आगे सोलन स्टेशन पर मेरे पुराने मित्र श्री रोशनलाल मिले। हम कई

वर्ष तक लाहौर आर्यसमाज और जातिपाति-तोड़क-मंडल में एक साथ काम कर चुके थे। इसके आगे मैं शिमला पहुँचा।

श्रावणी का दिन आया। वर्षा बड़े जोर से हो रही थी। समाज में जाने से पूर्व मुझे प्रो० दीवानचन्द शर्मा से मिलना था। मैं वर्षा में ही चल पड़ा। प्रोफेसर शर्मा से मिल कर पंजाब विश्व-विद्यालय की पाठ-विधि पर विचार विनिमय किया। तत्पश्चात् मैं आर्यसमाज मन्दिर में गया, वहाँ श्रावणी का विशेष कार्यक्रम होना था। यज्ञ आरम्भ होने से पूर्व यज्ञोपवीत परिवर्तित हुए। हवन-यज्ञ तथा व्याख्यान के पश्चात् आर्य बालिकाओं ने मधुर कण्ठ से वेद मंत्रों और धार्मिक गीतों का गायन किया।

६ सितम्बर को सनातन धर्म कालेज के प्रिंसिपल श्री अरोड़ा ने सूचना भेजी कि साउदी अरब के भारतीय राजदूत श्री अब्दुल मजीदखां जो भारत लौट आये हैं, आज यहाँ आने वाले हैं। मैं श्री मजीद को कई वर्ष पूर्व से जानता था जब कि वे मिशन कालेज लाहौर में प्रोफेसर थे। वे बड़े उदार व्यक्ति हैं; वे ऋषि दयानन्द के प्रति एक दो आर्य-सम्मेलनों में श्रद्धा-पूर्ण विचार भी प्रकट कर चुके थे।

प्रो० मजीद आये। मैं भी कालेज में गया। उन्होंने अरब के सामाजिक जीवन का वर्णन किया। वहाँ के प्राकृतिक दृश्यों पर भी भली-भाँति प्रकाश डाला। वे बोले, "साउदी अरब में भारत के समान कोई बड़े नगर नहीं हैं। सब से बड़े नगर की जन-संख्या ८० हजार है। जद्दा वहाँ द्वितीय श्रेणी का नगर है। मक्का और मदीने की जन संख्या २० हज़ार से अधिक नहीं है। वहाँ पर आवागमन के अच्छे साधन भी नहीं हैं, केवल एक दो ही सड़कें हैं। शिक्षा नाम मात्र को ही है।

उस देश का सम्राट् सर्व-सत्ता-सम्पन्न है। वहाँ संसद् की व्यवस्था नहीं है। न्याय के लिए वहाँ कुरान को प्रधानता दी जाती है। उस देश में पर्दे की प्रथा भी विद्यमान है।"

कुछ दिनों पश्चात् मैं शिमला से दिल्ली लौट आया।

गणराज्य-दिवस की वर्ष-गाँठ— २६ जनवरी १९५१ को भारतीय गणराज्य की प्रथम वर्ष-गाँठ मनाई गई। गत वर्ष की भाँति इस वर्ष भी विशेष धूमधाम रही। कार्यक्रम विशेष मनोहर था। प्रातः काल राष्ट्रपति भवन के सामने रक्षा-विभाग की ओर से जल स्थल और वायुसेना ने राष्ट्रपति का सैनिक अभिवादन किया, तत्पश्चात् राष्ट्रपति भवन से जलूस निकला। यह इर्विन स्टेडियम पर आकर विस्तृत हो गया। जलूस में सब से आगे पैदल जवान हाथ में बन्दूक धारण कर चल रहे थे, उनके पीछे सैनिक वाद्य समूह था, इसके पीछे टैंक थे जिन पर दो गोले और पाँच गोले फेंकने वाली तोपें लगी थीं। कुछ विशेष अस्त्र-शस्त्रों का भी प्रदर्शन था। घुड़सवार तथा ऊँट-सवारों के साथ कई प्रकार के वाद्य सुशोभित थे।

इस वर्ष केन्द्रीय शिक्षा-विभाग की ओर से ऐतिहासिक यात्रा का दिग्दर्शन भी था। भारतीय इतिहास को भिन्न २ अवस्थाओं में चित्रित किया गया था। सबसे पूर्व पाषाण एवं ताम्रकालीन मानव उन्नति का दिग्दर्शन था। उसके पश्चात् श्रीराम के वन-गमन पर खेवट द्वारा नौका से गंगापार जाने का दृश्य दिखाया गया था। अगले रथ में श्री कृष्ण अर्जुन को कर्मयोग का सन्देश दे रहे थे। फिर अशोक द्वारा अपने पुत्र और पुत्री को बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए विदेश भेजना, व विक्रमादित्य की न्याय सभा तथा महाराजा हर्ष के सर्वस्व त्याग के दृश्य इस जलूस के अन्दर विभिन्न रूपों में प्रदर्शित थे। मुगल कालीन भारत वर्ष में केवल सम्राट् अकबर, महाराणा प्रताप एवं सिखों के दशम गुरु गोविन्दसिंह जी का चित्रण था। १८५७ में झांसी की रानी का अद्भुत पराक्रम, देश भक्तों का बलिदान, स्वामी दयानन्द का चित्र तथा महात्मा गांधी की कुटीर एवं समाधि के दृश्य बहुत अनुपम रूप में चित्रित किये गये थे।

इस ऐतिहासिक रथ-यात्रा में सब से बड़ी विशेषता यह थी कि सभी पात्रों को बड़ी योग्यता पूर्वक उनकी पुरातन वेष-भूषा में सजाया गया था।

प्रत्येक झाँकी भारतीय गौरव का जीवित-जागृत रूप थी जिस पर भारत को सदैव अभिमान रहा है। भारतीय इतिहास के प्रत्येक युग का चित्रण करने के पश्चत् भी सारा दृश्य असाम्प्रदायिक था। केवल ऐसी भावनायें ही उनमें व्यक्त थीं कि जिनसे पारस्परिक कटुता और विषमता उत्पन्न न हो।

श्री मारिस मैकमिलन—इसी अध्याय के आरम्भ में मैंने लिखा है कि मैंने एक अक्टूबर १९५० से मैकमिलन कम्पनी के कार्य से स्थिर अवकाश पा लिया था पर पूर्ववत् मेरा सम्बन्ध उसके कार्यकर्त्ताओं से बना रहा। १९५१ के फरवरी मास में इस कम्पनी के डायरेक्टर श्री मारिस मैकमिलन अपनी धर्मपत्नी सहित दिल्ली पधारे। मैं भी उनसे मिला। उन्होंने मेरा प्रेमपूर्वक सत्कार किया।

श्री मारिस मैकमिलन का नाम उनके पिता-मह के नाम पर ही रखा गया था। मैं अन्यत्र लिख आया हूँ कि उनके दादा से मैं १९२१ में बम्बई में मिला था। उसी समय उनके पास लन्दन से तार पहुँचा था कि उनके यहाँ एक पौत्र का जन्म हुआ है। वह पौत्र यही मारिस महोदय हैं। यह भी अपने दादा के समान अब उस कम्पनी के डायरेक्टर हैं। मैंने जब उनसे उनके जन्म की स्मृति की ओर संकेत किया तो इससे बड़ा मनोरंजन हुआ।

मारिस महोदय से मेरी व्यापार सम्बन्धी बातें भी हुईं। उन्होंने सब विषयों पर उदारतापूर्वक प्रकाश डाला। उनकी धर्मपत्नी भी एक बड़े शिष्ट परिवार से हैं। वह बड़ी सरल सुशील और सहृदय हैं। एक दिन हमने मिलकर भोजन भी किया, जिसमें मेरे पुत्र सम्मिलित थे।



श्री मारिस मैकमिलन और उनकी पत्नी के साथ (१९५१)

३—मसूरी और शिमला

भारत-विभाजन से पूर्व पंजाब में कई पर्वतीय स्थानों पर जाने का अवसर होता था। मरी, ऐबटाबाद, श्रीनगर आदि स्थान पता नहीं कितनी बार देखे थे। पर अब ४-५ वर्षों में गर्मियाँ शिमले में ही व्यतीत करता रहा। मेरा पुत्र बलराज भी व्यापार सम्बन्धी कार्य वहीं करता था।

इन दिनों कन्या गुरुकुल देहरादून के उत्सवों पर भी अधिकतर जाना होता रहा। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के अन्तरंग अधिवेशन तथा विद्या सभा और शिक्षा-समिति की कुछ बैठकें भी यथासमय यहीं होती रही हैं जिनमें मैं सम्मिलित होने देहरादून जाता रहा। आर्यसमाज के प्रसिद्ध महानुभाव पं० ठाकुरदत्तशर्मा अमृतधारावाले लाहौर से आने के पश्चात् यहीं पर स्थायी रूप से रहने लगे हैं। इन सभी कारणों से देहरादून तो कई बार देख चुका था पर उसके निकटवर्ती पर्वतीय स्थान मसूरी अभी तक कभी न देख सका था। इस वर्ष मई के दूसरे सप्ताह में विद्यासभा की बैठक में सम्मिलित होने जब देहरादून गया हुआ था तो १४ मई १९५१ को कार्य से अवकाश पाकर इस नये स्थान को देखने का विचार किया।

गुरुकुल विद्यालय के सामने से ही बस जाती थी, मैं उसमें बैठ कर मसूरी के लिये चल पड़ा। कई चक्कर काटती हुई तथा पर्वतों पर चढ़ती हुई बस १५ मील का मार्ग पार करके मसूरी के उस स्थान पर पहुँची जहाँ टोल-टैक्स लिया जाता है। वहाँ पर्याप्त समय रुकना पड़ा, तत्पश्चात् शीघ्र ही पर्वतों की रानी मसूरी पहुँचा।

मैं यहाँ पहली बार ही आया था। ठहरने के लिये शीघ्र ही उचित स्थान का मिलना कठिन था। उस समय तो मैं एक होटल में ठहर गया। अगले दिन कुछ जानकारी प्राप्त करके स्थान परिवर्तन कर लिया।

मसूरी के कुछ स्थान—मसूरी में लंढोरा बाजार और कुलड़ी बाजार की शोभा अच्छी है अब तो वहाँ न्यू मार्केट भी नवीन शान रखती है। वहाँ मुझे गुरुकुल कांगड़ी के प्रो० श्री फकीरचन्द त्रेहन मिले। उनसे पता चला कि आज समाजवादी पार्टी के नेता जयप्रकाश नारायण आ रहे हैं और अपना भाषण टाऊन हाल में देंगे। नियत समय पर मैं टाउन हाल पहुँचा और उनका भाषण सुना। भाषण क्या था भारतीय राजनीति की एक पूरी समालोचना थी। उन्होंने अखिल भारतीय समाजवादी पार्टी के कार्यक्रम की रूपरेखा बताते हुए अन्य दलों की युक्ति पूर्वक आलोचना की। कांग्रेस पर बोलते हुए उन्होंने बताया कि उसने गाँधी जी के सिद्धान्तों को भुला दिया है।

अगले दिन सायंकाल के समय त्रेहन जी के साथ मैं गाँधी चौक के एक प्रसिद्ध पुस्तकालय में गया। वहाँ पुस्तकें पढ़ने वालों के अतिरिक्त दर्शकों के बैठने के लिये भी उत्तम प्रबंध था।

मैं नहीं समझता था कि यहाँ कोई परिचित अथवा सम्बन्धी भी मिल सकते हैं पर १८ मई को मेरे एक सम्बन्धी सत्यपाल जी मिल गये। ये यहाँ पर व्यापार करते थे। उनके घर जाकर परिवार के सदस्यों से भी मिला। उनके स्वागत-सत्कार से बड़ी प्रसन्नता हुई। सायंकाल तिलक स्मारक पुस्तकालय देखा।

यहाँ के गत तीन चार दिन के भ्रमण से मुझे अनुभव हुआ कि हिमालय की तराई में सचमुच कोई सुन्दर रमणीय स्थान है तो वह मसूरी है। उसकी गिनती प्रथम श्रेणी के ऐसे स्थानों में हो सकती है जहाँ स्वास्थ्यप्रद जलवायु व प्राकृतिक दृश्यों के अवलोकन से अनुपम आनन्द तो मिलता ही है पर यहाँ पर अन्य भी कई सुविधाएं हैं। राजधानी के समीप होने के कारण बस सर्विस का भी विशेष प्रबन्ध है। यहाँ के समतल मार्ग भ्रमण की दृष्टि से सुगम हैं। यहाँ के प्राकृतिक दृश्य भी दार्जिलिंग, अल्मोड़ा व

नैनीताल से बढ़ चढ़ कर कहे जाते हैं। इन कई कारणों से इसे 'पर्वतों की रानी' कहना सार्थक प्रतीत होता है।

मसूरी का इतिहास—सन् १८१५ ई० में नैपाल और ब्रिटिश सरकार में एक सन्धि हुई थी, उस से यह स्थान ब्रिटिश सरकार को प्राप्त हुआ था। यहाँ ओक तथा देवदार के वृक्षों की अनुपम शोभा को देखकर अंग्रेजों ने इस शीतप्रधान स्थान को अपने कार्य-क्षेत्र के लिये चुना और इसका सुन्दर ढंग से निर्माण किया। सात वर्ष पश्चात् 'केमल बैक रोड' पर कुछ कच्चे मकान बने। मसूरी का सब से अच्छा गृह मलिंगर है जो वहाँ के पुरातन सौन्दर्य का साक्षी है। यह १८२६ में बना था। अब वह सवा शताब्दी पार कर चुका है पर आज भी आदिम अटूट चट्टान की भाँति खड़ा है। सबसे प्रथम स्कूल १८३४ में एक अंग्रेज श्री किनन ने अंग्रेजी शिक्षा के लिये खोला था। सबसे प्रथम गिर्जाघर १८३६ में बना था। १८४४ में अंग्रेजों का एक क्लब बना था और उसी समय लंढोरा बाजार और बड़ा डाकघर बने थे।

मसूरी अंग्रेजों का नगर कहा जाता था। अंग्रेजों ने इस बात के लिये प्रयास किया था कि प्राचीन पर्वतीय निवासियों को हटा दिया जाय पर इस में वे सफल न हुए। फिर भी वहाँ अंग्रेजों का बड़ा प्रभाव था। वहाँ हिन्दुस्तानियों को छोटे से छोटे अंग्रेज बच्चे को भी सलाम करना पड़ता था। पर सदा किसी का वैभव स्थिर नहीं रहा। पहला महायुद्ध हुआ, मसूरी खाली होने लगा, वहाँ की क्लबें सुनसान होने लगीं। रूठी लक्ष्मी मसूरी को पुनः वापिस मिली, अब राजा महाराजा मसूरी आने लगे किन्तु पहले की सी तड़क भड़क न आई। द्वितीय महायुद्ध में पुनः बुझे हुए दीपक प्रज्वलित हुए किन्तु युद्ध की समाप्ति के साथ चहल पहल भी समाप्त हो गई।

स्वाधीनता आई, मसूरी राजा महाराजों की भी न रही, सरकार ने इसे जनता की वस्तु बना दिया। जनता ने इसकी शोभा पुनः बढ़ा दी। पर

यह तो केवल कृत्रिम जगत् की बातें हैं। मसूरी का प्राकृतिक सौन्दर्य ईश्वर-प्रदत्त है, जिसे उससे कोई नहीं छीन सकता। देहरादून से मसूरी को रात्रि के समय देखो। वह गन्धर्व नगरी सी प्रतीत होती है। इसी प्रकार मसूरी से देहरादून को देखा जाय तो कहा जा सकता है कि वहाँ पर दीवाली हो रही है। चाँदनी रात में हिमशिखर चाँदी के पर्वत से दीखते हैं, प्रातःकाल की उषा में इन पर्वतों पर सूर्य की लाल किरणों के कारण आग सी जलती दीखती है और इसकी लालिमा सर्वत्र व्याप्त हुई सी प्रतीत होती है। पर्वतीय दृश्य तो मनोहर हैं ही इसके साथ वहाँ के प्रपात बड़ा ही मनोहर दृश्य प्रस्तुत करते हैं। यहाँ पर अच्छे खाद्य पदार्थ सुविधा से मिलने के कारण पिकनिक का बड़ा आनन्द रहता है। यहाँ का पर्वतीय उद्यान 'कम्पनी बाग' एक विशेष स्थान है। मसूरी के लायब्रेरी बाजार की उपमा दिल्ली के कनॉट प्लेस से दी जा सकती है।

यहाँ की दो सड़कें माल रोड और कैमलबैक रोड प्रसिद्ध हैं। माल रोड शिमले की माल रोड और दिल्ली के चाँदनी चौक का प्रतिरूप है। इस पर संध्या समय युवक युवतियाँ शृङ्गार करके भ्रमण करते दीख पड़ते हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानों कोई जलूस निकलने वाला है। इसी रोड पर सिनेमा घर और होटल हैं। पास ही लगता सा कुलड़ी बाजार है। अब केमल बैक रोड पर सुनसान ही रहती है।

१५ मार्च से अक्टूबर तक यहाँ अच्छी ऋतु रहती है। तत्पश्चात् लोग मैदान में आ जाते हैं। यहाँ का न्यूनतम तापमान ३२^0F तथा अधिकतम ६०^0F है। नवम्बर दिसम्बर में यहाँ अधिक हरियाली दीख पड़ती है। यहाँ पर चलचित्र-निर्माता दृश्यों को चित्रित करने के लिये आते हैं।

मसूरी ६००० फीट की ऊँचाई पर स्थित है। कहीं-कहीं पर तो इसके स्थान ८५०० फीट ऊँचे हैं। बसों का अड्डा जिसे किनक्रेग कहते हैं ६००० फीट ऊँचा है। लंढोरा बाजार सबसे अधिक ऊँचाई पर स्थित है। यहाँ सबसे अधिक शीत होता है। मालरोड से कुछ दूर लायब्रेरी बाजार है, आज कल इसे गाँधी चौक कहते हैं।

यहाँ से जमनोतरी, गंगोत्तरी, बदरीनाथ आदि स्थानों के लिये पथ गये हैं। देहरादून पगडंडी से १४ मील और मोटर मार्ग से २२ मील पड़ता है। मोटर गाड़ियाँ निश्चित स्थान से आगे नहीं जा सकतीं, यात्रियों के लिये पालकी, रिक्षा तथा घोड़े मिल जाते हैं।

मसूरी में भ्रमण करते हुए मैं एक दिन उत्तर प्रदेश की शिक्षा परिपाटी की जानकारी के लिये रामादेवी हाई स्कूल में गया। मुझे सम्भावना थी कि यहाँ बिलकुल अपरिचित शिक्षक वर्ग ही मिलेंगे पर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ जब कि वहाँ मेरी एक पुराने मित्र श्री उत्तमचन्द मलिक से भेंट हुई। यह सज्जन किसी समय डी. ए. वी. कालेज लाहौर में मेरे सहपाठी थे। उनसे मुझे वहाँ के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त हुई। इस संस्था के प्रिन्सिपल श्री अमृतसागर भी मेरे परिचित निकले, किसी समय वे ऐबटाबाद हाई स्कूल के मुख्याध्यापक थे। उन्होंने बातचीत में उत्तर प्रदेश की शिक्षा पद्धति पर विस्तृत प्रकाश डाला। सायंकाल को उनके आमन्त्रण पर उनके निवास पर चायपान के लिये गया। वहाँ उन्होंने मेरा परिचय मसूरी म्युनिसिपल कमेटी के एक उच्च अधिकारी से कराया। उनका नाम श्री गार्ग था। हम तीनों वहाँ से भ्रमण के लिये गाँधी चौक की ओर गये।

२० मई को मैं देहरादून के लिये लौट पड़ा। प्रातः १०॥ बजे हमारी बस चली और ११ बजे मैं स्टेशन पर पहुँच गया। देहरादून स्टेशन पर बड़ी गर्मी प्रतीत हुई। मेरा विचार अपने मित्र श्री काशीराम के सुपुत्र सत्यव्रत से मिलने का था, वह स्थानीय डिफेंस ऐकेडेमी में पढ़ता था किन्तु गर्मी के कारण वहाँ जाने का मैं साहस न कर सका। गाड़ी में बैठने तक मुझे प्रतीक्षालय में पंखे के नीचे बैठकर समय व्यतीत करना पड़ा। सायंकाल गाड़ी ८ बजे चली और अगली प्रातः ६। बजे दिल्ली पहुँच गई।

श्री अमरनाथ बाँगा।—मसूरी से लौटने के दस ग्यारह दिन पश्चात् मुझे यह दुःखद समाचार मिला कि मेरे मित्र श्री अमरनाथ बाँगा का देहावसान हो गया है। उनसे हमारा घनिष्ठ सम्बन्ध था, उनकी

और मेरी धर्मपत्नी बहनों से बढ़कर प्रेम रखती थीं। बाँगा जी लाहौर में ऐकाउंटेंट जनरल के कार्यालय में अध्यक्ष थे और कुछ वर्षों से अवकाश प्राप्त कर चुके थे। इसके पश्चात् वे अपने ग्राम में ही अपना समय बिताते थे। भारत विभाजन के पश्चात् देश की अवस्था बदल गई, पश्चिमी पंजाब के लोगों को स्थान-स्थान पर भटकना पड़ा। उनका एक पुत्र दिल्ली में दरयागंज में आकर रहने लगा था, वे भी वहीं आकर रहने लगे। आर्थिक अवस्था सुधारना आवश्यक जानकर उन्होंने अपनी पुरानी सर्वि फिर लेने का विचार किया। उनको यह सुविधा मिल गयी और वे राजकोट चले गये।

बाँगा जी का स्वभाव बड़ा मधुर था। वे बोलते थे कम पर करते थे अधिक। सेवा भाव तो उनमें कूट २ कर भरा था। समाजों के उत्सवों और परिचितों व सम्बन्धियों के यहाँ विवाह आदि अवसरों पर वे अपनी सेवा अपने आप ही ढूँढ लेते और उसमें लग जाते थे। उनकी आर्यसमाज पर बड़ी श्रद्धा थी, वे कट्टर आर्यसमाजी थे, समाज के सत्संगों में नियमित सम्मिलित होते थे। अनारकली आर्यसमाज के सदस्य तो थे ही पर कई वर्षों तक कोषाध्यक्ष और लेखा निरीक्षक के रूप में भी सेवा करते रहे। आर्य-समाज रामगली के भी कुछ वर्षों तक प्रधान रहे और अपने ग्राम ऐमिनाबाद की आर्यसमाज के तो वे सर्वे सर्वा थे।

इनका जीवन बड़ा नियमित था। प्रतिदिन प्रातः उठकर वायु सेवन के लिये जाया करते थे। एक दिन उनको प्रातः भ्रमण के पश्चात् हृदय स्थान में कुछ पीड़ा अनुभव हुई। वे दफ्तर भी न गये। मध्याह्नकाल तक तो वे भले चंगे रहे पर थोड़ी देर में ही उनके चेहरे की दशा बदल गई और उनका देहावसान हो गया। वहाँ उनके कोई निकट के सम्बन्धी भी न थे, केवल एक दूर के सम्बन्धी को समीप से ही बुलाया गया और दाहकर्म संस्कार हुआ। जब उनके परिवार को यहाँ यह समाचार मिला तो सब शोक से व्याकुल हो गये पर किसी का क्या वश चल सकता है!

इन दिनों दिल्ली का तापमान बढ़ गया था अतः जून के मध्य में मैं शिमले के लिये चल दिया। मेरे साथ मेरा पौत्र वेदप्रकाश भी था।

कालका से शिमला की ट्रेन में बैठे। मार्ग में सलोघड़ा स्टेशन के पास देखा कि रेल का एक इंजिन १०० फुट नीचे टूटा हुआ पड़ा है। इंजिन का केवल लोहा ही लोहा अथवा एक ढाँचा दिखाई देता था। कुछ दिन पूर्व एक गाड़ी आ रही थी। गाड़ी के कुछ डब्बे लाइन से उतर जाने के कारण इंजिन दूर नीचे जा पड़ा था। मेरा यह शिमला भ्रमण अन्य वर्षों से भिन्न था। अन्य वर्षों में भ्रमण का कार्य गौण होता था पर इस वर्ष अपने कार्य से मैं अवकाश पा चुका था और स्वास्थ्य वृद्धि के विचार से ही वहाँ गया था। प्रातः सायं भ्रमण करना और शेष समय स्वाध्याय करना आदि कार्य ही मुख्य थे।

रविवार को आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्संगों में यज्ञ के पश्चात् भजनोपदेश होते थे। एक बार एक उपदेशक महोदय ने अपने व्याख्यान में बताया कि "अग्निहोत्र प्रातः तथा सायंकाल हमारे उस कार्य का चिह्न है जो हम प्रतिदिन करते हैं। हमें मनुष्यमात्र की उचित रूप से सेवा करनी चाहिये।" वर्ण व्यवस्था के विषय में उन्होंने इस प्रकार व्याख्या की, "ब्राह्मण का मुख्य कर्म सत्य और त्याग तथा क्षत्रियों का न्याय और रक्षा है। वैश्य लोग धन कमायें और सब व्यक्तियों में उसका वितरण आवश्यकतानुसार करें और शूद्र शारीरिक श्रम करें तो उससे सुख-शान्ति बढ़ सकती है।"

इसी प्रकार एक रविवार को आर्य कन्या पाठशाला का एक विशेष कार्यक्रम था। इसके सभापति पंजाब हाईकोर्ट के भूतपूर्व जज सर जयलाल थे। हवन संध्या के पश्चात् कन्याओं ने भजन गाये, वेद मंत्र और श्लोकों का सस्वर पाठ किया। इस से बड़ी प्रसन्नता हुई।

शिमला के सुन्दर स्थानों में मैंने मशोबरा का नाम सुना हुआ था। मैं वहाँ कुछ वर्ष पूर्व पैदल पहुँचा भी था पर लौटने पर बहुत थक गया था। उसके पश्चात् कभी वहाँ जाने को उद्यत न हुआ। इन दिनों शिमला से वहाँ जाने के लिये बसें चलने लगी थीं। विचार हुआ कि इस बार वहाँ भ्रमण के लिये चलें। मेरे साथ ओं प्रकाश और श्री बंसल भी हो लिये।

मार्ग में हमें बस मिल गई किन्तु वह मशोबरे तक जाने वाली न थी। हमने अन्य बस की प्रतीक्षा करने के स्थान पर उसी से चलना उचित समझा। वह संजोली जाकर रुक गई। आगे बस न मिलने पर हम पैदल ही चल पड़े और दो घंटे में मशोबरे जा पहुँचे। वहाँ पहुँचने पर हमें बड़ी भूख लग आई। हम होटल की तलाश में थे और जो होटल हमें पहले मिला उसी में बैठ कर भोजन करने लगे। उसका संचालक सीधा सा व्यक्ति था, वह ग्राहकों को अपनी ओर खींचना न जानता था, हमें वहाँ जैसा भी भोजन मिला खा लिया।

अब हम मशोबरे की प्राकृतिक छटा देखने के लिये आगे बढ़े। सुन्दर हरियाली छाई हुई थी। पर्वतमाला और उनके झरने बड़े आकर्षक प्रतीत होते थे। आगे चल कर एक साधारण समतल स्थान पर एक छोटा सा पक्का भवन दीख पड़ा, इसे काली का मन्दिर कहते थे। नाम सुनते ही अश्रद्धा सी हो गई। वहाँ कुछ आकर्षण भी न था। कहते हैं कि वहाँ दुर्गाष्टमी को एक मेला लगता है और वहाँ भैंसों की लड़ाई होती है। हमने मन्दिर देखने की आवश्यकता न समझी।

अब शिमले लौटने का विचार हो गया। बस की प्रतीक्षा करने लगे। आगे बढ़ कर मैं तो एक टीले पर बैठ गया। मेरे साथियों ने आगे जाकर शिमले जाने वाली बस में मेरे लिये स्थान सुरक्षित करा लिया। बस जब उधर से गुजरी, तो मैं भी बैठ गया और हम ठीक समय पर शिमले पहुँच गये।

४—एक प्रिय मित्र का वियोग

श्री बाशी राम जी—शिमला से लौटने से पूर्व ही मुझे यह दुःखद समाचार मिल गया था कि मेरे मित्र श्री बाशीराम कपूर का ३१ जुलाई को नागपुर में देहान्त हो गया है। मेरे लिए यह समाचार वज्रपात के सदृश था। मैंने उनके विषय में यथास्थान कई बार लिखा है। पता नहीं हमने साथ ही कितने वसन्त और कितने पतझड़ देखे थे पर शाश्वत पतझड़ भी एक दिन देखना पड़ेगा यह जानते हुए भी कभी यथार्थ अनुभव नहीं हुआ था। मेरे मस्तिष्क में गत सब स्मृतियाँ नाचने लगीं और मेरे दुःख का आवेग बढ़ने लगा। बचपन के परम मित्र का वियोग हो गया यह मुझे असह्य प्रतीत होने लगा! पर इसका क्या उपचार हो सकता था! अटल नियम कैसे टल सकते हैं!

श्री बाशीराम अपने कार्य से अवकाश पा चुके थे और लाहौर में अपना मकान बनाकर शेष जीवन आराम से बिता रहे थे। १९४७ में विभाजन हो गया। उन्हें लाहौर छोड़कर दिल्ली आना पड़ा। जीविका के लिए भी पुनः कुछ करने को विवश हुए और नागपुर चले गये। कुछ समय पूर्व उनसे मैं भी मिल आया था पर यह पता न था कि अब पुनः न मिल सकेंगे।

वृद्धावस्था में काम करना बड़ा कठिन है, पर फिर भी वे कार्य में लगे रहे। एक दिन वे अपने कार्य के सम्बन्ध में साईकल पर कचहरी जा रहे थे कि मार्ग में ही गिर पड़े और हस्पताल में जाने से पूर्व ही उन्होंने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया।

मुझे तब वह समय स्मरण हो आया जब कि हम उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में आर्यसमाज में एक साथ ही आये थे। वे भी एक पौराणिक घराने में उत्पन्न हुए थे परन्तु शनैः शनैः आर्यसमाज की

ओर आगये यहाँ तक कि उनका आर्यसमाज के सिद्धान्तों में अटल विश्वास हो गया और इसमें कोई अत्युक्ति नहीं यदि मैं कहूँ कि वे दृढ़ आर्य-समाजी थे।

अपने विवाह से भी पूर्व मध्यप्रदेश के पी० डब्ल्यू० डी० विभाग में काम करना आरम्भ कर दिया था परन्तु जहाँ कहीं भी रहे वे आर्यसमाज को प्रगति देने का प्रयास करते रहे। यद्यपि वे पदाधिकारी बनने के इच्छुक न थे फिर भी एक दो बार जब आवश्यक हुआ उन्होंने मंत्री के रूप में सेवा की।

अगस्त के आरम्भ में जब मैं दिल्ली लौट कर आया तो उनके परिवार से मिलने गया। उनके सबसे बड़े पुत्र धर्मवीर अपने परिवार सहित यहीं रहते थे। वह स्वयं तो नागपुर गये हुए थे, मैंने उनकी अनुपस्थिति में शेष परिवार को जाकर ढारस बँधाया।

स्वतन्त्रता-दिवस—१५ अगस्त आ गया। दिल्ली में स्वतन्त्रता-दिवस बड़े समारोह से मनाया जा रहा था। प्रातःकाल ही नर-नारियों का समूह लाल किले के आस पास एकत्र हो गया। रेडियो ने आंखों देखा हाल कुछ इस प्रकार प्रसारित किया :—

जामा मस्जिद से लेकर लाजपतराय मार्केट तक नर नारियों का समूह उमड़ता आ रहा था। चारों ओर चाँदनी-चौक तक व्यक्ति ही व्यक्ति दृष्टि-गोचर हो रहे थे। आगे आगे देश के गरायमान्य नागरिक विराजमान थे। किले के बीच वाले बुर्ज में झण्डा फहराने की व्यवस्था की जानी थी।

समस्त स्थान तिरंगे ध्वज के वस्त्र से सजाया गया था। प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू के पधारने पर ११ तोपों की सलामी दी गई। सरदार बलदेव सिंह भी प्रधान मन्त्री के साथ थे। उन्होंने सर्वप्रथम सैनिक परेड का निरीक्षण किया और उसके पश्चात् वन्दना (सैल्यूट) करके बुर्ज पर आये जो मुख्य-द्वार के साथ पश्चिम की ओर स्थित है। ध्वजारोहण के समय आकाश से वायुयानों ने पुष्प वर्षा की तत्पश्चात् प्रधान मन्त्री का भाषण

हुआ। इस वर्ष सारे भारत में संसद व प्रान्तीय धारा-सभाओं के नये चुनाव होने थे।उन्होंने देश की समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए कहा, "इस समय सरकार को सहयोग देना चाहिये। यदि उसमें कोई दोष भी है तो आप उन व्यक्तियों को न चुनें पर इस समय देश में शान्ति स्थापित करना आवश्यक है।"

ला० ज्ञानचन्द जी—अक्टूबर मास में २० तारीख को दिल्ली के प्रसिद्ध आर्य समाजी श्री ज्ञानचन्द जी ठेकेदार का देहान्त हो गया। लाला जी से मेरा गत ३२ वर्षों से अच्छा मेल-जोल था। वे पक्के आर्यसमाजी थे और वेद-शास्त्रों के स्वाध्याय में लगे रहते थे। वे आर्य समाज के सिद्धान्तों के मंडन और समर्थन करने में विशेष रुचि लेते थे। अपने जीवन को सिद्धान्तानुसार चलाना वे अपना कर्त्तव्य मानते थे। वे नई दिल्ली में बारह खंभा रोड पर रहते थे। यह एक आश्चर्यजनक घटना है कि उनकी पत्नी ने भी अपने पति की मृत्यु का समाचार पाते ही अपने प्राण त्याग दिये। दम्पति का दाह कर्म संस्कार भी एक साथ ही हुआ।

५—ग्वालियर-नैनीताल-भ्रमण

सन् १९५२ की ग्रीष्म ऋतु में अस्वस्थ होने के कारण मुझे कहीं बाहर भ्रमणार्थ जाने का अवसर न हुआ था। अपने भ्रमण में मैं अभी उत्तर भारत के अतिरिक्त बम्बई, नागपुर तथा हैदराबाद तक ही जा सका था। अतः जब कभी और कहीं जाने की सुविधा हुई तो मैंने वहाँ जाने का प्रयत्न अवश्य किया। इन दिनों एक मित्र द्वारा मुझे सूचना मिली कि वे ग्वालियर में हैं और उन्होंने मुझे परामर्श दिया कि मैं भी वह स्थान आकर देखूँ। वहाँ इन दिनों मध्यभारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन और भारतीय इतिहास काँग्रेस का अधिवेशन भी होने वाला था। वहाँ एक प्रदर्शनी का आयोजन भी था। इन कारणों से इस उपयुक्त समय पर वहाँ जाने का निश्चय कर लिया।

मैं दिल्ली से गाड़ी द्वारा चल कर दिसम्बर २८ को सायंकाल ही ग्वालियर जा पहुँचा। अब इस समय वहाँ कोई कार्यक्रम तो देखने योग्य था नहीं। हाँ, मेला लग रहा था वही देखा और वहाँ घूमे फिरे। अगले दिन मैं, मेरे मित्र तथा केन्द्रीय पुस्तकालय के मंत्री श्री चन्द्रिकाप्रसाद मिश्र ग्वालियर का ऐतिहासिक दुर्ग देखने चल दिये। इस दुर्ग में प्रवेश के लिये दो द्वार हैं, हम उरई द्वार से गये। इस मार्ग में बहुत सी जैन मूर्तियाँ थीं। इतनी विशाल मूर्तियाँ खण्डित रूप में देख कर मुझे कुछ खेद सा हुआ। धर्मान्ध व्यक्तियों ने इस कला को हानि पहुँचाई थी और नष्ट-भ्रष्ट करने का भी प्रयास किया था।

ग्वालियर का इतिहास—इतिहास के दृष्टिकोण से ग्वालियर नगर पाँचवीं शताब्दी में बसाया गया बताया जाता है। इस नगर का दुर्ग पहाड़ी चट्टान पर बड़ी दृढ़ता से खड़ा है। इस दुर्ग का निर्माण तत्कालीन नरेश सूर्यसैन ने गालव ऋषि के आदेशानुसार किया था। संभवतः इसी कारण

इस का नाम ग्वालियर पड़ा। कई इतिहासकार यहाँ गौ का विशेष रूप से पालन होने से उनके पालकों के ग्वाल शब्द से पुकारे जाने पर इस स्थान का नाम भी ग्वालियर पड़ा बताते हैं।

किले में पहुँच कर हमें एक विशाल भवन दीख पड़ा। यह सिन्धिया स्कूल है और यह इंगलैण्ड के पबलिक स्कूलों के समान बना है। इसके सामने सूर्य कुण्ड है। इसे पाँचवीं शताब्दी में राजा सूर्यसैन द्वारा निर्मित हुआ बताते हैं। तब हम 'तेली के मन्दिर' में गये।

तेली का मन्दिर—यह मन्दिर १०० फुट ऊँची चट्टान को काट कर बनाया गया है। इसका वास्तविक नाम तैलंगाना का मंदिर है। वहाँ की मूर्तिकला द्राविड़ शैली का परिचय देती है। मन्दिर को देख कर हम बाहर आ रहे थे कि मध्यभारतीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के मनोनीत अध्यक्ष श्री बालकृष्ण शर्मा नवीन के दर्शन हुए। उनके साथ उनकी श्रीमती तथा व्यापार उद्योग के सचिव श्री युधिष्ठिर भार्गव भी थे।

सास-बहू का मन्दिर—यहाँ से कुछ दूरी पर शैव और वैष्णवों के दो छोटे और बड़े मंदिर हैं। इन्हें कछवाहा नरेश महीपाल ने आठवीं से दसवीं शताब्दी में बनवाया था। इन्हीं शब्दों को अपभ्रंश करके "सास बहू का मंदिर" कहते है। यहाँ की प्रस्तर कला तथा मूर्तिकला बड़ी प्रशंसनीय है। यहाँ से शीघ्र ही हम मान मंदिर में पहुँचे। इस मंदिर को राजा मानसिंह ने (१४८६ से १५१६) बनवाया था। इस मंदिर को देख कर लाहौर के जहाँगीर के मकबरे की याद आ गई। यहाँ की चित्रकारी उसी के समान रंगीन है पर इसका आधार पारसी कला है। इस में दो कलात्मक सभा-भवन हैं। स्त्रियों के लिए विशेष झरोखे लगे हैं। एक शीश महल भी उनके लिए बना है। इस भवन में सातखंड हैं। हमने केवल पाँच ही देखे, शेष दो नहीं। नीचे के भाग में वह स्थान था जहाँ पर औरंगजेब ने अपने भाई मुराद को बन्दी बनाकर उसकी प्राण हत्या के लिये उसे मंद विष देकर रखा था। इसके दूसरे भाग में केसर-कुण्ड तथा जौहर-कुण्ड

था जिसमें कहा जाता है कि राजपूत महिलाओं ने सतीत्व-रक्षा के लिए जौहर किया था।

गूजरी महल—तत्पश्चात् हम हाथी द्वार से होते हुए ग्वालियर द्वार की ओर आये। यहाँ हमने गूजरी महल को देखा। यह महल राजा मानसिंह ने अपनी प्रियतमा गूजरी रानी मृगनयना के लिये बनवाया था। आजकल इसमें भारतीय इतिहास तथा पुरातत्व विभाग का अद्भुतालय है। इसमें भारतीय संस्कृति तथा हिन्दू देवी देवताओं की पाषाण एवं ताम्र प्रतिमायें हैं। कुछ कलात्मक चित्र हैं जिनको राजपूत तथा मुगल कालीन शैली पर बनाया गया है। हमने यहाँ भारतीय स्तम्भ भी देखे जिनमें अशोक स्तंभ मुख्य है। इसी स्तंभ के सिंहों को भारतीय शासन मुद्रा के रूप में लिया गया है।

भारतीय इतिहास काँग्रेस—इसके पश्चात् भारतीय इतिहास काँग्रेस के अधिवेशन की कार्यवाही होने वाली थी, हम भी अपने स्थान पर लौट आये और कुछ देर विश्राम करके अधिवेशन स्थान पर गये और वहाँ बहुत सी ऐतिहासिक चर्चाएँ सुनीं। यहाँ पर बताया गया कि भारतीय सिक्कों और मुद्राओं से इतिहास का लाभ उठाना चाहिये। डा० अल्तेकर ने विक्रम द्वितीय तथा उनके संवत् के बारे में प्रकाश डाला।

अगले दिन मध्यभारतीय हिन्दी-साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन तथा प्रदर्शनी का उद्घाटन होना था। हम भी समय पर अधिवेशन स्थान पर पहुँच गये। यद्यपि सम्मेलन का उद्घाटन श्री मैथिलीशरण गुप्त द्वारा होना था पर वाहन सम्बन्धी अव्यवस्था के कारण वे निश्चित समय पर न पहुँच सके अतः यह कार्य मध्यभारत के शिक्षामंत्री श्री नरसिंहराव दीक्षित ने किया। उन्होंने उन कठिनाइयों पर प्रकाश डाला जो शासन कार्य में स्थान स्थान पर राष्ट्रभाषा के प्रयोग करने में आ रही हैं। उनका भाषण बड़ा संक्षिप्त परन्तु सारगर्भित था। इसके उपरान्त स्वागताध्यक्ष श्री

जगमोहन श्रीवास्तव ने सरकार से माँग की कि वह राज्य में हिन्दी को ऐसा स्थान दे कि जिससे इसका प्रसार अधिक बढ़ सके।

सम्मेलन के अध्यक्ष श्री नवीन जी का भाषण बड़ा लम्बा था परन्तु उनके पढ़ने की शैली इतनी सुन्दर थी कि लोग दत्तचित्त होकर सुन रहे थे। उन्होंने वर्त्तमान आलोचकों को कहा कि वे एक आधार को लेकर आलोचना करें। यदि साहित्य की आलोचना साहित्यक दृष्टिकोण से की जायगी तभी ठीक रहेगा। साहित्यकार तथा समाज दोनों का हित इसी में है। इसी बीच में राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त भी आ गये, उन्होंने आशीर्वाद रूप में कुछ शब्द कहे और कविता सुनाई। इसके पश्चात् हमने अधिक न ठहर कर प्रदर्शिनी देखी और रात्रि को अपने स्थान पर लौट आये।

तानसैन की समाधि—३१ दिसम्बर को कवि सम्मेलन होना था। हमने इसके बीच के समय को ऐतिहासिक स्थल देखने में व्यतीत किया। सर्वप्रथम हम फूल बाग में गये, वहाँ का अद्भुतालय बंद पाया। वहाँ से हम तानसैन और मुहम्मद गौस की समाधियाँ देखने गये। मुहम्मद गौस की समाधि में हिन्दू और मुगल कालीन शिल्प कला का मिश्रण है। ये अकबर के अध्यात्म गुरु थे। इन्हीं के पास तानसैन की समाधि है। संगीत के प्रसिद्ध ज्ञाता तानसैन अकबर के नवरत्नों में से एक थे। दोनों समाधियों पर वर्ष में एक बार मेला लगता है।

झाँसी की रानी—भारतीय स्वाधीनता संग्राम की मुख्य संचालिका रानी लक्ष्मी बाई या झाँसी की रानी से कौन परिचित न होगा। प्रसिद्ध है कि "बुन्देले हर बोलों के मुख से हमने सुनी कहानी थी, खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।"

इस वीराँगना की समाधि स्टेशन रोड पर बनी हुई है। एक बड़ी सुन्दर वाटिका में रानी की समाधि है। रानी की मृत्यु १८ जून १८५७ को हुई थी। इस समय इसकी अवस्था केवल २३ वर्ष की थी। पहले इस स्थान पर एक घास की गंजी थी। उसमें रानी का मृतक शरीर दाह किया गया

था। रानी की अभिलाषा थी कि उसके मृत शरीर को अंग्रेज न छू पायें और वह पूर्ण हुई। अंग्रेज़ कमाण्डर ने कहा था, "The best person on the enemy side was the Rani of-Jhansi" अर्थात् शत्रुपक्ष में सर्वोत्तम व्यक्ति झाँसी की रानी थी।

सामने ही आश्चर्यालय था। उस समय वह खुल गया था। मैंने कई अन्य भारतीय आश्चर्यालय भी देखे हैं। यहाँ भी कुछ नवीनता मिली। चित्रकला में नूरजहाँ, मुमताज़ महल, राजा माधवसिंह तथा राणा प्रताप के चित्र सुन्दर और प्राणवान प्रतीत होते थे। राजकीय शासन के विभिन्न अस्त्र-शस्त्र, मृत-हिंसक पशु, पक्षी, तथा राज्य की शिल्प हस्तकला की वस्तुएँ इस संग्रहालय में एकत्र थीं। काठ के फल बड़े सुन्दर थे और वास्तविक फलों से भी अधिक सुन्दर लगते थे। वहाँ नकल असल और असल नकल प्रतीत हो रही थी।

चिड़ियाघर में भी जंगली हिंसक, वनराज सिंह और सिंहनी घूम रहे थे और बाहर से लड़के ढेले मार कर उन्हें तंग कर रहे थे। पराधीन होने से वे कुत्ते बिल्ली के समान थे। पास ही नील गाय भी एक ओर शांत भाव से खड़ी थी। उस अवस्था में वह मृतक सी प्रतीत होती थी पर जब उसने कान हिलाये तो हमें उसकी साधना पर बड़ा आश्चर्य हुआ।

रात्रि को कवि सम्मेलन में भी हम सम्मिलित हुए। उस सम्मेलन के अध्यक्ष थे श्री रामधारी सिंह दिनकर, सदस्य भारतीय राज्य परिषद्। ये स्वयं उच्च कोटि के कवि हैं, इनकी भूदान, 'विराट दर्शन' और वज्र की दीवार तथा डा० शिवमंगल सिंह 'सुमन' की 'साँसों का हिसाब दो', कविता से लोग बड़े प्रभावित हुये। अन्य कवियों ने भी अपनी अपनी रचनायें सुना कर जनता को प्रसन्न किया।

अगले दिन था १९५३ का आरम्भ और प्रथम जनवरी का दिन। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् इस दिन का वह विशेष महत्त्व न रह गया था जो इससे पूर्व था अतः लोग सदा की भाँति अपने कार्यों में लगे रहे। आज

के हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में माननीय पुरुषोत्तमदास टण्डन पधारने वाले थे। मैं भी अपने मित्र वर्ग के साथ ठीक समय पर पहुँच गया। श्री टण्डन जी ने अपने भाषण में कहा कि विश्व-विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम राष्ट्रभाषा हिन्दी होनी चाहिये प्रादेशिकभाषा नहीं, अन्यथा हमारी संस्कृति छिन्न हो जायेगी। आज साहित्य परिषद् के अध्यक्ष श्री नन्ददुलारे वाजपेयी भी पधारे थे।

दो जनवरी से मध्यभारतीय शासन के सहकारी कार्यालय तथा शिक्षण संस्थाएं खुलने वाली थीं। मैंने इस दिन कुछ शिक्षा-शास्त्रियों से भेंट की। शनिवार को सायंकाल मैंने केन्द्रीय पुस्तकालय देखा। यहाँ पुस्तक वितरण की व्यवस्था प्रशंसनीय थी। रविवार को मैं स्थानीय आर्यसमाज नया बाजार गया। वहाँ पर श्री बाबूलाल गुप्त का 'सृष्टि निर्माण तथा वैज्ञानिकता' पर मार्मिक व्याख्यान सुना। उन्हीं के बल देने पर मैं सोमवार को दयानन्द ऐंग्लो वैदिक स्कूल देखने गया। वहाँ का प्रबन्ध उत्तम था। सायं काल प्रदर्शनी को विशेष रूप से देखा। इस प्रकार मैंने समय २ पर मोती महल, जलविहार, महारानी जीजा साहिबा की छतरी तथा जय निवास भवन भी देखे। ६ जनवरी को मैं दिल्ली लौट आया।

नैनीताल में—१९४६ में मैं अन्तिम बार काश्मीर गया था तत्पश्चात् कुछ वर्षों तक शिमला ही जाता रहा। १९५१ में मैं एक सप्ताह के लिये मसूरी भी भ्रमण के लिये गया पर १९५२ में अपनी रुग्णावस्था के कारण गर्मियाँ दिल्ली में ही बीत गईं। १९५३ में जब दिल्ली में गर्मी का प्रकोप बढ़ गया तो मैंने नैनीताल जाने का निश्चय किया। मेरे दो पुत्र ओंप्रकाश और यशपाल भी जाने को तैयार हो गये। उनमें से एक का तो परिवार और कुछ अन्य सम्बन्धी भी साथ हो लिये।

२० जून की सायं को दिल्ली से गाड़ी में बैठे, प्रातः बरेली पहुँचे; उसी समय नैनीताल सीधी बस जा रही थी, हम उसी में बैठ गये। मार्ग में

हलद्वानी और काठगोदाम होते हुए दोपहर को नैनीताल जा पहुँचे। सर्वप्रथम वहाँ निवास के लिये प्रबन्ध करने का प्रयत्न आरम्भ हुआ। उपयुक्त निवास की खोज में पर्याप्त समय लगा। फिर भी जो स्थान मिला वह अधिक ऊँचाई पर तो था ही पर उसका पथ भी सुगम न था। हाँ सुविधा के योग्य स्थान मिलने पर अगले दिन हम एक अन्य होटल में चले गये। यह स्थान माल रोड पर था और उस का मार्ग भी सरल था।

हमारे स्थान के सामने ही नैनी का ताल लहराता हुआ अद्‌भुत शोभा प्रस्तुत कर रहा था। चारों ओर ऊँची पर्वत मालाएँ, उन पर हरे भरे वृक्ष, वनस्पतियाँ और बेलें मन को आकर्षित कर रही थीं। यह थी भी वर्षा ऋतु; आकाश में बादलों की दौड़-धूप, छायामय पर्वतीय दृश्य, समय-समय पर की बूँदा-बाँदी, कभी मंद और कभी वेग से बहने वाला पवन, भारत के भिन्न भिन्न भागों से आने वालों के हृदय को आह्लादित कर रहे थे। वहाँ के श्वेत विशाल और शानदार भवन भी विशेष आकर्षण रखते थे। सर्वत्र वरुणदेव का प्रभाव व्याप्त था।

इस पर्वतीय नगर में भारत के विभिन्न स्थानों से बसें, कारें आबाल वृद्ध, युवा, नर-नारी सभी को ला रही थीं। नगर के दो भाग हैं—एक को तल्ली ताल कहते हैं और दूसरे को मल्लीताल। बसें तल्लीताल में ही रुक जातीं हैं, वहीं से नैनी के प्रसिद्ध ताल के दर्शन होने लगते हैं। ताल, दूर तक चला गया है और उसके दूसरे सिरे पर मल्लीताल बसा है।

ताल के दोनों ओर तल्लीताल से पक्की सड़कें जाती हैं। तल्लीताल से मल्लीताल जाते समय दाहिनी ओर की सड़क को माल रोड कहते हैं। यह सड़क अधिक चौड़ी, समतल और सुव्यवस्थित है। इस पर साईकल रिक्षा भी मल्लीताल तक चलती हैं। अधिकतर अच्छे होटल भी इधर ही हैं। ज्यों ज्यों माल रोड पर जातें हैं मल्लीताल के विशाल दर्शनीय भवन सामने आने लगते हैं। स्त्री-पुरुष, बाल-बच्चे भिन्न २ वेष-भूषाओं में स्वच्छ

सुन्दर वस्त्र धारण किये हुए भ्रमण करते व इधर उधर आते जाते दृष्टि में आते हैं। प्रातः सायं तो वहाँ एक मेला सा लगा प्रतीत होता है। इस प्रकार जहाँ प्राकृतिक छटा से इसके सौंदर्य को चार चाँद लग जाते हैं, वहाँ इन दिनों विभिन्न प्रान्तीय जन समुदाय भी सौन्दर्य वृद्धि में सहायक होता है। हम दोपहर को वहाँ पहुँचे थे। शीतल वायु चल रही थी, उससे हमारे मस्तिष्क ताजा हो गये। होटल में सामान रखकर हम नौका विहार करते हुये मल्लीताल पहुँचे और शीघ्र एक अच्छे निरामिष होटल में जाकर भोजन से निवृत्त हो गये। सायं समय हो रहा था अतः साईकिल-रिक्षा करके अपने स्थान को लौट आये।

नैनीताल की शीतल वायु में प्रातः सायं का भ्रमण तो साधारणतया होता ही था पर एक दो बार नित्य नौकाभ्रमण भी हम करते थे। साथ ही मल्लीताल आर्यसमाज मन्दिर में विशेष कार्यक्रम भी मेरे लिये महत्त्व रखता था। वहाँ बाहर से आये हुए विद्वानों के प्रवचन सुनने के अवसर मिले। वहाँ तक जाने में कोई ऐसी चढ़ाई भी न थी जो मेरे लिए कठिन होती। मैंने नैनीताल में यह विशेष बात देखी कि वहाँ की सड़कें मैदानों के समान समतल हैं, नवयुवकों को चाहे यह वहाँ के लिये महत्त्व-पूर्ण बात न प्रतीत हो। वे तो प्रायः पर्वतों पर ऊँची नीची भूमि में चलने में ही प्रसन्न होते हैं, ऐसे स्थान भी वहाँ आस पास बहुत से हैं।

नैनीताल के दर्शनीय स्थान—ताल के बाईं ओर की पर्वत माला पर पूर्व की ओर और दाहिनी ओर कई मील तक कई दर्शनीय स्थान हैं। यहाँ आकर यात्री इन स्थानों को देखते हैं और नवीनता का अनुभव करके आनन्द प्राप्त करते हैं। इनमें से कुछ का परिचय निम्न प्रकार है :–

चाइना पीक—नैनीताल से सवा तीन मील की दूरी पर यह एक पर्वत की चोटी है। यहाँ एक पत्थरों की छोटी सी भीत पर पीतल का एक पैमाना बना है जिस पर सामने की ओर के पर्वत शिखरों का परिचय मिलता है। उनके नाम और उनकी ऊँचाई भी लिखी है। यह स्थान समुद्रतट से ८५६८

फीट ऊँचा है। मुझे इसे देखने की इच्छा तो थी पर वहाँ घोड़ों पर अथवा पैदल जाना पड़ता था। मेरे पुत्र ओं प्रकाश और यशपाल तो वहाँ गये पर मैंने जाना उचित न समझा। मैं वहीं के समीपस्थ स्थानों पर भ्रमण करके अपने निवास पर लौट आया।

स्नो-व्यू (Snow-View)—बर्फ़ की चोटियों का यह दर्शनीय स्थान मल्लीताल की मंडी से एक मील की ऊँचाई पर स्थित है। जब आकाश स्वच्छ होता है और धूप अच्छी होती है तब वहाँ से बर्फ़ की चोटियाँ दीख पड़ती हैं और दर्शकों को आह्लादित करती हैं।

टिफ्फन टाप—यह स्थान भी नैनीताल के यात्रियों के लिए एक विशेष आकर्षण रखता है। लोग पिकनिक के लिए यहाँ आते हैं। यहाँ से नैनीताल का सारा दृश्य दीखता है। यहाँ एक पक्का गोल चक्कर बना है जो एक छोटा सा समतल स्थान है जिससे सीढ़ियों द्वारा चढ़कर ऊपर जाते हैं और चारों ओर का दृश्य देखते हैं।

नैनीताल के अन्य दर्शनीय स्थानों में 'गुफा मंदिर' और 'पंच धारा' देखने योग्य हैं। यहाँ के लिये तल्लीताल के नीचे जाना पड़ता है। हम भी सब के सब ये स्थान देखने गये। उस समय वर्षा बड़े वेग से हो रही थी। मार्ग भी किसी २ स्थान पर तो इतना दुर्गम था कि गिरने का भय बना रहता था। वहाँ जाकर पता चलता है कि वहाँ एक पर्वतीय स्रोत से निकलती हुई शीतल जल की पाँच धाराएँ हैं जहाँ पानी बड़े वेग से निकलता है। दर्शक वहाँ जाकर स्नान करते अथवा जलपान करते हैं। गुफा-मन्दिर इससे १०० फुट से अधिक नीचे है। वहाँ का प्राकृतिक दृश्य अनुपम है। वहाँ मंदिर में मूर्ति बनी है जिसको कई लोग देव मूर्ति मान कर पूजते हैं।

मल्लीताल में एक टूरिस्ट-ब्यूरो (Tourist Bureau) बना है जो लोग बाहर से आते हैं वहाँ के दर्शनीय स्थानों की जानकारी को उन्हें आव-

श्यकता होती है। उनकी सुविधा के लिये यह एक अच्छा साधन है, वहाँ केवल इसी पर्वत सम्बन्धी ही नहीं अपितु अन्य जानने योग्य स्थानों के लिए भी साहित्य मिलता है।

इसी प्रकार नौका-विहार व इससे सम्बन्धित प्रतियोगिताओं के व्यवहार के लिये एक याटिंग क्लब अर्थात् "नौका-विहार-समिति" बनी हुई है। यह समिति नैनीताल में नौकाओं के निरन्तर विहार तथा उनकी दौड़ आदि का प्रबन्ध करती है।

नैनीताल के सुदूरवर्ती स्थान—नैनीताल के आस-पास और दूर-दूर तक कई दर्शनीय स्थान हैं। लोग अच्छी संख्या में वहाँ जाते हैं। उनमें से कुछ ये हैं :—

भुवाली का सैनीटोरियम—यह स्थान मोटर रोड पर नैनीताल से ७ मील की दूरी पर है। यह भारतवर्ष में एक प्रसिद्ध स्वास्थ्यप्रद स्थान है। सर्वत्र इसके प्रबन्ध की बड़ी प्रशंसा है। आस-पास का जंगल भी कुछ मील तक इसी कार्य के लिए नियत है।

भीम ताल—यह भुवाली से ४ मील पैदल मार्ग पर है। वहाँ बस भी जाती है जो नैनीताल से १५ मील पक्की रोड पर आता है। इस ताल का घेरा नैनी के ताल से अधिक विशाल है। यहाँ कुछ २ दूरी पर बंगले बने हैं, पास में बाजार भी है और यात्रियों के ठहरने के लिए होटल आदि भी हैं।

सात ताल—सात ताल सात सरोवरों का एक समूह है जो भीमताल से २॥ मील पश्चिम की ओर स्थित है। पहला सरोवर पर्वत श्रेणियों के बीच एक गहरे स्थान पर है। आस-पास घना जंगल है। वहाँ पहुँचना भी सुगम नहीं। इस सरोवर को लोग ऊपर से देख लेते हैं। दूसरे तीन सरोवरों के समीप बहुत से भवन हैं। ग्रीष्म ऋतु में कई व्यक्ति आकर डाक्टर स्टेनले जोन्ज़ के आश्रम में ठहरते हैं। यह ईसाइयों के प्रचार का

एक प्रसिद्ध गढ़ है। यहाँ ही कुछ पूर्व की ओर 'नल-दयमन्ती' ताल है और निकट एक मंदिर भी है। यहाँ चोड़ का भारी जंगल है और भीमताल तक उसके मध्य में अंग्रेजों की बड़ी शानदार कोठियाँ बनी हैं। इस आश्रम और अंग्रेजों की कोठियों द्वारा यहाँ अब तक ईसाई धर्म का बड़ा भारी प्रचार हुआ है। इसी प्रयोजन से अब भी ईसाई यहाँ कैंप लगाते हैं।

६—आर्यसमाज और राजनीति

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात्

आर्य समाज तथा राजनीति—आर्यसमाज वैसे तो आर्यों के सार्व-भौमिक चक्रवर्ती राज्य का समर्थक है पर अंग्रेजों की नीति को सम्मुख रखते हुए इसे अपना कार्य-क्षेत्र धर्म प्रचार तक ही सीमित रखना पड़ा था। उसने प्रत्यक्ष राजनीति में कभी भाग नहीं लिया और न ही इसके सम्बन्ध में कोई स्पष्ट नीति ही निर्धारित की। इस में आर्यसमाज के सदस्यों में से कोई भी व्यक्तिगत रूप से स्वतन्त्रता पूर्वक भाग ले सकता था। हाँ राष्ट्रीयता की दृष्टि से उसने अपने प्रचार काल में सदा कांग्रेस की नीति का समर्थन किया और अधिक से अधिक आर्यसमाजी स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेते रहे।

सार्वदेशिक-आर्य-प्रतिनिधि-सभा—आर्यसमाजों की एक अन्तर्राष्ट्रीय शिरोमणि सभा है जिसका मुख्य स्थान दिल्ली है। इसका नाम है "सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा"। इसका मुख्य कार्य है सारे संसार की आर्यसमाजों का प्रतिनिधित्व करना। इसकी ओर से अखिल भारतीय आर्य महासम्मेलनों का आयोजन देश के किसी भी नगर में किया जाता है। उसमें संसार की आर्यसमाजों को अपने २ कार्यों में अग्रसर होने के लिए पथ-प्रदर्शन और उत्साह मिलता है। आर्य-महासम्मेलन का छठा अधिवेशन १६४६ में कलकत्ता में हुआ था।

भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् आर्यों के हृदय में भी स्वतंत्र भावनाओं की वृद्धि होने लगी। दूसरे राजनैतिक दलों को संगठित होते और कार्य क्षेत्र में आते देख कर आर्यसमाज के राजनीति प्रेमी महानुभावों के मस्तिष्क भी एक नया दल बनाने का स्वप्न लेने लगे। बात थी भी कुछ ऐसी

ही क्योंकि दूसरी संस्थाओं को सहयोग देने में आर्यों की आन्तरिक भावना कुचली जा रही थी। कांग्रेस की राजनीति में भारतीयता की उपेक्षा थी। इसी प्रकार दूसरे दलों के सिद्धांत भी विपरीत पड़ते थे। जब वे अन्य दलों में सम्मिलित होकर कार्य करते हैं तो उन्हें अन्यों की नीति का सर्वांश रूप से समर्थन करना पड़ता है यद्यपि उनके लिए महर्षि दयानन्द ने धर्मसभा के अतिरिक्त राज्यसभा बनाने का स्पष्ट संकेत किया है।

इन विचारों के आधार पर कलकत्ता आर्य महासम्मेलन में श्री स्वामी आत्मानंद जी महाराज की अध्यक्षता में राजनैतिक सम्मेलन हुआ था। लोकसेवक मंडल के नाम से उसमें एक संगठन बनाने का निर्देश भी था पर वह कार्य आगे न बढ़ सका। राजनीति के समर्थक कुछ आर्य नेताओं को विश्वास था कि कांग्रेस दल में सम्मिलित रहने से उनके सिद्धांतों की हानि न होगी पर ऐसा न हुआ। अन्य भी जो राजनैतिक दल बने, आर्य-सज्जन उनमें सम्मिलित होने लगे और आर्यसमाज की शक्ति और विचारों में मतभेद पैदा होने के आसार दीखने लगे। ऐसी परिस्थितियों में मेरठ में आर्य महासम्मेलन का सप्तम अधिवेशन हुआ।

आर्य महासम्मेलन मेरठ—अक्टूबर के अन्तिम सप्ताह में २७ अक्तूबर से २ नवम्बर तक आर्य महासम्मेलन का सप्तम अधिवेशन मेरठ में होना निश्चित हुआ था। श्री विनायकराव जी विद्यालंकार, हैदराबाद राज्य के कृषि मंत्री, सम्मेलन के अध्यक्ष मनोनीत हुये थे। गत छठे अधिवेशन में कलकत्ता में भी मैं सम्मिलित हुआ था। इसमें भी मैंने मेरठ जाकर प्रतिनिधि रूप में भाग लिया। समस्त भारत के प्रायः सभी प्रांतों से और विदेशों तक से भी प्रतिनिधि सम्मेलन में पधारे थे। अनुमान किया जाता है कि ५० हज़ार व्यक्तियों ने सम्मेलन में भाग लिया था।

सम्मेलन की स्वागताध्यक्षा श्रीमती शकुन्तला देवी और स्वागत मंत्री श्री कालीचरण थे। उन्होंने और अन्य स्थानीय आर्य-महानुभावों ने अपने प्रतिनिधियों और नेताओं के स्वागत सत्कार में किसी प्रकार की कसर

न उठा रखो। श्री राजगुरु धुरेन्द्रजी शास्त्री के निरन्तर प्रयास एवं कार्य क्षमता के कारण सम्मेलन की बहुत सी कठिनाइयाँ दूर हो गई थीं। सम्मेलन को उपयोगी और रोचक कार्यक्रम द्वारा सफल बनाने का भरसक प्रयत्न किया गया।

सम्मेलन के कारण सभी आर्य-भाई बहनों में बड़ा उत्साह दीख पड़ता था। नगर में चहल-पहल थी। नौचन्दी मेले के स्थान पर ही सम्मेलन का एक विशाल पंडाल बनाया गया था। कुछ दिन पूर्व से ही एक वृहद्-यज्ञ रचाया गया। २७ की प्रातः १० बजे अध्यक्ष महोदय का एक जलूस निकाला गया जो रात्रि को समाप्त हुआ। मैं तो उस समय न पहुँचा था पर यह बताया गया कि जलूस बहुत लम्बा था और लोग हर्ष व उत्साह से परि-पूर्ण होकर वैदिक धर्म के नारों से नगर को गुंजा रहे थे। अध्यक्ष महोदय एक हाथी पर विराजमान थे।

नियत समय पर सम्मेलन का उद्घाटन हुआ। श्रीमती स्वागताध्यक्षा ने स्वागत भाषण में आर्यसमाज की उन्नति के लिये आर्य भाइयों का स्वागत करते हुये उन्हें धन्यवाद दिया। तत्पश्चात् श्री विनायकराव विद्यालंकार सभापति के पद को सुशोभित करने के लिये खड़े हुये, उन्होंने अपने छपे हुए भाषण में आर्यसमाज को एक महत्व पूर्ण सन्देश दिया।

सम्मेलन की नियत तिथियों पर वेद सम्मेलन, शिक्षा सम्मेलन, राज-नीति आदि सम्मेलनों का उपक्रम हुआ।

राजनीति सम्मेलन में प्रस्ताव सं० ५ में यही निश्चय हुआ कि आर्य-समाज बहैसियत आर्यसमाज, प्रचलित राजनीति तथा चुनाव में भाग न लें। इसके अतिरिक्त आर्य संस्कृति की विचारधाराओं से प्रभावित पृथक् राजनैतिक संगठन स्थापित कर उसे सक्रिय रूप देने के लिए पन्द्रह व्यक्तियों की एक पृथक् समिति बनादी गयी।

राजनैतिक प्रस्ताव पर जब खुले अधिवेशन में कार्यवाही हुई तो एक विशेष चहल-पहल रही और बड़े जोशीले व्याख्यान हुए।

एक यह प्रस्ताव भी आया कि इस खुले अधिवेशन में स्वीकृत सब प्रस्ताव यद्यपि सार्वदेशिक सभा से स्वीकृत नहीं परंतु अब वह सब आर्य समाजों के प्रतिनिधियों द्वारा संपुष्ट हुए हैं अतः निश्चय किया जाता है कि उन सब विषयों को कार्यान्वित करने के लिए सार्वदेशिक सभा बाध्य होगी। एक प्रस्ताव में गोपालन पर भी बल दिया गया।

मेरठ महासम्मेलन में जहाँ आर्यसमाज की प्रगति, अवस्था व विचार परम्परा का अनुभव हुआ वहाँ अपने परिचित आर्य-नेताओं से मिलने का भी अवसर प्राप्त हुआ।

सम्मेलन कार्य से अवकाश पाकर मैं यथासमय दिल्ली लौट आया। इसके कुछ मास पश्चात् ५ मई १९५१ को सार्वदेशिक आर्य-प्रतिनिधि सभा का श्रद्धानन्द बलिदान भवन में एक अधिवेशन बुलाया गया। सदस्य होते हुए मैं भी उसमें सम्मिलित हुआ। रात के १०॥ बजे तक वादविवाद चलता रहा और अन्त तक राजनैतिक-समिति के संगठन पर बिना कुछ निर्णय हुए ही कार्यवाही स्थगित करदी गई। इससे अगले दिन सभा का चुनाव हुआ जिसमें श्री राजगुरु धुरेन्द्र शास्त्री प्रधान तथा श्री ज्ञानचन्द्र जी मन्त्री निर्वाचित हुए।

कन्या गुरुकुल देहरादून—कन्या गुरुकुल के दीक्षान्त भाषण व उत्सव पर आर्य-प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग तथा विद्या-सभा का अधिवेशन सम्मिलित रूप से अमृतधारा-भवन देहरादून में हुआ। दीक्षान्त भाषण के लिये संयुक्त प्रान्तीय कांग्रेस के अध्यक्ष आचार्य जुगल किशोर पधारे थे। आचार्य जी ने नवीन स्नातिकाओं को समय की आवश्यकतानुसार देश सेवा करने का संदेश दिया। इसी अवसर पर श्री पं० ठाकुरदत्त जी ने सभा के प्रतिनिधियों तथा अन्य महानुभावों को एक भोज पर निमन्त्रित किया था। हम सभी उसमें सम्मिलित हुए। यहाँ पर एक बहुत पुराने परिचित महानुभाव से भेंट हुई, ये थे स्वामी भास्करानन्द जी। वे कई वर्ष पूर्व गुरुकुल काँगड़ी में सेवा कार्य करते रहे थे, इनका नाम श्री मूलराज

था, उस समय उनसे मुझे मिलने के कई अवसर हुए थे। उसके पश्चात् अब कई वर्षों बाद उनके दर्शन हुए।

गणराज्य समारोह—गणराज्य महोत्सव की दूसरी वर्षगाँठ १९५२ की २६ जनवरी को मनाई गई। पूर्व वर्षों की अपेक्षा मैंने इस उत्सव में यह विशेषता देखी कि प्रदर्शन में प्रत्येक प्रांत की अपनी विशेष-ताएं एवं सांस्कृतिक रूप दिखाये गये थे। १०॥ बजे प्रातः इर्विन स्टेडियम में राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद द्वारा भारतीय सैनानियों को जिन्होंने देश रक्षा के लिये अपने प्राण-उत्सर्ग किये थे, वीर-चक्र तथा अशोक चक्र आदि प्रदान किये गये। वहाँ से सैनिक परेड का आरंभ हुआ जिसकी शान अपना विशेष महत्व रखती थी। इसके पश्चात् सांस्कृतिक-रथ यात्रा का आरंभ हुआ। वाद्य-समूह के पीछे बंगाल प्रांत का दृश्य था, जिसमें सरस्वती-पूजा दिखाई गई थी, पाषाण की एक विशाल प्रतिमा बनी थी, लोग पूजन कर रहे थे और गा रहे थे। गुजरात का गर्बा नृत्य स्त्रियों का पनघट पर नाच करना महत्व पूर्ण दृश्य था। साथ ही हिमालय पर्वत का दृश्य था मानो वह कहता था कि मैं भारत का प्रहरी हुँ, यहाँ पर आक्रमण करना अपने सिर को टकराना है। काँगड़ा और कुल्लू के निवासियों का रहन-सहन, मालाबार को नागा जाति, उड़ीसा में जगन्नाथ-रथ की यात्रा एवं महात्मा गाँधी की कुटिया का दृश्य अनुपम था।

वहाँ उत्तर प्रदेश की कव्वाली का प्रदर्शन था, बटेरों की लड़ाई हो रही थी और नवाबी पिंजड़ा भी टंगा था। अलवर राज्य के एक सामंत की बरात में राजपूतों की वेष-भूषा और मध्यप्रदेश की गणपति पूजा का दृश्य बड़ा प्रभाव-शाली था। भारत के स्वर्ग काश्मीर का शालीमार बाग का दृश्य तथा एक हाउस-बोट और शिकारे तथा नटराज के दृश्य भी कम सुन्दर न थे।

आगामी वर्ष फर्वरी में मैं गुरुकुल कांगड़ी के निरीक्षणार्थ हरिद्वार गया हुआ था। वहीं श्री विश्वनाथ वेदोपाध्याय भी देहरादून से ठीक समय पर पहुँच गये थे। शिक्षा निरीक्षण के अतिरिक्त हमने आश्रम में भी प्रातः

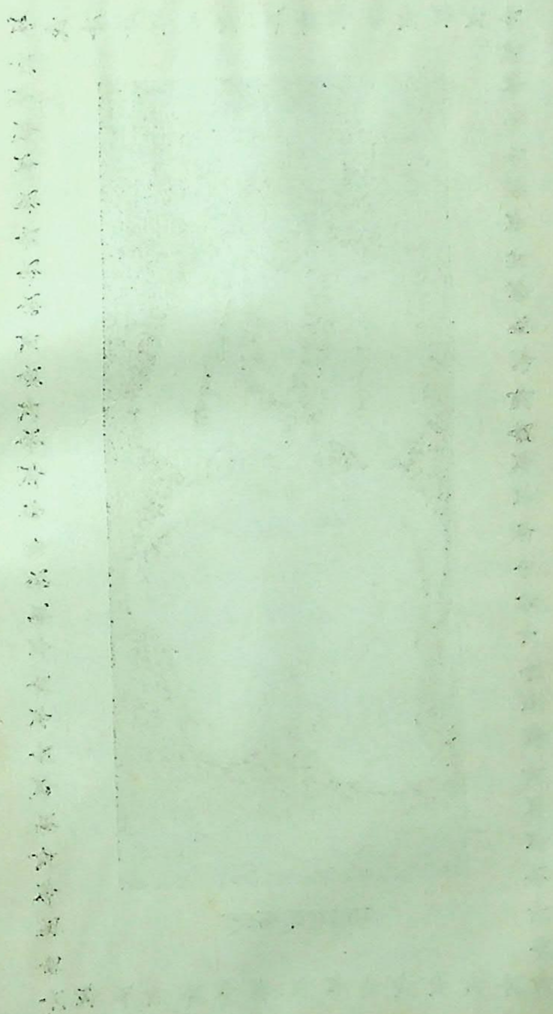
सायं जाकर ब्रह्मचारियों के रहन-सहन के प्रबन्ध व व्यवस्था को देखा। ब्रह्मचारियों की शारीरिक उन्नति के विषय में जाँच करते हुए उनके व्यायाम तथा क्रीड़ाओं को भी देखा। हम वहाँ के अस्पताल में भी गये, वहाँ उन ब्रह्मचारियों को देखा जो रुग्ण शय्या पर पड़े हुए थे। उनके स्वास्थ्य के विषय में पूछकर उनकी चिकित्सा तथा देखभाल सम्बन्धी जानकारी प्राप्त की। श्री पं० विश्वनाथ विद्यालंकार उक्त गुरुकुल में कई वर्षों तक वेदोपाध्याय रह चुके थे और १९४१ में अपने पद से अवकाश पा लिया था।

वहीं समीप ही गवर्नमेंट नार्मल स्कूल में विशेष सप्ताह मनाया जा रहा था। वहाँ प्रतियोगिताएं होती थीं। इस अवसर पर मुझे और पं० विश्वनाथ को भी निमन्त्रित किया गया। हम वहाँ गये; गुरुकुल विद्यालय के प्रधानाध्यापक भी हमारे साथ थे। इस समारोह में वहाँ के विद्यार्थियों ने आग लगने व पानी में डूबने आदि के समय तात्कालिक सहायता के कई प्रकार दिखाये।

वहाँ हमें कुछ प्रतियोगिताओं में निर्णायक का कार्य दियागया। इस पर हमारे वहाँ २ घंटे से अधिक लग गये। सायंकाल आठ बजे के लगभग वहाँ से निवृत्त होकर गुरुकुल में अपनें स्थान पर लौट आये।

अभी गर्मियाँ आई भी न थीं कि मुझे कुछ शारीरिक कष्ट होने लगा। मैंने विश्राम करना उचित समझा। मैं कहीं बाहर न गया, इस पर भी कष्ट बढ़ता गया, मंद मंद-ज्वर रहने लगा। डाक्टर से परीक्षा कराई पर कोई निश्चित विकार प्रतीत न हुआ। कुछ समय पीछे मूत्र के समय पीड़ा आरम्भ हो गई, जिसने भयानक रूप धारण कर लिया; औषधियों से कोई लाभ न हुआ अन्त में डाक्टरों की ओर से परामर्श दिया गया कि रोग का वास्तविक रूप जानने के लिये ओपरेशन कराना होगा। इसी बीच में होमियोपेथी उपचार कराया गया और उससे शीघ्र ही दशा सुधरनी आरम्भ हो गई।

अब दुर्बलता बढ़ गई थी, अतः बाहर जाने की भी आवश्यकता न प्रतीत होती थी। इसी अवस्था में कुछ मास दिल्ली में बीते और





महाशय कृष्ण

सर्दियों तक स्वास्थ्य कुछ अच्छा हो गया।

आर्य प्रतिनिधि-सभा, पंजाब—गर्मियों में नैनीताल से लौटने पर पानीपत जाने का कार्यक्रम बना। वहाँ आर्य-प्रतिनिधि-सभा पंजाब का अधिवेशन २५-२६ जुलाई को होने वाला था। मैं आर्य शिक्षा-समिति का वार्षिक विवरण तैयार करने के लिए २४ जुलाई को ही दोपहर की गाड़ी से पानीपत के लिए चल पड़ा, मेरा पुत्र ओंप्रकाश भी मेरे साथ था, वह भी प्रतिनिधि रूप में वहाँ गया था। पानीपत में आर्य हाई-स्कूल में हमारे ठहरने का प्रबन्ध था, अधिवेशन भी वहीं होना था। सायंकाल तक पंजाब से भी अन्य प्रतिनिधि आ पहुँचे। दीवान बद्रीदास, महाशय कृष्ण, श्री चरणदास पुरी, श्री पं० ठाकुर-दत्त शर्मा वैद्य, श्री रामगोपाल ऐडवोकेट, श्री नारायणदास आदि प्रतिनिधि महोदयों से भेंट हुई। वहाँ एक बहुत पुराने मित्र से भी मिलने का अवसर हुआ, ये थे श्री पं० भगतराम जो पेशावर नैशनल हाई-स्कूल में वर्षों मुख्याध्यापक पद पर कार्य कर चुके थे।

२५ की प्रातः काल ७॥ बजे कार्य आरम्भ हुआ। सर्वप्रथम ओं-ध्वज फहराया जाना था। वहाँ पर सबसे वयोवृद्ध और आर्यसमाज के पुराने सदस्यों में दीवान बद्रीदास जी ही इस कार्य के लिये उपयुक्त समझे गये। उन्होंने यह कार्य सम्पन्न किया। तत्पश्चात् अन्तरंग सभा और विद्या सभा का संयुक्त अधिवेशन हुआ। १०॥ बजे सभा का साधारण अधिवेशन आरम्भ हुआ। इस वर्ष १२४ सम्बन्धित आर्यसमाजों की ओर से २७६ प्रतिनिधि उपस्थित थे, कहा जाता है कि इससे पूर्व किसी अधिवेशन में भी इतनी संख्या में प्रतिनिधि नहीं आये थे।

सर्वप्रथम पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार ने प्रार्थना करवाई। तत्पश्चात् गत अधिवेशन की रिपोर्ट पढ़ी गई। उस पर प्रतिनिधियों ने विचार प्रकट किये। मैंने भी कहा कि आर्य प्रतिनिधि सभा का मुख्य उद्देश्य वैदिक धर्म का प्रचार करना है जिसका यह अर्थ है कि जहाँ तत्सम्बन्धी ज्ञान का

प्रसार हो वहाँ पर क्रियात्मक आचरण भी होना चाहिये पर हमारा कार्य आज तक प्रचार तक ही सीमित रहा है। क्रियात्मक आचरण के प्रति विशेष ध्यान न होने के साथ ही हम में स्वाध्याय की प्रवृत्ति भी घट रही है जिसके कारण हमारा आध्यात्मिक विकास पर्याप्त रूप से नहीं हो रहा। सम्भवतः यह इसलिये भी है कि हमारे धर्म ग्रंथ संस्कृत में हैं और सर्वसाधारण का संस्कृत-शिक्षा की ओर ध्यान नहीं है। इसलिये अधिक उचित होगा कि जहाँ संस्कृत शिक्षा के लिये साधन उपस्थित किये जायं वहाँ धर्म ग्रंथों के आर्य भाषा में भी प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित किये जायं, साथ ही स्वाध्याय के लिए आर्य समाजों में विशेष व्यवस्था हो। सामाजिक उत्थान के लिये यह भी उचित प्रतीत होता है कि हम वर्ण-व्यवस्था को गुण-कर्म-स्वभावानुसार स्थापित करने की ओर क्रियात्मक पग उठावें।

मेरे पश्चात् कई अन्य प्रतिनिधियों ने भी अपने२ विचार प्रकट किये और गुरुकुल आदि के बजट स्वीकृत हुए। अगले दिन अधिकारियों का चुनाव हुआ जिसमें महाशय कृष्ण प्रधान और पं० भीमसेन विद्यालङ्कार मंत्री निर्वाचित हुये। पंजाब आर्य शिक्षा समिति के अधिकारियों में गत वर्ष की भाँति श्रीमान् निरञ्जननाथ प्रधान रहे और मैं मंत्री रहा।

आर्य समाज किशनगञ्ज—दिल्ली में आकर मैं दीवानहाल आर्य समाज का सभासद बन गया था, पर यह समाज मुझे दूर पड़ती थी अतः १९५२ के आरम्भ से मैं अपने निकट किशनगञ्ज की आर्य समाज के सत्सङ्गों में जाने लगा। श्री ईश्वरदास समाज के मंत्री व अन्य कुछ सभासदों की प्रेरणा से मैं वहाँ का सदस्य बन गया। कुछ मास पश्चात् वहाँ का वार्षिकोत्सव का निश्चय हुआ तो मुझे उसमें कुछ सेवायें दी गईं। उत्सव सफल रहा। जब आगामी निर्वाचन हुआ तो मुझे प्रधान का कार्य मिला। यहाँ सत्सङ्गों के अतिरिक्त पारिवारिक दैनिक सत्सङ्गों की व्यवस्था की गई। उसी क्रम के अनुसार मेरे यहाँ भी १ अगस्त से सत्सङ्ग के अंतर्गत विशेष यज्ञ का आरम्भ हुआ। ९ अगस्त को उसकी पूर्णाहुति हुई। इस दिन मेरा ७० वाँ जन्मदिन था। उस दिन आर्य समाज के सदस्यों के अतिरिक्त मेरे कुछ सम्बन्धी और मित्र भी सम्मिलित हुए।





सत्तरवें जन्म दिन पर (अगस्त १९५३)

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	शुद्ध
५	२०	किञ्चिन्मात्र	१५८	८	लाहौर
५	१५	से	१६५	७	विष्णुदत्त
५	१६	पड़ सका	१७२	३	वालों
१४	१६	ऋण	१७४	६	आर्य
१५	२	पश्चात्	१७७	१३	पुरुषों
१५	१८	शृङ्गारी	१९१	८	प्रांतों
१७	७	कार्यों	१९३	१८	जी
३०	२१	में	१९५	१	वर्ष
३०	२१	स्त्रियाँ	१९६	२०	रजिस्ट्री
३०	२२	भाँति	१९८	१२	'ही' न मानें ?
३०	२३	अपितु	२०२	२५	प्राकृतिक
३०	२४	था।	२०२	२६	नागरिकता सम्बन्धी
४३	२६	दुर्गा प्रसाद	२०३	१२	मैं
४६	८	शिक्षा	२०३	१७	त्यों
५३	१	पिंडी भा-	२०४	२६	'भाव' न मानें ?
६२	२२	झंगस्याल	२०५	४	अकिंचन
६५	२	जेहलम	२०६	४	तक
१२५	८, १६	स्रोत	२०६	१०	थैली
१३१	७	पिता	२०७	१०	फिर
१३४	२	शाली	२०७	१०	गुलिस्ताँ
१४१	६	देते थे	२०८	११	जिसे
१४६	७	अधिक	२०८	१२	Mary
१५६	१५	की			

पृष्ठ	पंक्ति	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	शुद्ध
२०८	१४	आचार्या	२२१	२	'कि' न मानें ?
२०८	१४	'वहीं' न मानें ?	२२२	६	रीत्यनुसार
२०८	१६	Bedes	२२३	१	मैकमिलन
२०८	१८	मैं	२२४	६	परिवर्त्तित
२०८	२०	पार्किन्सन	२२४	१०	दी जाती
२०८	२१	अंग्रेज़ी	२२६	१२	फ्रांसिस
२०६	१५	भेंट	२३०	२	निर्माण
२१२	१८	फ़र्लाङ्ग	२३५	६	और
२१३	८	लोगों	२३५	२०	साढ़े
२१३	१४	उनकी	२३५	२०	की यात्रा
२१३	१४	पानी	२३६	१	बर्फ
२१३	१४	जाती	२३६	८	लौट
२१४	५	समस्त	२३६	१३	इसके साथ
२१४	११	उत्तर	२३७	४	बाँदी
२१४	१६	उनके	२३८	१०	की
२१५	११	केवल	२३८	२५	ही
२१५	१६	बार	२४०	१	रूप
२१५	१८	भय	२४०	१	भी
२१५	२१	ग्राफ़र	२४०	४	'वह' न मानें ?
२१६	१	श्री	२४०	६	श्री
२१६	७	से	२४१	१२	श्रीनगर को बारामूला मानें
२१७	१६	की	२४१	१४	और
२१८	१४	रहे	,,	२१	३३
२१८	१६	म्यु	२४६	१४	अतः
२२०	२७	बैठे	२४७	१५	शाहपुराधीश
२२१	१	देखा कि			

पृष्ठ	पंक्ति	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	शुद्ध
२५०	४	पश्चात्	३०५	१०	विश्वंभर
२५२	४	भ्रमणार्थ	३०५	२४	रंजन
२५५	२०	क्षेत्र	३०६	२	संख्या
२५७	२	तृतीय	३०८	२०	करेंगे
२५९	१०	कइयों	३१०	४	पता
२६०	२	भली	३११	५	पदार्थ
२६०	२१	निरीक्षण	३११	१९	दूसरे
२६१	१६	ज्ञाति-पाति	३१२	१७	प्रस्ताव
२६४	३	लगानी	३१३	१२	कई
२६६	१०	विस्मित	३१४	१९	संसद
२७१	१७-१९	प्रिंसिपल	३१४	२४	मध्याह्न
२७२	१३	भली	३१५	४	रखा
२७४	१	में	३१५	११	के दृश्य
२७६	१७	मैंने	३१५	२७	अधिकारी
२८१	१०	स्वतन्त्रता	३१८	१७	ऋषि
२८५	४	विक्टोरिया	३१९	७	भंग
२९०	१४	लिए	३२०	९	विज्ञान
२९५	१८	लिए	३२१	१३	गृह
३०१	१७	विद्यार्थियों	३२१	१९	विद्यालय
३०२	१८	देखी	३२२	१	चला
३०२	२७	स्कूल	३२२	३	ऋतु
३०३	३	यद्यपि	३२२	१४	खोजो
३०३	९	प्रिंसिपल	३२२	१६	उपयोगी
३०३	२१	देखा	३२३	५	आवश्यकता
३०३	२२	उन्नत	३२५	५	साधारण

पृष्ठ	पंक्ति	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	शुद्ध
३२५	१६	एकत्र	३५१	१३	अहाते
३२५	२०	विश्वंभर	३५३	१७	गोल
३२७	१	आर्य	३५४	४	निवृत्त
३२८	१२	ऋतु	३५४	८	बटवा
३२८	१२	युद्ध	३५८	१२	था
३२९	१०	रास	३६५	५	मिलना सम्भव
३३४	६	गृह	३७२	२७	प्रिंसिपल
३३४	८	लिए	३९१	(ऊपर)	स्वाधीनता
३३४	२०	गृह	३९६	१	तथा बाज़ार
३३५	१३	लाहौर	४१६	२	सुखदेव
३३६	५	गृहिणी	४२१	७	समयाभाव
३३६	२०	उन्होंने	४३३	(चित्र पर)	सत्यपाल
३३६	२२	लाये	४३७	१०	ठाकुरदत्त शर्मा
३३८	२१	लाये	४३९	६	मुझे
३४१	२१	मूर्ति	४४२	२७	स्वीकार
३४१	२४	देख	४४७	११	विनायकराव
३४१	१३	विज्ञापन	४५०	(चित्र के नीचे)	गोल
३४१	१६	आदर्श	४५५	१	बुद्ध
३४५	१४	देख	४८९	२३	ही
३४५	२०	सिख	४९१	१	सभाओं
३४५	२६	बिखरे	४९३	४	विशाल
३४६	२	शिखर	४९७	५	संस्कृति
३४७	२२	विशेष	४९७	१३	वैज्ञानिकता
३४८	२	खाया	५०८	३	क्रीड़ाओं
३५०	२५	थी	५०८	२३	जानने





पुस्तक वितरण की तिथि नीचे अङ्कित है। इस तिथि सहित १५ वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए अन्यथा ६ नये पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

24 AUG 1968		
19 FEB 1983		

